आप्तवाणी

श्रेणी-९

दादा भगवान कथित

आप्तवाणी

श्रेणी-९

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिंदी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : **अजीत सी. पटेल**
दादा भगवान आराधना ट्रस्ट,
'दादा दर्शन', 5, ममतापार्क सोसाइटी,
नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद - 380014, गुजरात
फोन : (079) 39830100

प्रथम संस्करण : 3000 नवम्बर, 2016

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 120 रुपये

मुद्रक : अंबा ओफसेट
B-99, इलेक्ट्रोनीक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25, गांधीनगर-382044
फोन : (079) 39830341

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो,

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं,

पढमं हवइ मंगलम् १

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय २

ॐ नमः शिवाय ३

जय सच्चिदानंद

समर्पण

अनंत जन्मों चढ़े, परम पद पाने के लिए,
मथे, हाँफे, थके और अनंत बार गिरे।

अपनाई बाधक गली, साधकने सरल राह छोड़कर,
सौ कमाने में कषाय हुए, दो सौ का नुकसान उठाया।

आपोपुं अपने कपट, ममता, लोभ, लालच, चतुराई,
मान, स्पर्धा, टीका, गुरुता, अहम् और जुदाई।

कच्चे कान, दूसरों का सुनना, पूजाने की कामना,
आराधना रोककर, करवाए कितनी विराधना।

निपुणता का अहम्, लालच बदला दे पटरी,
'मैं जानता हूँ' का कैफ, ज्ञानी के दोष देखकर खोट खाई।

आड़ाई, स्वच्छंद, शंका, त्रागुं, रुठना, उद्वेग,
मोक्षमार्गी साधकों के हेल्दी मन में फैलाएँ 'प्लेग'।

मोक्षमार्ग में बाधक कारणों को कौन बताए?
कौन छुड़वाए? कौन वहाँ से वापस मूल मार्ग पर लाए?

मार्ग के 'जानकार' बताएँगे सभी बाधक कारण,
सूक्ष्म अर्थ विवेचन 'आप्तवाणी' साधकों को समर्पण!

दादा भगवान कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन ? भगवान कौन ? जगत् कौन चलाता है ? कर्म क्या ? मुक्ति क्या ?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कान्ट्रेक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष !

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट !

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन ?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते है वे दादा भगवान नहीं है, वे तो 'ए.एम.पटेल' है। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आप में अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसी के पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। पीछे अनुगामी चाहिए कि नहीं चाहिए? पीछे लोगों को मार्ग तो चाहिए न?''

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थीं। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त कर के ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता हैं।

ज्ञानीपुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस आप्तवाणी में हुआ है, जो नये पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगी।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो। उनकी हिंदी के बारे में उनके ही शब्द में कहें तो ''हमारी हिंदी यानी गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी का मिक्स्चर है, लेकिन जब 'टी' (चाय) बनेगी, तब अच्छी बनेगी।''

ज्ञानी की वाणी को हिंदी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाये गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिंदी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिंदी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में दिये गए हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

इस आप्तवाणी में ब्रैकिट में शब्दों के जो अर्थ दिए गए हैं, वे हमारी आज की समझ के अनुसार हैं।

संपादकीय

अनंत जन्मों से जीव मोक्ष में जाने के लिए प्रयत्नशील है। कितनी ही बार चढ़ता है और कितनी ही बार गिरता है। मनचाहा परिणाम आने से कौन रोकता है? मोक्ष की साधना करने वाले व करवाने वाले लोग काफी कुछ अंशों तक 'साधक कारणों' को पा सकते हैं, लेकिन 'बाधक कारणों' को देखकर और समझकर उनसे विरक्त रह सकते हैं सिर्फ किसी ही काल में प्रकट होने वाले ज्ञानी! जब प्रत्यक्ष प्रकट ज्ञानीपुरुष मिल जाएँ तभी मोक्षमार्ग पूर्णरूप से खुल जाता है, इतना ही नहीं लेकिन अंत तक पहुँच जाते हैं!

मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने का मार्ग कहीं-कहीं पर मिल आएगा, लेकिन ऊँचे चढ़ते-चढ़ते जो 'डेन्जरस पोइन्ट्स' आते हैं उनकी लालबत्तियाँ कहीं भी नहीं मिलतीं। चढ़ने के रास्तों की जितनी महत्ता है, उससे अनेक गुना महत्वपूर्ण है, फिसलने वाले स्थानकों की जानकारी और वहाँ सतर्कता रखना। और उस सतर्कता के बिना वह चाहे जितना पुरुषार्थ करे तब भी गिरता ही रहेगा।

आत्मसाधना करते-करते साधक कहाँ-कहाँ खुद, खुद के लिए ही बाधक बन जाता है, इस चीज़ की साधना अत्यंत तीक्ष्ण जागृति के बिना सिद्ध नहीं हो सकती। अर्थात् इस पुरुषार्थ में मुनाफा प्राप्त करने से अधिक, नुकसान को किस तरह से रोका जाए, वह अति-अति महत्वपूर्ण है।

ज्ञानीपुरुष मिल जाएँ और ज्ञानीपुरुष की पहचान हो जाने के बाद उनकी आराधना शुरू हो जाए, उससे पहले तो जो संसार में ही, व्यवहार में ही उलझे हुए थे, वे ही, संसार की साधना करने वाले ही, अब मोक्षमार्ग की साधना की ओर मुड़ते हैं। अब बाकी बचा हुआ व्यवहार जब आवश्यकरूप से पूरा करना होता है, तब जाने-अनजाने में संसार की साधना भी हो जाती है, उस लीकेज को कौन दिखाएगा? उन तमाम लीकेज को सील करने के लिए व्यवहारज्ञान-अध्यात्मज्ञान और अध्यात्मविज्ञान तक का ज्ञान, ज्ञानकला और बोधकला यहाँ पर प्रकट ज्ञानीपुरुष द्वारा अनावरित हुए हैं।

मोक्षमार्ग अर्थात् मुक्ति का मार्ग, संसारी बंधनों से मुक्त होने का मार्ग। मुक्ति के साधन मानकर साधक जो-जो करता है, उससे उसे मुक्ति

का अनुभव नहीं होता। कितने-कितने साधन करने के बाद भी उसका बंधन नहीं टूटता। उसमें कौन सी भूल रह जाती है? मुक्त होने के लिए मुक्त होने के कारणों का सेवन करना चाहिए। जिन-जिन कारणों का सेवन करता है, उनसे उसे मुक्ति का अनुभव होता जाए, तभी ऐसा कहा जा सकता है कि उसके द्वारा सेवित कारण मुक्ति के लिए हैं पर ये तो मुक्ति के कारणों का सेवन करते हैं, फिर भी बंधन नहीं छूटता, ऐसा क्यों?

ज्ञानीपुरुष ने संपूर्ण मोक्षमार्ग को देखा है, जाना है, अनुभव किया है और उस मार्ग को पार किया है इसीलिए उस मार्ग में बाधक दोष, उस मार्ग में आने वाले विघ्न-आने वाली अड़चनों या आने वाले खतरे बता सकते हैं। उस मार्ग पर चलनेवालों को, दोषों का किस प्रकार निर्मूलन किया जा सकता है, वे उसका पूर्ण ज्ञान, पूर्ण उपाय बता सकते हैं।

जगत् में जिन दोषों से बंधे हुए हैं ऐसे दोष, जो जगत् के लोगों की दृष्टि में नहीं आ सकते हैं उनकी वजह से लोग निरंतर इस प्रकार के दोषों से बंधकर, उन दोषों को पोषण देकर मोक्षमार्ग से विमुख ही रहे हैं।

पूर्वकाल में हो चुके ज्ञानी मोक्षमार्ग में बाधक दोषों के बारे में लोगों को चेतावनी देकर गए हैं। लेकिन मोक्षमार्ग की प्राप्ति होने से पहले के बाधक दोष, मोक्षमार्ग की प्राप्ति होने के बाद बाधक होने वाले दोष, उन सभी का विस्तारपूर्वक विवरण उपलब्ध हो तो मोक्षमार्ग का सच्चा अभिलाषी साधक उस मार्ग को पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है, उस मार्ग में खुद प्रगति की ओर प्रयाण कर सकता है। फिर भी वास्तविक मार्ग तो ज्ञानीपुरुष के चरणों में रहकर ही पूर्ण करना होता है।

पहले के ज्ञानी कह गए हैं कि क्रोध-मान-माया-लोभ से बंधन है। उन दोषों के खत्म होने पर ही मुक्ति होगी। सभी दोष क्रोध-मान-माया-लोभ में समा जाते हैं, लेकिन व्यवहार में वे दोष किस स्वरूप में बाहर आते हैं, किस स्वरूप में होते रहते हैं? वह तो, ज्ञानीपुरुष के समझाने पर ही समझ में आ सकता है।

ज्ञानीपुरुष अर्थात् पूर्ण प्रकाश। उस प्रकट ज्ञान प्रकाश में सर्व दोषों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए ज्ञानीपुरुष के समक्ष आलोचना बहुत ही अनिवार्य हो जाती है। खुद को जहाँ-जहाँ दु:खमय परिणाम

का अनुभव होता है, उलझनें होती हैं, भ्रमित होता है, अनुभव की कोई झलक नहीं मिलती तब कौन सी ग्रंथि परेशान कर रही है, उन सब की ज़रा विस्तारपूर्वक ज्ञानीपुरुष के समक्ष आलोचना की जाए, तो सत्संग द्वारा ज्ञानीपुरुष भीतर के दोषों को कुरेदकर निकाल देते हैं। ज्ञानीपुरुष प्रकाश देते हैं, और उस प्रकाश में दोष देखे जा सकते हैं और दोषों से छुटकारा प्राप्त किया जा सके, वैसा मार्ग मिलता है।

मुख्य बात तो यह है कि ये दोष ग्रंथि के रूप में रहे हुए हैं। वे ग्रंथियाँ हमेशा 'अन्डरग्राउन्ड'- तहखाने में दबी हुई रहती हैं। संयोग मिलते ही, पानी छिड़कते ही जमीन में रही हुई गाँठों में से कोंपलें फूटती हैं और पत्ते व डालियाँ उगते हैं। उस पर से ग्रंथि का स्वरूप पहचाना जा सकता है कि गाँठ किस चीज़ की है, भीतर कौन सा रोग पड़ा हुआ है? लेकिन जब तक वह दोषों के स्वरूप को नहीं पहचानता, तब तक उन दोषों को पोषण मिलता ही रहता है। ज्ञानीपुरुष के सत्संग में आते रहने से, उनकी वाणी सुनते रहने से, बात को समझते रहने से कुछ जागृति उत्पन्न होती है और निजदोषों को पहचानने की, देखने की शक्ति आ जाती है। उसके बाद कोंपलों को उखाड़ने तक की जागृति उत्पन्न होने से क्रियाकारी रूप से पुरुषार्थ शुरू किया जाए तो उस गाँठ का निर्मूलन होता है। लेकिन वह सारी साधना ज्ञानीपुरुष की आज्ञापूर्वक और जैसे-जैसे ज्ञानीपुरुष उसे विस्तारपूर्वक दोषों की पहचान करवाते हैं, वैसे-वैसे उन दोषों का स्वरूप पकड़ में आता है, वह पता चलता है, फिर उन दोषों से मुक्त होने लगता है।

इस प्रकार मोक्षमार्ग की पूर्णाहुति होती है।

प्रस्तुत ग्रंथ में मोक्षमार्गियों के समक्ष प्रकट ज्ञानात्मस्वरूप संपूज्य दादाश्री की वाणी में से प्रकट हुए मोक्षमार्ग के बाधक कारणों का जो सुंदर गहरा हृदयभेदी विश्लेषण हुआ है, वह यहाँ पर संकलित हुआ है, जो साधक को प्रत्येक सीढ़ी पर गिरने से उबारने वाला सिद्ध होगा। ग्रंथ में सुज्ञ वाचक को क्षति-त्रुटि भासित हो तो वह ज्ञानीपुरुष की वाणी के कारण नहीं है, अपितु संकलन की कमी के कारण है। उसके लिए क्षमा प्रार्थना।

– डॉ. नीरुबहन अमीन के जय सच्चिदानंद

उपोद्घात

अनादिकाल से प्रकृति स्वभाविक रूप से संसार भाव सहित ही है। जब उसे 'ज्ञानीपुरुष' प्राप्त हो जाते हैं, तब वह अध्यात्म में प्रवेश करता है लेकिन पूर्वजन्म में बंधी हुई सांसारिक स्वभावमय प्रकृति संयोगों के दबाव में, उदयमान हुए बिना नहीं रहेगी और ऐसे दुषमकाल में प्राय: विशेषरूप से उस प्रकृति में उदयकर्म मोक्षमार्ग की विमुखतावाले ही-मोक्षमार्ग में बाधकतावाले ही होते हैं। ऐसे काल में प्रकृति में गुथे हुए संसार-अभिमुख माल और खुद की आत्मसाधना के आध्यात्मिक पुरुषार्थ के बीच संघर्ष में खुद को मुक्ति दशा की विजय प्राप्ति की अनेक अनुभवी-समझ ज्ञानीपुरुष यहाँ पर स्पष्टीकरण करते हैं।

१. आड़ाई : रूठना : त्रागा

सीधा और सरल मोक्ष तो जो सीधे और सरल होते हैं उन्हीं को मिलता है। हर प्रकार से सीधे हो चुके ज्ञानीपुरुष के त्रिकाल सिद्ध वचन जिन्हें समझ में आ जाएँ, उनके लिए मोक्ष हाथभर की दूरी पर ही है। ज्ञानीपुरुष तो कहते हैं कि मोक्ष में जाते हुए *आड़ाईयाँ* ही बाधक हैं और सीधे हो जाएँगे तो परमात्मा पद प्राप्त हो जाएगा। लोगों की मार खाकर सीधे होने के बजाय खुद ही समझकर सीधे हो जाना क्या बुरा है?

खुद की *आड़ाईयों* को स्वीकार करने से वे चली जाती हैं और अस्वीकार करने से और अधिक मज़बूत होती हैं। इस प्रकार, *आड़ाईयों* को देखे-समझे और कबूल करे तभी *आड़ाईयाँ* जीती जा सकती हैं।

खुद की *आड़ाईयों* को देखने का अधिकार है। वह भी, जब निष्पक्षपाती दृष्टि हो जाए तभी खुद की *आड़ाईयाँ* दिखाई देती हैं। जब कोई हमारी *आड़ाईयाँ* दिखाए तो वह अपनी *आड़ाईयों* की जाँच करने का और निकालने का स्कोप मिला कहा जाएगा। वर्ना फिर अगर दूसरों की *आड़ाईयाँ* देखीं, तो वह भी एक प्रकार की, खुद की *आड़ाई* ही मानी जाएगी।

आड़ाईयाँ संपूर्ण रूप से चली जाएँ तब भगवान बन जाते हैं। खुद की *आड़ाईयों* को जब खुद ही देखने लगे, तभी से वे जाने लगती हैं।

दिल को ठंडक हो ऐसी सही बात को भी स्वीकार नहीं करे, वही *आड़ाई* का स्वरूप है। ऐसे लोग खुद अपने ही मत से चलते हैं। जो ज्ञानी के मत से चलता है, उसकी *आड़ाईयाँ* खत्म हो जाती हैं।

प्रकृति के टॉपमोस्ट (सर्वोत्कृष्ट) गुण मोक्षमार्ग में राहखर्च के लिए मिलते हैं। अत्यंत नम्रता-अत्यंत सरलता-सहज क्षमा-*आड़ाई* तो नाम मात्र को भी नहीं हो, तो ऐसे गुण प्रगति का प्रमाण कहे जा सकते हैं।

अपनी *आड़ाईयों* का भान रहना, वही 'जागृति' है!

आड़ाईयाँ मंद हो जाने के बावजूद भी ममता वाला व्यक्ति संसार में ही डूबा रहता है, जबकि यदि ममता रहितता हो और सूक्ष्म से सूक्ष्म *आड़ाईयों* को पार कर ले तो वह अंत में ज्ञानीपद प्रकट करवाता है!

आड़ाई की जड़ अहंकार है। '*आड़ाई* करेंगे, तभी सब सीधे होंगे' ऐसा ज्ञान सुना-उस पर श्रद्धा बैठी तो फिर *आड़ाईयाँ* वर्तन में आए बगैर नहीं रहतीं।

ज्ञानीपुरुष के सामने यदि कोई *आड़ाई* करे तो उसे ज्ञानीपुरुष की तरफ से कभी भी आधार या उत्तेजन नहीं मिलता। वहाँ उसे सीधे हुए बगैर कोई चारा ही नहीं है! निस्पृहता के सामने *आड़ाईयाँ* गिर जाती हैं। जो संपूर्ण सर्वांगी सरल हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुष का *राजीपा* (गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता) तो सरलता नामक गुण द्वारा सहज रूप से मिल ही जाता है।

कोई खुद अपनी *आड़ाई* को जाने, तभी से ऐसा कह सकते हैं कि वह वापस पलटा। स्वरूपज्ञान होने के बाद ही *आड़ाई* पहचानी जा सकती है और तभी वह *आड़ाई* कम होती जाती हैं। परिणाम स्वरूप एक दिन *आड़ाई* खत्म होकर रहेंगी। बाकी, *आड़ाई* वाला तो पूरा मोक्षमार्ग ही चूक जाता है।

दूसरों से खुद का *धार्यु* (मनमानी) करवाने जाएँ तो *आड़ाई* उत्पन्न होती है। एवं औरों की इच्छानुसार करने से *आड़ाईयाँ* खत्म होती जाती हैं।

''यह जो टेढ़ा है, वह मैं नहीं हूँ ऐसा ज्ञान होना', वह कहलाता है अक्रम विज्ञान और 'जो टेढ़ा है, वह मैं हूँ और मुझे सीधा होना है', वह कहलाता है क्रम!'' - दादाश्री

रूठना भी *आड़ाई* का ही प्रकार है। रूठने से नुकसान कौन उठाता है? जो रूठता है, उसके लिए क्या गाड़ी खड़ी रहती है? रूठनेवाले के सामने तो कितनी ही गाड़ियाँ निकल जाती हैं क्योंकि दुनिया कोई रुकने वाली नहीं है।

सामने वाला रूठता है वह *रिसाल* (जिसे दूसरों का रूठना दिखाई देता है) से रूठता है और जो *रिसाल* है वह रूठनेवाले को देखता है। जो *रिसाल* है, वह अपना स्वरूप नहीं है। और जो रूठता है, वह आत्मा नहीं है। आत्मा, आत्मा को ही देखता है, शुद्ध ही देखता है। इसी में मोक्षमार्ग समाया हुआ है।

ज्ञानीपुरुष से अगर कोई रूठे, तब वहाँ पर ज्ञानीपुरुष की डीलिंग कैसी होती है? उस वीतरागता की समझ ज्ञानीपुरुष ही प्राप्त करवा सकते हैं! वीतरागता के साथ निष्कारण करुणा ही प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुष की विशेषता है कि परिणाम स्वरूप सामने वाला दोषमुक्त होकर मोक्षमार्ग में स्थिर हो जाता है और आत्मकल्याण साध सकता है।

आड़ाई की आगे की अवस्थाओं में, रूठने पर भी अगर *धार्यु* नहीं होता, तब फिर वहाँ पर *त्रागा* (अपनी मनमानी करने या बात मनवाने के लिए किए जाने वाला नाटक) करके भी सामनेवाले से अपना *धार्यु* करवाकर ही चैन लेता है।

धार्यु करवाने के लिए उठापटक करना, सिर कूटना, रोना और सामनेवाले को ऐसे शिकंजे में कस देता है कि घबराकर सामने वाला वश में आ ही जाता है, ये सभी हैं *त्रागा* के लक्षण! ऐसे लोगों को समझाने से समाधान नहीं हो पाए तो वहाँ से खिसक जाना ही एक उपाय है।

त्रागा करना भी एक कला है। बेहद शक्तियाँ खत्म कर देता है उसमें। भयंकर नुकसान उठाता है परिणामत: तिर्यंचगति पार करने तक की जोखिमदारी भी आ सकती है!

अक्रम विज्ञानी, *त्रागा* में से बचने के उपाय दिखा देते हैं। ज्ञानीपुरुष प्रत्येक विकृत प्रकृति को सभी पहलुओं से देखकर-अनुभव करके उनसे मुक्ति प्राप्त करने की दृष्टि खोल देते हैं, जिससे दूसरों में भी वह दृष्टि खुलती है, खिलती है और जीवन में *आड़ाईयों* से, रूठने से, *त्रागा* से, खुद छूट सकता है या फिर *आड़ाई* करनेवाले से, रूठनेवाले से, और *त्रागा* करनेवाले से खुद बच सकता है। अपनी प्रकृति से छूट जाने की ज्ञानकलाएँ और सामनेवाले की प्रकृति के शिकंजे में नहीं फँसकर, उसके साथ समाधानपूर्वक निपटारा करने की सम्यक् प्रकार की समझ ज्ञानीपुरुष अक्रम विज्ञान द्वारा बता देते हैं, जो मोक्षमार्ग में बाधकता का निवारण करने के लिए अत्यंत उपकारी हो जाती है!

२. उद्वेग : शंका : नोंध

सामनेवाले से *धार्यु* करवाने के तरीकों में आड़ाई से शुरुआत करके रूठने का तरीका आज़माता है और उसके बावजूद भी अगर सफल नहीं होता तो *त्रागा* करता है। लेकिन फिर भी यदि *धार्यु* नहीं होता तो उसे अत्यंत उद्वेग होता है। यदि *धार्यु* करवाने की दानत कम हो जाए तो उद्वेग के दु:ख व *भोगवटे* में से छूटता जाएगा।

मोह की पराकाष्ठाओं से उद्वेग का सर्जन होता है और उद्वेग से भयंकर कर्म बंध जाते हैं।

प्रकृति के वेग-आवेग और उद्वेग का सूक्ष्म स्पष्टीकरण ज्ञानीपुरुष ही बता सकते हैं! और उद्वेग के निमित्त कारणों से मुक्त होने की सरल चाबियाँ भी ऐसे ज्ञानीपुरुष से प्राप्त होती हैं।

उद्वेग से बचने के लिए उसके निमित्तों को ढूँढकर उनसे दूर रहना चाहिए या फिर वह चीज़ चाहे कितनी भी अमूल्य क्यों न हो, लेकिन उसे भी छोड़ देना पड़ता है, लेकिन उद्वेग के कारण को जड़ से उखाड़ देना पड़ता है क्योंकि ज़रा सा भी उद्वेग होने लगे, तभी से वह मोक्षमार्ग नहीं है।

अक्रम विज्ञान में, जो उद्वेग में फँसता है, उसे खुद देखता रहे

तो खुद मुक्ति के आनंद में रहता है। यह तो, 'मैं उद्वेग में फँस गया' अज्ञानता से अपने आप पर ऐसा लेते ही वास्तव में खुद फँस जाता है!

उद्वेग करवाने वाला कौन है? बुद्धि। वही वेग में से आवेग में और उद्वेग में लाती है और बुद्धि ही शंकाओं को जन्म देती है।

बुद्धि की शक्ति से हल नहीं मिलने से उलझ जाता है, वह फिर शंकाएँ उत्पन्न करवाती है। शंका अर्थात् घोर अज्ञानता।

अक्रम विज्ञान में, शंका की प्रकृति से बचने के लिए 'व्यवस्थित' की नि:शंक दशा में स्थिर रहने की वैज्ञानिक समझ ज्ञानीपुरुष द्वारा आज्ञा के रूप में प्राप्त होती है।

घर में साँप घुसा, उस वजह से जो शंका घुसी, वह शंका, जब तक साँप को घर में से बाहर जाते हुए नहीं देख लें, तब तक शंका का कीड़ा शांत नहीं होता और जब 'व्यवस्थित' का ज्ञान समझ में आ जाए, तब वहाँ पर शंका उत्पन्न ही नहीं होती।

ज्ञानी के श्रीमुख से प्रकट हुआ विज्ञान तो अनेक जन्मों के अनुभवों के पृथक्करण का निचोड़ है। अनेक प्रकृतियों के प्रत्येक पर्यायों में से अनुभवपूर्वक गुज़रने के बाद प्राप्त होने वाला मुक्ति का मूल ज्ञान, वह खोज है ज्ञानीपुरुष की!

मनुष्यों के जीवन में कितनी ही घटनाएँ ऐसी हो जाती हैं कि उनमें जो होता है, वहाँ उसे शंका होती ही नहीं है। जहाँ कुदरती रूप से सब हो रहा है वहाँ शंका किसलिए? भोजन खाने के बाद उसके पचने के बारे में शंका होती है कि पचेगा या नहीं?

शंका क्या हैल्प करती है? शंकाशील तो जीवित होते हुए भी मृत जैसी स्थिति में ही रहता है। बेटियाँ पढ़ने जाएँ, और उन पर शंका रखे तो क्या होगा? वह शंका तो सिर्फ *अजंपा* (अशांति) करवाएगी। वह खुद के लिए ही दु:खदाई है।

किसी के चारित्र से संबंधित शंका करना तो भयंकर जोखिम है। ऐसा जोखिम कैसे मोल लिया जा सकता है? जब तक देखा नहीं हो

तब तक नि:शंक रहा जा सकता हैं लेकिन क्या उससे पहले वैसा नहीं था? वह क्या रातोंरात खड़ा हो गया? नहीं। इसलिए जहाँ पर शंका हो रही हो वहाँ पर तो ऐसा समझ जाना कि यह तो पहले से ऐसा ही था। जगत् तो घोटाला ही है। आत्मा की वाइफ भी नहीं होती और बेटी भी नहीं होती। मोक्षमार्ग में प्रयाण करने के बाद जिन्हें चूकना नहीं है, उनके लिए तो आत्मा के अलावा और कहीं भी गहरे उतरने जैसा है ही नहीं।

कलियुग के प्रभाव में पति-पत्नी के बीच मॉरेलिटी टूट गई, सिन्सियारिटी टूट गई, वहाँ क्या सुख भोगना? कलियुग में वाइफ अपनी हो नहीं सकती। इसमें सिर्फ कपट और दगाखोर वृत्तियाँ ही चलती रहती हैं! तो फिर शंका रखने जैसा रहा ही कहाँ? एक पतिव्रत और एक पत्नीव्रत ही श्रेष्ठ चारित्र है, वर्ना फिर संडास ही कहलाएगा न? जहाँ सभी जाते हैं! सिर्फ विषय का लालच ही शंका को जन्म देता है न? विषय से मुक्त हुए तो शंका से भी मुक्त हो जाएँगे। वर्ना यह जन्म तो बिगड़ेगा लेकिन अनंत जन्म बिगाड़ देगा! मोक्ष में जानेवालों को शंका का निषेध करना चाहिए।

शंका होते ही सामनेवाले से भेद पड़ जाता है। शंका के स्पंदन सामनेवाले पर पड़े बिना नहीं रहते इसलिए शंका नहीं रखनी चाहिए और शंका होने लगे तो वहाँ पर जागृत रहकर उसे उखाड़ देना चाहिए।

बेटियाँ कॉलेज में जाएँ और माँ-बाप को उनके चारित्र पर शंका हो तो क्या होगा? दु:ख का ही उपार्जन होगा फिर। घर में प्रेम नहीं मिलता इसलिए बच्चे बाहरवालों के पास प्रेम ढूँढते हुए फिसल पड़ते हैं। मित्र की तरह प्रेमपूर्वक रहेंगे तो यह परिणाम टल सकता है। फिर भी बेटी का पैर यदि गलत रास्ते पर जाने लगे तो क्या उसे घर में से निकाल सकते हैं? प्रेमपूर्वक सहारा देकर नुकसान समेट ही लेना चाहिए। पहले से ही सावधानी स्वागत योग्य है लेकिन शंका तो कभी भी नहीं!

जहाँ पर शंका नहीं है, वहाँ किसी भी प्रकार के दु:ख नहीं रहते।

शंका होना उदयकर्म है लेकिन शंका रखना वह उदयकर्म नहीं है। उस शंका से तो खुद का भव ही बिगड़ता है।

शंका सब से बड़ी निर्बलता है, आत्मघात है वह।

ज्ञानीपुरुष पर कोई शंका व्यक्त करे तो ज्ञानीपुरुष समझते सभी कुछ हैं फिर भी जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो, वैसी सहज दशा में ही बरतते हैं और उनमें शंका करनेवाले के प्रति किंचित् मात्र भी भेद नहीं रहता। उनकी अभेदता ही सामनेवाले व्यक्ति को शंका में से मुक्त करवाती है।

शंका करने के बजाय तो तमाचा लगाना अच्छा कि जल्दी से हल आ जाए लेकिन शंका तो दिन-रात खोखला कर देती है, ठेठ मरने तक।

शंकाशील का कोई कार्य सिद्ध ही नहीं होता। नि:शंकता को ही सिद्धि मिलती है। नि:शंकता से शंका चली जाती है।

किसी को मृत्यु की शंका होती है? वहाँ तो तुरंत ही उसे झाड़ देता है।

जब तक प्रकट ज्ञानीपुरुष उपलब्ध हैं तब तक तो तमाम प्रकार की शंकाओं के नि:शंक समाधान हों, ऐसा है और तभी मोक्षमार्ग में ज़रा सी भी बाधा नहीं आएगी।

शंका से दो नुकसान हैं। एक तो खुद को प्रत्यक्ष दु:ख भोगना पड़ता है और दूसरा सामनेवाले को गुनहगार देखा!

अक्रम विज्ञान क्या कहता है कि शंका-कुशंका करनेवाले को 'खुद' कहना चाहिए कि 'शंका मत रखना।' कहने वाला अलग और करने वाला अलग!

क्या एक्सिडेन्ट की शंकावाले ड्राइवर को गाड़ी सौंपी जा सकती है? शंकाशील का साथ ही नहीं रखना चाहिए। वर्ना खुद को भी शंका में डाल देगा।

जिसे शंका होती है उसी को मुश्किलें आती हैं, यह कुदरत का नियम है और जो शंका पर ध्यान नहीं देता, उसे कोई अड़चन है ही नहीं।

आँखों देखा भी जहाँ गलत निकलता है, ऐसे जगत् में शंका क्यों करनी?

शंका का एक ही बीज पूरा जंगल खड़ा कर देता है! शंका को तो बीजगणित की तरह खत्म कर देना चाहिए। आखिर में ज्ञानपूर्वक खुद अपने आपसे ही अलग रहकर, शंका करनेवाले को धमकाकर, लड़कर भी शंका को खत्म कर देना चाहिए।

शंका करने से तुरंत ही *भोगवटा* आता है और साथ में नया बीज डलता है जो अगले जन्म में भी *भोगवटा* लाता है!

यथार्थ प्रतिक्रमण से शंका दूर हो जाती है। शंका होने पर प्रतिक्रमण करने हैं। बेफिक्र नहीं हो जाना है। जिसने शंका की है, जो अतिक्रमण करता है, उसी से प्रतिक्रमण करवाना है।

पुरुष हो जाने के बाद अंदर से मन टेढ़ा-मेढ़ा दिखाए तो उसकी क्यों सुनें? लेपायमान भाव, वे सभी *पुद्गल* भाव हैं, जड़ भाव हैं, प्राकृत भाव हैं। वे आत्मभाव हैं ही नहीं। खुद अनंत शक्ति का धनी, उसका कोई क्या बिगाड़ सकता है? इस प्रकार शूरवीरता ही निःशंकता में परिणामित होती है!

शंका के सामने जागृति बढ़ाने की ही ज़रूरत है और जागृति रहे तभी ज्ञाता-दृष्टा रहा जा सकता है और तब फिर शंका भी निर्मूल हो जाती है।

हम पर कोई शंका करे, तो वह कोई गप्प नहीं है। इसमें अपना ही कोई दोष है। भले ही अभी का नहीं होगा तो पिछले जन्म का होगा, तभी ऐसा हो सकता है। दुनिया एक सेकन्ड के लिए भी नियम से बाहर नहीं गई है।

मिथ्याज्ञान पर सिर्फ ज्ञानीपुरुष ही वहम करवा सकते हैं और जिस ज्ञान पर शंका हुई, वह ज्ञान खत्म हो जाता है। सच्चे ज्ञान पर कभी भी शंका नहीं होती।

'खुद कौन है?' खुद के नामधारी स्वरूप के लिए तो जन्मोंजन्म

से निःशंक है। वहाँ पर शंका करनी है। खुद की उल्टी गाढ़ मान्यताओं पर शंका होने लगे तो उसे समकित होने की तैयारी माना जाएगा।

आत्मा क्या होगा? कैसा होगा? उससे संबंधित शंका का जाना अति कठिन है। क्रोध-मान-माया-लोभ किसके गुण होंगे, वह किस तरह से समझ में आएगा? वह तो प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुष समझाएँ, तभी समझ में आ सकता है और तभी शंका से मुक्त हो सकता है।

आत्मा कैसा होगा? क्या होगा? उसी सोच में जीवन बिताना है न कि बेडरूम में या सिनेमा व होटेलों में!

तरह-तरह के संदेह कब जाएँगे? वीतराग और निर्भय हो जाएँगे तब।

आत्मा पर शंका कौन करता है? मूल आत्मा को ऐसी शंका है ही नहीं। यह तो 'खुद' ही 'मूल आत्मा' पर शंका करता है।

जो आत्मा संबंधी निःशंक हो जाए, उसे निरंतर मोक्ष ही है न!

अभी तक जो ज्ञान लेकर घूमे, ज्ञान के जो-जो साधन अपनाए, उन सभी पर शंका हुई, तब से लेकर आत्मा के बारे में संपूर्ण निःशंकता नहीं हो जाए, तब तक की स्थिति को अध्यात्म में शंका कहा गया है। वह निःशंकता प्राप्त होने से निर्भय पद प्राप्त होता है! और जहाँ निर्भयता है, वहाँ सर्व संगों में भी असंगता!

अक्रम विज्ञान की ग़ज़ब की बलिहारी है कि एक घंटे के अद्‌भुत ज्ञान प्रयोग से खुद हमेशा के लिए आत्मा के बारे में निःशंक हो जाता है।

पुस्तक पढ़कर आत्मा से संबंधित शंका नहीं जाती है। उसके लिए तो प्रत्यक्ष ज्ञानी की ही आवश्यकता है। जिसने अधिक जाना, उसे अधिक शंकाएँ होती हैं। 'मैं कुछ भी नहीं जानता' ऐसा होते ही निःशंकता है। जिससे कषाय जाएँ, वह जाना हुआ सही है! जहाँ शंका, वहीं पर संताप। निरंतर निःशंकता, वही निशानी है आत्मा जानने की।

शंका होना, वह एक प्रकार की जागृति है। 'यह मैंने किया या किसी ओर ने किया?' उस शंका का होना उच्च प्रकार की जागृति

कहलाती है। 'मैं तन्मयाकार हो गया', ऐसी जो शंका होती है, वह भी एक प्रकार की ज्ञानजागृति ही है। अंतिम ज्ञानजागृति में तो 'तन्मयाकार होना ही नहीं है' ऐसा भान रहता ही है।

ज्ञानीपुरुष की दशा में सारा व्यवहार *पुद्गल* करता है और खुद वीतराग रहते हैं। प्रति पल व्यवहार में होने के बावजूद भी किसी चीज़ की *नोंध* (अत्यंग राग अथवा द्वेष सहित लंबे समय तक याद रखना) नहीं। *नोंध* हो जाए तो दृष्टि मलिन हो जाती है। ज्ञानीपुरुष की आँखों में निरंतर वीतरागता ही दिखाई देती है।

जहाँ सच्चा प्रेम है, वहाँ *नोंध* नहीं है। जहाँ *नोंध* नहीं, वहाँ टेन्शन रहित दशा!

जगत् का प्रेम *नोंध* वाला प्रेम है। उसे आसक्ति कहते हैं। जो प्रेम बढ़ता-घटता है, उसे आसक्ति कहते हैं।

'उस दिन आपने मुझसे ऐसा कहा था' अंदर ऐसा होते ही उसे *नोंध* हो गई कहते हैं और परिणामस्वरूप वहाँ प्रेम समाप्त हो जाता है। जो अपनी मानी जाती है, ऐसी पत्नी के लिए भी *नोंध* रखी, उसी कारण से प्रेममय जीवन विषमय बन जाता है।

'*नोंध* रखना गलत है' सब से पहले तो वह उसकी प्रतीति में आता है। उसके बाद वह अनुभव में आएगा, फिर आचरण में आएगा। आचरण में लाने का यह साइन्टिफिक तरीका है।

नोंध हो तो वहाँ पर मन में बैर रहता है। *नोंध* नहीं रखेंगे तो आधा दुःख खत्म हो जाएगा। ज्ञानीपुरुष को तो कभी भी *नोंध* नहीं रहती। यदि हम *नोंध* रखेंगे तो सामने वाला भी *नोंध* रखेगा ही।

प्रथम तो *नोंध* लेने की शुरुआत होती है। उससे मानसिक युद्ध शुरू हो जाता है, फिर वाचिक युद्ध और अंत में कायिक युद्ध तक जा सकता है इसलिए जड़ को ही उखाड़ देना चाहिए। वही उत्तम है!

मोक्ष जानेवाले को तो *नोंध*पोथी ही निकाल देनी पड़ेगी। जिसका *नोंध* लेना रुक गया, उसका संसार रुक गया।

जो संसार में सतर्क वह मोक्ष के लिए असतर्क। संसार में सतर्कता यानी संसार का आधार!

नोंध करने की प्रकृति को खत्म करने के लिए अक्रम विज्ञान क्या कहता है? कि यह *नोंध,* प्रकृति करती है, उसे हमें जानना है। प्रकृति *नोंध* करे तो उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन यदि उसके साथ अपनी सहमति खत्म हो जाए तो *नोंध* खत्म हो जाएगी।

नोंध करने की आदत विज्ञान के बिना नहीं छूट सकती। सांसारिक स्वभाव तो मरना पसंद करता है लेकिन *नोंध* छोड़ना पसंद नहीं करता।

जहाँ निरंतर कर्मों का उदय और अस्त होता है, ऐसे बदलते हुए कर्मों की *नोंध* क्यों की जाए?

नोंध किस प्रकार से हो जाती है? किसी भी निमित्त से खुद को थोड़ी सी भी अरुचि या रुचि हो जाए तो, उसकी *नोंध* हो ही जाती है। लेकिन अगर वहाँ पर उस निमित्त के लिए *नोंध* न रहे तो वह पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्त करवाएगा।

जब *नोंध* होती है, तब खुद *पुद्गल* में तन्मयाकार हो ही जाता है। फिर सत्ता भी *पुद्गल* की ही रहती है। खुद की स्व-सत्ता वहाँ आवृत्त हो जाती है।

नोंध लेने से मन उसके प्रति डंकीला हो जाता है और जिसका *नोंध* करना बंध हो जाए तो ऐसा माना जाएगा कि वह वीतराग दशा की तरफ मुड़ा।

३. कॉमनसेन्स : वेल्डिंग

'इस काल में कॉमनसेन्स को एक ओर रख दिया गया है', वर्तमान ज्ञानीपुरुष बेधड़क ऐसा कहते हैं।

'कॉमनसेन्स यानी एवरीव्हेर एप्लिकेबल, थियरिटिकली एज़ वेल एज़ प्रेक्टिकल।' कॉमनसेन्स की यह परिभाषा बिल्कुल मौलिक और अद्भुत है।

कॉमनसेन्स वाला तो कैसे भी ज़ंग लगे हुए तालों को भी खोल देता है। किसी के साथ टकराव में नहीं आता। टकराव को कॉमनसेन्स से ही टाल देता है, घर पर, बहार, ऑफिस वगैरह सभी जगह पर। घर पर तो पत्नी के साथ मतभेद ही नहीं पड़ने देता।

चाहे कितना भी बुद्धिशाली हो लेकिन यदि उसमें व्यवहारिकता नहीं होगी, यानी कि कॉमनसेन्स नहीं होगा तो झगड़े ही होंगे।

अहंकार जितना डाउन हो, उतनी ही सुंदर किसी के भी साथ 'डीलिंग' हो सकती है।

सब के साथ मिलनसारिता से तरह-तरह की बातचीत करने से कॉमनसेन्स विकसित होता है। व्यवहार का तिरस्कार करने से कॉमनसेन्स खत्म हो जाता है। कॉमनसेन्सवाले का सुर सभी के साथ मिल जाता है।

व्यवहार में डिसीज़न लेने के लिए, टकराव टालने के लिए कॉमनसेन्स ही काम में आता है। सरल व्यक्ति धोखा खाता है, लेकिन बदले में उसका कॉमनसेन्स बढ़ता जाता है।

कॉमनसेन्स तो वहाँ तक क्रियाकारी रहता है कि कोई चाहे कितना भी अपमान करे, फिर भी 'डिप्रेशन' नहीं आने देता।

जहाँ स्वार्थ या मतलब हो, वहाँ पर कॉमनसेन्स का विकास नहीं हो पाता क्योंकि मतलब निकालने में ही कॉमनसेन्स खर्च हो जाता है।

कोई किसी भी एक विषय में एक्सपर्ट हो जाए तो उसका कॉमनसेन्स रुंध जाता है।

कॉमनसेन्सवाले के पास सामनेवाले की प्रकृति की स्टडी होती है इसीलिए तो वह कोई भी ताला खोल सकता है।

कॉमनसेन्स एक प्रकार की सूझ है और सूझ कुदरती देन है। जबकि बुद्धि नफा-नुकसान दिखाने वाली होती है और प्रज्ञा तो ज्ञान-प्रकाश मिलने के बाद ही उत्पन्न होती है। कॉमनसेन्स संसार के ताले खोल सकता है लेकिन मोक्ष का एक भी नहीं। जबकि प्रज्ञा मोक्ष की तरफ ले जाती है।

एडजस्ट एवरीव्हेर होने के लिए, ज्ञानीपुरुष किस प्रकार सभी जगह एडजस्ट होकर चलते हैं, उसका निरीक्षण करने से एडजस्ट होना आ जाता है। और जो एवरीव्हेर एडजस्ट होना सीख गया, वह संसार से पार उतर गया।

फरियाद करने के बजाय 'एडजस्ट' हो जाना उत्तम है। अपनी 'लाइट' अधिक हो तो उसे डिम करके, डिम लाइटवाले के साथ एडजस्ट हो जाना चाहिए।

मतभेद टालने के लिए ज्ञानीपुरुष चाबी देते हैं कि, "हम सब एक हैं और हममें कोई जुदाई नहीं है" हररोज़ सुबह उठकर पाँच बार इतना बोलना चाहिए तो एक दिन ऐसा समय आकर रहेगा कि किसी के साथ मतभेद ही नहीं रहेगा।

अपनी एकता में कोई दरार डालने आ ही कैसे सकता है? वही है घालमेलिया (तोड़फोड़ करने वाला, गड़बड़, प्रपंची)। उसे घुसने ही क्यों दें? कच्चे कान के होने से कैसे चलेगा?

यदि किसी के बीच संबंध टूट रहा हो, तो वहाँ पर हमेशा ही 'वेल्डिंग' कर देनी चाहिए। खुद तकलीफ उठाकर भी सामनेवाले के लिए 'वेल्डिंग' कर देना, वह बहुत उच्च प्रकार का गुण कहलाता है।

इस काल में वेल्डिंग करने वाला मार खाता है। दो लोगों के बीच वेल्डिंग कर दिया और वे दोनों एक हो गए, तब भी वेल्डिंग करवानेवाले के हिस्से में तो नुकसान ही है! ऐसी मार पड़ती है इसलिए वेल्डिंग करने वाला पीछे हट जाता है। लेकिन जिसे आत्मा का सुधारना है, उसे तो मार खाकर भी वेल्डिंग करनी चाहिए।

वेल्डिंग करना नहीं आए, तब भी मन में ऐसा भाव रख छोड़ना चाहिए कि 'वेल्डिंग करनी है।' लेकिन ऐसा दुर्भाव तो रखना ही नहीं चाहिए कि 'ये बिछड़ जाएँ तो अच्छा।'

फ्रेक्चर करवानेवाले जगह-जगह मिल जाएँगे, लेकिन वेल्डिंग करवाने वाला तो कोई विरला ही मिलेगा।

४. ममता : लालच

छोटा सा जीवन है, उसमें एक मिनट भी क्यों बिगाड़ें? संसार में कहीं भी कीचड़ नहीं छुए, उस तरह से निकल जाना है। जहाँ किंचित् मात्र भी किसी भी प्रकार की अपेक्षा नहीं है, दाग़ नहीं है, वहाँ पर संपूर्ण शुद्धता रहती है, वही ज्ञानी दशा! ज्ञानीपुरुष को देह पर भी ममत्व नहीं होता। ज्ञानीपुरुष अहंकार और ममता रहित होते हैं।

ममता अर्थात् 'मेरा' है और इसलिए 'मैं' खड़ा रहता है। ममता का विस्तार तो 'मेरे शरीर' से लेकर 'मेरी पत्नी, मेरा घर, मेरा गाँव, मेरा देश, मेरी दुनिया' तक फैल जाए, ऐसा है।

ममता बाउन्ड्री सहित होनी चाहिए। ममता की बाउन्ड्री अर्थात् जब तक हम जीवित हैं, तभी तक उसका अस्तित्व रहता है। उदाहरण के तौर पर यह शरीर, तो इसके आगे की अपनी ममता चली जानी चाहिए, उसके आगे एकलौते बेटे के लिए भी! वर्ना वह विस्तार की हुई ममता दुःखदाई ही है।

इन्श्योरन्स करवाया हुआ स्टीमर डूब जाए तो इन्श्योरन्सवाले को कितनी चिंता होती है? ऐसी ममता हो तो वह कोई दुःख नहीं पहुँचाएगी।

बंगला बेचने के दस्तावेज बन जाने के बाद अगर बंगला जल जाए तो कुछ होगा? नहीं। दस्तावेज के कागज़ों से ममता खत्म हो जाती है तो क्या सही समझ से ममता नहीं जा सकती? वर्ना, बंगला तो कहता है कि 'सेठ, या तो मैं जाऊँगा या फिर तू जाएगा।'

संग्रहालय की शर्तें क्या है? अंदर देखने की-घूमने की पूरी छूट है, लेकिन साथ में कुछ नहीं ले जा सकते। उसी तरह इन मनुष्यों को सबकुछ यहीं पर ही रखकर चैन से अरथी में मानपूर्वक सोते-सोते जाना है! ऐसी दुनिया में फिर यह क्या सिरफोड़ी?

जहाँ क्लेश होता है, वह ममता क्या सूचित करती है? जो वाइफ वास्तव में खुद की नहीं है, उसके मरने पर दुःख क्यों होता है? शादी के समय ही मंडप में 'मेरी पत्नी, मेरी पत्नी....' इस तरह

ममता के बंधन बाँधता गया। उसी से साइकोलॉजिकल इफेक्ट हो गया और पत्नी के लिए मेरापन शुरू हो गया। उससे दु:ख होता है, 'नहीं है मेरी, नहीं है मेरी' करेंगे तो 'मेरापन' के बंधन खुल जाएँगे, तब दु:खमुक्ति हो जाएगी।

संसार की चीज़ें बाधक नहीं हैं, ममता बाधक है। जिस चीज़ पर ममता रखी उस चीज़ से बंध गए। असल में कौन सी चीज़ अपनी है? अंत में तो शरीर भी साथ नहीं देता न!

जो बगैर ममता के मरे उसका मोक्ष है। ममता सहित मोक्ष में प्रवेश नहीं मिलता।

'ममता गलत चीज़ है' ऐसा ज्ञान होना बहुत बड़ी कमाई है।

अक्रम विज्ञान तो इतनी हद तक स्पष्ट कर देता है कि जिसे ममता है, वह 'हम' हैं ही नहीं।

स्वरूपज्ञानी में जो ममता होती है, वह ड्रामेटिक ममता होती है। ड्रामे में होती है वैसी!

ममतारहित *भोगवटा* कितना मुक्त मन वाला होता है!

ज़िंदगी में जिसने लालच नहीं किया, वह भगवान को ढूँढ निकालता है!

एक खास प्रकार के लालचवाले को लोभी कहते हैं। लालची और लोभी में फर्क है। लोभी एक ही दिशा में लोभी होता है। जबकि लालची को सभी चीज़ों का लालच रहता है। हर किसी चीज़ में से सुख भोग लेने का लालच। लालची का छुटकारा भी मुश्किल है। लालच से तो खुद का ध्येय चूक जाते हैं। लालची ही हर जगह फँसता है। लालची तो खुद का सर्वस्व अहित करने वाला कहलाता है।

लालच तो भौतिक सुखों को भोग लेने की नीयत की वजह से होता है। इसमें फिर कोई नियम या कानून नहीं होता। हर कहीं से, येनकेन प्रकारेण, सुख छीनना!

विषय का लालच भयंकर दु:खों को न्योता देता है। विषय से

घृणा होगी तब विषय से छुटकारा मिलेगा। जब तक विषय का लालच है, तब तक टकराव होगा ही। अरे, भयंकर बैर भी बंध जाएगा। विषय का लालची अंत में डरा-धमकाकर भी भोग लेता है।

विषय का लालच विषय में लाचार बना देता है। उसके बाद फिर पत्नी उसे बंदर की तरह नचाती है लेकिन फिर आमने-सामने बदला लिए बगैर रहेंगे क्या?

लालची तो सिर्फ विषय में ही नहीं, लेकिन खाने-पीने में, घूमने में, सभी बातों में लालची होता है।

लालच के विचार आने पर उन्हें बदल देना पुरुषार्थ है। तब फिर वह जोखमी नहीं है लेकिन अगर उन्हें बदले बिना जाने दिया तो वह जोखमी है।

लालची लालच के मारे चाहे कैसा भी जोखिम मोल ले लेता है।

लालची को सभी कुछ चाहिए। जैसे दर्द दवा को खींचता है, उसी प्रकार लालची के पास उसके लालच की सभी चीज़ें खिंचकर आ जाती हैं।

जितने प्रकृति में हैं उतने ही व्यापार करने चाहिए। लालच के मारे आभासी व्यापार करने पर मार पड़ती है।

नाशवंत चीज़ों का लालच कैसा? 'इस जगत् की कोई भी विनाशी चीज़ मुझे नहीं चाहिए', ऐसा निश्चय किया कि लालच चला जाता है।

लालच जन्मजात चीज़ है और मरने के बाद भी वह बीज साथ में ही जाता है और दूसरे जन्म में वापस फिर वही बीज उगता है।

लालच के सामने अहंकार किया जाए, तब वह जाता है लेकिन फिर वापस उस अहंकार को धोना तो पड़ेगा ही। ज्ञानीपुरुष की हाज़िरी में भले ही कैसा भी रोग हो, वह निकल जाता है। लालच में से छूटने का दूसरा उपाय यह है कि ललचाने वाली सभी चीज़ें बंद कर दे। उन्हें याद ही न करे और अगर याद आए तब भी प्रतिक्रमण करता रहे, तो उसमें से कभी न कभी मुक्त हो सकेगा।

लालची तो धोखेबाज कहलाता है। ज्ञानीपुरुष की आज्ञा का उल्लंघन करता है इसलिए वहाँ ज्ञानी की कृपा भी नहीं उतरती। ज्ञानी की आज्ञा में ही रहने का दृढ़ निश्चय हो जाए और मन-वचन-काया से बहुत ही स्ट्रोंग हो जाए, तब जाकर लालच कुछ कम होगा।

लालची तो जगत् में किसी को भी सुख नहीं देता, सभी को दु:ख ही देता है।

कुसंग से लालच घर कर जाता है। कुसंग का असर तो ज़हर से भी खराब है।

लालच मूल ज्ञान को प्रकट नहीं होने देता। वह बुद्धिज्ञान में ही जाकर रुक जाता है।

सब से पहले खुद की भूलें दिखें, उनकी प्रतीति बैठे व विश्वास हो जाए उसके बाद पुरुषार्थ की शुरुआत करके लालच की भूल खत्म कर सकता है।

पूजे जाने की लालच तो बाकायदा टोलियाँ तैयार करवाकर खुद को पुजवाता है। उसका फल क्या आता है? नर्कगति। गुरु बन बैठना और उस पद को भोगना, वह भी लालच है! यह तो भयंकर रोग माना जाता है। संसार रोग निर्मूल करना हो तो एक जन्म ज्ञानी की अधीनता में बिता देना चाहिए। उनसे अलग दुंदभी (ढोल निगाड़ा) नहीं बजानी चाहिए।

जिसे कोई भी लालच नहीं है, उसे भगवान भी नहीं पूछ सकते।

५. मान : गर्व : गारवता

मोहनीय कार्य खत्म होने पर ज्ञानावरण टूटते हैं, ऐसा बताते हुए ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि 'उन्हें किस चीज़ का मोह था? उन्हें किसी भी प्रकार का मोह नहीं था। पैसे दो या विषय, कोई मोह नहीं था। सिर्फ मान का ही मोह... और फिर अभिमान का ज़ोर नहीं था। अभिमान तो, जब ममता होती है तब अभिमान होता है। यह तो ममतारहित मान!'

जिसे बचपन से अपमान, अपमान और सिर्फ अपमान ही मिला हो, उसे मान की ज़बरदस्त भूख रहती है। जिसे हर कहीं से मान, मान और सिर्फ मान ही मिला हो, उसकी मान की भूख मिट जाती है।

मानी को मान मिले तो उसकी लोभ की गाँठ छूटती जाती है। जबकि लोभी को चाहे कितना भी मान मिले, फिर भी लोभ की गाँठ नहीं छूटती।

मान हो तो भी उसे चलाया जा सकता है लेकिन 'कहाँ से मान मिलेगा, कहाँ से मान मिलेगा' रात-दिन ऐसा उपयोग रहने लगे तो वह भयंकर जोखमी है। मान का तो निकाल हो सकता है लेकिन मान की भूख का मुश्किल है।

लोग मान दें तो उसे आराम से चखना लेकिन उसकी आदत नहीं पड़ जानी चाहिए। और फिर जो मान देते हैं, उन पर राग न हो जाए इतना देखना चाहिए।

मान चखने से जागृति मंद हो जाती है और अगर मान में कपट घुस जाए तो घोर अंधेरा हो जाता है। मान चखने में हर्ज नहीं है लेकिन अगर मान की विकृति कैफ में परिणामित हो जाए तो उसमें हर्ज है। मान का अस्तित्व ही कुरूप बना देता है फिर वह आकर्षक नहीं हो सकता। सामनेवाले को हल्का माना, उसी से मान टिका हुआ है।

जितना मान का प्रेमी है क्या उतना ही अपमान का प्रेमी बन सकता है? खुद का कहीं भी अपमान न हो जाए, उसी की जागृति (लक्ष) रहे, उसे ऐसा कहा जाता है कि मान की भीख घर कर गई।

यह मान-अपमान किसे स्पर्श करते हैं? आत्मा को? नहीं। उसे अहंकार भोगता है। यदि 'आप' 'आत्मस्वरूप' हैं तो आपका कोई अपमान कर ही नहीं सकता। आत्मा को कोई मान-अपमान स्पर्श करता है क्या?

अक्रम विज्ञान में, 'जिसका' अपमान होता है वह 'खुद' नहीं है, ऐसा कहते ही 'खुद' उससे अलग हो जाता है।

अपमान करने वाला उपकारी दिखेगा तो मान का खात्मा होगा।

अज्ञानता में अपमान का भय चला जाए तो ढीठ भी बन सकता है लेकिन अगर ज्ञान के बाद अपमान का भय चला जाए तो संपूर्ण स्वतंत्र हो जाता है।

मान के अनेक पर्याय हैं। अभिमान, घमंड, तुमाखी, तुंडमिजाज़ी, *घेमराजी*, मच्छराल, स्वमान, मिथ्याभिमान। अगर कहे कि 'मेरा नाम ललवा है' तो समझना कि सिर्फ अहंकारी है। अगर कहे कि 'मेरा नाम लल्लूभाई है' तो वह मानी भी कहलाएगा। 'मैं लल्लूभाई वकील, मुझे नहीं पहचाना?' वह अभिमानी है। कुछ भी क़ाबिलियत नहीं हो फिर भी कहेगा, 'मैं किसी को भी हरा दूँ,' वह घमंड है। न तो अक्ल का छींटा, ना ही लक्ष्मी का, फिर भी बेहद बदमिजाज़, वह तुंडमिजाज़ है। तुमाखी वाला तो चाहे कितने भी बड़े सेठ जैसे व्यक्ति को भी दुतकार देता है! हर किसी का तिरस्कार करता रहता है, और खुद से दो मील भी नहीं चला जा सके फिर भी कहेगा कि, 'पूरी दुनिया घूमकर आ जाऊँ।' वह *घेमराजी* (खुद के सामने दूसरों को तुच्छ समझना)!

'हम' अलग है, अहंकार अलग है। अहंकार जा सकता है लेकिन 'हम' जल्दी नहीं जाता। जहाँ पर कुछ भी बरकत नहीं हो वहाँ पर 'हम' खड़ा होता है। 'हम' अलग है और 'मैं कुछ हूँ' वह भी अलग!

जहाँ पर खुद नहीं है वहाँ पर *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है-ऐसा आरोपण, मेरापन) का आरोपण करना, वही अहंकार है। अहंकार का अस्तित्व हर एक जीव में है ही, ज्ञानीपुरुष के सिवा।

विस्तृत अहंकार अर्थात् मान। ममतासहित मान, वह अभिमान है। 'यह मेरा बंगला, यह मेरी गाड़ी' ऐसा प्रदर्शन करना, वह अभिमान है।

जहाँ अभिमान है, वहाँ संयम नहीं है और ज्ञान भी नहीं है, वहाँ पर अज्ञान है।

'मैं चंदूभाई हूँ' वही अहंकार है और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो वह निर्‌अहंकार है। स्वरूपज्ञान के बाद मूल अहंकार चला गया लेकिन

अहंकार के परिणाम बचे हैं। जब अहंकार के सर्व परिणाम खत्म हो जाते हैं तब केवलज्ञान होता है।

'अपने अहंकार के परिणामों से किसी को किंचित् मात्र भी दुःख न हो' ऐसा भाव करना चाहिए। फिर भी अगर किसी को दुःख हो जाए तो उसका प्रतिक्रमण करके आगे बढ़ जाना।

मान और स्वमान में क्या अंतर है? मान अर्थात् इगो विद रिच मटीरियल्स और स्वमान अर्थात् खुद की जो क़ाबिलियत है, उतना ही मान। खुद के मान को ज़रा सी भी ठेस न लगे, ऐसा ध्यान रखे, वह स्वमान है। व्यवहार में स्वमान सद्गुण है जबकि मोक्ष में जानेवालों को स्वमान से भी मुक्त होना पड़ेगा। अपमान के समक्ष रक्षण करे, तो वह स्वमान है।

अभिमानी तो जो उसके पास होता है, उसी का प्रदर्शन करता है और मिथ्याभिमानी तो कुछ भी नहीं हो फिर भी 'हमारे यहाँ ऐसा है और वैसा है' ऐसी गप्प लगाते रहते हैं।

अपमान होने में ही मान को नापने का थर्मामीटर है। अपमान करे और उसका असर हो जाए तो समझना कि ज़बरदस्त मानी है।

निर्मानी को ऐसा अहंकार रहता है कि 'मैं निर्मानी हूँ।' निर्मानी होने का अहंकार तो और अधिक सूक्ष्म है! वह अहंकार भी जब शून्य हो जाएगा तभी काम होगा।

ज्ञानीपुरुष सस्पृह-निस्पृह होते हैं। सामनेवाले के *पुद्गल* के लिए संपूर्ण निस्पृह और उसके आत्मा के लिए संपूर्ण सस्पृह।

ज्ञानीपुरुष में उन्मत्तता नहीं होती। लोगों को तो, जेब में ज़रा सी रकम पड़ी हो तो छाती फूल जाती है, वह उन्मत! और ज्ञानी को तो अगर ज़बरदस्त वैभव सामने से आ पड़ें फिर भी, उनमें किंचित् मात्र भी उन्मत्तता नहीं होती।

ज्ञानीपुरुष में *पोतापणुं* नहीं होता। मन-वचन-काया के प्रति *पोतापणुं* रहता ही नहीं है न!

ज्ञानीपुरुष में गर्व नहीं होता। 'मैं कर रहा हूँ, मैंने किया' वह सारा गर्व है। स्वरूप में आ जाएगा तो गर्व मिट जाएगा। 'मैंने किया' ऐसा होते ही अंदर मीठा गर्वरस उत्पन्न हुए बिना रहता ही नहीं। 'मैं था उसी से हुआ' वही गर्वरस है। जगत् में गर्वरस जितना मीठा रस किसी और चीज़ में नहीं होता।

गर्वरस किस तरह जाएगा? वह विज्ञान जानने से जाएगा। कौन सा विज्ञान? 'यह कौन कर रहा है' वह जान लेगा तो खुद नहीं कर रहा है वह समझ में आ जाएगा और फिर 'मैं कर रहा हूँ' का गर्वरस उत्पन्न ही नहीं होगा। ज्ञानीपुरुष को किसी भी क्रिया में ऐसा नहीं होता कि 'मैंने किया।'

'मैं जानता हूँ' का केफ चढ़ना, वह तो भयंकर जोखिम है! ज्ञानी के बिना, यह रोग कभी भी नहीं जा सकता। यह ज़हर से भी अधिक भयंकर है। अहम् रखना हो तो 'मैं कुछ भी नहीं जानता' का रखना।

सामने वाला प्रशंसा करे और उससे पूरे दिन मस्ती में रहे तो वह सब प्रशंसा है और गर्वरस तो 'मैंने कितना अच्छा किया!' 'मैं कर रहा हूँ' ऐसा अहंकार गर्वरस चखने की आदत डाल देता है।

गर्वरस नहीं चखने के लिए क्या करना चाहिए? कुछ भी नहीं करना है। जिसे स्वरूपज्ञान प्राप्त हो चुका है, उसे सिर्फ यह ज्ञान जानने की ही ज़रूरत है कि 'गर्वरस को चखने वाला मैं नहीं हूँ और मैं तो शुद्धात्मा हूँ' वह *लक्ष* (जागृति) में रखना चाहिए।

ज्ञानीपुरुष *गारवता* (संसारी सुख की ठंडक में पड़े रहना) में नहीं होते। *गारवता* अर्थात् जिस प्रकार गरमी के मौसम में कीचड़ में बैठी हुई भैंस को कीचड़ की ठंडक कीचड़ में से बाहर नहीं निकलने देती, उसी प्रकार भौतिक सुख में पड़े हुए लोगों को रस-*गारवता,* रिद्धि-सिद्ध *गारवता,* शास्त्र-*गारवता* संसार में से बाहर नहीं निकलने देती। वह तो ज्ञानीपुरुष करुणा करके बाहर निकालें, तब निकला जा सकता है।

ज्ञानीपुरुष की दी हुई समझ से उसे समझ में आता है कि

भौतिक में सुख नहीं है, सुख आत्मा में ही है, ऐसी प्रतीति बैठ जाती है। खुद जब ऐसा दृढ़ निश्चय करता है तब *गारवता* छूटने लगती है। अक्रम विज्ञान ऐसा कहता है कि शुद्धात्मा पद प्राप्त होने के बाद जिस पर *गारवता* का असर होता है वह, वह खुद नहीं है और यह जागृति ध्यान में रहती है तो *गारवता* खत्म होती जाती है।

गर्व नहीं, *गारवता* नहीं, अंतरंग स्पृहा नहीं, उन्मत्तता नहीं, *पोतापणुं* नहीं, ऐसी ग़ज़ब की ज्ञानदशा में बरतनेवाले प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुष के आश्रय में जाने से अनंत जन्मों का नुकसान एक जन्म में ही खत्म हो जाता है और मोक्ष प्राप्ति की गारन्टी मिल जाती है।

६. लघुतम : गुरुतम

ज्ञानीपुरुष की दशा, व्यवहार में लघुतम और निश्चय में गुरुतम! ज्ञानीपुरुष किसी के गुरु नहीं होते। वे किसी के *ऊपरी* (बॉस) नहीं, और उनका भी कोई *ऊपरी* नहीं, भगवान भी नहीं। भगवान तो ज्ञानीपुरुष के वश में रहते हैं। जिस किसी में अहंकार व ममता नहीं हैं, भगवान उसके वश में रहते हैं!

जो पूरी दुनिया में सब से 'जूनियर' बने, वह पूरे ब्रह्मांड का 'सीनियर' बनता है।

गणित में जो सब से छोटी अविभाज्य संख्या होती है, वह लघुतम है। उस परिभाषा पर से ज्ञानीपुरुष को बचपन में ही, पूर्वाश्रम में ही भगवान मिल गए थे कि भगवान ही लघुतम हैं। तभी से लघुतम की तरफ झुकते-झुकते अंत में संपूर्ण लघुतम बने और दूसरी तरफ गुरुतम भी बन गए।

लघुतम तो हमेशा के लिए सुरक्षा देता है। लघुतम को गिरने का भय ही नहीं है न!

जगत् में हर किसी को गुरुतम होना अच्छा लगता है। लघुतम होना पसंद नहीं है। जो गुरुतम बनने गया, वह चार गतियों में भटकेगा और लघुतम बना वह जल्दी मोक्ष में जाएगा।

अक्रम विज्ञान क्या कहता है? रिलेटिव में लघुतम, रियल में गुरुतम और स्वभाव में अगुरु-लघु! जो रिलेटिव में लघुतम है, वह रियल में गुरुतम बनता ही है, नियम से! वहाँ भगवान से भेंट हो ही जाती है।

जगद्‌गुरु नहीं बनना है, जगत् को गुरु बनाना है। बगैर गुरुकिल्लीवाले गुरु अर्थात् जो भारी बन बैठे हैं, वे खुद डूबते हैं और ऊपर बैठनेवाले को भी डुबो देते हैं। गुरुकिल्ली तो ज्ञानीपुरुष से ही मिली होनी चाहिए। गुरुकिल्ली अर्थात् 'मैं शिष्य का भी शिष्य हूँ, लघुतम हूँ।' निरंतर ऐसी जागृति।

हर एक को आध्यात्मिक डेवेलपमेन्ट के आधार पर गुरु की ज़रूरत है। किन्डर गार्टन के गुरु, फर्स्ट स्टेन्डर्ड के, सेकन्ड स्टेन्डर्ड के... कॉलेज के और अंतिम गुरु तो पूरे जगत् को गुरु मानते हैं।

जब तक व्यवहार में गुरुतम भाव नहीं जाएगा, 'मैं कुछ हूँ' ऐसा भाव नहीं चला जाएगा, तब तक लघुतम भाव नहीं आ सकता।

लघुतम पद की प्राप्ति बहुत मुश्किल है। वह पद तो उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है, जिस व्यक्ति में हमेशा के लिए ज्ञानीपुरुष द्वारा रियल और रिलेटिव की भेदरेखा डल चुकी हो, जो ज्ञानीपुरुष की आज्ञा में बरतने लगा है, वह लघुतम पद प्राप्त कर लेता है। दृष्टि लघुतम की ओर हो गई, ध्येय लघुतम की ओर का हो गया, तब वह पद प्राप्त होगा।

लघुतम हो चुके, उसकी निशानी क्या है? गाड़ी में से नौ बार उतार दें और नौ बार वापस बुलाएँ तो हर एक बार ज़रा सा भी असर हुए बिना खुद वैसा ही करे, तो समझना कि वह लघुतम हो गया है।

'लघुतम भाव में रहना और अभेद दृष्टि रखना, वह अक्रम विज्ञान का फाउन्डेशन है।' - दादाश्री

गुरुतम अहंकार से संसार सर्जित हुआ है और लघुतम अहंकार से संसार अस्त होता है।

गुरुतम बनने जाएँ तो रेस-कोर्स खड़ा हो जाता है। लघुतम में तो स्पर्धा ही नहीं है न!

गुरुतम की घुड़दौड़ में दौड़-दौड़कर हाँफकर मर जाते हैं सब, और इनाम मिलता है एक को ही!

टीका करना और स्पर्धा, वे अहंकार के मूल गुण हैं। हर कोई अपने-अपने कर्म भोग रहा है, उसमें किसी की टीका कैसे की जा सकती है? टीका करना अर्थात् खुद अपना ही बिगाड़ना!

कार्यकुशलतावाले तो घुड़दौड़ में हाँफकर मर जाते हैं। उसके बजाय तो, कुछ कुशलता है ही नहीं, ऐसा करके एक तरफ बैठे रहने में मज़ा है। ज्ञानीपुरुष तो साफ-साफ कह देते हैं कि, 'मुझे दाढ़ी बनानी भी नहीं आती, इस उम्र में भी!'

कार्यकुशलता के अहंकार को लेकर घूमनेवालों को मालूम नहीं है कि उनकी भूलें तो इस कुदरत की दी हुई 'फैक्टर ऑफ सेफ्टी' के नीचे दब जाती हैं और खुद ऐसा मान लेता है कि मुझे कितना अच्छा करना आ गया!

जब तक कार्यकुशलता का अहंकार है, तब तक उसे वह कार्य करते ही रहना पड़ेगा। जिसे कुछ आता ही नहीं, उसे क्या करना है? कार्यकुशलता अहंकार के आधार पर टिकी हुई है। जहाँ पर अहंकार है ही नहीं – खत्म हो चुका है, वहाँ पर कार्यकुशलता किस प्रकार टिक सकेगी?

ज्ञानीपुरुष तो खुद के लिए बार-बार ऐसा कहते हैं कि 'मुझे कुछ भी नहीं आता,' इसके बावजूद भी लोग मानें तब न? लोग तो ऐसा ही कहते हैं कि 'दादा को तो सबकुछ आता है।' तब वे खुद ऐसा कहते हैं कि, ''मैं तो आत्मा की बात जानता हूँ। 'आत्मा' ज्ञाता-दृष्टा है ऐसा जानता हूँ। 'आत्मा' जो कुछ भी देख सकता है, वह 'मैं' देख सकता हूँ। अन्य कुछ भी नहीं आता।''

सामनेवाले खींचे तब ज्ञानी धीरे से ढीला छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं। सामने वाला खींचे और खुद भी खींचे तो प्रगति रुंध जाती

है। जिसे जैसा दिखाई देता है, वह अपनी उसी पकड़ को पकड़ लेता है। उसमें उसका क्या दोष?

जिसे मोक्ष में जाना है, उसे तो जगत् पागल कहे, मारे, निकाल दे, तब भी उसे हारकर वहाँ पर बैठ जाना चाहिए। ज्ञानियों का तरीका है, सामनेवाले को जितवाकर जगत् को जीत लेना! इसलिए जगत् में हारने की कला सीखने जैसी है। तभी इस जगत् से छूटा जा सकता है, वर्ना जब तक जीतने जाएगा, तब तक वह हारा हुआ ही कहा जाएगा। ज्ञानियों की यह खोज वास्तव में अडोप्ट (अंगीकार) करने जैसी है।

ज्ञानीपुरुष खुद अबुध हो चुके होते हैं, जबकि जगत् तो खुद को अक्कल वाला कहलवाने के लिए या बनने के लिए घूमता है!

बहुत हुआ तो कोई एकाध सब्जेक्ट में 'एक्सपर्ट' बन सकता है। उसके बजाय 'सब में बेवकूफ' बनना सब से अच्छा! जो सभी में बेवकूफ होता है, उसकी गाड़ी अच्छी चलती है क्योंकि हर एक चीज़ के एक्सपर्ट किराए पर मिलते हैं। वकील किराए पर मिलते हैं, डॉक्टर, सी.ए, सोलिसिटर... अरे, कारखाने चलाने के लिए मैनेजर भी किराए पर मिलते हैं!

'मुझमें कोई बरकत नहीं है' कहा कि हम इन लोगों के रेस-कोर्स में से मुक्त हो जाएँगे। कोई दूसरा हमें बिना बरकत वाला कहे, उसके बजाय खुद ही न कह दें? तो मुक्त तो हो पाएँगे इस जगत् से!

कुल मिलाकर रेस-कोर्स में से क्या सार निकाला? आज पहला नंबर आए तब भी वापस कभी न कभी अंतिम नंबर तो आएगा ही। इसलिए ऊपर से भगवान आकर भी घुड़दौड़ में दौड़ने के लिए ललचाएँ तो भी मना कर देना!

रेस-कोर्स में से निकलते ही व्यक्तित्व उभरने लगेगा। रेस-कोर्स का और पर्सनालिटी का कभी मेल नहीं बैठता!

जिसने अक्रम विज्ञान का छोटा और सटीक कोर्स कर लिया,

उसका अनंत अवतार का हिसाब एक कोर्स में पूरा हो जाएगा। फिर हमेशा के लिए निर्भयता, असंगता, वीतरागता!

७. खेंच : कपट : पोइन्ट मैन

'अक्रम विज्ञान' ज्ञानीपुरुष का अनुभव सहित विज्ञान है और यह विज्ञान ऐसा है कि व्यवहार या अध्यात्म की तमाम प्रकार की गुत्थियाँ सुलझा देता है।

जिसे अक्रम विज्ञान प्राप्त हुआ है, उसका जीवन कैसा होना चाहिए? बिल्कुल *खेंच* रहित। अपनी सही बात को ज़ाहिर करे, लेकिन अगर कोई स्वीकार नहीं करे तो उसे, सही साबित करने की भी ज़रूरत न समझे और शायद कभी प्रकृति के भरे हुए माल के आधार पर *खेंच* उत्पन्न हो जाए तो उसे भी 'देखे' तो 'खुद' मुक्त हो जाएगा।

मोक्षमार्ग में कानून नहीं है। सहज रूप से जो हो जाए वही ठीक! नो लॉ-लॉ! वर्ना एक कानून बनाने जाएँ तो कानूनों के पहाड़ खड़ा करना पड़ेगा। जहाँ कानून है, वहाँ सहजता नहीं है। मोक्ष तो जो सहज हो जाए, उसी के लिए है।

ज़िद पकड़ने का मतलब यानी खुद का स्थान छोड़कर नीचे गिरना। खुद का सत्य हो, फिर भी यदि उसकी पकड़ पकड़े, तब भी वह अहंकार माना जाएगा। जगत् का सत्य, वह निरपेक्ष सत्य नहीं है, सापेक्ष सत्य है। उसकी क्या पकड़ रखनी? ज्ञानीपुरुष तो संपूर्ण निराग्रही होते हैं।

मतभेद रहित हो गए तो समझना कि सही मार्ग पर हैं। कहीं भी पकड़ नहीं पकड़े, मोड़ो वैसे मुड़ जाए, उसे सरल कहते हैं।

सभी कषायों में से सब से विकट कपट है क्योंकि कपट हमेशा मीठा लगता है और दिखाई नहीं देता है। कपट सभी हिसाब बंधवाता है। कपट तो बेभान कर देता है। यानी खुद के कपट का खुद को पता ही नहीं चलता, इसलिए उसे निकालना भी मुश्किल है।

संसार के लाभ उठाने के लिए औरों को अपने अभिप्राय के

अनुसार खींचना, अपने विश्वास में लेना, वह कपट है। उस कपट का खुद को भी पता नहीं चलता।

'मोक्ष के अलावा मुझे कुछ भी नहीं चाहिए' ऐसी जागृति निरंतर रहे तब वह कपट जाने लगता है। रोज़ सुबह पाँच बार ऐसा बोलना, उससे जागृति आती जाएगी।

चतुराई से सामनेवाले को वश में करता है, कपट के कारण और कपट की पूरी बाज़ी खेलने के लिए। जिसे अपने खुद के हित की या अहित की बात समझ में आ जाए तो वह सामनेवाले की चतुराई में नहीं फँसेगा।

'मेरे खुद के सभी दोष निकालने ही हैं, मोक्ष में जाना ही है।' बार-बार ऐसी भावना करने से छूटा जा सकेगा।

जब तक संसार में कहीं भी मिठास बरतती है, तब तक निज स्वभाव का अखंड ध्यान नहीं बरत सकता। वह खंडित हो ही जाता है। कड़वे से कोई रुकावट नहीं आती। मिठास से गोता खा जाते हैं।

ज्ञानीपुरुष से मिलने के बाद मोक्ष के स्टेशन तक पहुँचने के लिए अपनी गाड़ी मेन लाइन पर आ जाती है लेकिन अगर बीच में कोई 'पोइन्ट मैन' मिल जाए तो गाड़ी कौन से गाँव ले जाएगा, उसका ठिकाना नहीं है। पूरी पटरी ही बदलवा देगा! ऐसा बोलेगा कि हमें चक्कर में डाल देगा!

ज्ञानीपुरुष चेतावनी दें, तब पता चलता है कि पटरी बदल गई है। फिर सूक्ष्मता से पृथक्करण करने पर तो पता चलेगा कि कहाँ से शुरुआत हुई थी, क्या हुआ, किसने किया, किस आधार पर हुआ, हमारे कौन से लालच ने हमें ललचा दिया, भीतर निराकुलता थी वह चली गई और आकुलता कहाँ से घर कर गई? जागृति से वह सब पता चलता है। जिसका व्यवहार डिगा, उसका निश्चय डिग ही जाता है।

कच्चे कान के नहीं बनेंगे, पटरी नहीं बदलेगी तो प्रगति होगी। सम्यक् बात को ही पकड़कर रखना चाहिए। उसे काटने वाली किसी भी

बात को मन में भी स्थान नहीं देना चाहिए। ज्ञानी ऐसे भोले नहीं होते। यानी कोई अगर दूसरी पटरी पर ले जाना चाहे, तब भी नहीं चूकते न!

जहाँ कपट है, वहाँ पर भोलापन होता है। कोई उल्टी बात कान में डाल जाए और उसे सही मान ले, वह भोलापन। वहाँ पर उपाय तो यही है कि ड्रामेटिक सुनना ज़रूर है, उसमें रुकावट नहीं डालनी है लेकिन आधार तो सम्यक् का ही रखना है। हर कोई अपनी-अपनी समझ के अनुसार बोलता है, लेकिन आसरा तो सम्यक् बात का ही लेना चाहिए।

अक्रम विज्ञान ऐसा है कि मोक्षमार्ग के चाहे कैसे भी बाधक कारण आकर खड़े रहें, उसके बावजूद भी उसके पार निकला जा सकता है। जो 'मुश्किल है, मुश्किल है' करते हैं, उनके लिए मुश्किल हो जाता है।

'मुझे क्या?' ऐसा भी नहीं कहना चाहिए। उसे भेद डालना कहा जाएगा। 'मुझे क्या?' ऐसा रहे, तब प्रतिक्रमण कर-करके वापस आना है। 'मुझे क्या?' कहा तो निस्पृह हो गया। उससे उसी को भयंकर नुकसान होगा।

मोक्ष का मार्ग चूक नहीं जाए, वही देखते रहना है!

'मेरी पीठ पीछे क्या कह रहे थे?' ऐसा हुआ कि वहीं से मोक्षमार्ग खत्म। जिसे जो कहना हो, वह भले ही कहे। हमें अपने आपको छुपाना होगा, तभी यह प्रश्न खड़ा होगा न!

'कान लगाकर सुनना', वह भी भयंकर रोग है। यदि अपना गुनाह हो और कोई कहे तो उसमें क्या हर्ज है? कोई अपने लिए चाहे कुछ भी कहे, वह भले ही कहे। अच्छा ही है। हमें स्ट्रोंग रहने की ज़रूरत है। छोटी सी भूल भी भयंकर रूप से भ्रमित कर देती है! उसमें खुद में कपट होता है, इसीलिए तो कान लगाकर सुनने का मन होता है।

दूसरे की बात सुनकर तो अपना दिमाग़ बिगड़ जाता है। वह बात कहने वाला सहजभाव से कह जाता है लेकिन अपनी खीर में नमक डल गया उसका क्या? अपनी क्या दशा होगी?

कुछ लोग कहते हैं कि हमें डर के मारे कपट करना पड़ता है। लेकिन डर किसका? जिसका गुनाह हो उसी को डर है न!

जो मोक्ष के कामी बन जाएँ उन्हें मोक्षमार्ग का कोई बाधक कारण स्पर्श नहीं करता।

'मैं जानता हूँ', वह मोक्षमार्ग का सब से बड़ा बाधक कारण है! वह आत्मघात करवाता है। 'मैं जानता हूँ', वह निरी मादकता लाता है, जिसका खत्म होना अति मुश्किल! जिसे यह कैफ नहीं है कि 'मैं जानता हूँ', उसका तो चेहरा भी सुंदर दिखाई देता है। भयंकर अजागृति के कारण तो ये रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

'मैं जानता हूँ' ऐसा मानकर हो चुके झंझट का निकाल करने जाएँगे तो बल्कि और बिगड़ेगा।

'मैं जानता हूँ' की मिठास बरते या कोंपले फूटें तब वहाँ पर उसे तुरंत ही मिटा देना। कोंपलें फूटते ही उखाड़ फेंकना, नहीं तो वह रोग बढ़ जाएगा। जागृति खत्म कर देगा।

मोक्षमार्ग में सभी भय-सिग्नल ज्ञानीपुरुष से समझ लेने चाहिए, तभी सेफसाइड रहेगी। नहीं तो स्टीमर कौन से गाँव जाएगा, उसका ठिकाना नहीं है।

जिसे मोक्ष में ही जाना है उसे सही मार्ग मिल ही जाएगा, ऐसा नियम है।

८. जागृति : पूजे जाने की कामना

ज्ञानी की समझ के साथ अपनी समझ रखकर, उसके समानांतर चलना चाहिए। वर्ना मार्ग कब दूसरे रास्ते पर चढ़ जाएगा, वह कहा नहीं जा सकता। मोक्षमार्ग में खुद की समझदारी का एक अंश भी नहीं चल सकता। खुद को सही समझ है ही नहीं इसीलिए तो भटक रहे हैं न!

सामनेवाले के प्रश्न का समाधान कब होगा जब अहंकार संपूर्ण खत्म हो जाएगा। जब डिस्चार्ज अहंकार भी खत्म हो जाएगा, तब।

जब तक गर्वरस चखते हैं, तब तक स्यादवाद वाणी भी नहीं निकलती। यानी कि बुद्धि में, अहंकार में रुचि नहीं होनी चाहिए। अहंकार नहीं निकले और उपदेशक बन बैठे तो सामनेवाले को कोई फायदा नहीं होगा। उसके कान को अच्छा लगेगा इसलिए वाह-वाह करेगा, लेकिन उससे उसे खुद को भयंकर नुकसान होगा। अहंकार ही पूरी खुराक खा जाएगा और पूरा मोक्षमार्ग चुकवा देगा!

अक्रम मार्ग में उपदेशक होने की इच्छा रखनेवालों को ज्ञानीपुरुष लालबत्ती दिखाते हैं कि 'अपने इस ज्ञान का सिर्फ एक बाल जितना भी कहने जाएँगे तो लोग टूट पड़ेंगे। लोगों ने ऐसी शांति देखी ही नहीं है, ऐसा सुना ही नहीं है इसलिए टूट ही पड़ेंगे न! लेकिन वह अहंकार अंदर बैठा-बैठा हँसता रहेगा।' पूर्णाहुति करनी हो तो किसी जगह पर, कोई पूछे तब भी कमज़ोर मत बनना।

जब तक बुद्धि का क्षय नहीं हो जाए, अहंकार का क्षय नहीं हो जाए, पौद्‌गलिक इच्छाएँ खत्म नहीं हो जाएँ, विषय का विचार तक भी आता है तब तक दबी हुई अग्नि ही है। वह कब भभक उठेगी, वह कहा नहीं जा सकता। उपशम हो चुके कषाय जब तक क्षय नहीं हुए हैं, तब तक उपदेश में पड़ना भी भयंकर जोखिम है।

जब तक खुद को अपने आप के लिए पक्षपात है, तब तक खुद की भूलों का पता नहीं चलता। वह सिर्फ मूर्च्छा में ही रखता है। कर्म के उदय के थपेड़े आएँ, तब उदय स्वरूप हो जाता है। जागृति आवरित हो जाती है और उपयोग चूक जाता है। वह तो, अगर ज्ञानीपुरुष के सत्संग में रहे तब फिर वह जागृति वापस आती है।

जागृति अलग चीज़ है और ज्ञान अलग चीज़ है। नींद में से जागना वह जागृति कहलाती है। जागृति में कषाय उपशम हो चुके होते हैं। लेकिन ज्ञान तो कब कहा जाएगा कि जब कषायों का क्षय हो जाए। जैसे-जैसे जागृति बढ़ती है, वैसे-वैसे कर्म नहीं बंधते और भीतर एकदम शुद्ध कर देती है।

जब तक मान में कपट होता है, तब तक जागृति उत्पन्न नहीं होने

देता। कपट मतलब ढँकना, जो उल्टे रास्ते पर ही ले जाता है। कपट और अहंकार - क्रोध-मान-माया-लोभ ही उल्टे रास्ते पर ले जाते हैं।

जब किसी भी प्रकार के कपट का अंश नहीं रहता, विषय का विचार तक नहीं आता, कषाय निर्मूल हो जाते हैं, तब जागृति 'ज्ञान' में परिणामित होती है।

ज्ञानीपुरुष का आसरा छूटा कि कषाय वंशावली के साथ चढ़ बैठते हैं। अरे! कषाय तो चाहे किसी भी तरीके से ज्ञानी का आसरा छुड़वाने में लगे रहते हैं। ज़रा सी मिठास लगी कि कषायों को खुराक मिल गई। कषायों को तीन वर्ष तक नाम मात्र की भी खुराक नहीं मिलेगी, तब वे निर्वंश होंगे लेकिन यदि ज़रा सी खुराक मिली कि वापस तगड़े हो जाएँगे!

ज्ञानीपद तब मिलता है कि जब कभी भी कषाय को खुराक न मिल पाए। इतनी अधिक जागृति की ज़रूरत है। ज्ञानी का आसरा हो, तभी कषायों को जीता जा सकता है। उनका आसरा नहीं छोड़ना चाहिए।

ज्ञानीपुरुष जब तक सर्टिफाई न करें, तब तक उपदेश दिया ही नहीं जा सकता। अंदर तो सभी दोष तैयार ही बैठे हुए हैं, वे तुरंत हावी हो जाएँगे। सभी गुणों के क्षायक होने के बाद अपने आप ही वह पद आएगा!

जागृति तो उसे कहते हैं कि चोर न घुस पाए। खुद का हर एक दोष दिखाई दे। अहंकार भी दिखाई दे। वह अहंकार यहाँ है ही और वह गर्वरस चखवाता है। ज़रा सा किसी ने कहा कि आपने बहुत अच्छा किया कि तुरंत ही गर्वरस चख लेता है। वही फिर गिरा देता है न! यह मीठा है, यह कड़वा है - जहाँ ऐसा भेद खत्म हो जाए, वहाँ पर ज्ञान है।

ज्ञानीपुरुष के अलावा अन्य किसी को सत्संग में किसी के प्रश्नों का खुलासा नहीं करना चाहिए। सिर्फ साधारण बातचीत की जा सकती है लेकिन खुद अपने आपको ज़रा सा भी विशेष माना कि समझो विष चढ़ गया!

जैसे-जैसे जागृति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उपशम कषाय क्षय होते

जाते हैं। जिसे जागृति उत्पन्न हुई, उसे सामायिक-प्रतिक्रमण कर-करके दोषों का क्षय करने के लिए जागृति का फायदा उठा लेना चाहिए।

'दादा' के बालक बनकर सीधे-सीधे चलते रहने में ही मज़ा है। दादा के बालक बन गए तो दादा संभाल लेंगे और बड़े बनने गए तो अपने आप चलना और फिर रोना! वह तो जब मार पड़ेगी तब वापस आएगा।

पूजे जाने की कामना एक भयंकर रोग है, आत्मघाती है, कोई जय जय करे, तो फिर उसकी आदत पड़ जाती है।

आत्मा तो पूज्य है ही और देह की राख हो जाएगी, उसकी पूजा करवाना चाहता है! उसी रोग से तो मोक्ष रुका हुआ है।

ज्ञानी से अलग ज़रा सा भी स्वतंत्र मार्ग निकाला तो भयंकर भूलभूलैया में घुस जाएगा। ज्ञानी के पीछे-पीछे चलते जाने को कहा है, वहाँ दूसरी गलियाँ कैसे पुसाएँगी? वह जोखिम क्यों मोल लें? वह सभी पतन करवाता है अंत में!

मोक्षमार्ग में बाधा डालने वाली जो-जो चीज़ आकर खड़ी रहे उसे तुरंत ही उखाड़कर फेंक देना चाहिए, तो ध्येय को पकड़कर रख सकेंगे। ध्येय मोक्ष का रखने जाए, लेकिन अंदर दानत खराब हो तो ध्येय को खत्म कर देगी। जो ध्येय को तुड़वाए, वही दुश्मन।

मोक्ष में जाना हो तो खुद को इतना मज़बूत हो जाना पड़ेगा कि 'इस देह का जो होना हो वह हो लेकिन मोक्षमार्ग नहीं चुकूँगा, काम निकाल ही लेना है', तो उसका काम पूर्ण होगा। इतना ही भाव करना है, दृढ़ निश्चय करना है।

ज्ञानी से मोक्षमार्ग के ये भयस्थान समझकर वहाँ पर निरंतर सावधान रहना है।

जो कुछ भूलें हुई हों, ज्ञानी से उनकी आलोचना करके वापस लौटकर छूट जाना चाहिए। मोक्षमार्ग में पूजे जाने के लिए नहीं जाना चाहिए। जगत् कल्याण करने का ध्येय कर्ताभाव से नहीं रखना चाहिए और अहंकार नहीं करना चाहिए। मोक्षमार्ग में तो गुप्तवेश से चलकर निकल जाना है। अंत तक ज्ञानीपुरुष का सत्संग और ज्ञानीपुरुष का आसरा नहीं छोड़ना चाहिए।

ज्ञानीपुरुष के दोष नहीं देखने चाहिए। भूल नहीं निकालनी चाहिए। उनकी नौ बातें समझ में आएँ और एक समझ में नहीं आए तो उसे एक ओर रखकर 'वेट एन्ड वॉच' करना। वह फिर अपने आप ही समझ में आएगा।

9. पोतापणुं : परमात्मा

ज्ञानीपुरुष पूरे जगत् के साथ अभेद रहते हैं। किसी के साथ भी जुदाई नहीं रहती। ज्ञानीपुरुष में बुद्धि होगी, तब भेद पड़ेगा न! अबुध तो अभेद रहते हैं विश्व के संग!

अभेदता ज्ञान को पुष्टि देती है। जुदाई से शक्तियाँ छिन्नभिन्न हो जाती हैं। जिसका *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है, ऐसा आरोपण, मेरापन) चला जाता है, उसकी जुदाई चली जाती है, वह सब के साथ अभेद हो जाता है।

ए. एम. पटेल ने मेरापन छोड़कर भगवान को समर्पित कर दिया है। जिसका मेरापन गया वह भगवान के साथ अभेद हो गया, ऐसा समझना।

ज्ञानीपुरुष के *पोतापणां* का उन्मूलन हो चुका होता है। संपूर्ण संयोगाधीन बरतते हैं, निर्‌अहंकारी रूप से, पोटली की तरह जहाँ जाना पड़े, वहाँ जाते हैं! *पोतापणुं* छूटने के बाद सहज रहा जा सकता है। खुद का कोई मत ही नहीं रहता उनका। फिर भी उनका व्यवहार संपूर्ण आदर्श होता है। पूरे दिन वे ड्रामेटिक ही रहते हैं। जिसका *पोतापणुं* जाए, वही ड्रामेटिक रह सकता है।

प्रकृति का रक्षण करना, वह *पोतापणुं* कहलाता है। कपट करके प्रकृति का रक्षण करना, उसे गाढ़ *पोतापणुं* कहते हैं।

जिसका *पोतापणुं* जा चुका है, उसकी क्या परीक्षा है? नौ बार गाड़ी में से उतार दिया जाए और नौ बार वापस बुलाया जाए, लेकिन तब भी चेहरे पर ज़रा सा भी बदलाव नहीं हो! 'व्यवस्थित' का ज्ञान *पोतापणुं* छुड़वाता है।

ज्ञानीपुरुष के अलावा सभी में *पोतापणुं* होता है। *पोतापणुं* जाए तो वह भगवान बन जाए!

एक बार *पोतापणुं* चला गया, तो समझो वह हमेशा के लिए चला गया।

'ज्ञान' प्राप्त होने के बाद चार्ज अहंकार चला जाता है लेकिन डिस्चार्ज अहंकार रहता है, उसे *पोतापणुं* कहते हैं और वह भी जब खत्म हो जाता है, तब कहते हैं कि 'उसका *पोतापणुं* चला गया।'

जितनी जागृति है उतनी मात्रा में *पोतापणुं* खत्म होता है। *पोतापणुं* खत्म होने के लिए किस प्रकार की जागृति की ज़रूरत है? कि 'यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ', 'खुद' कौन है वह निरंतर जागृति में रहता है, ज्ञानीपुरुष की आज्ञा का पालन होता है, सामने वाला व्यक्ति निर्दोष, अकर्ता दिखाई देता है...

चाहे कैसे भी परिणाम आएँ, फिर भी 'यह मैं नहीं हूँ' कहा कि छूट जाते हैं!

जहाँ *पोतापणुं* खत्म हुआ, वहाँ पर गर्व या *गारवता* नहीं होती।

अहंकार के पक्ष में, अज्ञानता के पक्ष में बैठना, उपयोग चूक जाना, वह सब *पोतापणुं* कहलाता है।

व्यवस्थित के अनुसार उदय में तन्मयाकार नहीं होना ही पुरुषार्थ है। प्रज्ञा प्रकृति के उदय में तन्मयाकार नहीं होने देती, जबकि अज्ञा प्रकृति के उदय में तन्मयाकार कर देती है।

सभी को उदय में *पोतापणुं* बरतता है। 'ज्ञान' प्राप्ति के बाद जैसे-जैसे उदय आते हैं और पुरुष बनकर उनमें पुरुषार्थ करते हैं, वैसे-वैसे *पोतापणुं* खत्म होता जाता है।

जिसे ज्ञानीपुरुष का 'मेरापन' जा चुका है, ऐसा दिखाई देता है उसका काम हो गया।

जिसका मेरापन गया, वह बन गया परमात्मा! फिर 'व्यवस्थित' उनका चला लेता है!

– **डॉ. नीरूबहन अमीन**

अनुक्रमणिका

[१] आड़ाई : रूठना : त्रागा

[२] उद्वेग : शंका : नोंध

[३] कॉमनसेन्स : वेल्डिंग

[४] ममता : लालच

[५] मान : गर्व : गारवता

[६] लघुतम : गुरुतम

[७] खेंच : कपट : पोइन्ट मैन

आप्तवाणी

श्रेणी - ९

[१]

आड़ाई : रूठना : त्रागा

समझने जैसी बात 'ज्ञानी' की

'ज्ञानीपुरुष' की बात दरअसल सीधी है। मोक्ष भी सीधा है। मोक्ष में सभी को जाने देते हैं, नहीं जाने दें ऐसा कुछ है नहीं, लेकिन मोक्ष के लिए लायक होना चाहिए। अगर टेढ़े-मेढ़े चले तो वहाँ पर मोक्ष में तो नहीं जा सकोगे। इसके बजाय पहले से ही सीधे हो जाएँ तो क्या बुरा है ? मोक्ष कठिन नहीं है, लेकिन अगर ज्ञानीपुरुष की बात समझ में आ गई तो काम का है। यदि समझ में नहीं आए तो गुत्थियाँ पड़ जाएँगी क्योंकि ज्ञानीपुरुष की बातें त्रिकाल सिद्ध कहलाती हैं। उन्होंने एक बार जो कहा हो न, तो तीर्थंकरों ने भी वही कहा होता है।

हमें 'ज्ञानीपुरुष' के कहे अनुसार चलना चाहिए; क्योंकि 'ज्ञानीपुरुष' किसे कहते हैं ? उन्हें, जो सभी तरह से सीधे हो चुके होते हैं। वे गालियाँ खाने में भी सीधे और गालियाँ देने में भी सीधे। लेकिन गालियाँ देने का समय आए तो वे गालियाँ देते नहीं हैं क्योंकि सीधे हो चुके हैं इसलिए देते ही नहीं न! हम तो पहले से ही सीधे हो चुके हैं और आपको भी

आड़ाई (अहंकार का टेढ़ापन) तो निकालनी ही पड़ेगी न? ये सब *आड़ाईयाँ* कब तक चलेंगी भला? वह तो जब कभी अंदर से निकले, तब *आड़ाई* का पता चलता है। वर्ना फिर जब 'ज्ञानीपुरुष' के पास आएँगे, तब पता चलेगा कि 'ओहोहो, अभी तक इतनी *आड़ाईयाँ* भरी हुई हैं!'

सीधा तो होना ही पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : *आड़ाईयाँ* क्यों नहीं जातीं?

दादाश्री : कैसे जाएँगी लेकिन? बहुत दिनों से मुकाम किया हुआ है और फिर किराए का नियम है, एकबार घुसने के बाद निकलता नहीं है। जो यहाँ रहने आ चुकी हैं, फिर वे *आड़ाईयाँ* जाएँगी क्या?

मैंने एक व्यक्ति से कहा, 'इतनी *आड़ाईयाँ* क्यों करते हो? *आड़ाई* कुछ कम करो न?' तब उसने कहा, 'दुनिया में *आड़ाई* के बिना तो चलता ही नहीं।' तब मैंने कहा कि, 'साँप को भी बिल में घुसते समय सीधा होना पड़ता है। यदि मोक्ष में जाना है तो सीधे हो जाओ न! वर्ना लोग सीधा कर देंगे, उसके बाद मोक्ष में जा सकोगे। इसके बजाय खुद ही सीधे हो जाओ न!' लोग तो मार मारकर सीधा करते हैं, इसके बजाय खुद सीधे हो जाएँ, तो वह क्या बुरा? इसलिए खुद ही सीधे हो जाओ। लोग मार मारकर सीधा करते हैं या नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : करते हैं। लेकिन फिर भी लोग सीधे नहीं होते हैं न?

दादाश्री : लेकिन कभी न कभी तो सीधा हुए बगैर चारा ही नहीं है न! कड़वा अनुभव होने के बाद, *आड़ाई* अपने आप ही छूट जाती है। ये तो बेहद *आड़ाईयाँ* भरी पड़ी हैं। किसी जन्म में कोई सीधा करनेवाला मिला ही नहीं और यदि मिला होता तो ऐसे नहीं भटक रहा होता। यानी सबकुछ होता है, लेकिन सीधा नहीं रहता। तो यह जगत् क्या करता है? मार मारकर सीधा ही करता है। अभी तक सीधा नहीं हुआ? तो मारो इसे! और फिर पत्नी मारती है, बच्चे मारते हैं, सभी लोग मारते हैं, और उसे सीधा करते रहते हैं।

मुझे तो कितने ही जन्मों से लोगों ने मार मारकर सीधा कर दिया, तब जाकर मैं सीधा-सरल हो गया। जब मैं सीधा हो गया तब देखो, मुझे 'यह' ज्ञान मिल गया न! यों तो मैं भी सीधा नहीं था। यानी यह पूरा ही जगत् सीधा करता है। जो सीधे नहीं हुए हैं, उन्हें भी कभी न कभी सीधा तो होना ही पड़ेगा न? जबकि यह तो सफेद बाल आ जाने के बाद भी *आड़ाई* करता है अभी! यह ऐसी-वैसी वंशावली नहीं है और फिर घर में भी *आड़ाई* करता है।

घर में बच्चे के मर जाने पर यह तो रोना-धोना मचा देता है कि मेरे बेटे का बेटा, इकलौता बेटा था! ऐसे रोता है जैसे वह खुद कभी मरेगा ही नहीं न। क्या खुद नहीं मरेगा? दादा बन गया फिर भी? लेकिन फिर भी बेटे के बेटे के लिए रोता है। अरे जाने का समय आया, तो सीधा रह न! जो दादा बन गया है, उसका जाने का समय नहीं हो गया होगा? सिग्नल तो गिर चुका है! दादा बना, तभी से सिग्नल गिर गया। फिर भी ऐसी बातें करता है जैसे खुद की गाड़ी जाएगी ही नहीं। तो यह सिग्नल गिर चुका है, इसलिए सावधान हो जाओ अब ज़रा।

प्रश्नकर्ता : गाड़ी जाने के संकेत आ गए हैं।

दादाश्री : हाँ, सिग्नल गिर चुका है। अब अच्छे से गाड़ी चलने की तैयारी है। अब सीधे होने की ज़रूरत है।

आड़ाई कबूल करने से, होगी आड़ाईयों की हार

ये *आड़ाईयाँ* क्या है? आप बहुत समय से सब लोगों से कहते हैं कि, 'अरे भाई, *आड़ाई* क्यों करते हो आप?' या फिर आपको कोई कहे कि, '*आड़ाई* क्यों करते हो?' पहचानते तो हो या नहीं पहचानते हो *आड़ाई* को?

प्रश्नकर्ता : *आड़ाई* को तो पहचानते हैं न!

दादाश्री : कितने सालों से पहचानते हो?

प्रश्नकर्ता : जब से समझने लगे तब से।

दादाश्री : तो *आड़ाईयों* का 'स्टॉक' रहने दिया था या बेच दिया? रहने दिया? आप तो 'हाँ' कह रहे हो। यदि 'ना' कहते तो अभी ही *आड़ाई* निकल जाती न?

प्रश्नकर्ता : 'हाँ' कहने से निकल जाएगी।

दादाश्री : ऐसा? 'ना' कहने से नहीं निकलेगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं, 'ना' कहने से तो *आड़ाई* अधिक मज़बूत होगी।

दादाश्री : जबकि लोग कहते हैं न कि, 'ना' कहना? कि नहीं, मुझमें कोई *आड़ाई* नहीं है।

आड़ाई, कॉमन : अन्कॉमन

आड़ाई का अनुभव किसे नहीं होगा? बुद्धि जितनी अधिक, उतनी अधिक *आड़ाई*। समझदार लोग *आड़ाई* कम करते हैं और मोटी खाल के लोग बहुत *आड़ाई* करते हैं। वे *आड़ाई* नहीं छोड़ते। अब उस *आड़ाई* को क्या कहेंगे? लोगों की *आड़ाई* और उनकी *आड़ाई* में क्या फर्क है? 'व्हाट इज़ द डिफरेन्स बिट्वीन कॉमन एन्ड अन्कॉमन *आड़ाई*?' अन्कॉमन *आड़ाई* अर्थात् गाढ़ *आड़ाई* होती है। वह *आड़ाई* फिर छूटती नहीं है। जिस प्रकार यह गाढ़ समकित नहीं छूटता, वैसे ही यह गाढ़ मिथ्यात्व नहीं छूटता। फिर भले ही कितना भी उसे समझाएँ फिर भी वह अपना स्थान नहीं छोड़ता। आप उसे खींच-खींचकर किनारे पर लाओ फिर भी वह मूल स्थान नहीं छोड़ता। उसी तरह अन्कॉमन *आड़ाई* भी अपना स्थान नहीं छोड़ती।

आड़ाईयाँ, स्त्री-पुरुष में

आपमें थोड़ी-बहुत *आड़ाई* है या नहीं? थोड़ी बहुत है क्या? तो इनसे कहो न कि निकाल दें। ज़रा सा परेशान किया कि *आड़ाई* निकलेगी!

प्रश्नकर्ता : यानी कि अगर कोई परेशान करे तभी *आड़ाई* निकलती है?

दादाश्री : नहीं तो और क्या? वे क्या कभी परेशान नहीं करती?

वर्ना यह तो निरा *आड़ाई* का ही माल भरा हुआ है। जिनमें *आड़ाई* नहीं होती, उन्हें सरल कहते हैं। उन्हें जैसे मोड़ो वैसे मुड़ जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या पुरुष खुद ऐसा कबूल करेंगे कि हम टेढ़े हैं? वह तो जब उसकी पत्नी कहेगी, तभी पता चलेगा।

दादाश्री : यों तो स्त्रियाँ भी बहुत टेढ़ी होती हैं। यह सिर्फ पुरुष की ही बात नहीं कर रहे हैं। ये तो, दोनों ही ऐसे होते हैं तभी तो बच्चे ऐसे हो जाते हैं न! और स्त्रियों को टेढ़ी बनाने वाले ये पुरुष ही हैं। वे टेढ़ी नहीं होती हैं। मूलतः जन्मजात टेढ़ी नहीं होतीं। यह पुरुष तो जन्म से ही टेढ़ा होता है। वह माता के अंदर भी ऐसे-ऐसे कोहनियाँ मारता है। पुरुष जाति तो माँ को यों कोहनियाँ मारती है। माँ ने ज़रा सी भी ज़्यादा मिर्ची खा ली हो तो अंदर कोहनियाँ मारता है। जबकि स्त्रियाँ, वे जन्मजात ऐसी टेढ़ी नहीं होतीं।

देखना है, खुद को खुद का ही

ये तो लोगों की *आड़ाईयों* की बातें करते रहते हैं। जैसे उन्होंने खुद की *आड़ाईयाँ* निकाल दी हों! इसलिए लोगों से कहते हैं। 'यह टेढ़ा है', ऐसा नहीं कहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादा, सामनेवाला व्यक्ति टेढ़ा दिखे वह भी खुद की ही *आड़ाई* है न?

दादाश्री : वह सब से बड़ी *आड़ाई* है न!

प्रश्नकर्ता : मतलब खुद की ही सारी *आड़ाईयाँ* देखनी है?

दादाश्री : तो और किसकी? किसी और से कहने जाओ तो उल्टा आपसे झगड़ा करेगा।

प्रश्नकर्ता : *आड़ाईयों* का भी कई बार हमें पता ही नहीं चलता। वह हमें सीधापन ही लगता है।

दादाश्री : उसका पता नहीं चलता। वह तो अंदर गहराई में उतरना पड़ता है। *आड़ाईयों* को देखने के लिए निष्पक्षपाती रुख रखना पड़ता है।

कोई आपसे कहे कि, '*आड़ाई* क्यों कर रहे हो?' तब आप कहते हो, 'देखो न, मूर्ख है न! मैं *आड़ाई* कर रहा हूँ या वह कर रहा है?' सामनेवाला बल्कि हमें अपनी *आड़ाईयों* की जाँच करने के लिए कह रहा है, तो अंदर जाँच करो। ये तो ऐसा है आप अपनी *आड़ाईयों* की जाँच तो नहीं करते, बल्कि आप उसमें *आड़ाईयाँ* ढूँढते हो। मुझे कोई क्यों नहीं कहता कि आप *आड़ाई* क्यों कर रहे हो?! अब यदि मुझमें *आड़ाईयाँ* देखे, तो वह कहे बगैर रहेगा ही नहीं। जगत् तो जैसा देखता है, वैसा ही कहता है।

आड़ाई छूटते ही...

ये लोग तो कहते हैं, 'तेरी बनाई हुई चाय नहीं पीऊँगा।' ओहोहो, तो फिर किसकी बनाई हुई चाय पीएगा अब? यानी वह जो पति है, वह धमकाता है पत्नी को। क्या कहेगा? 'तूने चाय बिगाड़ दी न, इसलिए अब कभी तेरे हाथ की चाय नहीं पीऊँगा।' धमकाता है बेचारी को, *आड़ाई* करता है। कितनी *आड़ाईयाँ!* उस वजह से दुःख पड़ते हैं न!

यानी *आड़ाईयाँ* ही बाधक हैं। मोह तो बिल्कुल भी बाधक नहीं है। वह तो दो बार मोह रहेगा, और फिर तीसरी बार भीतर से ऊब जाएगा।

अच्छा भोजन हो, लेकिन मुँह फुलाकर खिलाएँ तो? अच्छा नहीं लगेगा न? 'रहने दे तेरा खाना' ऐसा कहेगा न? अरे, मुँह चढ़ाकर तो अगर हीरे भी दिए जाएँ तो अच्छा नहीं लगेगा। इन साहब का मुँह चढ़ा हुआ हो और हीरा दे जाएँ तो आप क्या कहोगे? 'लो आपका हीरा अपने घर ले जाओ।' ऐसा कहोगे या नहीं? तो हीरे की कीमत अधिक है या मुँह चढ़ाने की? अपने यहाँ लोग हीरा नहीं लेते। जबकि फॉरेन में तो विलियम का मुँह चढ़ा हुआ हो, फिर भी लेडी खा लेती है। और

अपने यहाँ तो क्लेश खड़ा हो जाता है। फिर भी ये स्त्रियाँ ऐसा नहीं करतीं। ये तो आर्य संस्कारी स्त्रियाँ हैं! फॉरेन में ऐसा चल जाता है। फॉरेन में तो मुँह चढ़ाकर हीरे दिए जाएँ न, तो कहेगी, 'अरे भले ही चीखे-चिल्लाए। हमें तो हीरे मिल गए न!' और यहाँ पर ऐसा नहीं चलता। ये तो आर्य सन्नारियाँ कहलाती हैं। आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : इसलिए हम यदि घर पर मुँह न चढ़ाएँ तो वह हीरे से भी ज़्यादा है न?

छोटा बच्चा भी रुपये नहीं छूने देता। कहेगा, 'ये तो मेरे रुपये हैं, लाओ।' एक चीज़ में सरल होता है, तब दूसरी जगह पर *आड़ाई* रहती है। जब तक वह *आड़ाई* नहीं निकले, तब तक छूटा नहीं जा सकता। *आड़ाई* जाए तो भगवान बन जाए, ऐसा पद है, यह जगह ऐसी है। 'दादा' *आड़ाई*-शून्य हो चुके हैं!

हर एक व्यक्ति की *आड़ाई* अलग-अलग प्रकार की होती है। आप जिसे *आड़ाई* कहते हों, आपकी वह *आड़ाई* आपको नहीं दिखाई देती। आपकी *आड़ाई* आपको दिखाई दे तब तो आप भगवान बन जाओगे। जब खुद को खुद की *आड़ाई* दिखने लगे, वह भगवान बन जाता है। अभी तक आपकी *आड़ाई* आपको कहाँ दिखाई देती हैं? वर्ना आप भगवान बन जाओगे।

बाधक मात्र आड़ाईयाँ ही

इसलिए सीधा होने की ज़रूरत है। देखो मैं सीधा हो गया हूँ, तो है कोई झंझट? कितने ही जन्मों से मार खा-खाकर मैं सीधा हो गया हूँ। कोई *आड़ाई* ही नहीं है न अब। आप कहो कि, 'नीचे चलिए' तो नीचे चले जाते हैं। हममें *आड़ाई* नाम मात्र को भी नहीं है। फिर भी अगर कोई कहे कि, 'आप ऐसे हो, वैसे हो।' लेकिन वह तो 'जो' ऐसा है, उसी को वे कहते हैं। मैं उसे गलत भी नहीं कहूँगा कि तू गलत है

और वह किसे कह रहा है वह भी मैं समझ जाऊँगा। वह मुझे नहीं कह रहा है, लेकिन मेरे 'पड़ोसी' को कह रहा है।

प्रश्नकर्ता : आपके पड़ोसी कौन?

दादाश्री : यह 'ए. एम. पटेल' इज़ द फर्स्ट नेबर। 'ही इज़ कॉन्ट्रैक्टर ऑल्सो, इन्कमटैक्स पेयर ऑल्सो!' वह उसी को कह रहा है।

लोग कहेंगे, 'संसार में रहते हुए ज्ञान नहीं हो सकता।' अरे, 'इन्कमटैक्स पेयर' है और कॉन्ट्रैक्ट का काम करते हैं, फिर भी यह 'ज्ञान' हुआ! यह देखो तो सही! इसलिए इस संसार में बाधक क्या है? तेरी *आड़ाईयाँ* ही बाधक हैं। मैंने तो अपने में बहुत *आड़ाईयाँ* देखी थीं और वे सभी *आड़ाईयाँ* जब खत्म हो गईं, तब मैं 'ज्ञानी' बन गया। अंदर *आड़ाईयाँ* नहीं रहें तो जानना कि ज्ञानी बन गए।

आड़ाई का स्वरूप

प्रश्नकर्ता : *आड़ाई* का स्वरूप किसे समझें?

दादाश्री : दिल को ठंडक हो, ऐसी बात हो फिर भी स्वीकार नहीं करता, खुद के ही मत से चलता है। हम किसी से कुछ भी नहीं कहते, दबाव नहीं डालते, फिर भी यदि किसी से कुछ कहें और यदि कभी वह नहीं माने तो उसे *आड़ाई* ही कहेंगे न? खुद के मत से ही चलना है न? या 'ज्ञानी' की आज्ञा से चलना है?

प्रश्नकर्ता : वास्तव में 'ज्ञानी' की आज्ञा से ही चलना है।

दादाश्री : सब *आड़ाईयाँ* ही हैं। सभी जगह, जहाँ देखो वहाँ *आड़ाई* से ही सबकुछ खड़ा है न! सिर्फ हममें ही *आड़ाई* नहीं होती। हम *आड़ाई*-शून्य हो चुके हैं। कोई दबाव डाले कि, 'आपको यह काम करना ही पड़ेगा। नहीं तो हम सब उपवास करेंगे।' दु:खी हो रहे हों तो हम कहेंगे कि, 'ले भाई, कर लेते हैं। लेकिन तुम उपवास मत करना।'

प्रश्नकर्ता : वह *आड़ाई* नहीं कहलाएगी?

दादाश्री : नहीं। *आड़ाई* इसे कहेंगे कि 'हम उपवास करेंगे।' यहीं पर पूरा जगत् फँसा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : और जब आप कहें, तब उस समय वैसा नहीं करना, उसे *आड़ाई* कहेंगे?

दादाश्री : *आड़ाई* ही कहेंगे न! तब और क्या? 'दादाजी' भला ऐसा कभी कहेंगे कि ऐसे कर लाओ? कुछ अपने हित का होगा तभी कहेंगे न! इसलिए वहाँ पर *आड़ाई* नहीं करनी चाहिए।

समझने से सरलता

आपने *आड़ाई* देखी है किसी में? लोगों में वह *आड़ाई* होती है, ऐसा देखा है?

प्रश्नकर्ता : मुझमें खुद में ही थी न, दादा। अत्यंत टेढ़ा था मैं।

दादाश्री : ऐसा? जो टेढ़ा था, उसे भी 'खुद' जानता है! क्योंकि जाननेवाला अलग है न! या फिर जो टेढ़ा है वही जाननेवाला है? नहीं, जो टेढ़ा है वह जाननेवाला नहीं है। इसमें जाननेवाला अलग है, जाननेवाला 'खुद' है। फिर आपकी सारी *आड़ाईयाँ* चली गईं, नहीं?

प्रश्नकर्ता : अभी भी हैं दादा।

दादाश्री : तो सीधा होना पड़ेगा। *आड़ाई* तो नहीं चलेगी। यदि अपने इस 'ज्ञान' से सीधे नहीं होओगे, तो लोग मार-पीटकर सीधा कर देंगे। इसके बजाय आप समझदारी से ही सीधे हो जाओ, तो फिर झंझट ही खत्म हो जाएगा न! जब दखलंदाज़ी करते हैं न, तो हमेशा ही धाड़ से लगती है। यानी कि वह उसे सीधा ही करती जाती है। दखलंदाज़ी ही सीधा करती है। उस *आड़ाई* के सभी सींग यहाँ पर टूट जाएँगे, तो सब ठीक हो जाएगा! वे सभी *आड़ाईयाँ* पाशवता जैसी होती हैं। दो भले लोग कहें कि, 'अरे भाई, हमारी बात मान ले न!' तब वह क्या कहेगा? 'नहीं, मैं यह नहीं मान सकता।' वह अपनी *आड़ाई* हमारे सामने खोल देता है। वह *आड़ाई* जाएगी, तब मोक्ष होगा।

मोक्षमार्ग का राहखर्च

हमें यदि कोई कहे, 'दादा, इन सब के पैर छुइए।' तो सभी के पाँच-पाँच बार पैर छू लूँ। हम तो किसी के भी पैर छू लें। जिस तरीके से पैर छूने हो न, वह तरीका हमारे पास है। एक तो आत्मा के पैर छूना और उस व्यक्ति के भी पैर छूना, दोनों ही तरीके हमारे पास हैं। वे कहें, 'आत्मा के पैर मत छूना, व्यक्ति के पैर छूओ।' तो व्यक्ति के भी पैर छू लूँगा। अतः नम्रता होनी चाहिए। बिल्कुल नम्र, इस तरह पानी में घुल जाए, तो उसका कल्याण हो जाएगा और जब तक डली अंदर है, तब तक घुला नहीं है, तब तक चक्कर लगाता रहेगा।

जैसे-जैसे 'बड़े व्यक्ति' के रूप में स्थापना होती है, वैसे-वैसे अधिक नम्र होता जाता है, अकड़ नहीं रहती। अकड़ तो हल्के इंसानों में होती है। यह 'ज्ञान' मिलने के बाद अकड़ किसे रहती है? हल्के इंसानों को! वर्ना क्या अकड़ रहती होगी?

फिर, सही बात हो तो तुरंत मान जाता है, उसे सरल कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यों तो, कोई कहे और हम मान लें न, तो उसमें कई बार हम फँस भी सकते हैं।

दादाश्री : गच्चा खाना अच्छा है। ऐसा है न, एक संत ने कहा है कि, 'मैं मनुष्य जाति पर विश्वास रखता हूँ।' तब कोई कहे, 'यदि कोई आपको ठग लेगा तो?' तब उन्होंने कहा, 'एक ठगेगा, दो ठगेंगे, लेकिन एक दिन मुझे ऐसा व्यक्ति मिल जाएगा कि मेरा काम हो जाएगा।' अर्थात् वे क्या कहते हैं? धोखा खाते-खाते काम अच्छा होगा। और जो ठगे जाने के लिए नहीं रुके वे तो अगर भटक-भटककर मर जाएँगे, तो भी ठिकाना नहीं पड़ेगा क्योंकि विश्वास ही नहीं बैठेगा न! जो शंकाशील रहेंगे, उन्हें कब किनारा मिलेगा? आपको समझ में आती है यह 'थ्योरी'?

सरलता अर्थात् किसी के कहते ही तुरंत मान ले, भले ही ठगा जाए। एक ठगेगा, दो ठगेंगे, पाँच ठगेंगे, लेकिन फिर सही इंसान मिल जाएगा उसे! वर्ना सही इंसान मिलेगा ही नहीं न! 'सिस्टम' अच्छा है

न? ठगे जाते हैं, वह तो अगर अपने प्रारब्ध में लिखा होगा तो कोई ठगेगा, वर्ना कैसे ठग सकता है? इस प्रकार धोखा खाते-खाते आगे जाओगे तो कोई सच्चा इंसान मिल आएगा।

सरल किसे कहते हैं? कि 'यह गाड़ी यहाँ से अहमदाबाद जा रही है' तो वह बैठ जाता है। उसे सरल कहते हैं लेकिन यदि वह कहने लगे कि 'उसका क्या प्रमाण है? चलो कहीं ओर पूछताछ करें तो?' उससे पहले तो गाड़ी चली जाती है। गाड़ी चली जाएगी या नहीं चली जाएगी? ऐसी तो कितनी ही गाड़ियाँ जा चुकी हैं और भाई वहीं के वहीं!

सरल अर्थात् क्या? खेत से भिंडी लाए और तुरंत छोंक दी, तो दस ही मिनट में पक जाती है। और असरल यानी क्या? कि फ्रिज में रखी हुई भिंडी। भिंडी दो दिन तक फ्रिज में रखें तो क्या होगा? फिर वह भिंडी असरल कहलाएगी। यानी भगवान ने क्या कहा? सरल का काम होगा। सरल का मोक्ष है। असरल का वहाँ पर काम नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इससे तो ऐसा लगता है कि चाहे किसी भी जगह पर जाएँ वहाँ पर सबकुछ होता है, लेकिन सरलता का अभाव रहता है।

दादाश्री : है ही नहीं सरलता! बस इतनी चीज़ कहीं भी नहीं दिखाई देती, सहज क्षमा। आप उसे कुछ कहकर आ जाओ तो वह *नोंध* (अत्यंत राग अथवा द्वेष सहित लंबे समय तक याद रखना, नोट करना) रखे बगैर नहीं रहता। वह *नोंध* करके रखता है, छः महीने तक नहीं भूलता। *नोंध* नहीं रखना, उसी को सहज क्षमा कहते हैं। फिर और क्या होता है? कठोरता होती है। हर एक प्रकार की कठोरता होती है। फिर, आग्रह सभी प्रकार के होते हैं। और फिर उसमें सरलता नहीं होती, यानी कि आप मोड़ने जाओ तो वह मुड़ेगा नहीं। नम्रता तो होती ही नहीं है, लेकिन सरलता भी नहीं होती। 'टॉप' की सरलता चाहिए। फिर 'टॉप' की नम्रता चाहिए। नम्र अर्थात् क्या? कि सामने वाला एक हाथ झुके, उससे पहले वह पूरा ही झुक जाए। कोई अकड़े तो उसके सामने भी वह झुक जाए। वर्ना, मनुष्य का स्वभाव कैसा है? सामने वाला अकड़े,

तो वह भी उसके सामने अकड़ता है, लेकिन अगर वहाँ पर भी झुके तो वह मोक्ष में जाने की निशानी है। फिर, निर्लोभता होती है। लोभ ने ही पकड़कर रखा हुआ है न लोगों को! इसलिए भगवान ने कहा है कि 'यात्रा कर आना, ऐसा करके आना और पैसे खर्च कर देना।' यानी रुपये खर्च हो तब वह लोभ की गाँठ कम हो जाएगी। नहीं तो निन्यानवे के धक्के की तरह लोभ बढ़ता जाएगा। अर्थात् ऐसा भाव रहना चाहिए कि 'इस दुनिया में किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है।' अर्थात् ये सभी गुण आ जाने चाहिए। जब वे सारे भूत निकल जाएँगे और सरल बन जाओगे तब मोक्ष होगा।

बचपन की आड़ाईयाँ

हमारे समय में कहते थे कि,

'दुनिया दिवानी कहेवाशे रे, भूंडी भींतोमां भटकाशे।
पापे य एनुं ज्यारे प्रगट थाशे, त्यारे भूवा-जति घेर जाशे।'

जब उसका पाप प्रकट होगा, तब झाड़-फूंक करने वाले और यति के वहाँ पर जाकर धागे वगैरह बंधवाएगा। यानी जब उसका पाप प्रकट होता है, उसके बाद वह झाड़-फूंक करने वाले को ढूँढता है, यति ढूँढता है। ऐसा किसी कवि ने कहा है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह पद कब पढ़ा था आपने?

दादाश्री : वह तो पचपन साल पहले की बात है। वह बहुत पुरानी नहीं है। दो-पाँच हज़ार साल पहले की बात नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह सब आपको याद कैसे रहता है?

दादाश्री : हमें कुछ भी याद नहीं रहता। आज सोमवार है या मंगलवार, वह भी हमें याद नहीं आता न!

प्रश्नकर्ता : तो यह सब कहाँ से निकला, दादा?

दादाश्री : यह तो हमें यों दिखाई देता है! इस ओर घूमे कि तुरंत

वह दिखाई देता है (दर्शन में आता है), इसलिए हम कह देते हैं। माफिक आए ऐसी चीज़ दिखाई दे, तो कह देते हैं। हम कहाँ ऐसा याद रखें? हमें ठेठ तक का, बचपन में था तब तक का, सब दिखता ही रहता है, सभी पर्याय दिखाई देते हैं। ऐसा था... ऐसा था, फिर ऐसा था। स्कूल में हम, घंटी बजने के बाद जाते थे, वह सबकुछ हमें दिखाई देता है। मास्टर साहब चिढ़ते रहते थे। कुछ कह नहीं सकते थे और चिढ़ते रहते थे।

प्रश्नकर्ता : आप घंटी बजने के बाद क्यों जाते थे?

दादाश्री : ऐसा रौब था! मन में ऐसी खुमारी थी। लेकिन सीधे नहीं हुए तभी यह दशा हुई न! सीधा इंसान तो घंटी बजने से पहले ही जाकर बैठ जाता है।

प्रश्नकर्ता : रौब मारना उल्टा रास्ता कहलाता है?

दादाश्री : वह तो उल्टा रास्ता ही है न! घंटी बजने के बाद भाई साहब आते हैं, मास्टर साहब पहले ही आ चुके होते थे। मास्टर साहब देर से आएँ तो चलता है, लेकिन विद्यार्थी को तो नियम से घंटी बजने से पहले पहुँच जाना चाहिए न! लेकिन ऐसी *आड़ाई* थी। कहता है, 'मास्टर साहब अपने मन में क्या समझते हैं?' ले! अरे, तुझे पढ़ने जाना है या लड़ाई का मोर्चा लगाना *(बाखड़ी बाँधना)* है? तब कहता है, 'नहीं, पहले मोर्चा लगाना है।' लड़ाई का मोर्चा लगाना कहते हैं इसे। आपने *बाखड़ी* शब्द सुना है? आपने भी सुना है? तब ठीक है।

प्रश्नकर्ता : तो मास्टर साहब आपको कुछ कहते नहीं थे?

दादाश्री : कहते तो थे, लेकिन ज़्यादा कुछ नहीं कह पाते थे। उन्हें डर लगता था कि बाहर जाकर पत्थर मारेगा, सिर फोड़ देगा।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आप इतने शरारती थे?

दादाश्री : हाँ, शरारती थे। सारा माल ही शरारती था, टेढ़ा माल।

प्रश्नकर्ता : और फिर भी यह 'ज्ञान' (प्रकट) हो गया, यह तो बहुत बड़ी बात है।

दादाश्री : 'ज्ञान' प्रकट हो गया क्योंकि भीतर से शुद्ध था न! ममता नहीं थी। सारी परेशानी ही इस अहंकार की थी लेकिन ममता नहीं थी इसलिए यह दशा मिली! थोड़ी भी ममता नहीं, लालच नहीं लेकिन किसी ने मेरा नाम लिया कि उसकी आ बनी। इसलिए कई लोग तो मेरी पीठ पीछे ऐसा कहते थे, 'इसे बहुत घमंड है।' और कई लोग कहते थे कि, 'अरे! जाने दो न, तुंडमिजाज़ी है।' यानी मेरे लिए किन-किन विशेषणों का उपयोग होता था, वह सब बाद में पता लगाता था। लेकिन मुझमें ममता नहीं थी। वह मुख्य गुण अच्छा था, उसी का प्रताप है यह! और ममतावाला तो सौ गुना सयाना हो तो भी संसार में ही गहरा उतरा रहता है। हम ममता रहित थे, इसलिए वास्तव में मज़ा आया। ममता ही संसार है, अहंकार संसार नहीं है।

और तब मुझे भी लगा कि अब सीधा हो गया मैं। अब किसी को मुझे सीधा नहीं करना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : कैसे सीधे हो गए, दादाजी?

दादाश्री : लोगों ने मार मारकर, उल्टा-सुल्टा करके, इधर-उधर से शिकंजे में लेकर सीधा कर दिया।

प्रश्नकर्ता : वह पिछले जन्मों से ही शुद्ध होता आ रहा था न?

दादाश्री : कितने ही जन्मों से सीधे होते-होते आए हैं, तब जाकर इस जन्म में पूरे सीधे हो गए। बाकी, हिन्दुस्तान का माल सीधा नहीं होता, टेढ़ा ही होता है। कुछ का तो जन्म लेते समय भी सिर नीचा होने के बदले ऊपर होता है और कुछ तो गर्भ में ही टेढ़े हो जाते हैं, तो वह अपनी माँ को भी मार देता है, खुद भी मरता है और सभी को मारता है और डॉक्टर का भी फज़ीता करता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें उसकी वैसा करने की इच्छा नहीं होती। वह तो हो जाता है न?

दादाश्री : मूल से ही टेढ़ा स्वभाव, अतः जहाँ जाए वहाँ टेढ़ा हो

जाता है। गर्भ में भी टेढ़ा। वह जहाँ जाए वहाँ टेढ़ा! और जो सीधा होता है, वह जहाँ जाए वहाँ सीधा चलता है।

प्रश्नकर्ता : हिन्दुस्तान के लोगों में *आड़ाई* है और मोक्ष के अधिकारी भी वे ही हैं।

दादाश्री : ऐसा है न, जो टेढ़े हैं, वही मोक्ष में जाते हैं और *आड़ाई* तो, समझदार करता है या नासमझ? समझदार ही करता है न, *आड़ाईयाँ ?*

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह उल्टी समझ है न, दादा?

दादाश्री : वह तो इसलिए कि समझ में रुकावट है! और वहाँ फॉरेन में *आड़ाई* नहीं है। उनमें तो जैसा होता है, सीधे वैसी ही बात।

प्रश्नकर्ता : 'समझ में रुकावट है', वह स्पष्ट कीजिए न, दादा।

दादाश्री : अपनी बढ़ी हुई समझ रुक गई है। अपनी समझ हेल्प नहीं करे तो समझ उल्टे रास्ते चलेगी।

आड़ाई जाए तो हल आ जाए। वास्तव में *आड़ाई* को अहंकार माना जाता है। वह अहंकार की ही शाखा है।

अहंकार के आधार पर

आड़ाई पसंद है आपको?

प्रश्नकर्ता : पसंद तो नहीं है, लेकिन जाती ही नहीं।

दादाश्री : वह तो मैं निकाल दूँगा। *आड़ाईयाँ* खड़ी होती हैं, जाती नहीं हैं, उसका आपको भान होता है न? वही जागृति है। वर्ना ऐसा भान भी नहीं हो पाता न! *'आड़ाईयाँ खड़ी होती हैं',* ऐसा भान ही कहाँ है?! किसी को यदि हम कहें कि 'ऐसी *आड़ाई* करते हो?' तब वह कहेगा, 'आप ही टेढ़े हो।' पलटकर तुरंत ऐसा कहेगा या नहीं? 'बॉस' ऐसा कहे, 'आप *आड़ाई* करते हो', तो मुँह पर जवाब नहीं देता, 'बॉस' है इसलिए। लेकिन अंदर ही अंदर मन में कहे बगैर नहीं रहता। क्योंकि

अहंकार क्या नहीं कर सकता? अहंकार की वजह से ही यह सब है। अहंकार के आधार पर खड़ा है। अहंकार विलय हो जाए तो खुद परमात्मा ही है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वहाँ तो हम कितनी ही बार ऐसा कह देते हैं कि 'यह गलत है'।

दादाश्री : हाँ, कह देते हैं। वह तो अनादि की आदत है न, अपनी! वह हमें पता भी चलता है कि यह गलत हो गया। ऐसा कहने के बाद फिर पता चलता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : लेकिन अनादि की आदत है। 'एक्शन-रिएक्शन' का नियम है न! यानी कि एकदम से कुछ बंद नहीं हो जाएगा।

'नहीं हो पा रहा' ऐसा नहीं कहना चाहिए

अब आपको ऐसा नहीं कहना है कि '*आड़ाई* जा नहीं रही है'। क्योंकि जब मैं लोगों से पूछता हूँ कि, 'क्या हो रहा है?' तब वे कहते हैं, 'साहब, जानते सबकुछ हैं, लेकिन हो नहीं पाता।' अरे, किस तरह के लोग हो? आत्मा की ऐसी दशा कर डाली?! मैं ऐसा कहता हूँ कि 'आत्मा तो, जैसी चिंतना (सोचना, चिंतन करने की क्रिया) करता है, वैसा बन जाता है,' फिर भी आप ऐसा कहते हो? 'जानता सभी कुछ हूँ, लेकिन हो नहीं पाता' कहते हो? तो फिर आत्मा वैसा ही हो जाएगा, पंगु हो जाएगा। ऐसा नहीं कहना चाहिए कि 'जानता सबकुछ हूँ लेकिन हो नहीं पाता।' 'हो नहीं पाता' ऐसा तो कहना ही नहीं चाहिए। हाँ, नहीं हो रहा है तो उसे भी जानते रहो लेकिन उस वजह से ऐसा नहीं कहना चाहिए कि 'नहीं हो रहा है।' मुझे कभी बुखार आ जाए, तब कोई पूछे कि, 'आपको बुखार आ गया है?' तब मैं कहता हूँ कि, 'हाँ भाई, ए. एम. पटेल को बुखार आया है, वह मैं जानता हूँ।' 'मुझे बुखार आ गया' यदि ऐसा कहूँ तो मुझसे चिपक जाएगा। जैसी कल्पना करता है, तुरंत वैसा ही बन जाता है इसलिए मैं वैसा नहीं कहता हूँ।

आत्मा का मुख्य स्वभाव है, जैसी चिंतना करे वैसा बन जाता है। आप कहो कि 'मैं भगवान हूँ', तो वैसे बन जाओगे और आप कहो कि, 'मैं नालायक हूँ' तो वैसे बन जाओगे। कहते ही उस रूप बन जाओगे। भगवान बनना चाहिए ऐसा कहो, तो उस घड़ी भगवान बन भी जाओगे, लेकिन अगर कहोगे कि 'अब क्या करूँ?' यानी आपको आता नहीं है, इसलिए वापस जैसे थे वैसे के वैसे मूर्ख बनकर खड़े रहोगे। आना तो चाहिए न? आपको जो पद प्राप्त हुआ है वहाँ पर 'मुझे क्या करना है' वह आना चाहिए न? नहीं तो वापस जैसे थे, वैसे के वैसे बन जाओगे। यानी आत्मा जैसी चिंतना करे, वैसा ही बन जाता है, ऐसा होने से अनेक प्रकार के रूप और रूपांतर सब होते ही रहते हैं। और जो चिंतना करता है, वह चिंतना भी स्वतंत्र रूप से नहीं करता। आसपास के दबाव के कारण वैसी चिंतना करता है।

यह ज्ञान ही वर्तना में

प्रश्नकर्ता : तो *आड़ाई* का रूटकॉज़ क्या है?

दादाश्री : अहंकार।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे जो कॉज़ेज़ किए हुए हैं, उनका इफेक्ट है न?

दादाश्री : यह इफेक्ट है, लेकिन कॉज़ेज़ किए थे तभी न! कॉज़ेज़ कैसे डलते हैं? पहले *आड़ाई* का ज्ञान होता है कि टेढ़ा हो जाऊँगा न, तो सब ठिकाने पर आ जाएँगे। ऐसा उसे ज्ञान होता है। 'घर के सभी लोगों को ठिकाने पर लाने के लिए *आड़ाई* करूँगा, वास्तव में *आड़ाई* काम में आती है।' ऐसा ज्ञान होता है उसे। फिर श्रद्धा बैठती है उस पर। वह श्रद्धा उस ज्ञान को स्ट्रोंग बनाती है। अगर ज्ञान श्रद्धारहित होगा न, तब तो खत्म हो जाएगा लेकिन श्रद्धा बैठ गई है इसलिए फिर श्रद्धा उसे मज़बूत करती है और फिर वह *आड़ाई* चारित्र में आती है और देखो फिर जो मज़ा आता है!

आड़ाईयाँ हर एक की अलग

प्रश्नकर्ता : सभी की एक जैसी *आड़ाईयाँ* नहीं होतीं न?

दादाश्री : *आड़ाईयाँ* अलग-अलग प्रकार की होती हैं। तो क्या सब्ज़ियाँ भी एक ही प्रकार की होती हैं सारी? सब्ज़ियाँ भी अलग-अलग प्रकार की, *आड़ाई* भी अलग-अलग प्रकार की, कढ़ी का स्वाद भी अलग-अलग प्रकार का, हाइट भी सभी की अलग-अलग प्रकार की, रंग भी सभी के अलग प्रकार के। सबकुछ अलग-अलग प्रकार का ही है न!

यह 'ज्ञान' मिलने पर *आड़ाई* चली जाती है और किसी में *आड़ाई* रह गई हो तो वह दिखाई देती है न! उनकी खुद की इच्छा *आड़ाई* को संभाले रखने की नहीं होती। संभाले रखने की इच्छा नहीं होती है कि लाओ बैंक के लॉकर में रख आएँ, ऐसा नहीं होता।

वे आड़ाईयाँ, अंत वाली

प्रश्नकर्ता : हम तय करते हैं फिर भी एडजस्ट नहीं हो पाते, उसके पीछे क्या कारण है? या तो हमारी *आड़ाई* है या फिर अपना 'व्यवस्थित' ही ऐसा है, इसलिए ये प्रयत्न सफल नहीं होते?

दादाश्री : नहीं, *आड़ाईयाँ* पड़ी हैं इसलिए। सभी *आड़ाईयाँ* ही हैं। जिसकी *आड़ाईयाँ* गई, फिर उसकी सभी गुत्थियाँ गई। आपकी *आड़ाईयाँ* जाने लगी हैं, वे एक दिन खत्म हो जाएँगी क्योंकि टंकी का नल खुला छोड़ दिया है और नया भराव बंद है इसलिए टंकी एक दिन खाली हो जाएगी। अब *आड़ाईयों* के कारखाने में नया उत्पादन नहीं होता और पुरानी *आड़ाईयाँ* निकलती रहती हैं। एक *आड़ाई* आती है और उसका अंत आता है। फिर वापस दूसरी *आड़ाई* आती है। वह गई कि वापस फिर तीसरी *आड़ाई* आती है। जितनी *आड़ाईयाँ* आएँगी, उतनी फिर चली जाएँगी।

सरल फिर भी सूक्ष्म आड़ाईयाँ

प्रश्नकर्ता : आप्तसूत्र में एक वाक्य आता है कि, 'ज्ञान होने से पहले हमने *आड़ाईयों* का पूरा समुद्र पार किया। यानी एक-एक *आड़ाई* को हमने खत्म किया, तब यह ज्ञान प्रकट हुआ।'

दादाश्री : हाँ, बहुत सारी *आड़ाईयाँ* थीं। लोगों को दिखती नहीं थीं, लेकिन हमें लगता था कि अंदर *आड़ाईयाँ* हैं। जबकि लोगों को तो सरल लगता था। वे छोटी-छोटी *आड़ाईयाँ,* सूक्ष्म *आड़ाईयाँ,* अहंकारी *आड़ाईयाँ* थीं। देह की *आड़ाईयाँ* नहीं थीं, रूठ जाएँ ऐसी नहीं थीं। अहंकार की *आड़ाई* ! मुझे खुद को पता चलता था कि इस व्यक्ति के साथ उल्टा चला है। उस व्यक्ति को पता नहीं चलता था।

प्रश्नकर्ता : वह *आड़ाई* में आता है?

दादाश्री : तो फिर और क्या? सामने वाले की सही बात हो और हम सबकुछ उल्टा करें तो वह अहंकार, पागलपन ही कहलाएगा न!

प्रश्नकर्ता : तो जो *आड़ाई* है, वह अहंकार की ही विकृति है न?

दादाश्री : अहंकार ही। बुद्धि को कोई लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह अहंकार की ही विकृति है न?

दादाश्री : विकृति ही। विकृति यानी कैसी? लोग पीछे से कहेंगे, 'जाने दो न, ज़रा क्रेक है, उसका नाम ही मत लेना।' अरे, इंजन चल रहा है और हेड कैसे क्रेक हो गया?

वहाँ पर तो हमें सावधान रहना चाहिए

प्रश्नकर्ता : कई ऐसे भी होते हैं कि हम ज़रा भी बात करें कि 'भाई, इसका ऐसा....' तो काटने दौड़ते हैं!

दादाश्री : हाँ, होते हैं। लेकिन वह तो हमें बात करने से पहले ही सावधान हो जाना चाहिए। नहीं तो क्या से क्या हो जाएगा! झगड़ा हो जाएगा। क्योंकि हम जो कहना चाहते हैं, वह उस तक पहुँचता नहीं है। इसलिए वह इसे उल्टा समझता है। अपनी भली *लागणी* (लगाव, भावुकतावाला प्रेम) को वह समझ नहीं पाता। उसे उल्टा समझता है। इसलिए फिर वह सामने बोलता है। तब फिर हमें समझ जाना चाहिए कि मेरी बात इस व्यक्ति तक पहुँच नहीं रही है। मैं जो फोन कर रहा

हूँ, वह बात इस भाई तक पहुँच नहीं रही है इसलिए फिर हमें आगे बात करनी बंद कर देनी चाहिए और उसकी बात सुनते रहना चाहिए, लेकिन अपनी बात मत पहुँचाना। वह आपके व्यू पोइन्ट को समझ नहीं रहा है।

उसे 'ज्ञानी' ही सीधा करें

प्रश्नकर्ता : कोई *आड़ाई* करे वहाँ पर क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ऐसी हिंमत लोगों में होती नहीं है न! ऐसी स्थिरतावाला काम तो हमारा है। हमारे पास तो फिर कभी *आड़ाई* करेगा ही नहीं न! वह जब *आड़ाई* करता है, तब उस दिन उसे कुछ भी नहीं मिलता। वह हिसाब निकालकर देख लेता है, तब फिर वापस *आड़ाई* करता ही नहीं है हमारे सामने। यह तो *आड़ाई* को उत्तेजन मिला है न, इसलिए *आड़ाई* अधिक स्ट्रोंग हुई है। ये लोग तो बेचारे कमज़ोर इंसान और उसमें कोई *आड़ाई* करे तो वह कमज़ोर इंसान क्या कहेगा? 'जाने दो न उसे!' यानी यह प्रजा तो नाजुक प्रजा है न, इसलिए *आड़ाई* को उत्तेजन देती है। मेरे पास आए तो पता चल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अब यह *आड़ाई,* वह पूर्वजन्म का माल भरकर लाया है, ऐसा है क्या?

दादाश्री : वह सब पूर्वजन्म का ही है न! यह कुछ भी इस जन्म का नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उत्तेजन मिलने से यह मज़बूत होती है?

दादाश्री : हाँ, मज़बूत होती है न, फिर। लेकिन निःस्पृह के आगे किसी की नहीं चलती।

सरलता से राजीपा प्राप्त

'ज्ञानी' की निःस्पृहता के आगे कोई नहीं टिक सकता। जिसे 'मेरा खुद का-पराया' नहीं रहा है, वह चाहे सो करे। उनका *राजीपा* (गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता) प्राप्त कर लें तो ब्रह्मांड खुश हो जाएगा लेकिन उनका *राजीपा* जल्दी मिल पाए, ऐसा नहीं है। क्योंकि 'ज्ञानीपुरुष' अत्यंत

सरल हैं, इसलिए उनका *राजीपा* प्राप्त करना मुश्किल है। उनका एक घंटे का *राजीपा* तो अपना काम ही बना दे। मैं कहता हूँ न सभी से, मैंने सभी को गारन्टी दी है कि एक घंटे में मेरे जैसा पद दे सकता हूँ, जिसे चाहिए उसे, लेकिन ऐसी सरलता लानी मुश्किल है न!

ज्ञानीपुरुष अत्यंत सरल हैं, इसलिए *राजीपा* नहीं मिलता। यदि ज्ञानीपुरुष असरल होते न, तो *राजीपा* मिल जाता। जबकि ये तो अत्यंत सरल हैं। अब सरल को किस तरह खुश करें? खुद सरल हो जाएँगे तो वे खुश होंगे। हाँ, उस लेवल तक कोई नीचे उतरोगे तो खुश हो जाएँगे। नहीं तो कैसे खुश होंगे वे?! वर्ना ज्ञानीपुरुष का एक घंटे का *राजीपा* तो पूरे ब्रह्मांड का मालिक बना दे, इतना अधिक *राजीपा* होता है। ज्ञानीपुरुष, जिन्हें इस वर्ल्ड में कोई चीज़ नहीं चाहिए, वे क्या नहीं दे सकते? लेकिन वह *राजीपा* प्राप्त करना आसान नहीं है। उसके लिए तो सरल बनना पड़ेगा। ज्ञानीपुरुष तो सरल होते हैं, छोटा डेढ़ साल का बालक हो न, उससे भी अधिक सरल होते हैं। अब सरल के सामने हम असरल रहें तो फिर *राजीपा* कैसे मिलेगा? 'लेवल' चाहिए इसमें! आपको समझ में आया न यह सब?

नाटकीय अहंकार

प्रश्नकर्ता : आप्तसूत्र में है कि 'बहते हुए अहंकार में आपत्ति नहीं है, लेकिन अहंकार को थोड़ा भी पकड़ा तो वह *आड़ाई* कहलाती है।' अब वह बहता हुआ अहंकार कौन सा अहंकार है?

दादाश्री : इन स्त्रियों का अहंकार देखोगे, तो वह सारा बहता हुआ अहंकार है। 'अभी मैं कढ़ी बना रही हूँ, अभी यों सब्ज़ी बना दूँगी, ऐसा कर दूँगी', ऐसा सब बोलती है, वह सारा अहंकार है लेकिन वह बहता हुआ! और पुरुष तो अहंकार को पकड़कर रखते हैं। 'मैंने ऐसा कहा था और तूने ऐसा किया?' वह *आड़ाई* है।

प्रश्नकर्ता : यानी बहता हुआ अहंकार नाटकीय अहंकार कहलाता है?

दादाश्री : वह नाटकीय अहंकार ही है। बहते हुए अहंकार में

हर्ज नहीं है। पुरुष का बहता हुआ अहंकार हो तो भी हर्ज नहीं है। बहते हुए अहंकार को पकड़कर रखा, तो वह *आड़ाई* है।

वे आड़ाईयाँ 'जानने' से जाएँगी

प्रश्नकर्ता : खुद को पता चला कि मुझसे *आड़ाई* हुई है, अब उसमें वापस पलट जाना हो, तो किस तरह पलट सकता है?

दादाश्री : जो *आड़ाई* हुई, उसे जान लिया तो, उसी को वापस पलटना कहते हैं। *आड़ाई* को जानते समय ही वापस पलट जाता है। जब तक जानता नहीं है, तब तक वापस नहीं पलटता और अगर जान लिया तो वापस पलटेगा ही।

प्रश्नकर्ता : ऐसे वापस पलटने में, और कौन से एडजस्टमेन्ट लेने पड़ते हैं?

दादाश्री : और कुछ भी नहीं। वह तो अपने आप ही वापस पलट जाएगा। और जिन प्रयोगों की ज़रूरत है, उन सभी प्रयोगों सहित पलट जाता है, 'एडजस्टमेन्ट' प्रयोग होते हैं, उनके द्वारा। अगर अपना यह ज्ञान लिया हुआ हो तो *आड़ाई* को जानेगा। नहीं तो जानेगा ही नहीं न! और ये तो खुद अपने ही दोष देखते हैं।

प्रश्नकर्ता : *आड़ाई* को जानेगा तो तुरंत पलट जाएगा। अब उसे जाने किस तरह? *आड़ाई* को पहचाने किस तरह?

दादाश्री : तुरंत पहचान जाएगा। अपना यह ज्ञान लिया हुआ हो तो तुरंत पहचान जाएगा कि यह *आड़ाई* करना शुरू किया। व्यवहारिकता है या नहीं वह सब तुरंत पता चल जाएगा और व्यवहारिकता से बाहर जाने लगे तो वह भी पता चल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन खुद की *आड़ाई* उसे कैसे पता चलेगी?

दादाश्री : अपना ज्ञान होगा तो पता चलेगा, वर्ना पता नहीं चलेगा। और उसका पता चल भी जाए न, तो उसे फिर वापस ढँक देता है और *आड़ाई* में ही रहता है। अपने 'ज्ञान' के प्रताप से पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : 'ढँक देता है,' वह क्या है?

दादाश्री : उस पर ढँक देता है, वह 'डबल' *आड़ाई*।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उस *आड़ाई* को निकलने का स्कोप ही नहीं रहा न?

दादाश्री : बढ़ जाती है बल्कि।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अपना लक्ष्य तो *आड़ाई* को जड़ से खत्म करने का ही होता है न? तो वहाँ पर क्या करना चाहिए?

दादाश्री : तू अपने आप करने जाएगा, तो तुझसे नहीं हो पाएगा। मुझसे पूछना कि यह किस तरह से है, तो मैं बता दूँगा कि 'भाई, यह *आड़ाई* निकाल!'

प्रश्नकर्ता : एक तो *आड़ाई* नाम की चीज़ पैदा हो गई है, फिर उसे खुद ढँक दे तो वह डबल *आड़ाई*। तो फिर वह *आड़ाई* पूछने ही नहीं देगी न। तब वहाँ पर क्या करना चाहिए?

दादाश्री : लेकिन मेरे जैसा कहेगा न कि 'कहाँ चला? कौन से गाँव जाना है?' कई ऐसे हैं कि यदि उन्हें साफ-साफ कह दें तो टेढ़ा चलता है इसलिए मुझे घुमाकर कहना पड़ता है। अभी कच्चा है न सब। पटा-पटाकर काम लेना पड़ता है। बच्चों को तो समझाते रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : सभी बच्चे जैसे दिखते हैं और पटा-पटाकर आपको मोक्ष में ले जाना है। उस समय आपको कितनी अधिक करुणा रहती होगी!

दादाश्री : ये सब बच्चे जैसे दिखते हैं। बच्चा रूठ जाता है न, उस तरह से। लेकिन पटा-पटाकर आगे ले जाना है।

प्रश्नकर्ता : और आपको माफी माँगकर भी पटाते हुए देखा है।

दादाश्री : लेकिन इन्हें मोक्ष में ले जाना है, तो मुझे सावधानीपूर्वक चलना पड़ेगा न! उसका क्या जाता है? वह तो, एक व्यक्ति था, उसने कहा, 'दादाजी, लीजिए आपकी पुस्तकें और आपका ज्ञान आपको वापस दिया।' मैंने कहा, 'हाँ, बहुत अच्छा हुआ। तेरा उपकार मानता हूँ।' वर्ना रास्ते में पुस्तक फेंक दी होतीं। उसके बजाय यह तो घर आकर वापस देकर गया। उसे गुण नहीं मानना पड़ेगा? 'यह आपका ज्ञान वापस देता हूँ' कहता है। वह तो मैं ही ले सकता हूँ न चैन से!

प्रश्नकर्ता : चैन से, और फिर उपकारी दृष्टि से लेते हैं।

दादाश्री : हाँ, उसने रास्ते में नहीं फेंक दिया, यानी कि समझदार इंसान है! अच्छा किया।

प्रश्नकर्ता : यह तो, आप 'ज्ञानीपुरुष' हैं, तो सामने वाले की *आड़ाई* निकल सकती है।

दादाश्री : जल्दी निकल सकती है। वर्ना मार खा-खाकर, नुकसान उठाकर निकलती है। नुकसान उठाता रहता है और नुकसान के अनुभव होते जाते हैं न, वैसे-वैसे *आड़ाई* निकलती जाती हैं। नहीं तो कितने ही जन्म बीत जाते हैं।

ऐसा नहीं होना चाहिए

प्रश्नकर्ता : इन 'ज्ञान' लिए हुए महात्माओं को *आड़ाई* अधिक तकलीफ देती है या *अटकण* (जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे) अधिक तकलीफ देती है?

दादाश्री : *अटकणें! आड़ाईयाँ* तो बहुत तकलीफ नहीं देतीं। *आड़ाईयों* को तो वह समझता है कि *आड़ाई* गलत चीज़ है। यह 'ज्ञान' मिलने के बाद *आड़ाई* उसे मार खिलाती है, अर्थात् यह भरी हुई *आड़ाई* है, जो *पूरण* (चार्ज होना, भरना) की हुई है, उसका *गलन* (डिस्चार्ज होना) हो रहा है। वह मार खिलाती है अत: *आड़ाई* का शौक नहीं है लेकिन *अटकण* अधिक दु:ख देती है। हालांकि ये सभी दोष अभी भी

परेशान करते हैं, ज्ञान होने के बावजूद भी। ऐसा माल है, वह नहीं होना चाहिए लेकिन अब मार्केट में से भरकर लाया है, उसे मना नहीं किया जा सकता न हमसे? जो भरा हुआ माल है, जो *पूरण* हो चुका है उसका *गलन* होगा। नया *पूरण* नहीं होनेवाला। पुराना *गलन* हो रहा है। जो पुराना *पूरण* किया है वह *गलन* हो रहा है और वह अपना ही *पूरण* किया हुआ है इसलिए आपको 'देख' 'देख'कर और शुद्ध कर-करके 'लेट-गो' करना है, उसका शुद्धिकरण करके लेट-गो करना है। फिर वह चाहे जैसा भी हो। फिर भी ऐसा तो रहना ही चाहिए न कि किस प्रकार से यह सारा व्यवहार सही निकले?

'टेढ़ा', वह 'खुद' नहीं है

मैंने तो आप सभी को सीधा कर दिया है न! नहीं किया? क्योंकि टेढ़ा कौन था? 'चंदूभाई।' अब 'आप' तो चंदूभाई नहीं हो। तो 'आपको' कह देना है कि 'यह मैं नहीं हूँ। मैं तो यह शुद्धात्मा हूँ।' तो बोलो, आपकी *आड़ाई* चली गई न? आपको कैसा लगता है?

यानी इस अक्रम विज्ञान ने सभी गृहस्थियों को सीधा कर दिया। सीधा होने के लिए साधु बनने की ज़रूरत है। यदि गृहस्थी सीधे हो गए तो उनका निबेड़ा आ जाएगा और (क्रमिक मार्ग में) सीधे होने के लिए साधुपना करना है। खुद को पता चलता है कि 'ये 'चंदूभाई' टेढ़े हैं और 'मैं' सीधा।' यानी 'आप तो साधु हुए बगैर ही सीधे हो गए न! अक्रम विज्ञान तो अच्छा है न!'

फिर भी लोग हमें क्या कहते हैं? 'ये चंदूभाई जैसे थे वैसे के वैसे ही हैं' लेकिन हमें वह नहीं देखना है। वहाँ लोगों से हम क्या कहते हैं? 'आपको जो चंदूभाई दिखाई देते हैं, वे अलग हैं और मुझे जो दिखाई देते हैं वे अलग हैं।' लोग कमियाँ निकालते हैं या नहीं निकालते? कि ये लोग 'दादा' के पीछे पड़े हैं और अभी तक वैसे के वैसे ही हैं। कहते हैं या नहीं कहते ऐसा? तो वहाँ पर 'वह' टेढ़ा है, 'आप' नहीं हो। लेकिन आप वह बात सुनते हो, और सुनकर फिर घर पर जाकर 'आप'

'चंदूभाई' से कहते भी हो कि, ''आप जैसे हो वैसे ही दिखाई देते हो और वैसा ही लोग कहेंगे तो अब ज़रा सीधे हो जाओ। 'दादा' और 'मैं' बैठे हैं, तो हमारी हाज़िरी में सीधे हो जाओ।'' तो वह सीधा हो जाएगा। वर्ना, खुद अपने आप सीधा होना हो तो नहीं हुआ जा सकता। या फिर गुरु सीधा कर देते हैं। लेकिन गुरु खुद सीधे होने चाहिए। लेकिन सीधे गुरु मिलने मुश्किल हैं न!

ऐसा है यह 'अक्रम विज्ञान'

यानी यह तो, जिसमें *आड़ाई* थी, वह 'मैं' नहीं हूँ। इस तरह पूरी जगह ही खुद ने खाली कर दी न! उसके बाद बचा ही क्या फिर? गुनहगारी में जो था, उसकी गुनहगारी छूट गई। और जो मूल गुनहगार था, उसे वहीं पर रहने दिया। मूल गुनहगार तो 'वही' था। यह तो 'आपने' बिना बात के अंदर 'पार्टनरशिप' कर ली थी। फिर अब सीधे हो गए न? 'आप' खुद सीधे हो गए तो इसकी, 'चंदूभाई' की *आड़ाई* निकाल दोगे। जब तक पार्टनरशिप थी, तब तक इस 'चंदूभाई' की *आड़ाई* नहीं निकल सकती थी। अब पार्टनरशिप छूट गई है, इसलिए 'आप' 'चंदूभाई' को धमकाकर भी *आड़ाई* निकाल दोगे।

अत: यह 'अक्रम विज्ञान' का प्रताप है कि जो टेढ़ा है वह 'मैं' नहीं हूँ, और 'मैं' तो यह शुद्धात्मा हूँ!

प्रश्नकर्ता : यानी जिसे सुधारने की कोशिश करता है, फिर भी नहीं सुधरता, और उसके पीछे पूरा जीवन खत्म हो जाता है, लेकिन 'खुद' वह वस्तु है ही नहीं न? ऐसा ही हुआ न?

दादाश्री : हाँ, इसलिए अंत ही नहीं आता न! इसीलिए तो अनंत जन्मों तक भटकना पड़ता है न!

इसीलिए तो लोगों ने तीर्थंकर महाराज से कहा था कि 'हे भगवान! आपको जो क्रमबद्ध लिंक मिली है, वह किसी महा भाग्यशाली को ही मिलती है!' क्रमबद्ध लिंक अर्थात् यहाँ से आगे का रास्ता, उससे आगे का रास्ता, उससे आगे का रास्ता, ऐसे मिल जाता है। क्रमबद्ध! और फिर आखिर तक!

और इन लोगों को क्रमबद्ध लिंक नहीं मिलती और न जाने कहाँ चले जाते हैं।

मुझे भी क्रमबद्ध लिंक मिली थी। मैंने खुद अपने आप के लिए शोध की थी कि यह कैसे हुआ! मुझे वह क्रमबद्ध लिंक मिली थी इसलिए यह पूरा अक्रम विज्ञान प्रकट हो गया न!

अत: यह ''जो टेढ़ा है वह 'मैं' नहीं हूँ'' ऐसा ज्ञान होना, वही 'अक्रम विज्ञान' है और ''जो टेढ़ा है वह 'मैं' हूँ और मुझे सीधा होना है'' वह कहलाता है क्रम!

रूठ गए? तो 'गाड़ी' चली जाएगी

प्रश्नकर्ता : कोई रूठ जाए तो क्या वह उसकी *आड़ाई* का ही प्रकार कहलाएगा?

दादाश्री : तो फिर और क्या कहलाएगा? नहीं तो रूठने की ज़रूरत ही कहाँ रहती है? लेकिन टेढ़ा हुए बगैर रहता नहीं। ज़रा सा भी उसे बुरा लगे कि *आड़ाई* करता है। बस बुरा लगना चाहिए।

बाकी तो रूठ जाए तब *आड़ाई* करता है न! स्टेशन पर एक व्यक्ति की रूठी हुई पत्नी आई थी। उस व्यक्ति ने उसे कहा कि, 'गाड़ी में बैठ जा न! गाड़ी रवाना हो जाएगी। फिर रात हो जाएगी।' तब भी वह नहीं बैठी और उसे भी भटकना पड़ा। रूठे हुए व्यक्ति के सामने तो बारह गाड़ियाँ चली जाती हैं। गाड़ी क्या रूठे हुए को मनाने के लिए आएगी? जगत् तो चलता ही रहेगा। क्या जगत् खड़ा रहता है थोड़ी देर के लिए भी? अगर आप रूठ जाओ तो क्या बाराती खड़े रहेंगे? बाराती बेटे का विवाह करने जा रहे हों और आप रूठ जाओ तो क्या आपके लिए दो दिन तक बैठे रहेंगे? नहीं। ऐसा है यह जगत्!

प्रश्नकर्ता : बारात में ये रिश्तेदार रूठ जाते हैं और आखिर में संदेशा भिजवाते हैं कि आप हमें मनाने आओ तो हम मान जाएँगे।

दादाश्री : वे गाड़ी रवाना होते समय मान जाते हैं। उसे अनुभव

हो चुका है कि यह गाड़ी चली जाएगी। दुनिया तो चलती रहती है। तू बेकार में *आड़ाई* क्यों करता है?

यह तो ऐसा है न कि मैं अगर इस गाड़ी के गार्ड से या ड्राइवर से रूठ गया तो वह कुछ देर में कहे कि, 'भाई, बैठ जाओ न! अभी क्यों झगड़ा कर रहे हो? बैठ जाओ न!' लेकिन अगर मैं रूठा रहूँ कि, 'नहीं बैठूँगा!' तो वह ट्रेन लेकर चला जाएगा या नहीं चला जाएगा? दुनिया कभी ठहरती है क्या? दुनिया तो चलती ही रहेगी। आप उसके साथ एडजस्ट हो जाओ। वर्ना भटक मरोगे 'स्टेशन' पर। वह तो सीटी बजाएगा न? वह भी देखा है मैंने तो। ऐसे भी खेल देखे हैं सारे। ड्राइवर गाड़ी चलाकर ले गया और ये रह गए!

प्रश्नकर्ता : फिर उसे लगता है न, कि यह गाड़ी चली गई और मुझे नुकसान हुआ?

दादाश्री : वह क्या मानता है कि, 'मैंने जो किया है, वही सही है।' उसे भी यदि वह ऐसा माने कि नुकसान हुआ, उसमें यदि ऐसा समझ आ जाए तो फिर से भूल होगी ही नहीं न! इतनी समझदारी होती नहीं है न। इंसान खुद अपनी कमियों को देख सके, ऐसी समझदारी भी नहीं होती उसमें। इंसान के बूते की बात नहीं है न! उसके लिए तो बहुत शक्तियाँ चाहिए। गाड़ी चले जाने के बाद क्या मन में नहीं होता कि आज तो कोर्ट की तारीख थी और कहाँ इससे झगड़ा किया? फिर मन में पछतावा नहीं होगा क्या? कोर्ट में तारीख हो और किसी कारण से हमारा झगड़ा सही हो, भूल उन लोगों की हो, हमारी भूल नहीं हो, फिर भी गाड़ी छूटने से पहले उस भूल का *निकाल* कर देना चाहिए न? वे विनती करें कि, 'भाई, अब छोड़ो न, यहीं से! उस मास्टर से भूल हो गई।' लोगों के ऐसा कहने पर भी हम नहीं बैठें तो घनचक्कर ही कहलाएँगे न? फिर गार्ड भी व्हिसल बजा ही देगा न! तो इस प्रकार से यह पूरी दुनिया चली जाती है और रूठने वाले मूर्ख बैठे ही रह जाते हैं बैंच पर।

प्रश्नकर्ता : उसे फिर एक-दो लोग ऐसा कहने वाले भी मिल जाते हैं कि आपने बिल्कुल ठीक किया है।

दादाश्री : हाँ, फिर ऐसे कहने वाले भी मिल जाते हैं न कि, 'बिल्कुल ठीक किया है। चाय लाऊँ या नाश्ता लाऊँ?' दो रूपये बचे हों तो लोग फिर वे भी निकलवा लेते हैं। इसमें बिल्कुल भी मज़ा नहीं है।

'दादा' की इस गाड़ी में से उतारकर बाहर निकाल दे, मारे तो भी पीछे से वापस घुस जाना। यहाँ से निकाल दे तो आप दूसरे डिब्बे में घुस जाना, फिर वहाँ से कोई निकाल दे तो तीसरे डिब्बे में घुस जाना। फिर वहाँ से भी निकाल दे तब चौथे डिब्बे में चले जाना! लोगों का काम क्या है? निकाल देना। लेकिन हमें तो फिर किसी डिब्बे में घुस जाना है, गाड़ी नहीं चूकनी है।

उसमें नुकसान किसे?

मैं तो बचपन में रूठ जाता था, थोड़ा-बहुत। शायद ही रूठा होऊँगा। ज़्यादा नहीं रूठता था। फिर भी मैंने हिसाब निकालकर देखा कि रूठने में बिल्कुल ही नुकसान है। वह व्यापार ही बिल्कुल नुकसानवाला है। इसलिए फिर ऐसा तय ही कर दिया कि 'कभी भी रूठूँगा नहीं।' कोई हमें कुछ भी करे फिर भी रूठना नहीं है क्योंकि वह बहुत नुकसानदायक चीज़ है।

अत: मैंने तो बचपन से ही रूठना छोड़ दिया था। मुझे लगा कि इसमें तो बहुत बड़ा नुकसान है। मैं रूठा ज़रूर था, लेकिन उस दिन सुबह का दूध गया! उसके बाद मैंने तो, दिनभर में क्या-क्या खोया, उसका हिसाब निकाला, और शाम को फिर, वापस जैसे थे वैसे के वैसे। जब मनाया तब बल्कि नुकसान हुआ, वह मैंने ढूँढ निकाला। फिर मुझे मनाया था रौब से मान देकर! लेकिन सुबह का सारा दूध भी गया न! यानी बचपन में एक-दो बार रूठकर देख लिया, लेकिन उससे नुकसान हुआ, इसलिए तब से फिर मैंने रूठना छोड़ दिया। इससे नुकसान होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : अब तो हम आत्मा हुए। अब हमें ऐसा नहीं होना चाहिए। आप कभी रूठे थे क्या? नहीं? कोई रूठता है क्या घर में?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तब ठीक है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न कि 'हमारा दूध गया, रूठे थे इसलिए।' वह किस उम्र में?

दादाश्री : वह नौ-दस साल की उम्र में।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, नौ-दस साल की उम्र में हमने भी इसी तरह दूध खोया था। हमें भी नुकसान हुआ था खाने का, ऐसा तो लगा था कि यह नुकसान हुआ फिर भी हमने वैसा जारी ही रखा लेकिन आपने कैसे बंद कर दिया?

दादाश्री : मैंने तो सुबह का दूध और वह सब खोया, तब मैंने हिसाब निकाला था कि 'मैं रूठा इसलिए इतना नुकसान हुआ! अतः रूठना बिल्कुल नुकसानदेह है इसलिए यह सब बंद कर देना है। टेढ़ा होना ही नहीं है।'

अब यह *आड़ाई* ही कहलाएगी न! हम हठ करें कि 'मुझे इतना कम दूध क्यों?' 'अरे जाने दे न, पी ले न।' अगली बार देंगे। बा से मैं क्या कहता था? 'बा आप मुझे और भाभी को एक समान मानते हो? भाभी को आधा सेर दूध और मुझे भी आधा सेर दूध देते हो? उन्हें कम दो।' मेरा आधा सेर रहने देना था। मुझे बढ़ाना नहीं था लेकिन भाभी का कम करो। डेढ़ पाव या पाव सेर करो। तब बा ने मुझे क्या कहा था? 'तेरी माँ तो यहीं पर है, लेकिन उसकी माँ यहाँ पर नहीं है न! उसे बुरा लगेगा बेचारी को। उसे दुःख होगा इसलिए एक सरीखा देना पड़ता है।' फिर भी मुझे स्वीकार नहीं हुआ लेकिन बा मुझे समझाते रहते थे, पैबंद लगाते रहते थे। यानी एक बार आड़ापन किया, तो फिर नुकसान हो गया। तब मैंने कहा कि अब फिर से आड़ापन नहीं करना है। नहीं तो तब सभी कहेंगे, 'रहने दो फिर इसे!' तब फिर ऐसा ही होगा न!

फिर नहीं रूठे कभी भी

प्रश्नकर्ता : नुकसान को तुरंत पहचान लिया, यह तो बनिया बुद्धि हुई न?!

दादाश्री : उसमें ऐसा कुछ नहीं है। बनिया बुद्धि तो वणिक बुद्धि कहलाती है, और वणिक अर्थात् विचारशील बुद्धि कहलाती है, समझदार बुद्धि कहलाती है। लेकिन नुकसान पहचानने के बाद वापस नुकसान नहीं उठाते न?

रूठने से तो नुकसान होता है। आप एक दिन रूठकर रात को झगड़ा करके नहीं खाओ, तो फिर सब क्या करेंगे? क्या सभी जागते रहेंगे? समय होने पर सभी सो जाएँगे। यानी कि आपको नुकसान होगा।

क्या रूठना और मनाना फिर से? और मनाएगा भी कौन फिर? ये तो भोजन का समय हो तो कहेंगे, 'चाचा, चलिए खाना खाने, खाना खाने चलिए न! वहाँ खाना तैयार हो गया है। सब राह देख रहे हैं।' तब वे कहते हैं, 'नहीं, अभी खाना खाने नहीं आऊँगा, जाओ।' तब वे लोग एक-दो बार विनती करते हैं, फिर? उसके बाद टेबल पर भोजन शुरू तो हो ही जाता है न!

अतः हम फिर कभी भी नहीं रूठे। अभी भी, आज तक हम किसी से नहीं रूठे हैं। पार्टनर से भी हम नहीं रूठे हैं। वे रूठ गए थे कभी लेकिन उन्होंने हममें *रिसाल* (जिस पर सामने वाले के रूठने का असर होता है) को नहीं देखा, इसलिए वे फिर कभी नहीं रूठे।

'रिसाल' ही रूठे हुए को देखता है

एक व्यक्ति मुझसे कह रहा था कि, 'मेरी वाइफ मुझसे रूठ जाती है।' तब मैंने कहा, 'वह रूठती है, तो उसे देखनेवाला कौन है?' 'तू' नहीं है। यह '*रिसाल*' है, वह देखता है। कौन देखता है? '*रिसाल*' है वह देखता है, 'तू' नहीं है! इसलिए 'तुझे' जानना है कि यह '*रिसाल*' देख रहा है। जो '*रिसाल*' होता है, वह रूठे हुए को देखता है। आत्मा,

आत्मा को ही देखता है! आत्मा दूसरी अवस्थाओं को देखता ही नहीं है। जो चिढ़ा हुआ है, वही चिढ़ने वाले को देखता है। तब मैंने उस व्यक्ति से कहा कि, 'पत्नी रूठी हुई थी, वह उसका आत्मा नहीं था। वह तो पत्नी है और यह जो *रिसाल* है, वह तेरा आत्मा नहीं है। पत्नी किस पर नाराज़ होती है? *रिसाल* पर नाराज़ होती है। उसे तू देख! तू बस देखता रह।'

इससे सॉल्यूशन आएगा न! नहीं तो सॉल्यूशन कैसे आएगा? यों तो कोई रूठा रहता है, कोई गालियाँ देता रहता है, और यह तो ऐसा ही रहता है, लेकिन आत्मा इन सब पर्यायों से अलग है। आत्मा इसमें किसी भी जगह पर नहीं है। यह सब हो रहा है, वह किस आधार पर? हर किसी के कर्मों के कारण है ये सब। ये कर्म फल मिलते रहते हैं, उसमें 'हमें' क्या लेना-देना? हर कोई अपने-अपने कर्म भुगत रहा है, उसमें 'हमें' क्या लेना-देना? यह इस प्रकार से है। यदि आत्मा प्राप्त करना हो तो आत्मा देखो, और कुछ भी देखने जैसा नहीं है।

हमारी समझ में कैसा होगा? आपकी समझ और हमारी समझ में फर्क होगा न? हमें कोई भी दुःख स्पर्श नहीं करता, उसका क्या कारण है? क्योंकि हमारे साथ हमारी समझ है। हम नासमझी को खींचकर नहीं ले आते जबकि यह तो नासमझी को बाहर से, लोगों के पास से खींच लाता है। हमें लोगों से क्या लेना-देना? सबकुछ 'व्यवस्थित' है, हिसाब है। हिसाब से बाहर कुछ भी बदलनेवाला नहीं है। बहियों के हिसाब से बाहर परिवर्तन होता है क्या? तो फिर क्यों करें यह सब? और अगर पत्नी रूठ जाए, तो जो *रिसाल* होता है वही उस रूठी हुई को देख सकता है, उसका आत्मा नहीं देख सकता। जो *रिसाल* होता है वही देखता है। *रिसाल* व्यक्ति रूठे हुए को देखता है। वर्ना कोई रूठा हुआ क्यों दिखना चाहिए? मेरे पास क्या रूठे हुए लोग नहीं आते होंगे? लेकिन मुझे कोई रूठा हुआ दिखाई ही नहीं देता। कुछ हिसाब तो निकालना पड़ेगा न? यों बगैर हिसाब की बहियाँ चलती होंगी क्या? हिसाब तो होना चाहिए न?

वीतरागता की अनोखी रीत

प्रश्नकर्ता : आपके सामने कोई रूठ जाए तो उसके प्रति आप कैसा व्यवहार रखते हैं?

दादाश्री : बिल्कुल वीतराग भाव से! *खेंच* (आग्रह) वगैरह हमें नहीं रहती। उसे मनाने की भावना भी नहीं। हमें ऐसा लगे कि मनाने से टेढ़ा पड़ेगा, तो बिल्कुल बंद! और अगर हमें लगे कि मनाने से सीधा हो सकता है, तो हम एकाध शब्द कहते हैं कि, 'भाई, हमारी भूलचूक हो गई हो तो, बैठो न शांति से। भूलचूक तो मेरी भी होती है और आपकी भी होती है।' ऐसा कहकर उसे बिठाते हैं लेकिन *खेंच* नहीं, वीतरागता रहती है। निरंतर वीतरागता रहती है! उसके प्रति किंचित् मात्र भी अभाव नहीं और भाव भी नहीं। फिर 'दादा भगवान' से कह देता हूँ कि उस पर कृपा उतारिए। 'चंदूभाई' और 'चंदूभाई' के मन-वचन-काया, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न ऐसे 'आपके' 'शुद्धात्मा' से कह देता हूँ कि 'चंदूभाई' पर कृपा उतारिए। वे सभी कनेक्शन मैं कर देता हूँ। उसके बाद वीतरागता से रहता हूँ। वह रूठा हुआ और मैं सीधा, व्यवहार इस तरह से चलता रहता है! कुछ समय तक वह परेशान रहता है, फिर निकल जाता है सबकुछ।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, ऐसा है न कि किसी *रिसाल* व्यक्ति को यदि सामने से प्रोत्साहन नहीं मिलेगा तो उसे उसका तरीका अपने आप छोड़ना पड़ेगा?

दादाश्री : ऐसे को हम प्रोत्साहन नहीं देते हैं। कभी भी नहीं देते, ज़रा सा भी नहीं देते। प्रोत्साहन देने से ऐसा व्यक्ति टेढ़ा चलता है।

इन बच्चों के साथ भी वीतरागता से रहने से बहुत अच्छा रहता है। बच्चों को प्रोत्साहन देंगे तो बच्चे भी टेढ़े चलेंगे। वीतरागता की ज़रूरत है! बच्चे आएँ तो उन पर हाथ फेरना, नहीं आएँ तो कोई बात नहीं, इस तरह! आएँ तब हाथ फेरना और वह दूर हटाएँ तो कोई बात नहीं। वापस फिर से आएँ तो उन पर हाथ फेरना। वे जो भी कुछ करें, उस पर हमें

ध्यान नहीं देना है, हमें वीतराग रहना है। वे जो कुछ करे, उस पर हमें ध्यान नहीं देना है, *नोंध* नहीं करनी है।

प्रश्नकर्ता : वह बहुत बड़ी चीज़ है न!

दादाश्री : *नोंध* नहीं! *नोंध* तो क्लेश करवाती है। ज़रा सी भी *नोंध* नहीं। किसी के लिए *नोंध* नहीं करते। इन सभी को हम डाँटते हैं, लेकिन *नोंध* नहीं। एक घंटे के लिए भी *नोंध* नहीं। *नोंध* रखेंगे तो हमारा दिमाग़ बिगड़ जाएगा। हमने तो *नोंध* पोथी ही निकाल दी है।

'वीतराग,' फिर भी 'खटपट'

प्रश्नकर्ता : तो दादा, आपकी आँखों में वह निष्कारण करुणा होती है?

दादाश्री : हाँ, वही। और क्या? यह तो निष्कारण करुणा है! हमारी दृष्टि उसके आत्मा पर ही रहती है, दृष्टि उसके *पुद्गल* (जो *पूरण* और *गलन* होता है) पर नहीं रहती। फिर भी हम व्यवहार संभाल लेते हैं कि यह सत्संग के लिए हितकारी व्यक्ति है। इसलिए 'आओ, पधारो' ऐसा कहते रहते हैं। जो दूसरे लोगों का हित करें, ऐसे लोग हों तो उन्हें हम बुलाते हैं। उस व्यवहार को संभालना पड़ता है, यों व्यवहार संभालते हैं हम। जबकि वे तीर्थंकर भगवान हैं, वे तो ऐसा कुछ ध्यान नहीं रखते। उन्हें खटपट नहीं है न! जबकि यह तो खटपट है हमारी!

प्रश्नकर्ता : आपका यह जो खटपटवाला विभाग है न, इसीलिए तो हम आपके पास आ सकते हैं।

दादाश्री : हाँ, वही। उसी के कारण तो मैं रुका हुआ हूँ कि इन लोगों का मेरे जैसा कल्याण किस प्रकार से हो उतना ही, उसी के लिए खटपट! खटपट भी इसी के लिए है न! यह सब व्यापार ही इसके लिए है न! और लोगों का भी कल्याण हो जाता है न! लोगों को वीतरागता देखने को मिल जाती है यहाँ पर।

प्रश्नकर्ता : अब वह जो व्यवहार को लेकर *आड़ाई* है न कि यह

दूध कम दिया उसके लिए रूठ गए, तो मोक्षमार्ग की *आड़ाई* कैसी होती है ?

दादाश्री : यह निरी मोक्षमार्ग की ही *आड़ाईयाँ* हैं, इसीलिए संसार कायम है, मोक्ष रुका हुआ है! नहीं तो मोक्ष तो तेरे पास ही है न! ये *आड़ाई* की ही दीवारें हैं सारी। अभी तक *आड़ाई* है, निरी *आड़ाईयों* का पोटला! अपनी मनमानी ही करता है!

उसे कहते हैं त्रागा

प्रश्नकर्ता : सामने वाले से अपनी मनमानी करवाना, क्या वह *आड़ाई* में आएगा ?

दादाश्री : और फिर क्या? *आड़ाई* नहीं तो और क्या है ? और वह रूठकर भी, अंत में *त्रागा* (अपनी बात मनवाने के लिए किए जानेवाला नाटक) करके भी अपनी मनमानी करवाता है। *त्रागा* आपने नहीं देखा है ? आपको बुखार आ जाएगा, *त्रागा* देखो तो! सामनेवाला व्यक्ति *त्रागा* करे तो आपको बुखार नहीं चढ़ा हो तो भी तीन डिग्री बुखार चढ़ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : *त्रागा* क्या होता है ?

दादाश्री : *त्रागा* यानी खुद ऐसा कुछ करना ताकि सामनेवाला घबराकर फिर उसकी बात को एक्सेप्ट कर ले। अपनी मनमानी करवाने के लिए कुछ भी करता है। सिर कूटता है, ऐसे करता है, उछलकूद करता है, रोता है, ज़ोर-ज़ोर से रोता है। हमें हर तरफ से डरा देता है, वह *त्रागा* कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : ढोंग करना और *त्रागा* करना, उसमें क्या फर्क है ?

दादाश्री : ढोंग करता है या *त्रागा* करता है, वह सभी अपनी मनमानी करने के लिए ही करता है!

अभी सब लोग खाना खाने बैठें और एक व्यक्ति कहे कि, 'मैं नहीं खाऊँगा।' तो वह *त्रागा* कहलाता है। ये तो लोग अच्छे हैं कि कहते हैं, 'नहीं भाई, खा लो, नहीं भाई, खा लो!' तो भोजन करवाते हैं लेकिन

यदि लोग हट जाएँ न, तो वह अपने आप ही खाना खा लेगा। कोई भूखा नहीं मरता।

वह त्रागा नहीं कहलाता

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग तो, जब गुस्सा आए न, तो रूम के दरवाज़े बंद करके बैठ जाते हैं। ये सभी, पूरा घर परेशान हो जाता है, लेकिन दरवाज़ा खोलता ही नहीं, वह *त्रागा* कहलाता है?

दादाश्री : वह *त्रागा* नहीं कहलाता। वह *आड़ाई* कहलाती है। *त्रागा* अलग चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : छाती कूटना, खुद अपना सिर फोड़ना, वह *त्रागा* कहलाता है?

दादाश्री : वह सिर फोड़ता है, उसमें भी कुछ में *आड़ाई* होती है और कुछ में *त्रागा* होता है। *त्रागा* शब्द अलग चीज़ है। *त्रागा* में उस पर, खुद पर कोई भी असर नहीं होता। *आड़ाई* में तो खुद को अंदर दुःख होता रहता है। *त्रागा* यानी सिर्फ नाटक ही! यह तो *आड़ाई* कहलाती है। *त्रागा* में तो रोते जाते हैं और चिल्लाते जाते हैं लेकिन उन्हें अंदर बिल्कुल भी असर नहीं होता। ये जो दरवाज़े बंद कर लेते हैं, घरवालों को डरा देते हैं, वह सब *आड़ाई* है। उससे तो खुद दुःखी होता है और सामने वाले को भी दुःख पहुँचाता है जबकि *त्रागा* में तो वह *त्रागा* करता है पर उसे कुछ भी स्पर्श नहीं करता। वह *त्रागा* कहलाता है! परिभाषा होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए? किसी भी चीज़ को यदि आप *त्रागा* कहो, तो ऐसा तो नहीं कह सकते न!

ऐसे को दूर से ही नमस्कार

त्रागा तो बहुत नुकसान पहुँचाता है।

प्रश्नकर्ता : *त्रागा* यानी, ज़रा उसका उदाहरण देकर समझाइए न!

दादाश्री : यदि कोई *त्रागा* कर रहा हो तो क्या आपको पता नहीं

चलता? *त्रागा* करना भले ही नहीं आए, लेकिन *त्रागा* कोई कर रहा हो तो पता तो चल जाता है न?!

प्रश्नकर्ता : ये जो सत्याग्रह करते हैं, वह *त्रागा* कहलाता है?

दादाश्री : वह एक प्रकार का छोटा *त्रागा* ही है लेकिन ऐसा है कि उसे अलंकारिक भाषा में कहा जा सकता है। अलंकारिक भाषा में कहते हैं कि यह सत्याग्रह कर रहे हैं जबकि *त्रागा* तो, उसे कोई सत्याग्रह कहेगा ही नहीं न!

त्रागा अर्थात् संक्षेप में कहने का भावार्थ क्या है कि खुद को जब कोई काम करवाना ही हो और सब राज़ी नहीं हो रहे हों तो ज़बरदस्ती से करवाना। *त्रागा* कर-करके, डरा-डराकर! ऐसे डराता है, वैसे डराता है, ऐसा करता है, वैसा करता है और अंत में मनमानी करवाता है।

प्रश्नकर्ता : साम-दाम-दंड-भेद का उपयोग करके भी करवा लेते हैं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन अपनी सारी मनमानी करवा लेता है। करवाए बगैर छोड़ता नहीं है। उसे कहते हैं *त्रागा!* ऐसे *त्रागे* मैंने देखे हैं, मैंने तो पाँच-सात बार देखे हैं लेकिन मैंने तो दूर से ही नमस्कार कर लिए कि 'हे *त्रागा,* तू भी मत दिखना और करनेवाला तो दर्शन ही मत देना।' यह *त्रागा* तो सीखी हुई चीज़ है और फिर उसे कोई गुरु मिल आते हैं। यह कोई खुद की बनाई हुई चीज़ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी खुद की मनमानी करवाने के लिए जो आग्रह करते हैं, वह *त्रागा* कहलाता है?

दादाश्री : जो आग्रह है, वह *त्रागा* नहीं कहलाता लेकिन लोगों को डराकर उनसे काम करवा लेता है। डराता है न कि 'नहीं तो मैं आत्महत्या कर लूँगा, नहीं तो मैं ऐसा कर लूँगा, वैसा कर लूँगा?'

प्रश्नकर्ता : धाक जमाना, धमकी देना, साम-दाम-दंड-भेद सबकुछ करके।

दादाश्री : साम-दाम-दंड वगैरह करके और बेचारे सरल लोग तो क्या करते हैं? कहेंगे, 'दे दो। अपना जो होना होगा, वह होगा।' और पत्नी बेचारी ज़ेवर भी दे देती है।

प्रश्नकर्ता : जो *त्रागा* करता है वह तो जान-बूझकर करता होगा न?

दादाश्री : हाँ, सबकुछ जान-बूझकर ही। *त्रागा* यानी खुद अपने आप जान-बूझकर बनावट!

त्रागा के परिणाम

प्रश्नकर्ता : तो उसका क्या परिणाम भुगतना पड़ता है?

दादाश्री : वह तो पूरी तिर्यंचगति लांघ जाता है! पूरी तिर्यंचगति लांघ जाता है, तो वह क्या कोई ऐसा-वैसा ऐश्वर्य है?!

प्रश्नकर्ता : वह रौद्रध्यान में आता है?

दादाश्री : रौद्रध्यान तो अच्छा है उससे, बहुत प्रकार से अच्छा है। इसलिए अपने यहाँ पर अगर किसी ने ऐसा गुनाह किया हो तो मुझसे माफी माँग लेना। दो-पाँच बार ऐसा होगा, तब एकाध गुनाह माफ होगा। बहुत खराब गुनाह कहलाता है। पूरी तिर्यंचगति लांघकर नर्कगति में जाएगा। वह भी फिर ऐसी नर्कगति नहीं कि जो रौद्रध्यान से मिलती है। ये तो जीते जी ही लोगों को नर्क में डालकर *त्रागा* करके काम निकलवा लेता है, किसी भी कीमत पर। कीमत यानी चाहे जो भी हो, लेकिन करवाकर ही छोड़ता है।

त्रागा करने वाले के सामने

प्रश्नकर्ता : आज इस काल में तो जगह-जगह पर ऐसे *त्रागे* होते रहते हैं।

दादाश्री : नहीं, हर एक जगह पर नहीं। वह तो छोटे प्रकार का होता है। जबकि ये *त्रागे* तो बहुत बड़े होते हैं। वह तो सिर भी फोड़ता

है। ऐसा एक *त्रागे* वाला मेरे पास *त्रागा* करने लगा। तब मैंने कहा, 'भाई महादेव जी के पास जाकर सिर फोड़। यहाँ किसलिए फोड़ रहा है? ये तो महादेव जी के महादेव जी हैं! तू लाख *त्रागे* करे न, फिर भी पेट का पानी भी नहीं हिलेगा, ऐसा पुरुष है यह।' मुझे ज्ञान नहीं था फिर भी मैं कहता था कि, 'तू मेरे पास लाख *त्रागे* करे फिर भी पेट का पानी नहीं हिले, ऐसा हूँ मैं।'

यह *त्रागे* की कला तो बहुत दुष्कर है। हम भी उससे दूर भागते हैं। वह कला हमने देखी है इसलिए हम आपसे कह रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : उस *त्रागा* करने वाले को यदि न्याय दिखाना हो तो क्या करना चाहिए? दोनों ही *त्रागे* वाले हों तो?

दादाश्री : मैं उसमें नहीं पड़ूँगा। *त्रागों* के मामले में हम नहीं पड़ते।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन न्याय करने का प्रश्न आए तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : अरे, न्याय करनेवाला भी पूरी तिर्यंचगति पार कर ले, ऐसा होता है। मेरे पास कोई *त्रागा* करनेवाला आ जाए तो वह तो अपनी ज़िंदगी में ऐसा करना ही भूल जाएगा। वह समझ जाएगा कि यह *त्रागा* करना गुनाह है।

एक *त्रागा* करने वाली स्त्री थी, उसने मुझसे क्या कहा? कि 'इतने सारे लोग मिले, यदि किसी से मेरी मनमानी नहीं करवा सकी तो वह सिर्फ आप ही हो।' तब मैंने कहा था कि 'आप जैसों को तो मैं अंटी में डालकर घूमता हूँ।'

प्रश्नकर्ता : *त्रागा* करने वाले के सामने उसे अंटी में डालकर काम लेना, वह सीखना पड़ता है? वह भी विद्या है न!

दादाश्री : वह हमें आता है लेकिन उसमें भी बहुत पड़ने जैसा नहीं है। वह तो अगर ज़बरदस्ती आ पड़े, तभी मैं ऐसे में पड़ता हूँ।

बाकी यह अपनी तरफ से करने जैसी चीज़ नहीं है। हमने तो और जगहों पर भी ऐसे *त्रागे* देखे हैं। पति-पत्नी की चोटी पकड़कर खींचकर लाता है, मुझसे न्याय करवाने। वह पत्नी भी *त्रागा* करने वाली और यह पति भी *त्रागा* करने वाला होता है! यानी कि ऐसा हमने बहुत देखा है! दुनिया है तो उसमें हमें क्या-क्या रंग देखने को नहीं मिले होंगे!

अतः *त्रागा* तो उसे कहते हैं कि सभी लोगों को उनकी इच्छा के बिना भी दब जाना पड़े और हाँ में हाँ मिलानी पड़े। जैसे पुलिस वाले के वश में हो जाते हैं न, वैसे वश में हो जाना पड़ता है। उसे *त्रागा* कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी कि ऐसी स्थिति में फँसा देता है उन्हें?

दादाश्री : हाँ, उन्हें शिकंजे में फँसा देता है।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला *त्रागा* करे तो उसके सामने अपना वर्तन कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : हमें तो कहना चाहिए कि भाई ऐसा क्यों कर रहे हो? कौन से सुख के लिए कर रहे हो? यह जो छीनकर लिया हुआ सुख है, वह तेरे पास कितने दिन चलेगा?

प्रश्नकर्ता : फिर भी अगर वह नहीं समझे तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : तो खिसक जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उसकी बात मान लेनी चाहिए?

दादाश्री : वह उसकी बात मानने के बराबर ही है। खिसक जाने का तरीका ही वह है न! ऐसे खिसक ही जाना। साँप पीछे पड़े तो साँप भागता है या आपको भागना पड़ता है? आपको खिसक जाना है। उस साँप को तो क्या है? अगर भैंस का भाई अपने पीछे पड़ा हो तो क्या हम ऐसा कहते हैं कि, 'तू मेरे पीछे क्यों पड़ा है?' ऐसा कहते हो कि, 'मैं तो बड़ौदा का वकील हूँ?' वह तो राजा को भी नहीं छोड़ता। वह तो भैंस का भाई कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपने तो आपके सामने *त्रागा* करने वाले की बात नहीं मानी और उसे कहा कि 'तेरे जैसे तो कितनों को ही अंटी में डाल दूँ।' तो वह कौन सा तरीका है?

दादाश्री : कितनी ही जगहों पर तो उसकी बात मानी भी है। माना इसलिए कि इस बेचारे को... ऐसे करते-करते सीधे रास्ते पर आएगा यह। सिर्फ इसी एक भाव से।

वह तो टुच्चापन है

वकीलों को भी ऐसे *त्रागा* करने वाले मिलते हैं न! कोई ऐसा *त्रागा* करनेवाला व्यक्ति हो न, तो वकील भी कहेगा कि 'अरे इससे तो छूटो।' और उस *त्रागे* वाले से क्या कहेगा? कि 'भाई, तेरा केस लड़ूँगा। तू फीस मत देना।' अर्थात् सभी तरह के लोग होते हैं।

प्रश्नकर्ता : कई बार कुछ वकील भी *त्रागा* करते हैं कि 'पहले पैसे दो। बाद में ही कोर्ट में खड़ा रहूँगा, वर्ना नहीं।' फिर अंतिम घड़ी में ऐसा भी कह देता है कि अभी पैसे दो तो कोर्ट में जाऊँगा, वर्ना नहीं।

दादाश्री : नहीं, वह *त्रागा* नहीं कहलाता। वह तो आमने-सामने गर्ज़ की बात है।

प्रश्नकर्ता : वह तो पूरी फीस लेने के बाद भी और अधिक पैसे लेने के लिए करते हैं।

दादाश्री : हाँ, वैसा भी करते हैं, तब भी वह *त्रागा* नहीं कहलाता। वह निर्लज्जता कहलाती है। निर्लज्ज को जीता जा सकता है। बाकी, *त्रागा* तो तिर्यंचगति पार कर लेता है। वकील भी खुला झूठ बोलते हैं और मुवक्किल भी खुला झूठ बोलते हैं कि, 'साहब, मैंने आपको रुपये दिए हैं, मैं भूला नहीं हूँ। आप पाँच-सात लोग खड़े थे न, तब मैंने आपको दिए थे।' अब वकील को भी ऐसा उल्टा चिपट जाता है तो वकील भी क्या करे? वकील भी इंसान है न? आफ्टर ऑल वह इंसान है न! क्या करे वह?

तायफा के सामने

हमारे एक रिश्तेदार थे, वे आए, तब एक स्त्री(बहन) ने *त्रागा* करना शुरू किया तो वे भाई, जो हमारे रिश्तेदार थे न, वे घबरा गए, 'अरे, अरे, ऐसा नहीं करते।' मैंने कहा, 'ऐसे नहीं, वह थोड़ा कूद ले, उसके बाद हम शांति से चाय पीएँगे। अभी तू देख तो सही। देखने लायक है, अच्छा। कितना अच्छा लग रहा है यह!' इतना कहा कि उस स्त्री ने तुरंत बंद कर दिया, और कहने लगी, 'मेरा *तायफा* (फज़ीता, जान-बूझकर किसी को परेशान करने के लिए किया गया नाटक) कर रहे हो?' मैंने कहा, '*तायफा* कर रही हो, तो *तायफा* ही देखेंगे न! और क्या करेंगे?!'

प्रश्नकर्ता : यदि हम *तायफा* करने वाले से कहें कि *तायफा* है तो हमें डबल मार पड़ेगी।

दादाश्री : ऐसी मार पड़े तो आप *तायफा* शब्द मत बोलना। पहले तो ज़रा धीरे से लेना पड़ेगा। मैंने भी पहले तो धीरे से कहा, फिर सख़्ती की। वे उल्टा-सीधा कहने लगीं, तब फिर ज़ोर से चाबी घुमाने लगे। जैसे स्क्रू टाइट करते हैं न, वैसे। वे नरम पड़ गईं फिर।

तायफा से तो दुनिया काफी कुछ बच सकती है लेकिन इस *त्रागे* से तो नहीं बच सकती। *त्रागे* से ही बेचारे लोगों को मार डाला है! और वह भी कितने ही लोगों को! और कई पुरुष भी *त्रागा* करते हैं।

इस तरीके से भी मतभेद टाला

खुद की मनमानी नहीं होती, तब *त्रागा* करते हैं। मनमानी करवाने के लिए करे उसे *त्रागा* कहते हैं। खुद की मनमानी करवाने के लिए, दूसरे सभी लोगों को डराने के लिए नाटक करना, वह *त्रागा* कहलाता है। अरे तूफान, तूफान! किसी मनुष्य का हृदय कमज़ोर हो, ढीला हो, तो वे सभी घबरा जाते हैं बेचारे!

हमने भी एक दिन *त्रागा* किया था। सभी बर्तन, शक्कर के, चाय

के डिब्बे, घासलेट के डिब्बे और तेल के डिब्बे सब इधर-उधर फेंक दिए थे। सब तहस-नहस कर दिया, कमरे में सब बिखर गया था।

प्रश्नकर्ता : मनमानी करवाने के लिए?

दादाश्री : हाँ, पूरी ज़िंदगी में इतना *त्रागा* किया है। इसे *त्रागा* कहते हैं। सामने वाले को दबाने के लिए! वह भी परायों के लिए, धर्म के लिए करना पड़ा था। मेरे खुद के लिए कुछ भी नहीं किया था। क्योंकि हीरा बा (दादाश्री के पत्नी) से हमने कहा कि, 'ऐसा वर्तन आपको नहीं करना चाहिए।'

बात ऐसी थी, हमें 'ज्ञान' होने के बाद मामा की पोल में बेचारी लड़कियाँ विधि करने आती थीं। तो बेचारे हीरा बा को तो कुछ भी रोग नहीं था। अच्छी इंसान थीं लेकिन जब पड़ौसी के वहाँ बैठती थीं न, तो पड़ोस की स्त्रियों ने उन्हें चढ़ा दिया कि, 'हाय, हाय, अरे बाप, ये सब छोटी-छोटी लड़कियाँ दादा के पैर छूकर, ऐसे टच करती है। बाहर बहुत बुरा दिखता है। ऐसा क्या अच्छा दिखता है? दादाजी अच्छे इंसान हैं, लेकिन यह गलत दिखता है। इससे दादा की क्या आबरू रहेगी?' लोग तरह-तरह के आरोप लगाते और उन्होंने उनके दिमाग़ में ऐसा घुसा दिया। तो बेचारे हीरा बा तो घबरा गए, कि यह तो अपनी आबरू जा रही है। यों खुद अच्छी इंसान थीं, लेकिन लोगों ने अंदर नमक डाल दिया। दूध में नमक डालें तो क्या होता है?

प्रश्नकर्ता : फट जाता है।

दादाश्री : वह मैं जानता था कि इन लोगों ने नमक डालना शुरू कर दिया है, तो कभी न कभी फटेगा! लेकिन मैंने इंतज़ार किया। अब एक दिन एक बहन विधि कर रही थी, तो हीरा बा ने झाड़ू लगाते-लगाते ज़ोर से दरवाज़ा खड़काया। उन्होंने कभी भी ऐसा नहीं किया था। हमारे घर में ऐसा रिवाज़ ही नहीं था। वह लड़की घबराकर चली जाए, इसीलिए किया था, मैं घबरा जाऊँ उसके लिए नहीं। लड़कियाँ समझीं कि हीरा बा अभी डाँटेंगी। वह लड़की विधि करते-करते यों काँप गई। मैं समझ

गया कि इसके पीछे चाल है। ऐसी चाल समझ में नहीं आएगी क्या? तब क्या इतना भोला था जैसा अभी हूँ? फिर मैंने कहा, 'अब आपका और मेरा, दोनों का अलग कर देते हैं।' यह तो नहीं पुसाएगा इसलिए अब आप भादरण में रहो और वहाँ आपको पाँच सौ-सात सौ, जितने रुपये चाहिए होंगे उतने भेज दूँगा। अब हम दोनों को साथ में नहीं रहना है। वहाँ पर चंद्रकांत भाई, भाणा भाई, वगैरह पाँच-छह लोग बैठे थे, उन्हें भी सीखने को मिलना चाहिए न कभी! उपदेश मिलना चाहिए न! हीरा बा फिर वापस चाय बनाने लगे। तो स्टोव हिलाकर बजाया ज़ोर से, तो स्टोव रो उठा। मैंने सोचा, 'आज उठापटक चली है। अब स्क्रू घूमाओ, वर्ना गाड़ी उल्टी ही चलेगी। तो मैंने तो अंदर जाकर चाय के, चीनी के, घासलेट के डिब्बे वगैरह सब ऊपर से नीचे फेंक दिए। सबकुछ इधर-उधर फेंक दिया, ज़ोर-ज़ोर से। जैसे 400 वोल्ट के पावर ने छू लिया हो! सबकुछ फैला दिया। सामने से उन्हें चढ़ाने वाली स्त्री आई, आसपास से भी सब लोग आ गए। उनसे मैंने कहा, 'ये हीरा बा, ऐसी देवी जैसी स्त्री, उनमें पोइज़न किसने डाला?' "भाई, आपको ऐसा क्रोध नहीं करना चाहिए। 'ज्ञानीपुरुष' हो आप।" 'ज्ञानीपुरुष' का ही क्रोध देखने लायक है। देखो तो सही। फिर कहा, 'अंदर ज़हर डाला इसीलिए यह दशा हुई है न! क्यों ऐसा डाला? क्या बिगाड़ा है आपका?' तब उन्होंने कहा, 'भाई, हमने कुछ भी नहीं डाला है। हमने बात की थी, बस उतना ही।' 'यह सब किसलिए? उनकी ज़िंदगी खराब की आप लोगों ने?' तब उन्होंने कहा, 'क्या ज़िंदगी खराब की?' मैंने कहा, 'अब अलग रहना पड़ेगा इन्हें। अब भादरण में अपना नया मकान बनाया है, उसमें हीरा बा को रहना है। महीने का पूरा खर्च दूँगा।' तब उन्होंने कहा, 'भाई, ऐसा नहीं करते, नहीं करते ऐसा। इस बुढ़ापे में क्या ऐसा करना चाहिए?' मैंने कहा, 'जिस मटके में दरार पड़ गई, वह मटका अब किस काम आएगा? उसमें से तो पानी रिसेगा। चाहे कितना भी पानी भरा जाए, फिर भी बाहर निकल जाएगा। जिस मटके में दरार पड़ गई हो उसे रखते हैं क्या?' ऐसा कहा तो पड़ोसी घबरा गए, 'ऐसा कह रहे हैं? मटके में दरार पड़ गई!' लोग समझ गए कि अब हीरा बा को अलग रहना पड़ेगा। हाँ, धर्म पर आफत नहीं आनी चाहिए।

उस दिन शक्कर-वक्कर, चाय-वाय, सबकुछ एक कर दिया लेकिन वीतराग भाव में! अंदर ज़रा सा भी असर हुए बिना! चंद्रकांत भाई, भाणा भाई सभी बैठे थे। सभी से कहा, 'सीखना घर पर।' फिर दूसरे दिन उसका फल क्या आया? वे पड़ोसी बल्कि हीरा बा को समझाने लगे कि, 'भाई को दुःख हो वैसा मत करना। कोई आए तो भले ही आए। आप इस झंझट में नहीं पड़ना।' बल्कि अब वे उल्टा ही सिखाने लगे, क्योंकि उनके मन में डर बैठ गया कि 'अब यदि कुछ भी होगा तो हमारे सिर पर ही आएगा। इसलिए अब हमें सावधान रहना है।' मैंने काम ही ऐसा किया था कि ये लोग फिर से ऐसा करना ही भूल जाएँ। उसके बाद फिर ऐसा नहीं करना पड़ा, उसके बाद कभी भी नहीं। इतना इलाज किया था। अभी तक याद होगा उन्हें। वह तो उनका दिमाग़ चढ़ गया था, कभी भी नहीं चढ़ता, उन लोगों ने सिखा रखा था सब, कि ऐसा ज़रा ज़्यादा करोगी तो सभी लड़कियाँ चली जाएँगी, फिर नहीं आएँगी।

'ज्ञानी' कभी-कभी ही अवतरित होते हैं। और बेचारी लड़कियाँ दर्शन करने तो आएँगी न! उन्हें अशांति रहती है इसलिए आती हैं न! चैन से दर्शन तो करने दो लोगों को। उन्होंने यहाँ तक सिखाया था कि 'दादा शादी कर लेंगे इन लड़कियों से।' ऐसा भी सिखाया था कि, 'ये लड़कियाँ दादा को ले जाएँगी।' अरे, ऐसा कहीं होता होगा? कितने साल का, मैं बूढ़ा हो चुका इंसान! तो ऐसा कैसा सिखाया! लेकिन उनका क्या दोष बेचारी का? हीरा बा को ऐसा भी समझ में आता था कि 'यह मेरी भूल है।' ये लड़कियाँ सत्संग में आती थीं न! और उन्हें खुद को सौ प्रतिशत विश्वास था कि ये (दादा) तो मोरल और सिन्सियर हैं लेकिन लोगों में बुरा दिखता था, इसलिए ऐसा कहा था कि 'आप छोड़ दीजिए यह।' तब क्या कहीं छोड़ने से छूट सकता है? यह तो 'व्यवस्थित' है! और वे तो नासमझी में कह रही थीं। इस तरह कहीं कुछ होता होगा? और क्या यह रेल्वेलाइन उखाड़ दें? तब हमें कुछ रास्ता तो निकालना पड़ेगा न? तब फिर उस कॉर्क (डाट) से नहीं चल सकता था। उसके लिए तो पेच वाले कॉर्क की ज़रूरत थी। पेचवाला कॉर्क लगा देने से उखड़ तो नहीं जाएगा न!

प्रश्नकर्ता : वह जो नाटक किया था, वह कपट नहीं है?

दादाश्री : नहीं, उसमें कपट नहीं है। दूध उफनने लगे और लकड़ी निकाल दें, तो वह कोई कपट नहीं कहलाता। खीर उफनने लगे तो लकड़ी निकाल देते हैं, वह क्या कपट कहलाएगा?

प्रश्नकर्ता : लेकिन आशय तो कुछ अच्छा करने का था न?

दादाश्री : उन्हें शुद्ध करने का था। उस समय वहाँ पर सभी बैठे थे, वे स्तब्ध हो गए थे। और सभी हों तभी आबरू लूँ, यों ही आबरू नहीं लूँगा न! वर्ना वे निगल जातीं। कहतीं 'ओहोहो कोई था ही नहीं न!' वे निगल जातीं और अपनी मेहनत बेकार जाती।

हीरा बा को अनुभव था, वे ऐसा जानती थीं कि 'ये सिन्सियर और मोरल हैं ही।' वह तो सिर्फ उसी एक केस में ही उनके मन में ज़रा घुस गया था। उसे निकालने में मुश्किल हुई लेकिन वह स्याद्वाद तरीके से नहीं निकला, इसलिए इस दूसरे तरीके से निकालना पड़ा। लेकिन इलाज ऐसा किया कि फिर से हीरा बा कुछ करने जाएँ तब पड़ोसन ही कहे, 'ऐसा मत करना। आपको भाई की बातों में पड़ना ही नहीं है। भाई का स्वभाव बहुत सख़्त है। ऐसा सख़्त स्वभाव, कि महादेव जी ही देख लो न!' ऐसा प्रभाव डाल दिया था। हीरा बा भी जानते थे, 'ये अभी भी तीखे भँवरे जैसे हैं!'

'ज्ञानी' बनकर बैठना कोई आसान नहीं है। किसी में ऐसे अंकुर फूटें तो उन सब को जड़ से निकाल देते हैं। नहीं तो वे अंकुर तो बड़े पेड़ बन जाएँगे! देखो न फिर वे लोग 'कुछ भी नहीं कहना है, आपको कुछ भी नहीं कहना है' हीरा बा से ऐसा कहते थे। मैंने कहा, 'मैं कुछ नहीं करूँगा। दादा को कौन कुछ कर सकता है? ये लड़कियाँ क्या करने वाली थीं?' फिर वही लोग कहने लगे, 'हमें बेकार ही झगड़ा मोल नहीं लेना है। अपने सिर पर आएगा।' मैंने तो उन्हें मुँह पर ही कह दिया था कि आप सबने ही यह बिगाड़ा है, मटकी में दरार डाल दी, अब क्या करें? बस एक ही बार मटके पर लाख लगाऊँगा। फिर

अगली बार लाख भी नहीं लगाऊँगा। फिर छोड़ आऊँगा। दरार पर लाख लगा दी एक बार कि जोड़ लो अब!

प्रश्नकर्ता : उन्होंने वह दरवाज़ा पटका, स्टोव पटका, तो वह भी *आड़ाई* कहलाएगी न?

दादाश्री : *आड़ाई* नहीं तो फिर और क्या? लेकिन वह *त्रागा* कहलाता है। उन्होंने छोटे प्रकार का *त्रागा* किया था। मैंने बड़े प्रकार का *त्रागा* किया।

प्रश्नकर्ता : यानी उस छोटे प्रकार के *त्रागे* को निकालने के लिए उसके सामने फोर्स' रखना पड़ा?

दादाश्री : हाँ, मैंने जान-बूझकर *त्रागा* किया था और उन्होंने खुद के कर्म के नियमानुसार *त्रागा* किया था। वे तो प्रकृति के अधीन रहकर करती है, जबकि मैं तो मेरे ज्ञान में रहकर करता हूँ न! सभी महात्मा, पाँच-सात-दस लोग बैठे थे। तो एक ने कहा, 'ऐसा कहीं किया जाता होगा?' तब मैंने कहा, 'सीख, तुझे सिखा रहा हूँ। चुप बैठ। यह सिखा रहा हूँ तुझे। घर पर पत्नी परेशान करेगी, तब किस तरह से करेगा तू?'

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न, कि 'मैंने ज्ञान में रहकर किया।' तो ज्ञान में किस तरह से, वह बताइए आप।

दादाश्री : ज्ञान ही-'ये' करते रहे, 'अंबालालभाई' करते रहे। ज्ञान ने थोड़े ही हीरा बा से शादी की हुई है। देखो न, बिना मतभेद के वर्षों निकाल दिए न! लेकिन अभी भी हम मतभेद पड़ने से पहले खत्म कर देते हैं। फिर से 'ज्ञान' भी लिया था हीरा बा ने! सपने में दादा आए थे फिर उनके।

वर्ना, चालीस सालों से हम किसी से तेज़ आवाज़ से नहीं बोले हैं। किसी के सामने आवाज़ ऊँची नहीं की थी। वह तो सभी लोग जानते हैं। कहते भी हैं कि 'ये तो भगवान जैसे हैं!'

त्रागा भी एक कला

त्रागा करना भी कला है, बहत्तर कलाओं में से एक कला है।

प्रश्नकर्ता : चोरी करना भी एक कला है न?

दादाश्री : हाँ, वह भी कला है लेकिन ये सब कलाएँ, जो कलाएँ इकट्ठी की थी न, वे सभी खुद को ही परेशान करती है।

प्रश्नकर्ता : *त्रागा* करने की कला कहाँ से सीखते होंगे?

दादाश्री : आत्मा में बहुत शक्ति है! मन में तय करे कि, 'मुझे डरा-धमकाकर इन लोगों से छीन लेना है' तो *त्रागा* करना आ जाता है। फिर किस तरह से डराना-धमकाना, वह उसे आ जाता है।

त्रागा करना यानी उसके लिए तो बहुत ही अक्ल चाहिए। अपनी अक्ल वहाँ तक नहीं पहुँच सकती। फिर भी अगर सामने वाले *त्रागा* कर रहे हों तो उसका पता ज़रूर लगा लेता हूँ। *त्रागा* वाला व्यक्ति सामने आ जाए न, तो भी बहुत बेचैनी हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : जो *त्रागा* करता है उसकी परख हो जाती है?

दादाश्री : उसके करते ही समझ जाता हूँ कि *त्रागा* आया। ये *त्रागा* करने लगे!

वहाँ समझदारी से चेत गए

हमारे जान-पहचानवालों का एक बेटा, तो उसकी 'मदर' के जाते ही तुरंत ही बुक्का फाड़कर रोता था! वैसे वह दस साल का था। एक ओर मैं पास वाले रूम में सोता, और एक तरफ वह लड़का बुक्का फाड़कर रोता। वह रोज़ ऐसा ही करता था। फिर एक दिन मैंने जाकर, जब वह अकेला था, तब दो-चार च्यूंटियाँ भर ली। तब उसने बहुत शोर मचाया, ज़ोर से रोया। तब उसकी माँ कहने लगी, 'यह रोया, रोज़ ऐसे ही परेशान करता है।' मैंने कहा कि, 'नहीं, वह परेशान नहीं कर रहा है। इसे देखो तो सही, कितनी अच्छी आवाज़ आ रही है! यह तो संगीत है। सुनो, सुनो। सभी को बुला लाओ।' दो-तीन दिनों तक ऐसा किया, उसके बाद फिर वह बंद हो गया।

कुछ इलाज तो करना पड़ेगा न? क्या यों ही चलता है? *त्रागा* करके लोगों को डरा देता है। अरे, यदि एक ही *त्रागे* वाला इंसान हो, तो वह सौ लोगों को डरा देता है, मटियामेट कर देता है।

त्रागा तो, छाती बैठ जाए ऐसा *त्रागा* करते हैं लेकिन मैं तो ज्ञानवाला हूँ न, इसलिए मुझे ज्ञान हाज़िर हो जाता है कि यह *त्रागा* कर रहा है। उन दिनों ज्ञान नहीं था न, तो ज्ञान होने से पहले भी मैं सब तरफ से नाप लेता था कि क्या हेतु है और यह किसलिए कर रहा है। तुरंत ऐसा ध्यान में आ जाता था, पता चल जाता था। मैं तो कह देता था। 'बैठ, बैठ, अभी चाय पीते हैं।' तो उसके मन में जो आवेग होता था न, वह उतर जाता था और वह भी घबरा जाता था।

उसे त्रागा भारी पड़ा

हमारे दोस्त के यहाँ एक स्त्री थी, वह उनकी रिश्तेदार थी या फिर शायद बड़ी बहन थी। अब उसने (मेरे) दोस्त को डराने-धमकाने के लिए ऐसा कपट किया था। बाहरवाला कोई व्यक्ति उनके घर पर गया था, उसकी उपस्थिति में वह स्त्री हाय-हाय करके छाती कूटने लगी। मेरा दोस्त तो घबरा गया और जो नया व्यक्ति आया था, वह भी घबरा गया। फिर वह दोस्त मुझसे मिला था, उसने मुझे यह बात बताई। तब मैंने कहा कि, 'मैं तेरे यहाँ आऊँगा। ऐसा कुछ होने के समय गड़बड़ हो जाए तो मैं आऊँगा।' फिर मैं वहाँ पर गया। तब भी उस स्त्री ने वैसा ही *तायफा* किया, *त्रागा* किया! वह स्त्री यों कूदने लगी और मेरा वह दोस्त डरने लगा। तब मैंने उस स्त्री से कहा कि, 'आपको इसमें मज़ा आता है? आप तो बहुत अच्छा कूदती हो। अरे, कूदो न और ज़्यादा। इसमें तो बहुत मज़ा आया!' ऐसा सब कहा तो वह स्त्री मुझे गालियाँ देने लगी कि 'आप मेरे यहाँ क्यों आए?'

यानी हम ये सभी कारस्तानियाँ (कलाएँ) जानते हैं, ऐसी सभी चाबियाँ जानते हैं। ऐसे *त्रागा* करने वाले लोग कुछ ही होते हैं, कोई ही व्यक्ति ऐसा होता है। उसमें पुरुषों में 'टू परसेन्ट' ही लोग होते हैं, अधिक

नहीं होते। जबकि स्त्रियों में 'टेन परसेन्ट' होती हैं। स्त्रियों में अधिक होती हैं।

त्रागा शब्द का अर्थ पता चला न! वह बहुत पुराने ज़माने के लोगों को पता था। अब *त्रागा* तो मुझे लगता है कि, आज कल के लड़कों को नहीं आता। *त्रागा* कैसे आएगा? इनकी तो हड्डियाँ भी इतनी मज़बूत नहीं हैं! त्रागे वाले की हड्डियाँ तो बहुत मज़बूत! ये तो ज़रा सा कमज़ोर दिखाई दे तो भी घबरा जाते हैं।

प्रकृति में ही गुथा हुआ

प्रश्नकर्ता : *त्रागा* करने वाले को क्या खुद को पता चलता है कि मैं *त्रागा* कर रहा हूँ?

दादाश्री : अवश्य! *त्रागा* करने का मतलब यही है कि खुद अपनी इच्छापूर्वक करना। लेकिन वह प्रकृति में गुथ चुका होता है न, इसलिए खुद उस पर ध्यान नहीं देता। लेकिन सबकुछ पता चलता है। पता क्यों नहीं चलेगा? छोटे से छोटी चीज़ के बारे में भी समझ सकते हैं, तो फिर *त्रागा,* तो बहुत बड़ी चीज़ है।

त्रागे वाले से सावधान रहेंगे

एक *त्रागे* वाली स्त्री थी, उस स्त्री ने मेरे सामने *त्रागा* करना शुरू किया और वैसे वह बहन मेरे लिए सम्माननीय थीं। तो मैंने तो उनकी बात नहीं सुनी। फिर वे मुझसे कहने लगीं, 'सिर्फ आप अकेले ही मेरी नहीं सुनते।' मैंने कहा, 'आपकी नहीं सुनता ऐसा नहीं है, ईश्वर की भी नहीं सुनता।' क्योंकि जब वे बहन *त्रागा* करती थीं, तो तुरंत मुझे समझ में आ जाता था कि ये *त्रागा* करने लगी हैं।

त्रागा यानी सामने वाले को डरा देना। यह तो अब ज्ञानी हुए हैं, वर्ना पहले तो अहंकार था न! तब मैं कहता था कि, 'सिर टकरा। देखते हैं! सिर फोड़, चल। मुझे डराना चाहते हो?! पूरे जगत् को डराकर मैं ऊपर बैठा हूँ। पूरी दुनिया के *त्रागे* उतार दूँ ऐसा आदमी हूँ' *त्रागे* वाले

लोग हमें आगे नहीं बढ़ने देते। *त्रागा* करना अर्थात् बहुत बड़ा दबाव डालना।

मैं तो एक व्यक्ति के वहाँ बैठा था। वहाँ दूसरा एक व्यक्ति आया, तो इस पर दबाव डालने के लिए क्या करना शुरू किया? ज़मीन पर सिर टकराया इस तरह से। मैंने कहा, 'क्यों भाई, क्या है, क्या है?' तब यह व्यक्ति मुझसे कहने लगा, 'देखो न, यह ऐसा कर रहा है। मुझे डरा देता है।' नाजुक प्रकृति हो न, तो डर जाती है। हस्ताक्षर नहीं कर रहा हो और सामनेवाला *त्रागा* करे तो डर जाता है, और हस्ताक्षर कर देता है। कहेगा, 'ला, चल तो फिर हस्ताक्षर कर देता हूँ।' यानी *त्रागा* करनेवाला ऐसे दीवार के साथ भी सिर टकराता है।

अब पुरुषों में कौन सा खराब गुण है? *त्रागा* का। जो पुरुष *त्रागा* करे न, उस व्यक्ति के साथ संबंध मत रखना। स्त्रियाँ तो *त्रागा* करती हैं, लेकिन कुछ पुरुष भी *त्रागा* करते हैं।

प्रश्नकर्ता : पुरुष में *त्रागे* को खराब गुण कहा गया है। अगर ऐसा हो तो वहाँ पर खड़ा भी नहीं रहना चाहिए?

दादाश्री : खड़ा नहीं रहना चाहिए। वह हमें भी डरा देगा। आप भी डर जाओगे।

प्रश्नकर्ता : ऐसे *त्रागे वाला* पुरुष हो तो वहाँ से दूर कैसे हों?

दादाश्री : *त्रागे* वाली स्त्री से कैसे दूर हों, वह मुझे मालूम है। *त्रागे* वाले पुरुष से छूटने का तरीका मुझे मालूम नहीं है। स्त्री *त्रागा* करे तो मैं उसे कुदाता रहूँगा, पूरी रात कुदाता रहूँगा लेकिन पुरुषों के *त्रागे* के सामने तो मैं भी चौंक जाता हूँ।

त्रागा यानी किसी की भी इच्छा नहीं हो और उस वस्तु को भोग लेना हो तो उधम मचा देता है। 'मैं आत्महत्या कर रहा हूँ, और मैं ऐसा कर रहा हूँ और वैसा कर रहा हूँ' इस तरह डरा-धमकाकर भी भोग लेता है। किसी भी प्रकार का *त्रागा* करता है वह, डरा देता है। ऐसे भी पुरुष होते हैं।

प्रश्नकर्ता : कोई पुरुष *त्रागा* करे कि 'मैं भाग जाऊँगा, मैं आत्महत्या कर लूँगा, मैं ऐसा कर लूँगा।' तो वास्तव में ऐसा मान लेना है कि वह करेगा ही? वह कर लेता है क्या?

दादाश्री : घबराना नहीं है लेकिन फिर सावधान रहना पड़ेगा। शायद बाद में वह ऐसा कर भी दे। ज़्यादातर तो *त्रागा* होता है, इसलिए ऐसा करेगा नहीं लेकिन फिर भी सावधान रहना अच्छा है।

संसार व्यवहार में *त्रागे* वाले लोग बहुत होते हैं। व्यवहार में यानी अपने घर में, मतलब ऐसे *त्रागे*वालों की तो बात को स्पर्श ही मत होने देना। नहीं तो मर गए समझो। ज़िंदगीभर मैं तो *त्रागा* से बचा हूँ। मेरे पास एक ऐसा 'सिस्टम' था, जिससे मैं *त्रागा* से हमेशा बच जाता था। काफी कुछ भाग तो, जगत् तो *त्रागा* से ही दब चुका है!

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला व्यक्ति चाहे जितने *त्रागे* करे तो ऐसे में खुद को कैसे रहना चाहिए?

दादाश्री : आपको उसमें क्या करना है? देखते रहना है। वह *त्रागा* कर रहा हो न, तो हमें नया नाटक देखने को मिला। वर्ना ऐसा नाटक देखने को नहीं मिलता! अगर हम नाटक वाले से कहें कि '*त्रागा* करो,' तो क्या वह करेगा?! अतः हमें उस *त्रागा* करने वाले से कह देना है कि, तुझे जितने *त्रागे* करने हो उतने कर न!

बचने का 'एडजस्टमेन्ट'

हमने *त्रागे* बहुत नहीं देखे थे लेकिन जितने देखे थे उनसे त्रस्त हो गए थे।

प्रश्नकर्ता : तो कोई आपके सामने *त्रागा* करे तो आपको क्या होता है?

दादाश्री : मैं तुरंत समझ जाता हूँ कि यह *त्रागा* करने लगा है।

प्रश्नकर्ता : तब क्या करते हैं आप?

दादाश्री : मैं तो *त्रागा* वाले पर ध्यान ही नहीं देता। आप सब मिलकर *त्रागा* करो तब भी मैं बैठा रहूँगा यहाँ पर! आप थक जाओगे, लेकिन मैं नहीं थकूँगा। उसमें 'एक्सपर्ट' हो चुका हूँ मैं!

प्रश्नकर्ता : ऐसे में आप अंदर क्या 'एडजस्टमेन्ट' लेते हैं?

दादाश्री : असरमुक्त! 'अन्इफेक्टिव'! वह भले ही *त्रागा* करे, वह थककर सो जाएगा आराम से!

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर वह सामने और अधिक *त्रागा* करेगा न, दादा? हमें 'अन्इफेक्टिव' देखे तो 'इफेक्टिव' लाने के लिए और अधिक *त्रागा* करेगा न?

दादाश्री : हाँ, तब मेरा और अधिक 'अन्इफेक्टिव' होता जाता है। उतना बल है मुझमें। हम 'इफेक्ट' को कहाँ पर खुला रखते हैं? कि यदि उसकी माँग सही हो, उसकी *लागणी* सही हो तो ढीला रखते हैं लेकिन यदि कभी वह डराना चाहे तब नहीं। मुझे डराता है? भगवान भी मुझे नहीं डरा सकता। तुझे शर्म नहीं आती? भगवान जिनके वश हो चुका है, उसे डराना चाहता है? हमारे पास कोई-कोई व्यक्ति *त्रागा* करता है, लेकिन वह कम, छोटा सा।

प्रश्नकर्ता : तब दादा, आप मुँह पर कुछ नहीं बोलते? उसे कुछ कहते नहीं और 'अन्इफेक्टिव' होकर बैठे रहते हैं?!

दादाश्री : तो और क्या करें फिर? *त्रागा* वाले से क्या कहना?

प्रश्नकर्ता : वह भी समझ जाता है न, कि यहाँ पर कुछ पहुँच नहीं रहा है, असर नहीं हो रहा है इन पर?

दादाश्री : सब समझ जाता है कि ये 'दादा' बहुत पक्के इंसान हैं। नहीं तो क्या इतना बड़ा संघ चला लेते? चला सकते थे?! नहीं तो रोज़ लड़ाई-झगड़े होते लेकिन यह तो बगैर नियम का, नियम बगैर। देखो न! 'नो लॉ-लॉ!' फिर भी चलता ही है न! परम विनय में नहीं देखें तो हमारी आँखें उसकी तरफ थोड़ी कठोर रहती हैं और विनय में

नहीं देखें तो निकाल देते हैं। 'गेट आउट,' वह भी फिर 'गेट आउट' ऐसे नहीं करते। वह दुश्मन हो जाए, ऐसा नहीं करते। धीरे से करते हैं। वह विनय में, यदि परम विनय में रहे तो वहाँ पर दादा खुश!

हम तो सामने वाले को सही रास्ते पर लाने के लिए आए हैं। मुझे दुनिया में कुछ भी नहीं चाहिए। यह तो कहाँ उल्टे रास्ते पर चलता जा रहा है और उसी के कारण इतने अधिक दुःख पड़े हैं। उल्टे रास्ते चलते हैं और फिर ज़िम्मेदारी लेते हैं! दुःख नहीं पड़ रहे हों तो बात अलग है। सुख उठाकर उल्टे रास्ते पर जा रहा हो तो बात अलग है। यह तो इतने दुःख सहन करता है और उल्टे रास्ते की ज़िम्मेदारी उठाता है इसलिए हमें करुणा आती है कि तू यह क्या उल्टे रास्ते पर चला जा रहा है!

[२]

उद्वेग : शंका : *नोंध*

उद्वेग के सामने

वर्ना, यदि मोक्ष में जाना हो तो सरल बन जाओ। बालक जैसे सरल बन जाओ। ये बालक तो नासमझी में ऐसा करते हैं और 'ज्ञानीपुरुष' समझकर करते हैं, बस! दोनों में बचपना है तो सही, निर्दोषता बालक जैसी। बालक नहीं समझता फिर भी उसका संसार चलता है या नहीं चलता? बल्कि और अच्छा चलता है। जैसे-जैसे समझदारी आती है, वैसे उसका संसार बिगड़ता चला जाता है। 'ज्ञानीपुरुष' तो बालक जैसे सरल होते हैं और यह *आड़ाई* तो एक प्रकार का अहंकार है कि सरल नहीं होना है, खुद का *धार्यु* (मनमानी) करना है। *आड़ाई,* वह तो *धार्यु* करने का परिणाम है। जिसे औरों की इच्छानुसार करना है, उसकी सभी *आड़ाईयाँ* चली जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : खुद जैसा चाहता है उस अनुसार नहीं हो, तब फिर उद्वेग हो ही जाता है। खुद का मनचाहा परिणाम नहीं आए तो उद्वेग में ही रहता है वह।

दादाश्री : मनचाहा होता ही नहीं है कभी भी, इसलिए हमें पांसे फेंकने से पहले ही मन में सोच लेना चाहिए कि 'उल्टे गिरना।' फिर जितने सीधे पड़ें उतने सही, लेकिन अगर हम कहें कि 'चारों सीधे गिरना', तब वैसा कुछ होगा नहीं और पूरी तरह से उलझन और उद्वेग होगा। उसके बदले 'चारों उल्टे गिरना,' ऐसा कहेंगे न तो जितने सीधे निकले उतने तो सही। एक सीधा निकल गया तब हम समझेंगे कि 'चलो एक तो हो गया।' यानी 'एडजस्टमेन्ट' सेट करने की कीमत है सारी।

प्रश्नकर्ता : यह बात तो दादा, सौ प्रतिशत है कि अक्रमज्ञान होगा तभी 'एडजस्टमेन्ट' हो सकता है। नहीं तो 'एडजस्टमेन्ट' संभव है ही नहीं।

दादाश्री : हाँ, वर्ना होगा ही नहीं न! 'एडजस्टमेन्ट' रहेगा ही नहीं, किस आधार पर टिकेगा? उसके 'एडजस्टमेन्ट' को खत्म करके वहाँ पर भी उद्वेग से सिर तोड़ देगा। फिर मुँह पर पूरे दिन अरंडी का तेल लगाकर घूमता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन पासे डालते समय 'उल्टे गिरना', ऐसा जो कहा है न, तो ऐसा आशय क्यों रखें कि 'उल्टे ही गिरना?'

दादाश्री : तो फिर क्या रखना चाहिए हमें?

प्रश्नकर्ता : आशय ही नहीं रखना चाहिए। जितने पड़ें वह सही, ऐसा रखो।

दादाश्री : 'जो पड़े वही सही' यदि कभी अपना मन ऐसा कबूल करे तो अच्छी बात है और फिर भी यदि संतोष नहीं हो तब आप कहना कि 'उल्टे गिरना।' तब फिर अगर दो सीधे पड़ेंगे तो मन को संतोष हो जाएगा। अतः यह इस पर आधारित है कि अपना मन किस तरह का है।

धारणा नहीं, तो उद्वेग नहीं

यहाँ से मुंबई फोन पर बात करके सौदा मंज़ूर किया, सबकुछ हो गया और दो दिन बाद वह आदमी पलट गया तो हमें उद्वेग होता है और उसे नहीं होता। अरे, हमें किसलिए उद्वेग हो रहा है? हम तो अपने धर्म में हैं। पलट तो वह गया है, वह अधर्म में गया है। हमने तो कुछ उल्टा किया ही नहीं, तो हमें क्यों उद्वेग होना चाहिए? तब वह कहता है कि, 'लेकिन मेरा नफा चला गया न!' अरे, नफा तो आया ही कहाँ था, छोड़ दे न यहीं से। ऐसा मान न कि सौदा ही नहीं किया था लेकिन इससे उसे उद्वेग हो जाता है और उसमें घर वाले कहते हैं, 'क्यों ऐसे हो गए हो, क्यों ऐसे हो गए हो?' लेकिन क्या हो? देखो उद्वेग, उद्वेग, उद्वेग,

उद्वेग! जो वेग नीचे जाना चाहिए वही वेग ऊपर चढ़ा। सौदा करने के बाद सामने वाले ने मना कर दिया तो, उसमें क्या बिगड़ गया? सौदा किया ही नहीं था, ऐसा मान लो लेकिन देखो उद्वेग, उद्वेग, उद्वेग!

ये लोग क्या करते हैं? एक नुकसान होता है तब दो नुकसान खड़े कर देते हैं जबकि 'ज्ञानीपुरुष' एक ही नुकसान होने देते हैं।

प्रश्नकर्ता : यह जो उद्वेग होता है, वह मोह के कारण ही है न?

दादाश्री : 'ये दस हज़ार गए', वह तो उसका मोह है उसके पीछे। एक नुकसान तो हुआ, वह तो हो चुका। अब उसके लिए परेशान क्यों होता है?! यह तो भाग्य में एक ही नुकसान लिखा हुआ था, लेकिन दूसरा नुकसान किसलिए उठा रहा है? एक नुकसान उठाना अच्छा है या दो? एक ही। लेकिन ये सभी लोग दो नुकसान उठाते हैं। फिर वे वापस अगले जन्म के लिए वैसे के वैसे ही कर्म बाँधते हैं।

एक क्षण भी उद्वेग में क्यों रहें? उद्वेग तो कितने कर्म बंधवा देता है। एक क्षणभर के लिए भी हम उद्वेग में नहीं रहे हैं कभी भी, यह 'ज्ञान' हुआ तब से।

वेग, आवेग और उद्वेग

प्रश्नकर्ता : वेग, आवेग और उद्वेग, यह समझाइए।

दादाश्री : वेग साहजिक चीज़ है और आवेग असहज है। खुद कर्ता बने तब 'आवेग' होता है जबकि उद्वेग तो, खुद को नहीं करना हो फिर भी हो जाता है। खुद की इच्छा नहीं हो फिर भी उद्वेग हो जाता है, और वह उद्वेग ऐसा उद्वेग है कि सिर फोड़ डाले। सिर फटने लगता है। वेग तो ज्ञानियों में भी होता है, आवेग नहीं होता और उद्वेग तो होता ही नहीं है न!

जब तक आवेगवाला है, तब तक, वह कहा नहीं जा सकता कि कब उद्वेग होने लगेगा। हाँ, आवेग की गैरहाज़िरी हुई कि उद्वेग गया। कर्तापद का भान टूटा कि उद्वेग नहीं होगा। फिर भी, उद्वेग भी हिसाब

है लेकिन अगर कर्तापद का भान टूट गया तो उस उद्वेग का जो हिसाब भुगतना है, वह उद्वेग के रूप में नहीं आता। दूसरी तरह से आकर उलझाकर चला जाता है। 'सफोकेशन' करवाता है सिर्फ, घुटन करवाता है।

एक व्यक्ति ने मुझसे कहा, 'दादा, ऐसा लग रहा है, जैसे सिर फटने को है', वही उद्वेग है। क्या करे फिर? लेकिन भाई, सिर कभी फटता होगा? यह खोपड़ी तो ऐसी है कि फट नहीं सकती। हथौड़ा मारें तब भी नहीं फटती ऐसी है, लेकिन देखो न उद्वेग की मुश्किलें! उद्वेग ऐसा आता है न, तो अंदर की नसें टूट जाती हैं। अब वह व्यापार नहीं करता है फिर भी अपने आप हो जाता है, नहीं करता है फिर भी हो जाता है क्योंकि जहाँ आवेग के व्यापारी होते हैं, वहाँ पर उद्वेग अवश्य आएगा ही। अपना ज्ञान प्राप्त करने के बाद आवेग के व्यापार बंद हो जाते हैं, इसलिए फिर उद्वेग आएगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उद्वेग तो, पूर्वजन्म की कमाई लेकर आया होता है न?

दादाश्री : हाँ, वह सारी कमाई फिर भोगनी पड़ेगी ज़रा। उस उद्वेग की कमाई को भोगने का मज़ा भी बहुत आएगा न?

प्रश्नकर्ता : क्रोध के साथ उद्वेग का संबंध है क्या?

दादाश्री : हाँ, क्रोध है तो उद्वेग होगा ही! आवेग भी, क्रोध है, तभी तक होता है। यानी जब तक कर्ता है तब तक क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, और तभी तक वे काम करते रहते हैं, लेकिन जब तक वे सभी कषाय सीमा में रहें तब तक वह आवेग कहलाता है और खुद की शक्ति से बाहर हो जाए, तब उद्वेग कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : उद्वेग आए तब भानसहित जाप करने से फर्क पड़ेगा न?

दादाश्री : उद्वेग आए तब सभानता रहती भी नहीं है न! यदि बहुत छोटे प्रकार का उद्वेग आए तो थोड़ी बहुत सभानता रहती है, तब

जाप करने से बंद हो जाता है लेकिन अगर बड़े प्रकार का आए तब तो वहाँ पर सभानता रहती ही नहीं है न!

आपको ये तीन शब्द समझ में आए 'एक्ज़ेक्ट'? उनकी अपनी जगह पर?

प्रश्नकर्ता : इन तीन शब्दों पर किसी 'पीएच.डी' वाले ने पूरी पुस्तक लिखी होती न और पढ़ी होती न, तब भी समझ में नहीं आ पाता, और यह आपके कहने से समझ में आ गया।

दादाश्री : यानी ये शब्द जब उनकी अपनी जगह पर शोभायमान होंगे तभी उन शब्दों का अर्थ मिलेगा, वर्ना नहीं मिलेगा। उनकी अपनी जगह पर शोभायमान होने चाहिए। वेग को उद्वेग पर बिठा देंगे तो क्या होगा? वह चीज़ दूसरी जगह पर शोभायमान होगी भी नहीं। लोग शब्दों को कैसे भी बोल देते हैं, शोभायमान हों या नहीं हों, उसकी कुछ पड़ी ही नहीं न!

ये लुच्चे लोग उनकी अपनी जगह पर शोभा देते हैं। जेब कतरे उनकी अपनी जगह पर शोभा देते हैं और हीरे के व्यापारी उनकी अपनी जगह पर शोभा देते हैं। नहीं तो जेब कतरे के साथ हीरे के व्यापारी आए तो शोभा देगा क्या? चारों ओर से काट लेंगे इसलिए हर कोई अपनी-अपनी जगह पर शोभा दे रहा है।

लोग वैधव्य का तिरस्कार करते हैं। अरे, वैधव्य शब्द उसकी अपनी जगह पर शोभित हो रहा है। विवाह और वैधव्य दोनों 'एक्ज़ेक्ट' ही हैं।

उद्वेग, कितनी मुश्किल

प्रश्नकर्ता : मतभेद के कारण भी उद्वेग तो हो जाता है न?

दादाश्री : हाँ। मतभेद से ही उद्वेग होता है। जब सबकुछ 'एक्सेस' हो जाता है, उसके बाद उद्वेग शुरू हो जाता है। जब हद से बढ़ जाए तब। लोग छुरी भोंक देते हैं न, चाकू मारते हैं न! वे उद्वेग होने पर ही मारते हैं।

प्रश्नकर्ता : उद्वेग को *अजंपा* (बेचैनी, अशांति) कह सकते हैं?

दादाश्री : *अजंपा* तो बहुत अच्छा होता है। *अजंपा* तो, प्याला गिर जाए तब भी *अजंपा* होता है। *अजंपा* तो सरल होता है। उद्वेग तो ऐसा लगता है जैसे सिर में झटके लग रहे हो। जबकि *अजंपा* तो प्याले गिर जाएँ तो *अजंपा* और *कढ़ापा* (कुढ़न, क्लेश) होता रहता है। यह तो, बहुत बड़ा जोखिम हो गया हो तब उद्वेग होता है। 'इमोशनल' हुआ कि उद्वेग शुरू हो जाता है। उद्वेग तो उसे सोने भी नहीं देता न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'इमोशनल' लोगों को चिंता अधिक होती है न?

दादाश्री : चिंता नहीं, उद्वेग बहुत होता है और वह उद्वेग तो मरने जैसा लगता है। 'मोशन' अर्थात् वेग में और 'इमोशनल' अर्थात् उद्वेग।

प्रश्नकर्ता : अब, वेग भी गति में है न?

दादाश्री : वेग तो निरंतर रहना ही चाहिए। वेग, 'मोशन' तो रहना ही चाहिए। जीव में वेग तो अवश्य होता ही है और तभी वह 'मोशन' में रहता है। किसी भी जीव में वेग अवश्य होता है। जो त्रस्त जीव हैं, यानी ऐसे जीव जो त्रस्त हो जाते हैं। यों हाथ लगाते ही भाग छूटते हैं, भाग जाते हैं। जिन्हें भय लगता है, उन सभी में वेग अवश्य होता है लेकिन जो एकेन्द्रिय जीव हैं, ये पेड़-पौधे हैं, उनमें वेग नहीं होता है। उनका वेग अलग प्रकार का होता है लेकिन बाकी सभी जीवों में तो यह वेग रहता ही है। वे वेग में तो रहते ही है, निरंतर 'मोशन' में। अगर उस सारे वेग को हिलाया तो 'इमोशनल' हो जाता है, वह उद्वेग कहलाता है। गाड़ी अगर 'इमोशनल' हो जाए तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : नुकसान हो जाएगा। 'एक्सिडन्ट' हो जाएगा और लोग मर जाएँगे।

दादाश्री : उसी प्रकार से इस देह में भी अंदर बहुत जीव मर जाते हैं। उनकी जोखिमदारी आती है और फिर खुद के उद्वेग की वजह से दु:ख होता है, वह दूसरी जोखिमदारी है।

उद्वेग कैसा होता है? कि यहाँ से पटरी पर फिकवा देता है, नदी में गिरवा देता है, वर्ना दूसरा कुछ पी लेता है। उद्वेग अर्थात् वेग ऊपर चला जाता है, अंदर दिमाग़ में चढ़ जाता है और (रेल की पटरी पर) कूद जाता है। नहीं तो खटमल मारने की दवाई खाली कर देता है। 'अरे, शीशी खाली कर दी?' तब वह कहता है, 'हाँ, मैं पी गया।'

उद्वेगवाला इंसान बच नहीं सकता। अरे, उद्वेग हो जाए तब तो यहाँ पर दर्शन करने भी नहीं आने देता। उद्वेग तो बहुत बड़ी चीज़ है। सभी ने तो उद्वेग देखा ही नहीं है न! यह 'ज्ञान' है इसलिए *निर्जरा* (आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना) के रूप में सबकुछ चला जाएगा। अत: उद्वेग से कहें कि 'जितने आने हों उतने आओ। अभी तो जब तक शरीर अच्छा है, तब तक आ जाओ। फिर बुढ़ापे में मत आना।' अभी तो शक्ति है इसलिए अभी आना हो तो आ जाओ, अभी तो धक्का मारकर भी उसे निकाला जा सकता है।

उन परिबलों से दूर चले जाओ

प्रश्नकर्ता : तो इस उद्वेग का उपाय क्या है?

दादाश्री : उसका उपाय तो, किस निमित्त से वह उद्वेग होता है, उसे ढूँढ निकालना पड़ेगा। कोई व्यक्ति नुकसान पहुँचाता रहे और यदि वह व्यक्ति याद आ जाए तो उद्वेग हो जाता है उसे। तो जिस जगह पर उद्वेग हो रहा हो, वहाँ से निकल जाना चाहिए। या फिर जिस चीज़ से उद्वेग होता है, वह बिल्कुल सोने की हो तब भी फेंक देनी चाहिए। वह अपनी सगी नहीं है। जो उद्वेग करवाते हुए आती है, वह अपनी 'रिश्तेदार' नहीं है। शांति देते हुए आए, वही सच्चा। ज़रा सा भी उद्वेग हो वह मोक्ष का मार्ग नहीं है। वेग में ही रहना चाहिए, 'मोशन' में ही।

शायद यदि कोई उद्वेग करवाने वाली चीज़ हो न, जैसे कि एक बेटा नहीं कमा रहा हो, तो हमें समझ जाना चाहिए कि यह उद्वेग करवाने वाली चीज़ है। तो हमें उसके साथ व्यवहार और संबंध बंद कर देना चाहिए, पैसे संबंधी व्यवहार बंद कर देना चाहिए। उससे 'भाई,

कैसा है ? फलाना कैसा है ?' ऐसी बातचीत करनी चाहिए। आपको समझ में आया न ?

प्रश्नकर्ता : जिस चीज़ से उद्वेग हो वह चीज़ छोड़ देनी चाहिए, लेकिन उद्वेग 'रिलेटिव' भाग है। उद्वेग के संयोग मिलेंगे तो उद्वेग हुए बगैर रहेगा नहीं।

दादाश्री : हाँ, उद्वेग हुए बगैर नहीं रहेगा लेकिन किस कारण से वह उद्वेग है, उस बेल की जड़ होती है वापस। यानी उद्वेग के लिए क्या करना पड़ेगा ? जड़ से ही उखाड़ देना पड़ेगा।

बुद्धि ही लाती है उद्वेग

प्रश्नकर्ता : अहम् भाव, अभिमान, वे रखने से यह सारा उद्वेग होता है ?

दादाश्री : नहीं, अभिमान से उद्वेग नहीं होते। उद्वेग करवाने वाली एक दूसरी चीज़ है। यहाँ पर 'लाइट' 'डिम' है और यहीं पर सब को सो जाना है। अब आपने यहाँ पर छोटे से साँप को घुसते हुए देखा, अन्य किसी ने नहीं देखा। अब, सभी को सो जाना है, तो जिन्होंने नहीं देखा वे पूरी रात आराम से सो जाएँगे न ?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : और देखने वाले को ?

प्रश्नकर्ता : उसे नींद नहीं आएगी।

दादाश्री : उसका क्या कारण है ? उसे साँप के अंदर घुसने का ज्ञान हो गया है जबकि बाकी के लोगों को साँप के घुसने का ज्ञान नहीं है, इसलिए उन्हें नींद आ जाती है। अब आपको नींद कब आएगी ? साँप के निकल जाने का ज्ञान हो जाएगा तब आपको नींद आएगी। अब इसका कब अंत आएगा ? इसलिए यह सब 'इमोशनल' हो जाता है। यह बुद्धि 'इमोशनल' करती है। अहम् तो नहीं करता। अहम् तो बेचारा बहुत अच्छा है। यह सारी कारस्तानी बुद्धि की है यानी कि

बुद्धि ही परेशान करती है, वही उद्वेग लाती है। वेग में से उद्वेग में लाती है।

जिसे उद्वेग होता है, खुद वह नहीं है

प्रश्नकर्ता : लेकिन अभी तो हममें भी उद्वेग भाव प्रकट होता रहता है न?

दादाश्री : उद्वेग होता है और वेग भी होता है, दोनों होते हैं लेकिन 'चंदूभाई' को होते हैं। 'आपको' नहीं होते। 'आपको' पता चलता है कि 'चंदूभाई' को उद्वेग हुआ। यदि 'चंदूभाई' ने उद्वेग का व्यापार किया होगा तो उद्वेग होगा। नहीं तो आवेग आएगा, नहीं तो वेग आएगा। इन सब का पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उद्वेग में फँसे हुए रहते हैं न!

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। फँसे हुए तो, आप अपने आपको फँसा हुआ मानते हो या फिर 'चंदूभाई' फँसा हुआ लगता है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'चंदूभाई' फँसा हुआ रहता है न?

दादाश्री : वे तो फँसे रहेंगे। उससे आपको क्या है? वह तो जितना डिस्चार्ज है वह पूरा हुए बगैर चारा ही नहीं है। उसमें चलेगा ही नहीं न! आपको अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए कि मैं फँस गया क्योंकि शुद्धात्मा तो शुद्धात्मा ही है। उसे कुछ भी स्पर्श नहीं करता, वही शुद्धात्मा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा दिखता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसके बावजूद भी 'चंदूभाई' वैसे के वैसे ही रहे।

दादाश्री : जो रहे हैं, वह कर्म का *निकाल* ही हो रहा है। लोगों को दान दे रहे हों तो आप कहो कि 'चंदूभाई बहुत अच्छे हैं,' वह भी 'वे ही' हैं और जो ऐसा उद्वेग करते हैं, वह भी 'वे ही' हैं। दोनों एक ही हैं, एक स्वभावी ही हैं। कड़वे पर तिरस्कार है और मीठे पर ज़रा राग है, वह मनुष्य का स्वभाव है। भगवान ने दोनों को एक स्वभावी ही कहा है।

श्रीमद् राजचंद्र ने कहा है कि,

रजकण के रिद्धि वैमानिक देव नी,
सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो।

एक ही स्वभाव का *पुद्गल* है। कसाई और दानेश्वरी दोनों ही *पुद्गल* हैं। कसाई पर जिसे चिढ़ नहीं होती, और दानेश्वरी पर राग नहीं होता, वह वीतराग!

प्रश्नकर्ता : आप बाहर के किसी भी 'स्टेशन' पर रुकने की जगह ही नहीं रहने देंगे।

दादाश्री : लेकिन बाहर के 'स्टेशन' पर रहोगे तो मार खाओगे। इतने समय तक तो मार खाई है, अब फिर से मार खानी है? इसलिए हम मार नहीं खाने की जगह बता देते हैं, जहाँ आपको कभी भी मार नहीं खानी पड़ेगी। अभी तक मार ही खाई है न! 'ज्ञान' लेने से पहले आपने मार नहीं खाई थी? थोड़ी बहुत खाई थी न? बाकी, मार खा-खाकर सभी का दम निकल चुका है।

अर्थात् बुद्धि ही परेशान करती है। वही उद्वेग लाती है, वेग में से उद्वेग लाती है। मुझमें से तो जब बुद्धि बिल्कुल चली गई न, तब मुझे ठंडक हुई। इसलिए मैंने पुस्तक में लिखा है न, कि 'मैं अबुध हूँ।' यह तो बहुत अच्छा विशेषण कहा जाएगा न! मैंने देखा कि कोई भी यह विशेषण लेने को तैयार ही नहीं है। अगर हम कहें, 'आपको अबुध का विशेषण देते हैं,' तो कहेंगे, 'नहीं साहब, मुझे अधिक बुद्धि चाहिए।' हमें तो अबुध का विशेषण मिला है, इसलिए 'इमोशनल' ही नहीं होते न! जब देखो तब 'मोशन' में ही रहते हैं।

शंका की जड़

प्रश्नकर्ता : 'अधिक बुद्धि चाहिए', कहते हैं, लेकिन उन अधिक बुद्धिशाली लोगों को ही अधिक शंका होती है न?

दादाश्री : हाँ। वह तो ऐसा है न, अभी तो विपरीत बुद्धि का

असर है। वह विपरीत बुद्धि बहुत शंकाएँ करवाती हैं। भयंकर अज्ञानता, उसी को शंका कहते हैं। उसे हर तरफ की समझ नहीं मिली है, इसलिए 'सॉल्व' नहीं हुआ, इसलिए वह शंका में पड़ा। 'सॉल्व' हो जाए तो वह शंका में नहीं पड़ेगा। बुद्धि लगाकर देखता है और यदि बुद्धि को आगे जाने का रास्ता नहीं मिलता तो शंका खड़ी करती है। यह 'व्यवस्थित' समझ में आ जाए तो कोई भी शंका खड़ी ही नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : तो शंका का मूल क्या है? शंका क्यों होती होगी?

दादाश्री : शंका तो बुद्धि की दखल है, आवश्यकता से अधिक बुद्धि की दखल है वह। यानी कि शंका उत्पन्न करवाने वाली बुद्धि, सबकुछ उल्टा दिखाती है। वह शंका खड़ी करवाती है, अनर्थकारी! जगत् के सभी अनर्थों की सब से बड़ी जड़ हो तो वह शंका है, उससे फिर उसके अंदर वहम आ जाता है। पहले वहम होता है। बुद्धि उसे वहम करवाती है। यानी शंका बुद्धि का ही प्रदर्शन है। इसलिए अपने यहाँ तो मैं एक ही बात कहता हूँ कि किसी भी प्रकार की शंका रखना ही मत। और शंका रखने जैसा जगत् में खास कारण है भी नहीं। यानी की शंका की जड़, बुद्धि है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह बुद्धि तो अच्छा दिखाती है और खराब भी दिखाती है।

दादाश्री : नहीं। जिसमें ज़रूरत लायक ही बुद्धि है, खुद की 'नेसेसिटी' लायक बुद्धि है, उसकी अगर पाँच बेटियाँ होंगी फिर भी विचार ही नहीं आएगा, विचार आए तब शंका होगी न?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् अधिक बुद्धि हो तभी यह गड़बड़ होती है?

दादाश्री : बुद्धि ही अधिक गड़बड़ करती है क्योंकि इस काल की बुद्धि विपरीत मानी जाती है, व्यभिचारिणी बुद्धि कहलाती है, इसलिए फिर मार ही खिलाती रहती है।

प्रश्नकर्ता : और ज़रूरत लायक बुद्धि वाले को तो विचार ही नहीं आता, ऐसा है?

दादाश्री : हाँ। ज़रूरत लायक बुद्धि वाले कुछ लोग हिन्दुस्तान में हैं, उन्हें फिर दूसरा कुछ विचार ही नहीं आता। अक्ल वाले यानी अधिक सोचने वाले, अधिक बुद्धि वाले। अक्ल वाले के लिए हमें ऐसा होता है न, कि तू कितनी मार खाएगा? इसलिए जब भी कोई दुःख भुगतना पड़ता है, वास्तव में दुःख भुगतना पड़ता है, तब शंका उत्पन्न होती है।

संशयात्मा विनश्यति

प्रश्नकर्ता : गीता में कहा है कि 'संशयात्मा विनश्यति।' तो उसमें आत्मा संबंधी संशय होता है या दूसरा कोई संशय होता है?

दादाश्री : संशय सभी को होता है। उसमें संशय रहित कोई मनुष्य नहीं होता। उसे तो इस जगत् में किसी पर भी विश्वास ही नहीं आता, संशय ही होता रहता है और संशय से वह मर जाता है, मरा हुआ ही है न!

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में संशय या निश्चय में संशय? कौन सा संशय?

दादाश्री : निश्चय में संशय तो पूरे जगत् को है ही। वह तो नियम से है। कृष्ण भगवान ने व्यवहार में 'संशयात्मा विनश्यति' लिखा है। जिस व्यक्ति को हर कहीं पर शंका होती है, पत्नी पर शंका होती है, बाप पर शंका होती है, माँ पर शंका होती है, भाई पर शंका होती है, वह व्यक्ति मरा हुआ ही है न! सभी पर शंका होती है, वह मनुष्य जीएगा ही कैसे? पूरा जगत् आत्मा के संशय में तो है ही, उन्हें मरना नहीं पड़ता लेकिन जो व्यवहार में संशयवाला है वह मर जाएगा, वह मरा हुआ ही है। उस व्यक्ति को किसी पर विश्वास नहीं आता, संशय होता रहता है। खुद उधार देना चाहता है और कर्ज़दारों पर संशय होता रहता है, तो वह व्यक्ति मृत समान ही है। बेटियाँ कॉलेज में जाती हैं, तो 'फादर' के मन में होता है कि 'उम्र हो गई है, अब ये लड़कियाँ क्या कर रही होंगी? वे क्या करती हैं? कैसे मित्र रखती हैं?' यों संशय ही करता रहता है। वह मृत समान ही है न!

संशय तो काम का ही नहीं है। संशय तो, ये जो चाकू लेकर मारने जाते होंगे, उन्हें ज़रा सा भी संशय नहीं होता, तभी तो वे मारने जाते हैं! और मरने वाले को भी ज़रा सा भी संशय नहीं होता, तभी मरता है लेकिन वह एक ही बार मरता है और यह संशयात्मा, वह तो हमेशा के लिए मरा हुआ ही है।

शंका अलग, जिज्ञासा अलग

प्रश्नकर्ता : शंका और जिज्ञासा में क्या फर्क है?

दादाश्री : शंका और जिज्ञासा में क्या संबंध है? शंका और जिज्ञासा, वे दोनों एक परिवार के तो हैं ही नहीं, लेकिन रिश्तेदार तक भी नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : ये वैज्ञानिक जो हैं, वे लोग शोध करते हैं, उसमें खुद शंका रखकर ही आगे बढ़ते हैं।

दादाश्री : कोई ऐसा वैज्ञानिक पैदा नहीं हुआ है कि जो एक मिनट से अधिक शंका रखे। नहीं तो उसका विज्ञान चला जाएगा, खत्म हो जाएगा। क्योंकि शंका अर्थात् आत्महत्या! जिसे शंका करनी हो, वह करे।

प्रश्नकर्ता : वैज्ञानिक बगैर शंका के मानते नहीं है। वे लोग शंका करते हैं इसलिए खोज कर पाते हैं।

दादाश्री : वह शंका नहीं है। वह उत्कंठा है, जानने की। उन्हें शंका नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : आप लोगों पर शंका करने को मना करते हैं?

दादाश्री : लोग क्या, कहीं पर भी शंका नहीं करनी चाहिए। इस पुस्तक पर भी शंका नहीं करनी चाहिए। शंका अर्थात् आत्महत्या!

प्रश्नकर्ता : तो फिर हर एक पुस्तक में लिखा हुआ सबकुछ मान लेना चाहिए?

दादाश्री : मान नहीं लेना है। एक ही मिनट के लिए शंका रखकर और पलट जाना है। उससे आगे गए तो शंका इतना बड़ा 'पोइज़न' है कि उसे एक मिनट से अधिक लिया गया तो वह आत्महत्या समान है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि गलत ही लिखा हो तो क्या होगा?

दादाश्री : गलत होता ही नहीं है लेकिन यदि शंका होती है, तो एक मिनट शंका करके फिर शंका बंद कर देनी चाहिए।

भक्तों के लिए तो...

प्रश्नकर्ता : आजकल हिन्दुस्तान में सभी धर्मात्मा, धर्मगुरु कहते हैं कि 'मैं ही भगवान स्वरूप हूँ।' क्या वह मान लेना चाहिए? शंका नहीं करनी चाहिए?

दादाश्री : हाँ, सब लिखें तो उसमें क्या है? हमें शंका रखने की ज़रूरत नहीं है। हमें समझ में आ ही जाता है कि यह गलत है। शंका रखने की बात ही कहाँ है? शंका अलग चीज़ है। आप जिसे शंका कहना चाहते हो उस शंका की ज़रूरत ही नहीं है। 'हम भगवान हैं,' उसमें तो शंका की ज़रूरत ही नहीं है। अभी वह भगवान बनकर, और फिर 'वह भगवान और खुद भक्त' की तरह लोगों की गाड़ी चलती रहती है। उसमें शंका हो जाना संभव है क्योंकि उसमें अगर करार टूट जाए या कुछ नई प्रकार का दिखे तब शंका होने की संभावना है। वर्ना, यों ही शंका होने का कोई कारण ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : हर एक भगवान के भक्त तो ऐसा ही कहते हैं कि हमारे भगवान तो संपूर्ण भगवान हैं।

दादाश्री : ऐसा ही कहना चाहिए। यदि ऐसा नहीं कहते तो मैं उन्हें कहता ही हूँ कि, 'भाई, आप संपूर्ण मानना। यहाँ से भी अधिक उच्च है वह।' तब वे कहते हैं, 'यहाँ के बराबर ही हैं?' मैंने कहा, 'यहाँ से भी अधिक उच्च प्रकार के हैं वे।' एक संत के लिए भी मैंने उनके भक्तों से कहा था कि, 'भाई, यहाँ से अधिक उच्च प्रकार का है।

इसलिए आप वहाँ पर जाओ।' वे अगर संपूर्ण कहेंगे तभी वहाँ पर बैठेंगे, नहीं तो ये लोग खड़े रहेंगे बेचारे! और शंका होती रहेगी कि, 'यह होगा या वह होगा? ये होंगे या वे होंगे?'

प्रश्नकर्ता : तो फिर वहाँ पर टकरा नहीं जाते? किसी भी जाँच-पड़ताल की जड़ तो शंका ही होती है न?

दादाश्री : जाँच-पड़ताल करके और सोच-समझकर खिसक जाना चाहिए हमें! जाँच करना, सोचना और हट जाना। शंका को बीच में लाने का कोई कारण ही नहीं है। शंका कब होती है? कि दोनों में 'एग्रीमेन्ट' हो चुका हो उसके बाद बीच में कुछ गड़बड़ हो जाए, तब शंका उत्पन्न होती है। यों ही तो शंका नहीं होती।

अर्थात् शंका कहाँ पर होती है? कि दोनों का कोई संबंध हो, उन दोनों में खुद के 'डिसाइडेड' अनुसार उससे कुछ अलग हो जाए तब शंका होती है कि यह क्या है! उसमें भी एक मिनट से अधिक शंका नहीं रखनी चाहिए। फिर तो उसे तय कर लेना चाहिए कि मेरा 'व्यवस्थित' ऐसा है। लेकिन शंका तो करनी ही नहीं चाहिए फिर। शंका अर्थात् आत्महत्या!

रखना, वहम का इलाज

प्रश्नकर्ता : इंसान के मन में जो वहम आता है, वह क्या है?

दादाश्री : कहाँ से आता है? किसी जगह से एक्सपोर्ट होना चाहिए न? तभी अपने यहाँ इम्पोर्ट होगा न!

किसी व्यक्ति ने दिन में भूत की बात सुन ली हो कि फलाने भाई को भूत लग गया है। उसकी पत्नी पीहर गई हुई हो, और वे भाई रूम में अकेले सो गए। सो जाने के बाद फिर रसोईघर में चूहे ने कोई प्याला खड़खड़ाया होगा! रात को बारह बजे प्याला खड़का और उस व्यक्ति ने आवाज़ सुनी। दिन में उसने भूत की बात सुनी थी, वह एविडेन्स इसमें मिल गया, इसलिए उसके मन में हुआ कि, 'कुछ है! इतना बड़ा

प्याला किसने गिराया?' यानी जब तक उसका पता नहीं चलेगा, तब तक उसका वहम जाएगा नहीं। यह जो ज्ञान मिला है, जब तक उसके विरुद्ध में दूसरा ज्ञान नहीं मिल जाता, तब तक ये भाई ऐसे के ऐसे ही रहते हैं और वहीं सुबह पाँच बजे कोई फ्रेन्ड आए कि, 'चंदूभाई उठिए।' तब चंदूभाई को हिंमत आ जाती है। क्या कहेंगे? कि 'मैं तो आज घबरा गया था।' उनका फ्रेन्ड कहे कि 'अंदर देखो तो सही, क्या है?' फिर जब देखता है तब पता चलता है कि यह तो चूहे ने गिरा दिया था, यह डिब्बा गिरा दिया था, यह प्याला गिरा दिया था, यह गिरा दिया वगैरह। यानी जो वहम घुसा हुआ था, वह निकल जाता है। यानी यह तो समझ बदलने के कारण नींद नहीं आती न! प्याला चूहे ने खड़खड़ाया लेकिन भूत का वहम घुस गया था, अतः वैसी समझ के कारण नींद नहीं आती है न? लेकिन जब वह वहम निकल जाए, खुद के पास ऐसी दवाई हो, तो पूरी रात नींद आएगी न? उससे इंसान सुखी हो जाएगा। थोड़ा बहुत भी समझे, तो वह सुखी हो जाएगा!

वह तो परमाणुओं के अनुसार

अतः वहम होना, वह अंदर भरा हुआ माल है। जो वहमी है न, वह स्त्रीत्व माना जाता है। क्योंकि हर एक इंसान में ये तीन प्रकार के परमाणु होते हैं। एक स्त्री के परमाणु होते हैं, पुरुष के परमाणु होते हैं और नपुंसक के परमाणु। इन तीनों प्रकार के परमाणुओं से यह शरीर बना हुआ है। उनमें से पुरुष के परमाणु अधिक होने से पुरुष के रूप में जन्म होता है। स्त्री के परमाणु अधिक हों तो स्त्री और नपुंसक के परमाणु अधिक हों तो वैसा हो जाता है। ये तीनों ही प्रकार के परमाणु अंदर कम-ज़्यादा अनुपात में हैं ही। ये वहम, संदेह, शंका ये सब स्त्री के परमाणु हैं। उनसे हमें कहना है, 'हम पुरुष हैं, तू गेट आउट!' मुझमें ऐसे परमाणु नहीं हैं, इसलिए मुझे किसी भी जगह पर संदेह ही नहीं होता।

प्रेजुडिस परिणामित शंका में

इंसान को शंका तो कभी भी नहीं करनी चाहिए। आँखों से देखा

हो फिर भी शंका नहीं करनी चाहिए। शंका जैसा एक भी भूत नहीं है। शंका तो करना ही मत। शंका उत्पन्न हो तभी से जड़ से निकाल देनी चाहिए कि, 'दादा' ने मना किया है। कोई कहे, 'यदि मैंने खुद देखा हो तो? कि कल यह व्यक्ति जेब में से रुपये ले गया था, और आज वापस आया है।' तब भी उस पर शंका नहीं करनी चाहिए। उस पर शंका करने के बजाय हमें अपनी सेफसाइड कर लेनी चाहिए क्योंकि शंका करना प्रेजुडिस कहलाता है। आज वह शायद ऐसा न भी हो, क्योंकि कितने ही लोग हमेशा के लिए चोर नहीं होते। कितने ही लोग संयोगवश चोर बन जाते हैं। बहुत ही तकलीफ आए तो चोरी कर लेते हैं, लेकिन वापस छः सालों तक नहीं दिखते। जेब में रख जाओ तब भी नहीं छूते। ऐसे संयोगवश चोर!

प्रश्नकर्ता : कई लोग शातिर होते हैं, वे चोरी करने का धंधा ही लेकर बैठे होते हैं।

दादाश्री : वे चोर, वह अलग चीज़ है। यदि ऐसे चोर हों न, वहाँ तो हमें कोट दूर रख देना चाहिए। इसके बावजूद भी उसे चोर नहीं कहना चाहिए, क्योंकि हम थोड़े ही उसे मुँह पर चोर कहते हैं! मन में ही कहते हैं न? मुँह पर कहेंगे तो पता चल जाएगा न! मन में कहने पर अपना जोखिम रहता है, मुँह पर कह दें तो हमें उसका जोखिम नहीं रहता। मुँह पर कह देंगे तो मार खाने का जोखिम है और मन में कहेंगे तो अपना जोखिम है। तब फिर क्या करना चाहिए हमें?

प्रश्नकर्ता : मन में भी नहीं रखना चाहिए और मार भी नहीं खानी चाहिए।

दादाश्री : हाँ, वर्ना मुँह पर कह देना अच्छा, सामनेवाला दो गालियाँ देकर चला जाएगा। लेकिन यह जो मन में रहा, उसकी जोखिमदारी आती है तो फिर उत्तम कौन सा? मन में भी नहीं रखना, और मुँह पर भी नहीं कहना, वही उत्तम। मन में रखना, उसे भगवान ने प्रेजुडिस कहा है। कल कर्म का उदय था और उसने लिया, और आज शायद कर्म का उदय नहीं भी हो क्योंकि, 'जगत् जीव हैं कर्माधीन!' ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : फिर भी लोग शंका रखने में बहुत पक्के हैं। नहीं क्या? हम तो शंका रखते ही नहीं हैं। और शंका पहले से ही बंद कर देते हैं, ताला ही लगा चुके हैं न! जो शंका निकाल देते हैं, वे 'ज्ञानी' कहलाते हैं। इस शंका के भूत से तो पूरा जगत् मर रहा है। कहेगा, 'यहाँ से होकर ऐसे गया था, कल यही अंदर आया था और ले गया था। वही अब इधर से गया वापस।' यों अंदर शंका उत्पन्न हुई।

प्रश्नकर्ता : यह आदमी गड़बड़ कर रहा है, उस पर ऐसी शंका हो तो क्या होगा?

दादाश्री : गड़बड़ कोई करता ही नहीं है। ऐसी शंका करनेवाला ही गुनहगार है। शंका करने वाले को जेल में डाल देना चाहिए। बाकी, ऐसी शंका करने वाले मार खाते हैं। शंका हो तो मार खाएगा। खुद ही मार खाएगा। कुदरत ही उसे मारेगी और किसी को नहीं मारना पड़ेगा।

जगत् किस प्रकार से क्षणभर भी चैन से रह सकता है?! कितनी तरह के भूत, और शंकाएँ कितनी तरह की! और शंका में दु:ख कितना होता होगा! ये सभी जितने भी ताप हैं न, ताप, संताप, परिताप, उत्ताप, वे सभी शंका से उत्पन्न हुए हैं।

शंका का समाधान

आपको कभी कोई शंका नहीं होती है न?

प्रश्नकर्ता : वह तो होती ही है न!

दादाश्री : आपको शंका होती है तब आप क्या करते हो?

प्रश्नकर्ता : जाँच करते हैं।

दादाश्री : जाँच करने से तो और अधिक शंका डालता है। अब यह जो शंका है न, यदि दुनिया में कोई चीज़ ऐसी है, जो कभी भी किसी भी प्रकार से आराधना करने योग्य नहीं है तो वह है शंका! तमाम दु:खों का मूल कारण यह शंका ही है।

यदि हमें कोई कहता था न कि, 'शंका शुरू हुई है।' तो हम तो उसे सिखाते थे कि, 'शंका को जड़मूल से उखाड़कर फेंक दो।' शंका रखने जैसा नहीं है। शंका से इंसान खत्म हो जाता है। किसी भी स्थिति में शंका नहीं रखनी चाहिए। फिर जो होना हो वह हो। शंका तो रखनी ही नहीं है क्योंकि जो कुछ भी होनेवाला है शंका रखने से वह कहीं कम नहीं हो जाता, बल्कि बढ़ता है। शंका और वहम वगैरह ऐसे बहुत तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शंका का रोग, और फिर वहम का रोग उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : तब फिर मनुष्य की शंका किस तरह से निकल सकती है?

दादाश्री : कभी भी नहीं निकल सकती इसलिए शंका को घुसने ही नहीं दे तो बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह जो शंका घुस गई है, वह किस तरह निकलेगी?

दादाश्री : वह तो अगर हमारे पास विधि करवाए तो उसे उससे छुड़वा सकते हैं। पर अंदर शंका उत्पन्न नहीं होना, वही मुख्य चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन शंका का समाधान तो होना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, शंका जाएगी तब कुछ ठीक होगा। ऐसा है न, यहाँ रात को आप सो गए हों और एक इतना छोटा सा साँप घर में घुसते हुए दिखा, फिर आपको घर में सोना पड़े तो क्या होगा? शंका रहेगी न? वह साँप निकल गया हो लेकिन आपने देखा नहीं हो, तो आपको शंका रहेगी या नहीं रहेगी? तो बाद में फिर क्या दशा होगी? उसके बाद नींद कितनी अच्छी आएगी?

प्रश्नकर्ता : नींद उड़ जाएगी!

दादाश्री : अब जो इस बारे में नहीं जानते, उन्हें नींद आएगी और जानने वाले लोग मन में ऐसा सोचते रहेंगे कि, 'अरे, हमने देखा है,

इसलिए अब (हमें) नींद नहीं आएगी लेकिन इन लोगों को तो सो जाने दो बेचारों को!' जो नहीं जानते वे खर्राटें लेने लगते हैं। जो जानकार है उसे तो नींद आएगी ही कैसे? क्योंकि उसे ज्ञान हो गया है कि इतना बड़ा साँप था, तो उसका अब क्या हो सकता है?

अत: शास्त्र क्या कहते हैं? कि साँप अंदर गया वह ज्ञान आपको हुआ था। जब ऐसा ज्ञान हो जाएगा कि साँप निकल गया है तभी आपका छुटकारा है। भले ही साँप निकल जाए, लेकिन अगर ऐसा ज्ञान नहीं हो जाता कि 'निकल गया,' तो आपके मन में शंका रहेगी और नींद नहीं आएगी। इधर-उधर करवट बदलते रहोगे। हम कहें, 'क्यों करवटें बदल रहे हो?' हाँ, यानी कि अंदर शंका रहती है कि 'साँप आ जाएगा तो? आ जाएगा तो?' यदि साँप आ जाता तो क्या ले जाता? जेब में से कुछ ले जाता?

प्रश्नकर्ता : जेब में से लेकर वह क्या करेगा?

दादाश्री : तब फिर और क्या करेगा?

प्रश्नकर्ता : डंक मारेगा।

दादाश्री : किसलिए? वह नियमवाला होगा या अनियमवाला? इस दुनिया में एक भी चीज़ बगैर नियम के एक क्षणभर भी नहीं होती। जो भी होता है वह नियमपूर्वक ही है इसलिए उसमें शंका मत करना। जो कुछ होता है वह कभी भी नियम से बाहर होता ही नहीं है। इसलिए उसमें शंका मत करना। जो हो चुका है वह नियमपूर्वक ही था। अब वहाँ पर अपना ज्ञान क्या कहता है? कि ''साँप घुस गया तो कोई बात नहीं, 'व्यवस्थित' है। सो जा न चुपचाप!'' अपना यह ज्ञान तो उसे नि:शंक सुला देता है!

इस तरह तो हम बहुत जगहों पर सो चुके हैं। क्योंकि हमारा सारा काम जंगल में ही था न, तो ऐसे हम कई जगह पर सो जाते थे। वह साँप इस तरफ सो रहा होता था, हमें दिखता भी था। फिर जब सुबह में उठते तब हम देखते थे कि 'वह साँप अभी तक यहीं पर सो रहा है,'

तो वह भी वहाँ सो जाता था और हम भी सो जाते थे। अब जंगल में वह बेचारा कहाँ जाए? उसे जहाँ जगह मिल जाए, वहीं पर उसका घर। उसका कोई ससुराल नहीं है न! हम तो दो-एक दिन ससुराल भी जा आते हैं!

इसलिए हमने 'व्यवस्थित' कहा है न, 'एक्ज़ेक्टनेस' है। उसमें नाम मात्र भी गलती नहीं है।

प्रत्येक पर्याय में से गुज़रकर

ये सब तो मेरी पृथक्करण की हुई चीज़ें हैं और ये सभी एक जन्म की चीज़ें नहीं हैं। एक जन्म में क्या इतने सारे पृथक्करण हो सकते हैं? अस्सी सालों में कितने पृथक्करण हो सकते हैं?! यह तो कितने ही जन्मों का पृथक्करण है, वह सब आज हाज़िर हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : इतने सारे जन्मों का पृथक्करण, वह इकट्ठा होकर आज किस तरह हाज़िर होता है?

दादाश्री : आवरण टूट गया इसलिए। अंदर ज्ञान तो है ही सारा। आवरण टूटना चाहिए न? ज्ञान की पूँजी तो है ही, लेकिन आवरण टूटने पर प्रकट होता है!

सभी फेज़िज़ का ज्ञान मैंने ढूँढ निकाला है। हर एक फेज़ में से मैं गुज़र चुका हूँ और हर एक फेज़ का मैं एन्ड ला चुका हूँ। उसके बाद यह ज्ञान हुआ है।

चंद्र के कितने फेज़? पूरे पंद्रह फेज़िज़। उन पंद्रह फेज़िज़ में तो अनंत काल से वह पूरे जगत् को नचा रहा है। फेज़िज़ पूरे पंद्रह, और उसमें तो वह पूरे जगत् को अनंतकाल से नचा रहा है। वही का वही चंद्रमा आज तीज का चंद्रमा कहलाता है, इतना ही है। जगत् के लोग उसे तीज कहते हैं लेकिन चंद्रमा वही का वही है। और फिर चंद्रमा क्या कहेगा? 'मैं तीज हूँ, मैं तीज हूँ।' तब जगत् के लोग बाहर निकलकर कहेंगे, 'क्या बक-बक कर रहा है? कल चौथ नहीं हो जाएगी? कल

बीज थी। क्यों बोलता ही रहता है?' चंद्रमा वही का वही है। यह बीज, तीज, चौथ, पाँचम होती ही रहेगी! और उस पर भी ये लोग शंका करते हैं। 'नहीं, यह तीज नहीं है, यह तो बीज है' कहेंगे। तब दूसरा क्या कहेगा, 'तीज है। इस पर भी शंका करते हैं कि यह बीज है?' ले! शंका को क्या ढूँढने जाना पड़ता है?

इसीलिए तो दुःखी हैं सभी। लोग दुःखी हैं, उसका कारण शंका ही है। निरा दुःख, दुःख और दुःख ही है इसलिए मैं इस बात को समझने का कह रहा हूँ न, कि 'समझो, समझो, समझो!' सभी फेज़िज़ समझने जैसे हैं। जगत् के तमाम फेज़िज़ मेरे पास आ चुके हैं। ऐसा एक भी फेज़ बाकी नहीं है कि जिसमें से मैं गुज़रा नहीं हूँ। हर एक जन्म के फेज़िज़ मेरे ध्यान में हैं और यह बात हर एक फेज़ के अनुभव सहित है।

'वह' 'सेटल' करे, व्यवहार

'जो' व्यवहार से बाहर है, वह 'सेटल' कर सकता है! वर्ना तब तक व्यवहार में सेटल नहीं हो सकता। जो व्यवहार में ही है, उसे तो व्यवहार का भान ही नहीं होता न! व्यवहार का आग्रह होता है। वह व्यवहार में ही रहता है, इसलिए व्यवहार का उसे पता ही नहीं होता है न! 'ज्ञानीपुरुष' व्यवहार से बाहर होते हैं इसलिए उनकी वाणी ही ऐसी निकलती है कि सामने वाले का सबकुछ एक्ज़ेक्ट हो जाता है। शंका निकालने से नहीं जाती है, ज्ञानीपुरुष के कहने से शंका चली जाती है। वर्ना शंका निकालने से नहीं जाती, बल्कि बढ़ जाती है।

शंका नुकसान ही करवाती है

बाहर तो दूसरे लोग उल्टा कहते हैं, जिसे पूछने जाएँ वह कहेगा, 'भाई, सही बात हो तब भी शंका होती है न! शंका नहीं होगी तो हम मनुष्य कैसे? क्या जानवरों को शंका होती है? हम मनुष्य हैं इसलिए इन बेटियों पर शंका तो होगी ही न?' ऐसा सिखाते हैं। मैं क्यों शंका खत्म कर देता हूँ? क्योंकि शंका तो कुछ भी हेल्प नहीं करेगी। एक बाल बराबर भी हेल्प नहीं करेगी और बेहद नुकसान करेगी इसलिए मैं

शंका को खत्म कर देता हूँ। शंका यदि हेल्प करती तो मैं ऐसा नहीं कह सकता था। शंका से अगर दस प्रतिशत भी हेल्प होती और नब्बे प्रतिशत नुकसान होता, तब भी मैं ऐसा नहीं कह सकता था। यह तो एक बाल बराबर भी हेल्प नहीं करती और नुकसान बेहद है।

शंका तो ठेठ मरण करवाए

यह शंका ही विनाश का कारण है। शंका ने ही मार दिया है लोगों को। शंका होने लगे तो शंका का एन्ड नहीं आता। शंका का एन्ड नहीं आता, इसलिए मनुष्य खत्म हो जाता है।

स्त्रियों को शंका होती है, तब भी लगभग वे भूल जाती हैं लेकिन यदि याद रह गई तो शंका ही उसे मार डालती है और पुरुष तो शंका नहीं हो रही हो, फिर भी उत्पन्न करते हैं। स्त्री शंका रखे, तब फिर वह डाकन कहलाती है। यानी भूत और डाकन दोनों चिपट गए। वे फिर मार ही डालते हैं इंसान को। मैं तो पूछ लेता हूँ कि किस-किस पर शंका होती है? घर में भी शंका होती है सब पर? अड़ोसी-पड़ोसी, भाई, पत्नी पर, सभी पर शंका होती है? तो फिर कहाँ पर होती है? आप मुझे बताओ तो मैं आपका ठीक कर दूँ।

बाकी, यह शंका तो, संक्रामक रोग फैला हुआ है। शंका करनेवाला बहुत दुःखी होता है न! मुश्किल है न! ये तो शंकाशील हुए इसलिए फिर सभी पर शंका होती है और इस दुनिया में शंकाशील और मृत, दोनों एक सरीखे ही हैं। जिस व्यक्ति को सब पर शंका होती है वह शंकाशील। शंकाशील और मृत व्यक्ति, दोनों में फर्क नहीं है। वह मृत समान ही जीवन जीता है।

सुंदर संचालन, वहाँ शंका कैसी?

शंका किसी भी चीज़ पर नहीं रखनी चाहिए। शंका तो महादुःख है। उसके जैसा कोई दुःख है ही नहीं।

रात को कभी आपने हांडवा (एक गुजराती व्यंजन) खाया है?

और फिर वह हांडवा खाकर और थोड़ा दूध पीकर सो जाते हो या नहीं सो जाते? तो फिर अंदर जाँच नहीं की कि अंदर पाचक रस डले या पित्त डला या नहीं डला, वह सब? बाइल कितना डला, कितने पाचकरस डले, वह सब जाँच नहीं किया?

प्रश्नकर्ता : वह सब तो हो ही जाता है न! वह ऑटोमेटिकली होगा ही। उसके लिए जाँच करने की क्या ज़रूरत?

दादाश्री : तो क्या बाहर ऑटोमेटिक नहीं होता होगा? यह अंदर तो इतना बड़ा तंत्र अच्छी तरह से चलता है। बाहर तो कुछ करना ही नहीं है। अंदर तो खून, यूरिन, संडास सबकुछ अलग कर देता है, कितना सुंदर कर देता है! फिर, छोटे बच्चे की माँ हो तो उस तरफ दूध भी भेज देता है। कितनी तैयारी है सारी! और आप तो चैन से गहरी नींद सो जाते हो! और अंदर तो सब अच्छा चलता रहता है। कौन चलाता है यह? अंदर का कौन चलाता है? और उस पर शंका नहीं होती?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो बाहर की भी शंका नहीं करनी चाहिए। अंत:करण में जो कुछ हो रहा है वही बाहर होता है, तो किसलिए हाय-हाय करता है? बीच में हाथ किसलिए डालते हो फिर? यह परेशानी क्यों मोल लेते हो? बिना बात की परेशानी!

शंका सर्वकाल जोखिमी ही

ये बेटियाँ बाहर जाती हैं, पढ़ने जाती हैं, तब भी शंका। वाइफ पर भी शंका। इतना अधिक दगा! घर में भी दगा ही है न, आजकल! इस कलियुग में खुद के घर में ही दगा होता है। कलियुग अर्थात् दगेवाला काल। कपट और दगा, कपट और दगा, कपट और दगा! ऐसे में कौन से सुख के लिए करता है? वह भी बगैर भान के, बेभान रूप से! बुद्धिशाली व्यक्ति में दगा और कपट नहीं होता है। निर्मल बुद्धि वाले में कपट और दगा नहीं होता। आजकल तो फूलिश इंसान में कपट और दगा होता है। कलियुग यानी सब फूलिश ही इकट्ठे हुए हैं न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह जो दगा और कपट होता है, उसमें राग और द्वेष काम करते हैं न?

दादाश्री : वह राग और द्वेष हैं, तभी ऐसा सब काम होता है न! वर्ना जिसे राग-द्वेष नहीं है, उसे तो कुछ भी है ही नहीं न! जिसमें राग-द्वेष नहीं हैं तो वह जो कुछ भी करे, वह कपट करे तो भी हर्ज नहीं और अच्छा करे तब भी हर्ज नहीं क्योंकि वह धूल में खेलता ज़रूर है लेकिन तेल नहीं चुपड़ा है जबकि राग-द्वेष वाले तो तेल चुपड़कर धूल में खेलते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह दगा और कपट करने में बुद्धि का योगदान है न?

दादाश्री : नहीं, अच्छी बुद्धि कपट और दगे को निकाल देती है। बुद्धि सेफसाइड रखती है। एक तो शंका मार डालती है, और फिर यह कपट और दगा तो हैं ही, और फिर सभी अपने खुद के सुख में ही डूबे रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन खुद अपने सुख में रहने के लिए बुद्धि के उपयोग से दगा और कपट कर सकता है न?

दादाश्री : जहाँ खुद अपने आपके लिए सुख ढूँढते हैं वहाँ पर अच्छी बुद्धि है ही नहीं न? अच्छी बुद्धि तो सामुदायिक सुख खोजती है कि 'मेरा पूरा परिवार सुखी हो जाए।' लेकिन यहाँ तो बेटा अपना सुख ढूँढता है, पत्नी अपना सुख ढूँढती है, बेटी अपना सुख ढूँढती है, बाप अपना सुख ढूँढता है, हर कोई अपना-अपना सुख ढूँढता है। इसे यदि खोलकर बता दें न, तो घर के लोग एक साथ नहीं रह सकेंगे, लेकिन ये सब तो इकट्ठे रहते हैं और खाते-पीते हैं! ढँका हुआ है वही अच्छा है।

वर्ना शंका रखने योग्य चीज़ है ही नहीं, किसी भी प्रकार से। वह शंका ही इंसान को मार डालती है। ये सब लोग शंका के कारण ही मर रहे हैं न! यानी इस दुनिया में सब से बड़ा भूत यदि कोई हो तो वह

शंका का है! सब से बड़ा भूत! जगत् के कई लोगों को खा चुकी है, निगल चुकी है! इसलिए शंका होने ही मत देना। शंका का जन्म होते ही मार देना। चाहे कैसी भी शंका हो तो जन्म होते ही उसे मार देना, उसकी बेल को बढ़ने मत देना। नहीं तो चैन से बैठने नहीं देगी शंका, वह किसी को चैन से नहीं बैठने देती। शंका ने तो लोगों को मार डाला है। बड़े-बड़े राजाओं को, चक्रवर्तियों को भी शंका ने मार डाला था।

उसके जोखिम तो भारी

यदि लोगों ने कहा हो कि 'यह नालायक इंसान है' तब भी हमें उसे लायक कहना चाहिए क्योंकि शायद वह नालायक न भी हो। यदि उसे नालायक कहोगे तो बहुत दोष लगेगा। सती को यदि वेश्या कह दिया तो भयंकर गुनाह है। उसका फल कितने ही जन्मों तक भुगतते रहना पड़ेगा इसलिए किसी के भी चारित्र के संबंध में बोलना ही मत क्योंकि यदि वह गलत निकला तो? लोगों के कहने से यदि हम भी कहने लगे तो फिर हमारी क्या कीमत रही? हम तो किसी को ऐसा कभी भी नहीं कहते और किसी को कहा भी नहीं है। मैं तो हाथ ही नहीं डालता न! उसकी ज़िम्मेदारी कौन ले? किसी के चारित्र संबंधी शंका नहीं करनी चाहिए। बहुत बड़ा जोखिम है। शंका तो हम कभी भी करते ही नहीं हैं। हम किसलिए जोखिम मोल लें?

अंधेरे में, आँखों पर कितना ज़ोर दें?

प्रश्नकर्ता : लेकिन मन में शंका सहित देखने की ग्रंथि पड़ गई हो तो वहाँ पर कैसा 'एडजस्टमेन्ट' लेना चाहिए?

दादाश्री : यह जो आपको दिखाई देता है कि इसका चारित्र खराब है, तो क्या पहले ऐसा नहीं था? यह क्या अचानक उत्पन्न हो गया है? यानी कि यह जगत् समझ लेने जैसा है, कि यह तो ऐसा ही है। इस काल में चारित्र संबंधी किसी का देखना ही नहीं चाहिए। इस काल में तो सभी जगह ऐसा ही होता है। खुले तौर पर नहीं होता, लेकिन मन तो बिगड़ता ही है। उसमें भी स्त्री चारित्र तो निरा कपट और मोह का

ही संग्रहस्थान है, इसीलिए तो स्त्री-जन्म मिलता है। इन सब के बीच सब से अच्छी बात यही है कि विषय से मुक्त हो जाएँ।

प्रश्नकर्ता : चारित्र में तो ऐसा ही होता है, वह जानते हैं फिर भी जब मन शंका करता है तब तन्मयाकार हो जाते हैं। वहाँ पर कौन सा 'एडजस्टमेन्ट' लेना चाहिए?

दादाश्री : आत्मा हो जाने के बाद और किसी चीज़ में पड़ना ही मत। यह सब 'फॉरेन डिपार्टमेन्ट' का है। हमें 'होम' में रहना है। आत्मा में रहो न! ऐसा 'ज्ञान' बार-बार नहीं मिलेगा, इसलिए काम निकाल लो। एक व्यक्ति को खुद की पत्नी पर शंका होती रहती थी। उसे मैंने कहा कि शंका किसलिए होती है? तूने देख लिया इसलिए शंका होती है? जब तक नहीं देखा था, तब तक क्या ऐसा नहीं हो रहा था? लोग तो जो पकड़ा जाता है, उसी को चोर कहते हैं। लेकिन जो पकड़े नहीं गए, वे सब भी अंदर से चोर ही हैं लेकिन ये तो, जो पकड़ा गया, उसी को चोर कहते हैं। अरे, उसे किसलिए चोर कहता है? वह तो सीधा था। कम चोरियाँ करता है इसलिए पकड़ा गया। क्या ज़्यादा चोरी करने वाले पकड़े जाते होंगे?

प्रश्नकर्ता : लेकिन पकड़े जाते हैं तब चोर कहलाते हैं न?

दादाश्री : नहीं, क्योंकि जो कम चोरियाँ करते हैं, वे पकड़े जाते हैं, और क्योंकि वे पकड़े जाते हैं इसलिए लोग उन्हें चोर कहते हैं। अरे, चोर तो वे हैं जो पकड़ में नहीं आते हैं लेकिन जगत् तो ऐसा ही है।

तब फिर वह व्यक्ति मेरा विज्ञान पूरी तरह से समझ गया। फिर उसने मुझसे कहा कि, 'मेरी वाइफ को अब कोई दूसरा हाथ लगाए, तब भी मैं गुस्सा नहीं करूँगा।' हाँ, ऐसा होना चाहिए। मोक्ष में जाना हो तो ऐसा है। वर्ना झगड़े करते रहो। आपकी 'वाइफ' या आपकी स्त्री इस दुषमकाल में आपकी हो ही नहीं सकती और ऐसी गलत आशा रखना ही बेकार है। यह दुषमकाल है, इसलिए इस दुषमकाल में तो जितने दिन

हमें रोटियाँ खिलाती है, उतने दिन तक अपनी। वर्ना अगर किसी और को खिलाए तो उसकी।

सभी महात्माओं से कह दिया है कि शंका मत रखना। फिर भी मेरा कहना है कि, जब तक नहीं देखा हो, तब तक उसे सत्य मानते ही क्यों हो, इस कलियुग में? यह सब घोटालेवाला है। जो मैंने देखा है उसका यदि मैं आपको वर्णन करूँ तो कोई भी जीवित ही नहीं रहेगा। अब ऐसे काल में अकेले पड़े रहो मस्ती में और ऐसा 'ज्ञान' साथ में हो तो उसके जैसा तो कुछ भी नहीं।

यानी कि काम निकाल लेने जैसा है अभी। इसलिए हम कहते हैं न, कि काम निकाल लो, काम निकाल लो, काम निकाल लो! यह कहने का भावार्थ इतना ही है कि ऐसा किसी काल में मिलता नहीं है और मिला है तो सिर पर कफन बाँधकर निकल पड़ो!

यानी आपको समझ में आ गया न? कि जब तक नहीं देखा, तब तक कुछ नहीं होता है, यह तो देखा उसका ज़हर है!

प्रश्नकर्ता : हाँ, दिख गया इसीलिए ऐसा होता है।

दादाश्री : इस पूरे जगत् में अंधेरे में घोटाला ही चल रहा है। हमें यह सब 'ज्ञान' में दिखाई दिया था लेकिन आपको नहीं दिखाई दिया इसलिए आप इसे देखते हो और भड़क जाते हो! अरे, भड़कते क्यों हो? इसमें तो सब, यह तो ऐसा ही चल रहा है, लेकिन आपको दिखाई नहीं देता है। इसमें भड़कने जैसा है ही क्या? आप आत्मा हो, तो भड़कने जैसा क्या रहा? यह तो सब जो चार्ज हो चुका है, उसी का डिस्चार्ज है! जगत् शुद्ध (पूर्णरूप से) डिस्चार्जमय ही है। यह जगत् 'डिस्चार्ज' से बाहर नहीं है। तभी तो हम कहते हैं न कि डिस्चार्जमय है इसलिए कोई गुनहगार नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो इसमें भी कर्म का सिद्धांत काम करता है न?

दादाश्री : हाँ, कर्म का सिद्धांत ही काम कर रहा है और कुछ भी नहीं। मनुष्य का दोष नहीं है, ये कर्म ही घुमाते हैं बेचारे को। लेकिन उसमें शंका रखे न, तो वह मर जाएगा बिना बात के।

मोक्ष में जानेवालों को

देहाध्यास छूटे तो समझना कि मोक्ष में जाने की तैयारी हुई। देहाध्यास मतलब देह में आत्मबुद्धि! वह सब देहाध्यास कहलाता है। कोई गालियाँ दे, मारे, अपनी 'वाइफ' को अपने सामने ही उठाकर ले जाए, तब भी अंदर राग-द्वेष नहीं हों तो समझना कि वीतरागों का मार्ग पकड़ा है! लोग तो फिर खुद की कमज़ोरी के कारण उठाकर ले जाने देते हैं न! उठानेवाला बलवान हो तो 'वाइफ' को उठाकर ले जाने देते हैं न!

यानी इनमें से कुछ भी खुद का है ही नहीं। यह सब पराया है। इसलिए अगर व्यवहार में रहना हो तो व्यवहार में मज़बूत बनो और मोक्ष में जाना हो तो मोक्ष के लायक बनो! जहाँ पर यह देह भी खुद का नहीं है वहाँ पर स्त्री अपनी कैसे हो सकती है? बेटी अपनी कैसे हो सकती है? यानी आपको तो हर प्रकार से सोच लेना चाहिए कि 'स्त्री को उठाकर ले जाएँ तो क्या करूँगा?'

जो होना है, उसमें कोई बदलाव नहीं हो सकता, 'व्यवस्थित' ऐसा ही है। इसलिए डरना मत। इसी वजह से ऐसा कहा है कि 'व्यवस्थित' है! यदि नहीं देखा हो तो तब कहेगा, 'मेरी पत्नी' और देख लिया तो छटपटाहट! अरे, पहले से ऐसा ही था। इसमें नया ढूँढना ही मत।

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'दादा' ने बहुत ढील दे दी है।

दादाश्री : मेरा कहना यह है कि दुषमकाल में अगर हम झूठी आशा रखें तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है न! और इस सरकार ने भी 'डाइवोर्स' का नियम बनाया है। सरकार पहले से ही जानती थी कि ऐसा होगा, इसलिए पहले नियम बनता है। अर्थात् हमेशा दवाई का पौधा पहले उगकर तैयार होता है, उसके बाद फिर रोग उत्पन्न होता है। उसी तरह पहले ये नियम बनते हैं, उसके बाद लोगों में ऐसी घटनाएँ होती हैं!

चारित्र संबंधी 'सेफसाइड'

अत: जिसे पत्नी के चारित्र संबंधी शांति चाहिए, उसे एकदम

काली रंग की दाग़ वाली स्त्री लानी चाहिए ताकि उसका कोई ग्राहक ही न हो कोई, और उसे संभाले ही नहीं। और वही आपसे कहे कि, 'मुझे संभालनेवाला और कोई नहीं है। ये एक पति मिले हैं, वही संभालते हैं।' तब वह आपके प्रति 'सिन्सियर' रहेगी, बहुत 'सिन्सियर' रहेगी। वर्ना, सुंदर होगी तो उसे तो लोग भोगेंगे ही। सुंदर होगी तो लोगों की दृष्टि बिगड़ेगी ही! कोई सुंदर पत्नी लाए तो मुझे यही विचार आता है कि 'इसकी क्या दशा होगी!' काली दाग़ वाली हो, तभी 'सेफसाइड' रहती है।

पत्नी बहुत सुंदर हो, तब पति भगवान को भूल जाएगा न! और पति बहुत सुंदर हो तो पत्नी भी भगवान को भूल जाएगी! इसलिए सबकुछ संतुलित हो तो अच्छा है। अपने बड़े बूढ़े तो ऐसा कहते थे कि *'खेत राखवुं चोपाट और बैरुं राखवुं कोबाड'* ('खेत रखना समतल और पत्नी रखना बदसूरत') ऐसा किसलिए कहते थे? कि यदि पत्नी बहुत सुंदर होगी तो कोई नज़र बिगाड़ेगा। इसके बजाय तो पत्नी ज़रा सी बदसूरत ही अच्छी, ताकि कोई नज़र तो नहीं बिगाड़ेगा न! ये बूढ़े लोग अलग तरह से कहते थे, वे धर्म की दृष्टि से नहीं कहते थे। मैं धर्म की दृष्टि से कहना चाहता हूँ। बहू बदसूरत होगी, तो हमें कोई भय ही नहीं रहेगा न! घर से बाहर जाए फिर भी कोई नज़र बिगाड़ेगा ही नहीं न! अपने बड़े-बूढ़े तो बहुत पक्के थे लेकिन मैं जो कहना चाहता हूँ वह ऐसा नहीं है, वह अलग है। वह बदसूरत होगी न, तो आपके मन को बहुत परेशान नहीं करेगी, भूत बनकर चिपटेगी नहीं।

कैसी दगाखोरी यह

ये लोग तो कैसे हैं? कि जहाँ 'होटल' देखें वहाँ 'खा' लेते हैं। इसलिए यह जगत् शंका रखने योग्य नहीं है। शंका ही दुःखदाई है। अब जहाँ होटल देखे, वहीं पर खा लेते हैं, इसमें पुरुष भी ऐसा करते हैं और स्त्रियाँ भी ऐसा करती हैं। फिर उस पुरुष को ऐसा नहीं होता कि 'मेरी स्त्री क्या करती होगी?' वह तो ऐसा ही समझता है कि 'मेरी स्त्री तो अच्छी है।' लेकिन उसकी स्त्री तो उसे पाठ पढ़ाती है! पुरुष भी स्त्रियों

को पाठ पढ़ाते हैं और स्त्रियाँ भी पुरुषों को पाठ पढ़ाती हैं! फिर भी स्त्रियाँ जीत जाती हैं क्योंकि इन पुरुषों में कपट नहीं है न! इसलिए पुरुष स्त्रियों द्वारा ठगे जाते हैं!

अत: जब तक 'सिन्सियारिटी-मॉरेलिटी' थी, तभी तक संसार भोगने लायक था। अभी तो भयंकर दगाखोरी है। हर एक को उसकी 'वाइफ' की बात बता दूँ तो कोई अपनी 'वाइफ' के पास नहीं जाएगा। मैं सब का जानता हूँ, फिर भी कुछ भी कहता नहीं हूँ। हालांकि पुरुष भी दगाखोरी में कम नहीं है लेकिन स्त्री तो निरा कपट का ही कारखाना है! कपट का संग्रहस्थान और कहीं पर भी नहीं होता, सिर्फ स्त्री में ही होता है।

ऐसे दगे में मोह क्या?

यह जो संडास है, उसमें हर कोई व्यक्ति जाता है या एक ही व्यक्ति जाता है?

प्रश्नकर्ता : सभी जाते हैं।

दादाश्री : तो जिसमें सभी जाते हैं, वह संडास कहलाती है। जहाँ पर कई लोग जाते हैं न, वह संडास! जब तक एक पत्नीव्रत और एक पतिव्रत रहे, तब तक वह बहुत उच्च चीज़ कहलाती है। तब तक चारित्र कहलाता है, नहीं तो फिर संडास कहलाता है। आपके यहाँ संडास में कितने लोग जाते होंगे?

प्रश्नकर्ता : घर के सभी लोग जाते हैं।

दादाश्री : एक ही व्यक्ति नहीं जाता है न? अत: फिर दो जाएँ या सभी जाएँ, लेकिन वह संडास कहलाएगा।

यह तो जहाँ होटल आई, वहाँ पर खा लेता है। अरे, खाता-पीता भी है! इसलिए शंका निकाल देना। शंका से तो हाथ में आया हुआ मोक्ष भी चला जाएगा। अत: आपको ऐसा ही समझ लेना है कि इससे मैंने विवाह किया है और यह मेरी किराएदार है! बस, इतना मन में समझकर

रखना। फिर वह चाहे अन्य किसी के भी साथ घूमती रहे, फिर भी आपको शंका नहीं करनी चाहिए। आपको काम से काम है न? आपको संडास की ज़रूरत पड़े तो संडास में जाना! जहाँ गए बगैर नहीं चलता, वह कहलाती है संडास। इसीलिए तो ज्ञानियों ने साफ-साफ कहा है न कि संसार दगा है।

प्रश्नकर्ता : दगा नहीं लगता है। वह किस कारण से?

दादाश्री : मोह के कारण! और कोई बतानेवाला भी नहीं मिला न! लेकिन लाल झंडी दिखाएँगे, तो गाड़ी खड़ी रहेगी, वर्ना गाड़ी नीचे गिर पड़ेगी।

शंका की पराकाष्ठा पर समाधान

यानी कि शंका से ही यह जगत् खड़ा है। जिस पेड़ को सुखाना है, शंका करके उसी में पानी छिड़कते हैं तो उससे वह और अधिक मज़बूत बनता है। अतः यह जगत् किसी भी प्रकार की शंका करने जैसा नहीं है।

अब आपको संसार से संबंधित और कोई शंका होती है? आपकी 'वाइफ' किसी और के साथ बैंच पर बैठी हो और दूर से आपको दिखाई दे तो आपको क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : अब कुछ भी नहीं होगा। यों थोड़ा 'इफेक्ट' होगा, फिर कुछ नहीं होगा। फिर तो 'व्यवस्थित' है और यह ऋणानुबंध है, ऐसा ध्यान आ जाएगा।

दादाश्री : कैसे पक्के हैं! कैसा हिसाब लगाया है! फिर शंका तो नहीं होगी न?

प्रश्नकर्ता : नहीं होगी, दादा।

दादाश्री : जबकि ये लोग तो, 'वाइफ' ज़रा सी भी देर से आई तो भी शंका करते हैं। शंका नहीं करनी चाहिए। ऋणानुबंध से बाहर

कुछ भी नहीं होगा। वह घर पर आए तो उसे समझाना, लेकिन शंका मत करना। शंका तो बल्कि उसे और अधिक पानी छिड़केगी। हाँ, सावधान ज़रूर करना लेकिन कोई भी शंका मत रखना। शंका रखनेवाला मोक्ष खो देता है।

यदि आपको मुक्त होना है, मोक्ष में जाना है तो आपको शंका नहीं करनी चाहिए। कोई दूसरा व्यक्ति आपकी पत्नी के गले में हाथ डालकर घूम रहा हो और आपने देख लिया, तो क्या आपको ज़हर खा लेना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा किसलिए करूँ?

दादाश्री : तो फिर क्या करना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : थोड़ा नाटक करना पड़ेगा, फिर समझाऊँगा। फिर तो जो करे वह 'व्यवस्थित'।

दादाश्री : हाँ, ठीक है। अब आपको 'वाइफ' पर या घर में किसी पर भी ज़रा सी भी शंका नहीं होगी न?! क्योंकि ये सब फाइलें हैं। इसमें शंका करने जैसा क्या है? जो भी हिसाब होगा, जो ऋणानुबंध होगा, उस हिसाब से ये फाइलें भटकेंगी जबकि आपको तो मोक्ष में जाना है।

वह तो भयंकर रोग

अब अगर वहाँ पर हमें वहम हो गया, तो वह वहम बहुत सुख देगा? नहीं क्या?

प्रश्नकर्ता : अंदर कीड़े की तरह काम करेगा, कुतरता रहेगा।

दादाश्री : हाँ, पूरा जागृतकाल उसे खा जाएगा। टी.बी. का रोग! टी.बी. तो अच्छी है कि कुछ समय तक ही असर डालती है, फिर नहीं करती। यानी कि यह शंका तो टी.बी. का रोग है। जिसे वह शंका उत्पन्न हो गई उसमें टी. बी. की शुरुआत हो गई। यानी शंका किसी भी प्रकार से 'हेल्प' नहीं करती, शंका नुकसान ही करती है इसलिए शंका को मूल

में से, वह उगे तभी से बंद कर देनी चाहिए, पर्दा गिरा देना चाहिए। वर्ना पेड़ बन जाएगा उसका तो!

शंका का असर

शंका का अर्थ क्या है? जो खीर लोगों को खिलानी है उस खीर में एक सेर नमक डालना, वह शंका है। फिर क्या होगा? खीर फट जाएगी। इतनी सी ज़िम्मेदारी का तो लोगों को ध्यान नहीं है। हम तो शंका से बहुत दूर रहते हैं। हमें सभी प्रकार के विचार आते हैं। मन है तो विचार तो आएँगे, लेकिन शंका नहीं होती। मैं शंका की दृष्टि से किसी को देखूँ तो दूसरे दिन उसका मन मुझसे अलग ही पड़ जाएगा!

यानी कि किसी भी वस्तु में शंका हो, तो वह शंका नहीं रखनी चाहिए। हमें जागृत रहना चाहिए, लेकिन सामने वाले पर शंका नहीं रखनी चाहिए। शंका हमें मार डालती है। सामने वाले का जो होना होगा, वह होगा लेकिन हमें तो वह शंका मार ही डालेगी। क्योंकि वह शंका तो मरते दम तक इंसान को नहीं छोड़ती। शंका होती है, तब इंसान का वज़न बढ़ता है क्या? इंसान जैसे मुर्दे की तरह जी रहा हो, ऐसा हो जाता है।

अत: किसी भी बात में अगर शंका नहीं करे तो उत्तम है। शंका तो जड़मूल से निकाल देनी चाहिए। व्यवहार में भी शंका निकाल देनी है। शंका 'हेल्प' नहीं करती, नुकसान ही करती है। रूठने से भी फायदा नहीं होता, नुकसान ही होता है। कितने ही शब्द एकांतिक रूप से नुकसान पहुँचाते हैं। एकांतिक रूप का मतलब क्या है? लाभालाभ हों तब तो बात ठीक है लेकिन इससे तो सिर्फ अलाभ (नुकसान) ही है। ऐसे गुण! हटा दें तो अच्छा।

बुद्धि बिगाड़े संसार

प्रश्नकर्ता : लेकिन अधिक बुद्धिशाली लोगों को क्यों अधिक शंका होती है?

दादाश्री : उसे बुद्धि से सभी पर्याय दिखाई देते हैं। ऐसा दिखता है कि शायद ऐसा होगा, ऐसे हाथ रख दिया होगा। किसी व्यक्ति ने उसकी 'वाइफ' पर हाथ रख दिया, तब फिर सारे पर्याय खड़े हो जाते हैं, कि क्या होगा?! और फिर सिलसिला शुरू हो जाता है! अबुध को तो कोई झंझट ही नहीं है, और वे भी वास्तव में अबुध नहीं होते हैं, उनका खुद का संसार चले उतनी उनमें बुद्धि होती है। उसे बाकी कोई झंझट नहीं होती। थोड़ा बहुत होकर फिर बंद हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : मतलब आप ऐसा कहना चाहते हो कि जो सांसारिक अबुध हैं, जो अभी बुद्धि में डेवेलप नहीं हुए हैं?

दादाश्री : नहीं, ऐसे लोग तो बहुत कम होते हैं, मज़दूर वगैरह!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे लोग बुद्धिशाली होने के बाद फिर अबुध दशा प्राप्त करेंगे न?

दादाश्री : उसकी तो बात ही अलग है न! वह तो परमात्मापद कहलाता है। बुद्धिशाली होने के बाद अबुध होते हैं, वह तो परमात्मापद है!

लेकिन बुद्धिशाली लोगों को यह संसार बहुत तंग करता है। अरे, पाँच बेटियाँ हों और वह मनुष्य बुद्धिशाली हो तो, 'ये बेटियाँ बड़ी हो गई हैं।' अब वे सब जब बाहर जाती हैं, तब सभी पर्याय उसे याद आते हैं। बुद्धि से सबकुछ समझ में आता है, इसलिए उसे सबकुछ दिखाई देता है और फिर वह परेशान होता रहता है। फिर बेटियों को 'कॉलेज' तो भेजना ही पड़ता है और अगर ऐसा हो जाए तो वह भी देखना पड़ता है। और वास्तव में कुछ हुआ या नहीं हुआ, वह बात भगवान जाने, लेकिन वह तो शंका से मारा जाता है!

जहाँ हो जाता है, वहाँ उसे पता भी नहीं चलता, इसलिए वहाँ शंका नहीं है उसे और जहाँ नहीं होता है, वहाँ बेहद शंका है। अत: निरा शंका में ही जलता रहता है, और उसे भय ही लगता रहता है। यानी कि शंका हुई कि इंसान मारा जाता है।

शंका, कुशंका, आशंका

प्रश्नकर्ता : शंका, कुशंका, आशंका के बारे में समझाइए।

दादाश्री : बेटी बड़ी हो जाए, तब बाप यदि बुद्धिशाली हो और मोही कम हो न, तो उसे समझ में आ जाता है कि इसके प्रति शंका रखनी ही पड़ेगी, अब शंका की नज़र से देखना पड़ेगा। वास्तव में जागृत इंसान तो जागृत ही रहेगा न! अब अगर शंका की नज़र से देखना हो तो एक दिन शंका की नज़र से देखे, लेकिन क्या रोज़ शंका से देखना है? और दूसरे दिन शंका की नज़र से देखे, तो वह सब आशंका कहलाती है। कोई 'एन्ड' है या नहीं है? तूने जिस दृष्टि से देखा, उसका 'एन्ड' तो होना चाहिए न? उसे फिर आशंका कहते हैं। अब कुशंका कब होती है? किसी लड़के के साथ घूम रही हो, तब मन में तरह-तरह की कुशंकाएँ करता है। अब ऐसा हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता। इंसान ऐसी सब शंकाएँ करता रहता है और दुःखी होता है।

शंका करने लायक यह जगत् है ही नहीं, जागृति रखने लायक जगत् है। शंका अर्थात् तो खुद ही दुःख मोल लेना। वह कीड़ा फिर खाता ही रहता है उसे, रात-दिन खाता ही रहता है। जागृति रखने की ज़रूरत है। अपने हाथ में कुछ है नहीं और हाय-हाय करते रहते हैं, उसका क्या अर्थ है? यदि तुझे समझ में आता है तो बेटियों का पढ़ना बंद किया जा सकता है। तब फिर कहेगा, 'पढ़ाऊँगा नहीं तो कौन स्वीकार करेगा उसे?' अरे, तब यह भी नहीं करता और वह भी नहीं करता, एक तरफ रह न! नहीं तो उस लड़की के साथ घूमता रह रात-दिन! वह 'कॉलेज' में जाए तो साथ-साथ जा, और बैठ वहाँ पर। वहाँ पर 'सर' पूछें कि, 'साथ में क्यों आए हो?' तब कहना, 'भाई, इसलिए कि मुझे शंका रहती है न, साथ रहूँगा तो शंका नहीं रहेगी न!' तब लोग तो उसे घनचक्कर कहेंगे। अरे, उसकी बेटियाँ भी कहेगी न, कि 'पागल हैं ज़रा।'

इसलिए बेटियों पर शंका करने को मना करता हूँ और लोग बेटी पर शंका करें, ऐसे हैं भी नहीं। उन्हें ऐसी शंका नहीं रहती। उन्हें तो, सात बेटियाँ हों, तब भी कुछ नहीं। राम तेरी माया! उन्हें तो दूसरी प्रकार

की शंका होती है कि, 'हमारे पार्टनर रोज़ लगभग पाँच-दस रुपये घर ले जाते हैं।' उसे ऐसी शंका रहती है। पैसों के प्रति उसे प्रियता है न! यानी हमारे पार्टनर पैसे ले जाते हैं, उसे ऐसी शंका रहती है। एक ही दिन वैसी शंका की, तो वह शंका कहलाती है और बार-बार शंका करे, तो वह आशंका कहलाती है।

मोह से मूर्छित दशा

लड़कियों पर शंका नहीं होती क्योंकि लड़कियों पर मोह है न! जहाँ पर मोह होता है, वहाँ उसकी भूल का पता नहीं चलता। मोह से मार खाता है न जगत्। सभी माँ-बाप ऐसा कहते हैं कि, 'हमारी बेटियाँ अच्छी हैं।' यदि ऐसा है तब तो सत्युग ही चल रहा है ऐसा कहा जाएगा न? सब माँ-बाप ऐसा ही कहते हैं न? जिन्हें पूछें वे ऐसा ही कहते हैं तो फिर सत्युग ही चल रहा है न बाहर! तब वे वापस कहते हैं, 'नहीं, लोगों की लड़कियाँ बिगड़ गई हैं।' ऐसा भी कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : अभी तो उसकी बेटी के बारे में कुछ कहने जाएँ तो हमें दबोच लेंगे।

दादाश्री : ऐसा तो कहना ही नहीं चाहिए। दबोच लेंगे और गालियाँ भी देंगे। किसी को कुछ कह ही नहीं सकते। इतना अच्छा है कि हर एक माँ-बाप को उनके बेटे-बेटियों पर राग होता है अत: राग के कारण उनके दोष दिखाई ही नहीं देते जबकि दूसरे की बेटियों के सारे दोष देख सकते हैं। अपनी बेटी के दोष नहीं दिखाई देते इतना अच्छा है न, उससे तो शांति रहती है और फिर आगे की बात बाद में देख लेंगे।

ऐसी टीका नहीं करनी चाहिए

एक व्यक्ति ने मुझसे कहा, 'मेरी बेटियाँ तो बहुत समझदार हैं।' मैंने कहा, 'हाँ, अच्छा है।' फिर वह भाई दूसरी लड़कियों की टीका (टीका-टिप्पणी) करने लगे। तब मैंने उनसे कहा, 'टीका किसलिए करते हो लोगों की? आप लोगों की टीका करोगे तो लोग आपकी भी टीका

करेंगे।' तब उसने कहा, 'मुझमें टीका करने जैसा है ही क्या?' तब मैंने कहा, 'दिखाता हूँ, चुप रहना।' फिर उसकी बेटियों की किताबें लाकर दिखाईं सब। 'देखो यह,' कहा। तब उसने कहा, 'हें!' मैंने कहा, 'चुप हो जाओ। किसी की टीका मत करना। मैं जानता हूँ, फिर भी मैं आपके सामने क्यों चुप रहा हूँ? इतना सब आप रौब मारते हो, तब भी मैं चुप क्यों रहा हूँ?' मैं जातना हूँ कि भले ही रौब मारे, लेकिन संतोष रहता है न, उन्हें! लेकिन जब टीका करने लगे तब कहा कि, 'मत करना टीका।' क्योंकि बेटियों के माँ-बाप होकर हम किसी की बेटी पर टीका-टीप्पणी करें तो वह भूल है। जो बेटियों के बाप नहीं होते, जिनकी बेटियाँ नहीं होतीं, वे ऐसी टीका ही नहीं करता बेचारा। ये बेटी वाले बहुत टीका करते हैं। जबकि तू बेटियों का बाप होकर टीका कर रहा है? तुम्हें शर्म नहीं आती? ऐसा संशय रखने से कब अंत आएगा?

आजकल की लड़कियाँ भी बेचारी इतनी भोली होती हैं कि ऐसा मान लेती हैं कि मेरे पिता जी कभी भी मेरी डायरी नहीं पढ़ेंगे। उसके स्कूल की डायरी में पत्र रखती हैं और बाप भी भोले होते हैं, उन्हें बेटी पर विश्वास ही रहता है। पर मैं तो यह सब जानता हूँ कि ये बेटियाँ बड़ी हो चुकी हैं। मैं उसके फादर को इतना ही कहता हूँ कि इसकी शादी करवा देना जल्दी। हाँ, और क्या कहूँ फिर?

सावधान, बेटियों के माँ-बाप

एक हमारा खास रिश्तेदार था, उसकी चार बेटियाँ थीं। वह बहुत जागृत था। उसने मुझसे कहा, 'ये लड़कियाँ बड़ी हो गई हैं, कॉलेज में जाती हैं, तो मुझे विश्वास नहीं रहता।' तब मैंने कहा, 'साथ में जाना। साथ में कॉलेज जाना और कॉलेज में से निकले तब वापस आना। वह तो एक दिन जाएगा, लेकिन दूसरे दिन क्या करेगा? पत्नी को भेजना।' अरे, विश्वास कहाँ रखना है और कहाँ नहीं रखना उतना भी नहीं समझता?! हमें यहीं से उसे कह देना चाहिए, 'देख बेटी, हम अच्छे लोग हैं, हम खानदानी हैं, कुलवान हैं।' इस तरह उसे सावधान कर देना। फिर जो हुआ वह करेक्ट। शंका नहीं करनी है। कितने लोग शंका करते

होंगे? जो जागृत होते हैं, वे शंका करते रहते हैं। कमअक्ल को तो शंका ही नहीं होती न!

इसलिए किसी भी प्रकार की शंका उत्पन्न होने से पहले ही उसे उखाड़कर फेंक देना चाहिए। यह तो, ये लड़कियाँ बाहर घूमने जाएँ, खेलने जाएँ, उन पर शंका करता है और शंका उत्पन्न हुई तो वहाँ हमें सुख रहता है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन फिर शंका करने का अर्थ नहीं है।

दादाश्री : हाँ, बस! इसलिए चाहे कुछ भी कारण हो फिर भी शंका उत्पन्न नहीं होने देनी चाहिए। सावधानी रखनी चाहिए, लेकिन शंका नहीं करनी चाहिए। शंका हुई कि 'मृत्यु' आई समझो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन शंका तो अपने आप ही उत्पन्न होती है न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह भयंकर अज्ञानता है। उससे बहुत दुःख पड़ते हैं। बेटियाँ बाहर जाएँ और कोई कहे कि 'उसे उसका फ्रेन्ड मिल गया है।' तब फिर लड़कियों पर शंका होती है, तो क्या स्वाद आएगा?

प्रश्नकर्ता : बस, फिर अशांति रहा करती है।

दादाश्री : अशांति रखने से क्या बाहर सब ठीक हो जाएगा? फ्रेन्ड के साथ घूमती है, क्या उसमें कुछ बदलाव आ जाएगा? बदलाव कुछ होगा नहीं और वह शंका से ही मर जाएगा! इसलिए शंका उत्पन्न हो कि तुरंत ही 'दादाजी ने मना किया है' इतना याद करके बंद कर देना चाहिए। बाकी सावधानी पूरी रखनी है।

लोगों की अपनी लड़कियाँ तो होती हैं न? तब क्या वे कॉलेज में नहीं जाएँगी? ज़माना ऐसा है, इसलिए कॉलेज में तो जाएँगी न? यह क्या पहले का ज़माना है कि बेटियों को घर में बिठाकर रखेंगे? इसलिए जैसा ज़माना है, उसके अनुसार चलना पड़ेगा न! यदि दूसरी लड़कियाँ अपने फ्रेन्ड के साथ बात करती हैं, तब वैसे ही ये लड़कियाँ क्या अपने फ्रेन्ड के साथ बात नहीं करेंगी?

अब बेटियों की जब ऐसी कोई बात सुनने में या देखने में आए और शंका हो तब असल मज़ा आता है। अगर आकर मुझसे पूछे तो मैं तुरंत कह दूँगा कि 'शंका निकाल दे।' यह तो तूने देखा इसलिए शंका हुई और नहीं देखा होता तो? देखने से ही शंका हुई है तो, 'नहीं देखा,' ऐसा कहकर करेक्ट कर ले न! अन्डरग्राउन्ड में तो यह सब है ही लेकिन उसके मन में ऐसा होता है कि, 'ऐसा होगा तो?' तब फिर वह पकड़ लेता है उसे। फिर भूत छोड़ता नहीं है उसे, पूरी रात नहीं छोड़ता। रात को भी नहीं छोड़ता, एक-एक महीने तक नहीं छोड़ता। इसलिए शंका रखना गलत है।

शंका? नहीं, संभाल रखो

अब चार बेटियों का बाप सलाह लेने आया था, वह कह रहा था, 'मेरी ये चारों बेटियाँ कॉलेज में पढ़ने जाती हैं, तो उन पर शंका तो होगी ही न! तो मुझे क्या करना चाहिए उन चारों लड़कियों का? लड़कियाँ बिगड़ जाएँगी तो मैं क्या करूँगा?' मैंने कहा, 'लेकिन सिर्फ शंका करने से नहीं सुधरेंगी।' अरे, शंका मत करना। घर आएँ, तब घर पर बैठे-बैठे उनके साथ कुछ अच्छी बातचीत करना, फ्रेन्डशिप करना। उनसे आनंद हो ऐसी बातें करनी चाहिए और ऐसा मत करना कि तू सिर्फ धंधे में, पैसे में ही पड़ा रहे। पहले बेटियों को संभाल। उनके साथ फ्रेन्डशिप कर। उनके साथ नाश्ता कर, ज़रा चाय पी, वह प्रेम जैसा है। यह तो, ऊपर-ऊपर से प्रेम रखते हो, इसलिए फिर वह बाहर प्रेम ढूँढती हैं।

फिर मैंने कहा कि, और फिर भी आपकी बेटियों को किसी से प्रेम हो जाए, और वह फिर रात को साढ़े ग्यारह बजे घर लौटे तो क्या आप उसे निकाल दोगे? तब उसने कहा, 'हाँ, मैं तो गेटआउट कर दूँगा। उसे घर में घुसने ही नहीं दूँगा।' मैंने कहा, 'ऐसा मत करना। वह किसके पास जाएगी रात को? वह किसके यहाँ आसरा लेगी?' उससे कहना, 'आ, बैठ! सो जा।' वह नियम है न कि नुकसान तो हुआ लेकिन अब इससे अधिक नुकसान न हो, उसके लिए संभाल लेना चाहिए। बेटी कुछ नुकसान करके आई और हम वापस उसे बाहर निकाल दें तो हो चुका

न! लाखों रुपये का नुकसान तो होने लगा है, लेकिन तब नुकसान कम हो, ऐसा करना चाहिए या बढ़ जाए ऐसा करना चाहिए? नुकसान होने ही लगा है तो उसका उपाय तो होना ही चाहिए न? इसलिए बहुत ज़्यादा नुकसान मत उठाना। तू खुद ही उसे घर पर सुला देना, और फिर दूसरे दिन समझाना कि 'समय पर घर आना। मुझे बहुत दु:ख होता है और इससे फिर मेरा हार्ट फेल हो जाएगा' कहना। 'ऐसे-वैसे करके समझा देना।' फिर वह समझ गया। रात को निकाल देगा तो वापस कौन रखेगा? लोग कुछ न कुछ कर देंगे। फिर खत्म हो जाएगा सबकुछ। रात को एक बजे निकाल देंगे तो लड़की कैसी लाचारी अनुभव करेगी बेचारी। यह तो कलियुग का मामला है। ज़रा सोचना तो चाहिए न?

यानी कभी रात को अगर बेटी देर से घर आए, तब भी शंका मत करना, शंका निकाल देना, तो कितना फायदा होगा? बेकार का डर रखने का अर्थ क्या है? एक जन्म में कुछ भी नहीं बदलेगा। उन बेटियों को बिना बात के दु:ख मत देना। बेटों को दु:ख मत देना। सिर्फ इतना ज़रूर कहना कि, 'बेटी, तू बाहर जाती है तो देर नहीं होनी चाहिए। हम खानदानी हैं। हमें यह शोभा नहीं देता इसलिए इतनी देर मत करना।' इस तरह सारी बातचीत करना, समझाना लेकिन शंका करने से कुछ नहीं होगा कि 'किसके साथ घूम रही होगी, क्या कर रही होगी?' और फिर रात को बारह बजे आए तब भी फिर दूसरे दिन कहना कि, 'बेटी, ऐसा नहीं होना चाहिए।' उसे यदि निकाल देंगे तो वह किसके यहाँ जाएगी उसका ठिकाना नहीं है। आपको समझ में आया न? फायदा किसमें है? कम से कम नुकसान होने में फायदा है न? इसलिए मैंने सभी से कहा है कि 'बेटियाँ देर से घर में आएँ, तब भी उन्हें घर में आने देना, उन्हें निकाल मत देना।' वर्ना बाहर से ही निकाल दें, ये सख्त मिज़ाज वाले लोग ऐसे ही हैं न? काल कितना विचित्र है! कितनी दु:ख और जलनवाला काल है! और फिर यह कलियुग है, इसलिए घर में बिठाकर फिर समझाना।

मोक्षमार्गीय संयम

अत: हमने क्या कहा है कि फाइलों का समभाव से *निकाल* करो।

ये सभी फाइलें हैं। ये कहीं आपकी बेटियाँ नहीं हैं, या आपकी बहुएँ नहीं हैं। ये बहुएँ-बेटियाँ, सभी 'फाइलें' हैं। फाइलों का समभाव से *निकाल* करो। अगर लकवा हो जाए न, तब कोई आपका सगा नहीं रहेगा। बल्कि कई दिन हो जाएँगे न, तो लोग सब चिढ़ने लगेंगे। वह लकवेवाला भी मन में समझ जाता है कि सभी चिढ़ रहे हैं। क्या करे फिर?! इन 'दादा' द्वारा दिखाया हुआ मोक्ष सीधा है, एक अवतारी है इसलिए संयम में रहो और फाइलों का समभाव से *निकाल* करो। बेटी हो या पत्नी हो या कोई और हो, लेकिन सब का समभाव से *निकाल* करो। कोई किसी की बेटी नहीं होती दुनिया में। यह सब कर्म के उदय के अधीन है। जिसे ज्ञान नहीं मिला है, उसे हम ऐसा कुछ कह नहीं सकते। ऐसा कहेंगे तब तो वह लड़ने को तैयार हो जाएगा।

अब मोक्ष कब बिगड़ेगा? भीतर असंयम हो जाएगा तब! असंयम हो, अपना 'ज्ञान' ऐसा है ही नहीं। निरंतर संयमवाला ज्ञान है। सिर्फ, शंका की कि दुःख आएगा!

इसलिए, एक तो शंका करनी - किसी भी प्रकार से शंकाशील बनना वह सब से बड़ा गुनाह है। नौ बेटियों के बाप को निःशंक घूमते हुए मैंने देखा है और वह भी भयंकर कलियुग में! और नौ की नौ लड़कियों की शादी हुई। यदि वह शंका में रहा होता तो कितना जी सकता था? इसलिए कभी भी शंका मत करना। शंका करने से खुद को ही नुकसान होता है।

प्रश्नकर्ता : शंका में किस तरह का नुकसान होता है? वह ज़रा समझाइए न!

दादाश्री : शंका, वह दुःख ही है न! प्रत्यक्ष दुःख! वह क्या कम नुकसान है? शंका में गहरा उतरे तो मरणतुल्य दुःख होता है।

प्रश्नकर्ता : वह शूल की तरह रहता है?

दादाश्री : शूल तो अच्छा है लेकिन शंका में तो उससे भी अधिक दुःख होता है। शूल तो बस इतना ही है कि, यदि कोई दूसरी चीज़ शरीर

में घुस जाए तो यों चुभता रहता है जबकि शंका तो मार ही डालती है इंसान को, संताप उत्पन्न करती है। इसलिए शंका नहीं करनी चाहिए।

शंका का उपाय

बाकी, मनुष्य शंका के बगैर तो होते ही नहीं है न! और, मुझे तो पहले, बा जीवित थे न, तब गाड़ी में से उतरते ही, बड़ौदा के स्टेशन पर ऐसा विचार आता था कि, 'बा यदि आज अचानक मर गए होंगे, तो मुहल्ले में कैसे प्रवेश करूँगा?' ऐसी शंकाएँ उत्पन्न होती थीं। अरे, तरह-तरह की शंकाएँ होती हैं मनुष्य को लेकिन खोज करके मैंने पता लगा लिया था कि इन सब पर ध्यान मत दो! शंका करने योग्य यह जगत् है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : वह तो, मुझे भी घर से फोन आए तो मुझे अभी भी शंका होती है कि, 'बा को कुछ हो गया होगा तो?'

दादाश्री : लेकिन वह शंका कुछ हेल्प नहीं करती, दुःख देती है। यह बूढ़ा इंसान कब गिर जाए, उसके लिए क्या कह सकते हैं! क्योंकि हम थोड़े ही उसे बचा सकते हैं? और ऐसी शंका होने लगे, तब उनके आत्मा से हमें उनके लिए विधि करते रहना कि, 'हे नामधारी बा, उनके द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से भिन्न ऐसे प्रकट शुद्धात्मा, उनकी आत्मा को शांति दीजिए।' यानी शंका होने से पहले हमें ऐसे विधि रख देनी चाहिए। शंका हो तब हमें ऐसे पलट लेना है।

'व्यवस्थित' से निःशंकता

जगत् अधिक तो शंका से ही दुःखी है। शंका तो मनुष्य को अधोगति में ले जाती है। शंका से कुछ नहीं होता है क्योंकि व्यवस्थित के नियम को तोड़नेवाला कोई है ही नहीं। व्यवस्थित के नियम को कोई नहीं तोड़ सकता, इसलिए शंका करके क्यों बेकार में परेशान होता है?

व्यवस्थित का अर्थ क्या है कि जो 'है' वह है, जो 'नहीं है' वह नहीं है। जो 'है' वह है, वह 'नहीं है' नहीं होगा और जो 'नहीं' है वह

नहीं है, वह 'है' नहीं बन सकता। इसलिए जो 'है' वह है, उसमें तू कुछ इधर-उधर करने जाएगा तो भी 'है' ही और जो 'नहीं है' उसमें इधर-उधर करने जाएगा तो भी 'नहीं' ही है इसलिए निःशंक हो जाओ। इस 'ज्ञान' के बाद अब आप आत्मा में निःशंक हो गए कि हमें जो यह लक्ष्य बैठा है, वही आत्मा है और बाकी सबकुछ *निकाली* बातें हैं!

इस प्रकार 'व्यवस्थित' का उपयोग करेंगे न, तो कोई भी भाव उत्पन्न ही नहीं होंगे। 'जैसा होना होगा वैसा होगा' ऐसा नहीं बोलना चाहिए। जो 'है' वह है और जो 'नहीं है' वह नहीं है। ऐसा यदि समझ जाए न तो शंका नहीं रहेगी और शंका हो तो मिटा देना वापस, कि भाई, जो 'है' वह है, इसमें शंका किसलिए? जो 'नहीं है' वह नहीं है, उसमें शंका किसलिए? सोचता है कि 'आएगा या नहीं आएगा, आएगा या नहीं आएगा? नुकसान रुकेगा या नहीं रुकेगा?' अरे, जो 'नहीं है' वह नहीं है। जो रुकना नहीं है, तो 'नहीं है' वह रुकेगा ही नहीं और रुकना है तो रुक जाएगा। तो उसके लिए क्या झंझट करनी? इसलिए जो 'नहीं' वह नहीं है और जो 'है' वह है, इसलिए शंका रखने का कोई कारण ही नहीं है।

'व्यवस्थित' के अर्थ में ऐसा नहीं कह सकते कि 'जो होना होगा वह होगा, कोई हर्ज नहीं है। जैसा होना होगा वैसा ही होगा,' ऐसा नहीं कह सकते। वह तो एकांतिक वाक्य कहलाएगा। उसे दुरुपयोग करना कहा जाएगा। ये मन, बुद्धि वगैरह अज्ञ स्वभाव के हैं और जब तक विरोधी हैं, तब तक हमें जागृत रहना पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : हमें भविष्यकाल की चिंता होने लगे कि 'यह ऐसा हो जाएगा, उससे तो ऐसा हो तो अच्छा।' तो फिर ऐसे समय में ऐसा नहीं कह सकते कि 'व्यवस्थित में होना होगा वैसा होगा, तू किसलिए चिंता करता है?'

दादाश्री : 'व्यवस्थित' में जो होना होगा वैसा ही होगा, ऐसा कहने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन जो 'है' वह है और 'नहीं है' वह नहीं है कहा तो उसके संबंध में सोचने का रहा ही नहीं न! जो 'नहीं

है' वह 'है' होगा नहीं, और जो 'है' वह 'नहीं है' होगा नहीं, फिर सोचने को रहा ही नहीं न! उस संबंध में नि:शंक हो गया न!

और भविष्यकाल 'व्यवस्थित' के ताबे में है। अपने ताबे में है ही क्या?!

'व्यवस्थित में होगा वैसा हो जाएगा,' ऐसा कहने की ज़रूरत नहीं है लेकिन हमें ऐसा कहना चाहिए कि जो 'है' वह है और 'नहीं है' वह नहीं है। उँगली में थोड़ी सी भी चोट लगनी होगी तो अगर 'है' तो होगा और 'नहीं है' तो नहीं होगा इसलिए जो 'नहीं है' वह नहीं है और जो होगा उसमें हमें आपत्ति नहीं है। यह संसार भी इसमें आपत्ति उठाकर कहाँ जाएगा?! सोचने से या कोई ऐसा पुरुषार्थ नहीं है कि जिससे यह बदल सके इसलिए जो 'है' वह है और जो 'नहीं है' वह नहीं है। लेकिन अज्ञानी यदि इसका उल्टा अर्थ निकाले तो नुकसान कर बैठेगा। ये बातें तो जिनके पास 'ज्ञान' है, उनके लिए हैं!

जिस प्रकार भगवान के बताए हुए तत्व हैं वे जो 'हैं' उतने ही तय कर रखे हैं न और जो 'नहीं है' उन्हें नहीं कहा है। वैसे ही इसमें भी जो 'है' वह है। हम यदि अभी से ऐसा सोचने लगें कि 'नाई नहीं मिलेगा तो अब क्या करेंगे? शायद दो-तीन महीने नहीं भी मिला, तब पूरी ज़िंदगी नहीं मिले तो अब क्या उपाय करें?' ऐसा कुछ सोचने की ज़रूरत है क्या हमें? क्या ऐसा सोचते हैं कि बाल इतने-इतने लंबे हो जाएँगे तो क्या करेंगे?

अत: यदि शंका नहीं होगी तो कोई दु:ख आएगा ही नहीं। शंका ही नहीं रहे तो फिर क्या बचा?! और शंका होगी तब भी हमें उसे हटा देना है, 'आप क्यों आए हो? हम हैं न? आपको सलाह देने को किसने कहा है? अब हम किसी वकील की सलाह नहीं लेते हैं और अन्य किसी की भी हम सलाह नहीं लेते हैं। हम तो दादा की सलाह लेते हैं, बस! जब जो रोग होता है तब दादा को दिखा देते हैं हम। हमें किसी को भी सलाह और नोटिस नहीं देना है। लोग भले ही हमें दें।' उसमें भी, व्यवस्थित से बाहर कोई कुछ कर सकता है क्या? तो

अब विश्वास हो गया है न, कि व्यवस्थित से बाहर कोई कुछ नहीं कर सकता?

मोक्ष में जाना हो, तो...

इसलिए शंका तो किसी पर भी नहीं करनी चाहिए। आप घर पहुँचो तब आपकी बहन से कोई दूसरा व्यक्ति बात कर रहा हो, तब भी शंका नहीं करनी चाहिए। शंका तो सब से अधिक दु:ख देती है और वह पूरे ज्ञान को ही खत्म कर देती है, फेंक देती है। व्यवस्थित से बाहर कुछ भी नहीं होनेवाला और उस घड़ी आप बहन से कहो, 'यहाँ आ बहन, मुझे खाना दे दे।' इस तरह दोनों को अलग किया जा सकता है लेकिन शंका तो कभी भी नहीं करनी चाहिए। शंका से दु:ख ही खड़ा होता है। व्यवस्थित में जो होना है वह होगा, लेकिन शंका नहीं रखनी है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन शंका भी उदयकर्म के कारण ही होती होगी न?

दादाश्री : शंका करना उदयकर्म नहीं कहलाता। शंका रखने से तो तेरा भाव बिगड़ जाता है, तूने उसमें हाथ डाला, इसलिए वह दु:ख ही देगी। शंका कभी भी नहीं करनी चाहिए।

आपकी बहन के साथ कोई बात कर रहा हो, लेकिन अब आपको तो मोक्ष में जाना है तो आपको शंका में नहीं पड़ना चाहिए। यदि आपको मोक्ष में जाना है तो! क्योंकि एक जन्म में तो व्यवस्थित से बाहर कुछ भी नहीं होगा, आप जागृत रहोगे तब भी नहीं होगा और अजागृत रहोगे तब भी नहीं होगा। अगर आप ज्ञानी हो तब भी बदलाव नहीं होगा और अज्ञानी हो तब भी बदलाव नहीं होगा। इसलिए शंका रखने का कोई कारण नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि कोई फर्क पड़ेगा ही नहीं।

दादाश्री : हाँ, फर्क नहीं पड़ेगा और बहुत नुकसान है इस शंका में तो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इस 'ज्ञान' के बाद तो 'चार्ज' होगा ही नहीं न?

दादाश्री : चार्ज नहीं होता, लेकिन इस तरह शंका रखेंगे तो चार्ज होगा। यदि मोक्ष चाहिए तो शंका नहीं करनी चाहिए। वर्ना फिर भी, अज्ञानता में तो वैसा होगा ही। जबकि यह तो 'ज्ञान' का लाभ मिल रहा है, मुक्ति का लाभ मिल रहा है और जो 'है' वही हो रहा है। इसलिए शंका रखने का कोई कारण नहीं है। शंका बिल्कुल छोड़ देना। 'दादा' ने शंका करने को मना किया है।

यह तो खुद की ही निर्बलता

प्रश्नकर्ता : इस शंका से, पहले तो खुद का ही आत्मघात होता है न?

दादाश्री : हाँ, शंका से तो खुद का ही, करने वाले का ही नुकसान हैं! सामने वाले को क्या लेना-देना? सामने वाले का क्या नुकसान है? सामने वाले को तो कुछ पड़ी ही नहीं है। सामनेवाला तो कहेगा कि 'मेरा तो जो होनेवाला होगा, वह होगा। आप क्यों शंका कर रहे हो?'

अब आप शंका करते हो तो वह आपकी निर्बलता है। मनुष्य में निर्बलता तो होती ही है, सहज रूप से होती ही है। निर्बलता नहीं हो तब तो बात ही अलग है। वर्ना, निर्बलता थोड़ी-बहुत तो होती ही है मनुष्य मात्र में! और निर्बलता गई कि भगवान बन गया! एक ही वस्तु है, निर्बलता गई - वही भगवान!

शंका सुनते गैबी जादू से

हम पर किसी को शंका हो न, तो फिर क्या वह उसे छोड़ेगी? नींद में भी उसे परेशान करती रहेगी। हमारा शुद्ध बहीखाता है इसलिए सभी का शुद्ध कर देता है। हम पर शंका हो, तब भी हमें उसमें कोई आपत्ति नहीं है। शंका होती है तो वह उसकी खुद की कमज़ोरियाँ हैं।

इसलिए कविराज ने लिखा है न, कि

विपरीत बुद्धिनी शंका, ते सूणता गैबी जादूथी,
छतां अमने नथी दंड्या, न करिया भेद 'हुं' 'तुं' थी।

क्या कहना चाहते हैं कविराज? 'दादा' पर शंका होना, ऐसा कब होता है? विपरीत बुद्धि हो, तभी शंका होती है।

एक बार ऐसा हुआ था कि यहाँ पर तो सभी के सिर पर ऐसे हाथ रखते हैं न, ऐसे एक स्त्री के सिर पर हाथ रखा था। उसके पति के मन में वहम हो गया। फिर कभी उस स्त्री के कंधे पर हाथ रख दिया होगा, तो उसे फिर से वहम हुआ। 'दादा' की दृष्टि बिगड़ गई लगती है, ऐसा उसके मन में घुस गया। मैं तो समझ गया कि इस भले आदमी को वहम हो गया है, उस वहम का उपाय तो, अब क्या हो सकता था?! तो मैंने ऐसा माना कि दुःखी हो रहा होगा।

फिर उसने मुझे पत्र लिखा कि, 'दादाजी, मुझे ऐसा दुःख हो रहा है। ऐसा नहीं करो तो अच्छा। आपसे, ज्ञानीपुरुष से ऐसा नहीं हो तो अच्छा।' उसके बाद मुझे मिलता, मेरे सामने देखता, तब उसके मन में ऐसा होता था कि दादाजी पर कोई असर ही नहीं दिखाई दे रहा है। फिर दो-तीन दिनों बाद फिर से मिला। तब हमें तो ऐसा था कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो, उस तरह से हमने तो 'सच्चिदानंद' किया। ऐसा पाँच-सात बार हुआ। उसे कोई असर नहीं दिखा, तब वह मन में थक गया। उसे भीतर घबराहट हो गई, कि 'यह क्या? पत्र लिखने के बाद पहुँचा, फिर पढ़कर आ रहे हैं, फिर भी कोई असर तो नहीं दिखाई दे रहा।'

अरे, गुनहगार पर असर दिखाई देता है। गुनहगार को इफेक्ट होता है। हमें इफेक्ट होगा ही क्यों? जब हम गुनहगार ही नहीं हैं, तब फिर! तू चाहे जितने पत्र लिखे या चाहे जो भी करे फिर भी मुझे आपत्ति नहीं है। पत्र का जवाब ही नहीं है मेरे पास। मेरे पास वीतरागता है। यह तो तू अपने मन में ऐसा समझ बैठा है। उसने फिर मुझसे कहा, 'आपको कुछ नहीं हुआ?' मैंने कहा, ''मुझे क्या होता? तुझे शंका हुई है, लेकिन 'मैं' उसमें हूँ ही नहीं न! इसलिए मुझे आपत्ति ही नहीं है न!''

इसलिए गैबी जादू लिखा है। अब ऐसे में लोगों को असर हो जाता है? यदि वह पत्र लिखे तो?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दूसरा कोई होता तो वह हिल जाता।

दादाश्री : फिर उस शिष्य का क्या होगा? और यहाँ तो असर भी नहीं हुआ और उसकी वाइफ पर भी असर नहीं हुआ, किसी पर कुछ भी असर नहीं हुआ और समय बीत गया। शंका का समय तो चला जाएगा न, एक दिन? शंका क्या हमेशा के लिए रहती होगी?

कवि ने बहुत भारी वाक्य लिखा है न, कि शंका कैसी है? सच्ची शंका नहीं है यह, लेकिन विपरीत बुद्धि की शंका है यह! और हम 'ज्ञानीपुरुष' हैं, तूने हम पर भी शंका की? जहाँ हर प्रकार से निःशंक होना है, जिस पुरुष ने हमें निःशंक बनाया, उन पर भी शंका?! लेकिन यह तो जगत् है, क्या नहीं कह सकता?! और फिर उस शंका को मैं सुनता हूँ, वह भी गैबी जादू से और फिर बाद में वीतरागता से देखता हूँ!

फिर भी दंडित नहीं किया 'मैं' 'तू' से

फिर कवि क्या कहते हैं?

छतां अमने नथी दंड्या, न करिया भेद हुं तू थी।

हाँ, बिल्कुल भी दंड नहीं दिया और 'मैं-तू' नहीं किया कि 'तू ऐसा है, तू ऐसा क्यों करता है, मुझ पर ऐसी शंका क्यों करता है!' ऐसा कुछ भी नहीं। मैं समझता हूँ कि ऐसा ही होता है यह तो, उसे गलतफहमी हुई है।

अपने यहाँ सत्संग में 'मैं-तू' नहीं हुआ है, 'मैं-तू' का भेद नहीं पड़ा है। 'मैं-तू' का भेद तो कितने ही सालों से नहीं पड़ा है, यहाँ किसी भी जगह पर। अधिकतर तो स्वाभाविक रूप से मनुष्य में दोष आते ही हैं। वह दोषों से भरा हुआ हो तो कहाँ जाए बेचारा?! लेकिन उस वजह से हमने ऐसा नहीं कहा कि 'तू ऐसा है'। 'मैं और तू' कहा तो भेद पड़ जाएगा। हो चुका फिर! और यहाँ तो सबकुछ अभेद! आपको लगा न, ऐसा अभेद?! यानी कि 'तूने ऐसा क्यों किया' ऐसा-वैसा कुछ भी नहीं। मुझमें ऐसी जुदाई है ही नहीं। वर्ना यदि शंका करे न, तो भेद पड़ जाता

है और इससे संबंधित शंका, वह तो बहुत भारी चीज़ है! यानी कि यह वाक्य बहुत बड़ा है तू 'ऐसा क्यों है? तूने ऐसा क्यों किया?' इस तरह 'मैं-तू', अलग नहीं करते। 'मैं-तू' अपने यहाँ कहा ही नहीं है। अपने इन पचास हज़ार लोगों में 'मैं-तू' कहा ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सभी धर्मस्थानकों में 'मैं-तू' के भेद ही देखने को मिलते हैं न?

दादाश्री : वही होता है न! और क्या होता है?! जब तक 'मैं-तू' के भेद हैं, तब तक जीवात्मा हैं। जिसमें 'मैं-तू' अभेद हो गए, वह परमात्मा बन गया। परमात्मा, भला उसमें और कुछ कहाँ से लाते? लेकिन जब तक उसे परमात्मा नहीं बनना होता है, तब तक 'मैं-तू' करता रहता है।

अर्थात् जब विपरीत बुद्धि से शंका की होगी, तब भी 'मैं-तू' के भेद नहीं डाले। वर्ना पूरा जगत् तो लड़ाई कर-करके तेल निकाल देता है कि 'तू नालायक है, ऐसा है, वैसा है।' और वैसा सभी जगह पर है ही, 'एवरीव्हेर!' यहाँ के अलावा सब जगह पर है ही! यह अपवाद मार्ग है, हर प्रकार से अपवाद मार्ग है। अन्य सभी जगह तो 'मैं-तू' के भेद डल जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : हम आप पर शंका करें उसका आपको पता चल जाता है, फिर भी आप भेद क्यों नहीं रखते?

दादाश्री : हम जानते हैं कि यह मूली है तो ऐसी ही गंध देगी, यह प्याज़ है, वह ऐसी गंध देगी। ऐसा सब नहीं समझते? फिर अगर वह दुर्गंध दे और उसमें उसे डाँटे तो बुरा नहीं दिखेगा?! वह है ही प्याज़, उसमें डाँटने जैसा क्या है?! मूली में मूली के स्वभाव वाली सुगंधी होती ही है। प्याज़ अगर उस कोने में रखी हो तो वहाँ पर शोर मचाती रहती है तो यहाँ तक गंध आती है वह उसका स्वभाव है। हम समझते हैं कि यह ऐसे स्वभाव का है।

हम यदि उल्टा करने जाएँगे तो उस पर से कृपा चली जाएगी जिससे उसका अहित हो जाएगा। जिसका हित करने बैठे हैं, उसी का

अहित हो जाएगा, इसलिए हमने तो... हमारी ज़िंदगी का परिश्रम ही ऐसा है कि हमने जो पेड़ लगाया, फिर प्लानिंग करते समय वह पेड़ अगर रोड के बीच में आ रहा हो, तब भी हम उस पेड़ को नहीं काटते, तब फिर रोड को ही घुमाना बाकी रहा! हमारा बोया हुआ, हमने पानी दिया हो और हमारे द्वारा पाले-पोसे गए उस पेड़ को हम उखाड़ते नहीं हैं लेकिन सिर्फ उस रोड को ही घुमाना रहा।

पहले से हमारी पद्धति ही इस प्रकार की रही है कि हमारे हाथ से बोया गया हमारे हाथ से उखड़ना नहीं चाहिए। बाकी, जीव तो बहुत प्रकार के मिलेंगे ही न!

ये तो अपार शंकाएँ हैं! शंका, शंका, चलते-फिरते शंकावाला जगत्। और किसी के द्वारा भूलचूक से किसी व्यक्ति की पत्नी पर हाथ रख दिया, तो उससे शंका हुई! उससे तो घर पर बेहिसाब लड़ाईयाँ शुरू हो जाती हैं। अब उस स्त्री का इसमें कोई दोष नहीं है, फिर भी बेहिसाब लड़ाईयाँ चलती हैं। अब इन लोगों का क्या करें?! यानी कि यदि भूल से अपना हाथ रख दिया गया हो तो निःशंकता से उस शंका को खत्म कर देना चाहिए। शंका किससे खत्म करनी है? निःशंकता से! वह 'दादा' की निःशंकता से शंका गई ऐसा कहना।

शंका करने के बजाय...

बाकी, जगत् में सब से बड़ा रोग हो तो वह है शंका!

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपका यह वाक्य बहुत ज़बरदस्त है। 'यह जगत् शंका करने योग्य नहीं है!'

दादाश्री : शंका से ही यह जगत् उत्पन्न हुआ है। शंका से, बैर से, कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनके आधार पर जगत् टिका है। किसी पर शंका करने के बजाय उसे दो थप्पड़ मार देना अच्छा है, लेकिन शंका मत करना। थप्पड़ मारोगे तो परिणाम आएगा न झट से! सामनेवाला चार लगा देगा न? लेकिन शंका का परिणाम तो उसे खुद को ही, अकेले को ही! खुद गड्ढा खोदकर और अंदर उतर जाता है, वापस बाहर नहीं निकल पाता।

ये सभी पीड़ाएँ शंका में से उत्पन्न हुई हैं। आपको इस भाई पर शंका हो कि 'इस भाई ने ऐसा किया।' वह शंका ही आपको काट खाएगी। अब यदि कभी ऐसा किया भी हो और शंका हो जाए, तब भी हमें शंका से कहना है, 'हे शंका, तू चली जा अब। यह तो मेरा भाई है।'

रकम जमा करवाने के बाद शंका?

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति ने मुझे गाली दी अब ऐसा तो मैं कैसे मान सकता हूँ कि उसने मुझे गाली नहीं दी? मेरा मन कैसे मानेगा?

दादाश्री : ऐसा कह ही नहीं सकते न! गाली दी है, वह तो दी ही है न! उसका सवाल नहीं है लेकिन हम क्या कहते हैं कि उस पर शंका नहीं होनी चाहिए।

हमने गाड़ी में किसी को पचास हज़ार रुपये रखने को दिए और कहा कि, 'ज़रा मैं संडास जा रहा हूँ।' और फिर संडास में शंका हो तो? अरे, पाँच लाख रुपये दिए हों और शंका होने लगे न, तब भी शंका से कहना कि, 'अब तू चली जा। मैंने दे दिए, वे दे दिए। वे जाने होंगे तो जाएँगे और रहने होंगे तो रहेंगे!' सामने वाले पर शंका तो बिना बात के दोष बंधवाती है और यदि कभी मुझ जैसे को रुपये दिए हों और वह शंका करे तो उसकी क्या दशा होगी? यानी कि यह जगत् किसी भी जगह पर शंका करने योग्य है ही नहीं।

उधार दिया हुआ याद आया और...

रात को सोने जाए, ग्यारह बजे हों और ओढ़कर सो जाए और तुरंत विचार आए कि 'अरे वह लाख रुपये लिखवाना तो रह गया। वह लिखकर नहीं देगा तो क्या होगा?' तो हो चुका! हो चुका काम! भाई का! फिर मुरदा जी रहा हो न, उस तरह रहता है बाद में!

अब किसी को लाख रुपये उधार दिए हों और वह हर महीने हज़ार रुपये ब्याज दे रहा हो, उसको अब दो-तीन लाख रुपयों का नुकसान हो गया, लेकिन उसने ब्याज तो भेजा, इसलिए हमने जाना कि

ब्याज तो भेजा है लेकिन जब से हमें शंका पड़ी कि 'इसे नुकसान हुआ है तो शायद कभी यह मूल रकम नहीं देगा, तो क्या करूँगा? अब लाख रुपये वापस आएँगे या नहीं?' उस विचार को पकड़ लिया तो फिर उसका कब अंत आएगा? शंका रहे, तब तक अंत आएगा ही नहीं, यानी कि उस व्यक्ति का मरण होनेवाला है।

फिर रात को कभी भी आपको इस बारे में शंका हो कि लाख रुपये नहीं आएँगे तो क्या होगा? पूरे दिन आपको शंका नहीं हुई और रात को जब शंका हुई तब दु:ख होता है और पूरे दिन शंका नहीं हुई थी तब क्या उस घड़ी दु:ख नहीं था? रुपये दे दिए हों, उसके बाद 'वापस देगा या नहीं?' ऐसी शंका उत्पन्न होगी, तो आपको दु:ख होगा न? तो शंका इस घड़ी क्यों हुई और पहले क्यों नहीं हुई?

प्रश्नकर्ता : उसका क्या कारण है?

दादाश्री : यह अपनी मूर्खता। यदि शंका करनी हो तो हमेशा शंका करो, इतनी अधिक जागृतिपूर्वक शंका करो, उसे रुपये दो तभी से शंका करो।

जहाँ लाख रुपये दिए हों, उस समय ऐसा लगे कि 'पार्टी ठीक नहीं है,' तब भी शंका उत्पन्न नहीं होने देनी चाहिए। 'अब क्या होगा?' इसी को कहते हैं वापस शंका होना। क्या होना है आखिर? यह शरीर भी जाने वाला है और रुपये भी जाने वाले हैं। सभी कुछ चला जाने वाला है न?! रोना ही है न अंत में?! अंत में इसे जला ही देना है न?! तो भला पहले से ही मरने का क्या मतलब है?! जी न, चैन से!

जब ऐसा होता है तब उस दिन मैं क्या करता हूँ? 'अंबालालभाई, जमा कर लो, रुपये आ गए!' कह देता हूँ। ऐसा नुकसान उठाने के बजाय चुपचाप रकम जमा कर लेना अच्छा है, सामनेवाला जाने नहीं उस तरह से!

नहीं तो लोगों को तो अगर ज्योतिषी कहे न, तो भी मान लेते हैं। ज्योतिषी कहते हैं, 'देखो, कितने अच्छे ग्रह हैं सभी। आपको कुछ

होनेवाला नहीं है। रुपये वापस आ जाएँगे।' तब फिर वैसा मान लेता है। उसकी खुद की भी स्टेबिलिटी नहीं है। वह ज्योतिषी हमारे बारे में क्या बता सकेगा? उसे उसका खुद का ही देखना नहीं आता, फिर वह हमारा क्या बताएगा?! उसके पैरों में आधे चप्पल हैं, पीछे से थोड़े घिस चुके हैं। फिर भी ऐसे चप्पल पहनता है तो हम नहीं समझ जाएँ कि 'अरे, तुझे तेरा ही ज्योतिष देखना नहीं आता, तो तू मेरा क्या देखनेवाला था?' लेकिन ये तो लालची लोगों को सभी फँसाते हैं। यहाँ के ज्योतिषी तो कहाँ तक पहुँच गए हैं?! बड़े साहब वगैरह सभी मानते हैं। अरे, मानना चाहिए क्या? ज्योतिषियों को घर में घुसने देना चाहिए? घर में घुसने दिया तो घर में रोना-धोना मच जाएगा इसलिए उन्हें घुसने ही नहीं देना चाहिए। हाँ, उन्हें कहना कि 'ज्योतिष देखने के लिए नहीं, यों ही आना। मेरे यहाँ आकर ज्योतिष मत देखना किसी का, कपाल मत देखना कि इसकी रेखाएँ ऐसी हैं, जैसा है वैसा रहने देना। हमें इतने दूध की खीर बनानी है उसमें छींटे मत डालना। हाँ, यह तो किसी को पता नहीं चलता कि क्या होना है, तो तुझे किस तरह पता चला?!'

निःशंकता, वहाँ कार्य सिद्धि

अतः वहम होने से दुःख पड़ता है। अगर बहीखाते देखने नहीं आएँ तो, होता है साठ लाख का फायदा और दिखाई देता है चालीस लाख का नुकसान। फिर उसे दुःख ही होता रहेगा न, ऐसा है यह जगत्। देखना नहीं आया उसी का यह दुःख है। नहीं तो दुःख है ही नहीं इस जगत् में।

यह तो निरी शंका के ही वातावरण में जी रहा है पूरा जगत्, कि 'ऐसा हो जाएगा या वैसा हो जाएगा।' कुछ भी नहीं होनेवाला। बेकार ही क्यों घबराता है? सोया रह न, सीधी तरह से। बिना काम के इधर-उधर चक्कर लगाता रहता है। तूने खुद अपने आप पर श्रद्धा रखी है वह गलत है सारी, 'हंड्रेड परसेन्ट'! यानी कि कुछ भी नहीं होनेवाला। लेकिन देखो न घबराहट, घबराहट, तड़फड़ाहट, तरफड़ाहट! जैसे साथ में ले जानेवाला है न थोड़ा बहुत?!

यह तो, पूरे दिन 'क्या होगा, क्या होगा?' इस तरह घबराता रहता

है। अरे, क्या होना है? यह दुनिया कभी भी गिर नहीं गई है। यह दुनिया जब नीचे गिर जाएगी न, तब भगवान भी नीचे गिर जाएँगे! दुनिया कभी भी गिरेगी ही नहीं।

हम नेपाल की यात्रा में बस लेकर गए थे। तब रास्ते में यू.पी. में रात को बारह बजे एक शहर आया था। कौन सा था वह शहर?

महात्मा : बरेली था वह।

दादाश्री : हाँ। तो बरेली वाले सारे फौज़दार, और कहने लगे कि, 'बस रोको।' मैंने पूछा कि, 'क्या है?' तब उन्होंने कहा कि, 'अभी आगे नहीं जा सकते। रात को यहीं पर रहो, आगे रास्ते में लुट लेते हैं। पचास मील के एरिया में इस तरफ से, उस तरफ से सभी को रोकते हैं।' तब मैंने कहा कि, 'भले ही लुट जाएँ, हमें तो जाना है।' तब अंत में उन लोगों ने कहा कि, 'तो साथ में दो पुलिसवालों को लेते जाओ।' तब मैंने कहा कि, 'पुलिसवालों को भले ही बैठा दो।' तब फिर दो पुलिस वाले बंदूक लेकर बैठ गए, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। ऐसा योग बैठना, वह तो अति-अति मुश्किल है! और अगर वैसा योग होना होगा तो हज़ारों प्रयत्न करोगे, तब भी तुम्हारे प्रयत्न बेकार हो जाएँगे! अतः डरना मत, शंका मत करना। जब तक शंका नहीं जाएगी, तब तक कभी भी काम नहीं हो पाएगा। जब तक नि:शंकता नहीं आएगी, तब तक इंसान निर्भय नहीं हो सकेगा। जहाँ शंका है, वहाँ भय होता ही है।

ऐसी शंका कोई नहीं करता

इस मुंबई शहर के हर एक इंसान से पूछकर आओ कि भाई, आपको मरने की शंका होती है क्या? तब कहेगा, 'नहीं होती।' क्योंकि उस सोच को ही निकाल दिया होता है, जड़मूल के साथ निकाल दिया होता है। वह जानता है कि 'यों शंका करेंगे तो अभी के अभी मर जाएँगे।' तो उसी प्रकार दूसरी शंकाएँ भी करने जैसी नहीं हैं। दूसरी शंकाएँ अंदर उठें न, तो उन्हें खोदकर निकाल दे न! नि:शंक हो जा न! लेकिन ये लोग तो दूसरी सभी शंकाओं को अंदर सहेजकर रखते

हैं लेकिन मरने की शंका को उठने ही नहीं देते, उठ जाए तब भी उसे खोदकर निकाल देते हैं।

समाधान ज्ञानी के पास से

और धंधा बैठ जाएगा, ऐसा लगे तो उसकी चिंता करता है, उसके लिए शंका होती रहती है कि, 'धंधा बैठ जाएगा तो क्या होगा? धंधा बैठ जाएगा तो क्या होगा?' अरे, शंका मत करना। यह तो कहेगा कि, 'तेज़ी वाले लोग तो हमेशा तेज़ी में ही रहेंगे और मंदी वाले लोग तो हमेशा मंदी में ही रहेंगे। मंदीवाला, कभी भी तेज़ी में नहीं आता और तेज़ीवाला, कभी भी मंदी में नहीं आता। देखो न, 'कैसा आश्चर्य है!' लेकिन नहीं, पॉज़िटिव-नेगेटिव दोनों रहते ही हैं, नहीं तो इलेक्ट्रिसिटी उत्पन्न ही नहीं होगी।

मोक्ष में जाने का ज्ञान मिला है, इसलिए अब मोक्ष में जाने की सभी तैयारियाँ रखना। शंका-कुशंका हो तो आकर हमें बता देना कि, 'दादाजी, मुझे इस तरह से शंकाएँ होती हैं।' मैं समाधान कर दूँगा। वर्ना, शंका तो सब से भयंकर चीज़ है। वह भूत जैसी है, डाकण जैसी है। शंका के बजाय तो डाकण का चिपकना अच्छा है, उसे तो कोई उतार देगा लेकिन अगर शंका चिपक गई तो जाएगी ही नहीं।

तो शंका ठेठ तक रखो

अपना तो यह आत्मज्ञान है! कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं है। यह तो आपको ग़ज़ब की चीज़ प्राप्त हुई है! और ये जो सारे भाव आते हैं न, मन के भाव, बुद्धि के भाव, वे सभी भाव सिर्फ भयभीत ही करवाने वाले हैं। एकबार समझ जाना है कि ये सिर्फ भयभीत करने वाले लोग हैं और जब तक बुद्धि का उपयोग होता रहेगा, तब तक वह दखल करती ही रहेगी। आपकी बुद्धि दखल करती है क्या?

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी खड़ी हो जाती है, उल्टी खड़ी हो जाती है।

दादाश्री : लेकिन वह गलत चीज़ है, उतना तो आप समझ गए हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, उतना तो समझ में आता है।

दादाश्री : वह गलत चीज़ है और ये जो नखरे करती है, वे सब गलत हैं, वह सब समझ में आ गया है न? वह सही चीज़ नहीं है, ऐसा समझ में आ गया है न? हाँ, यह सब समझ ले तो आत्मा की तरफ जाने के प्रयत्न होते ही हैं। फिर भी बुद्धि का बहुत ज़ोर हो तो हिल जाते हैं।

कभी व्यापार में बड़ा नुकसान हो जाए, तब भी आप घंटों तक बैठे नहीं रहते हैं न? जब वे पर्याय आएँ तब छह-छह घंटों तक बैठे नहीं रहते न?

प्रश्नकर्ता : बैठे रहते हैं न! कोई ठिकाना नहीं।

दादाश्री : बाद में बंद हो जाता है न?

प्रश्नकर्ता : बाद में तो बंद हो जाता है।

दादाश्री : जब बंद हो जाता है, उस घड़ी वह नुकसान वसूल हो जाने के बाद वे पर्याय बंद होते हैं या फिर नुकसान अपनी जगह पर रहने के बावजूद भी बंद हो जाते हैं? मान लो हमारा पाँच सौ रुपये का नुकसान हो गया, उसके आधार पर यह शुरू हुआ तो बारह घंटे चला या दो दिन चला, लेकिन कभी न कभी यह बंद होता ही है। तब वह पाँच सौ रुपये जमा होने के बाद बंद होता है या वह नुकसान वैसे का वैसा रहे, तब भी यह बंद हो जाता है?

प्रश्नकर्ता : वह नुकसान तो वैसे का वैसा ही रहता है।

दादाश्री : तो हमारा उसे बंद करने का अर्थ क्या है? जब तक नुकसान की भरपाई नहीं हो जाती, हमें तब तक चलने देना था न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तो अपने आप ही शुरू हो जाता है और अपने आप ही बंद हो जाता है।

दादाश्री : जब वह बंद हो जाए तो फिर कहना कि 'अभी तक

निकाल नहीं हुआ है तो क्यों बंद हो गया है? वापस आ।' ऐसा कहना!

ऐसा है, नुकसान के प्रश्न के बारे में सोचने में हर्ज नहीं है लेकिन जब तक नुकसान की भरपाई नहीं होती, तभी तक सोचते रहें तो काम का है। नहीं तो लट्टू की तरह, नुकसान की भरपाई हुए बगैर यों ही बंद हो जाए तब उसका तो अर्थ ही नहीं है न! वर्ना पहले से ही बंद रखना अच्छा।

वर्ना, लोग तो सभी पर्याय भूल जाते हैं। आगे लिखता जाता है और पीछे का भूलता जाता है। हम एक सेकन्ड के लिए भी नहीं भूलते, आज से चालीस साल पहले जो हुआ था, वह भी लेकिन लोग तो भूल जाते हैं न! कुदरत जबरन भुलवा देती है तब भूलें, इसके बजाय पहले से ही भूल जाना अच्छा। यह तो, याद भी उदयकर्म करवाते हैं और भुलवाते भी वे ही हैं। तब फिर 'हमें' ज़रा 'उनका' कंधा थपथपाकर कहना चाहिए, ''जो 'है' वह है और 'नहीं है' वह नहीं है, यह 'व्यवस्थित' में कोई भी बदलाव नहीं होनेवाला।''

इसलिए यदि नुकसान की चिंता करनी है तो पूरी ज़िंदगी करना, नहीं तो मत करना। नुकसान की चिंता करनी है तो जब तक फायदा 'एडजस्ट' न हो जाए, तब तक करना लेकिन फिर यदि लट्टू की तरह आप किसी के अधीन रहे और चिंता अपने आप बंद हो जाए, वह कैसा?! फायदा 'एडजस्ट' हुए बगैर ही यदि अपने आप बंद हो जाए और नुकसान की भरपाई हुए बगैर अपने आप ही बंद हो जाए तो फिर आपको पहले से ही बंद नहीं कर देना चाहिए? यह तो नुकसान खत्म हुए बगैर ही बंद हो जाता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो आप उससे कह देना कि, 'क्यों बंद हो गया? तो फिर तू शुरू ही किसलिए हुआ था? और शुरू हुआ तो ठेठ तक, नुकसान पूरा होने तक चलने दो।'

नहीं तो शंका मत रखना

हम 'ज्ञान' होने के पहले से ही एक बात समझ गए थे। हमें एक जगह पर शंका हुई थी कि, 'यह व्यक्ति ऐसा करेगा, धोखाधड़ी करेगा।' इसलिए फिर हमने तय किया कि शंका करनी हो तो पूरी ज़िंदगी करनी है, वर्ना शंका करनी ही नहीं है। शंका करनी है तो ठेठ तक करनी है क्योंकि उसे भगवान ने जागृति कहा है। यदि करने के बाद शंका बंद हो जानी है तो करना ही मत। हम काशी जाने के लिए निकले और मथुरा से वापस आ जाएँ, उसके बजाय निकले ही नहीं होते तो अच्छा था। यानी हमें उस व्यक्ति पर शंका हुई थी कि यह व्यक्ति ऐसा है। उसके बाद से, हमें शंका होने के बाद से, हम शंका रखते ही नहीं हैं। वर्ना उसके बाद से उसके साथ व्यवहार ही नहीं रखते। बाद में फिर धोखा नहीं खाते। यदि शंका रखनी हो तो पूरी ज़िंदगी व्यवहार ही नहीं करते।

सावधान रहो, लेकिन शंका नहीं

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार, जब गाड़ी चलाते हैं न, उस समय हमें सामने जागृति तो रखनी ही पड़ती है न? इसी प्रकार हमारा जीवन व्यवहार चलाते समय हमें हमेशा जागृति तो रखनी ही पड़ेगी न, कि 'ऐसा करूँगा तो यह आदमी खा जाएगा?' ऐसा तो हमें ध्यान में रखना ही पड़ेगा न?

दादाश्री : वह तो रखना पड़ेगा लेकिन शंका नहीं करनी है और ऐसी जागृति रखने की भी ज़रूरत नहीं है कि 'यह खा जाएगा'। सिर्फ हमें सावधान रहना चाहिए। इसे जागृति कह सकते हो, लेकिन शंका नहीं करनी है। 'ऐसा होगा तो क्या होगा, शायद अगर ऐसा होगा तो क्या होगा?' ऐसी शंकाएँ नहीं करनी चाहिए। शंकाएँ तो बहुत नुकसानदायक! शंका तो उत्पन्न होते ही दु:ख देती है!

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है कि किसी काम में ऐसे 'प्रोब्लम्स' आने लगें तब सामने वाले व्यक्ति पर हमें शंका होती है, और उस वजह से हमें दु:ख रहा करता है।

दादाश्री : हाँ, वह निराधार शंकाएँ हैं। शंका में दो चीज़ें होती

हैं। एक तो, प्रत्यक्ष दुःख होता है। दूसरा, उस पर शंका की, उसके बदले में गुनाह लागू होता है, कलम चार सौ अड़तीस लागू हो गई।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें कोई भी काम करना हो या रास्ते पर पुल बनाना हो तो उसके 'सेफ्टी फैक्टर' तो ध्यान में लेने पड़ेंगे न? नहीं लेंगे तो पुल गिर जाएगा। वहाँ पर अगर अजागृति रखकर पुल बना दें, तो ऐसा तो चलेगा ही नहीं न!

दादाश्री : वह ठीक है। सभी 'सेफ्टी फैक्टर' रखने चाहिए, लेकिन उसके बाद सेटिंग करते समय फिर से शंका नहीं होनी चाहिए। शंका खड़ी हुई कि दुःख खड़ा होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कोई भी काम करते हुए कोई व्यक्ति उसमें गलत नहीं करे, उसके बारे में सोचना तो पड़ेगा न?

दादाश्री : हाँ, सोचने की सारी छूट है ही! शंका करने की छूट नहीं है। जितना सोचना हो उतना सोच, पूरी रात सोचना हो तब भी सोच, लेकिन शंका मत करना क्योंकि उसका 'एन्ड' ही नहीं आएगा। शंका 'एन्डलेस' चीज़ है। विचारों का 'एन्ड' (अंत) आएगा। मन थक जाता है न! क्योंकि बहुत सोचने से मन हमेशा थक जाता है इसलिए फिर वह अपने आप ही बंद हो जाता है।

लेकिन शंका नहीं थकती। शंका तो ऐसी आती है, वैसी आती है इसलिए तू शंका मत रखना। इस जगत् में शंका करने जैसा अन्य कोई दुःख है ही नहीं। शंका करने से तो पहले खुद का ही बिगड़ता है, उसके बाद सामने वाले का बिगड़ता है। हमने तो पहले से ही ये खोज कर ली है कि शंका से अपना खुद का ही बिगड़ता है।

सबकुछ जाने, फिर भी शंका नहीं

इसलिए हमने कभी भी किसी पर शंका नहीं की है। हम बारीकी से जाँच करते हैं, लेकिन शंका नहीं रखते। जो शंका रखता है, वह मार खाता है। जानते ज़रूर हैं, लेकिन शंका नहीं रखते। ज़रा सी भी शंका

नहीं रखते! एक ज़रा सी भी शंका, किसी के लिए मुझे नहीं हुई है। जानते सभी कुछ है, एक अक्षर भी हमारी जानकारी से बाहर नहीं होता। यह इतने पानी में है, यह इतने पानी में, कोई इतने पानी में है, कोई इतने पानी में है, सबकुछ जानते हैं। किसी ने नीचे से पैर ऊँचे किए हैं, कोई मुँह बिगाड़ रहा है। अंदर पैर ऊपर किए हैं, वह भी दिखाई देता है मुझे लेकिन शंका नहीं करते हम। शंका से क्या फायदा होता है?

प्रश्नकर्ता : नुकसान होता है।

दादाश्री : क्या नुकसान होता है?

प्रश्नकर्ता : खुद को ही नुकसान होता है न!

दादाश्री : नहीं, लेकिन सुख कितना देती है? शंका पैठी तब से जैसे भूत लिपटा। 'ये ही ले गया या इसी ने ऐसा किया।' उससे पैठी शंका! उसका भूत लग गया आपको। सामने वाले का तो जो होना होगा वह होगा, लेकिन आपको भूत लग गया। ये 'दादा' इतने सतर्क हैं कि किसी पर ज़रा सी भी शंका नहीं करते। जानते सभी कुछ हैं, लेकिन फिर शंका नहीं करते।

'कहने वाला' और 'करने वाला,' दोनों अलग

संसार में किसी भी प्रकार की शंका करना गुनाह है। शंका करने से काम नहीं होता। ये 'ज्ञान' प्राप्त हुआ है, तो अब निःशंक मन से काम करते जाओ न! खुद की अक्ल लगाने गए तो बिगड़ेगा और सहज छोड़ दोगे तो काम हो जाएगा। इसी तरह काम करते रहने के बजाय अगर सहज छोड़ दोगे तो काम अच्छा होगा। जहाँ थोड़ी सी भी शंका रहे वहाँ किसी भी प्रकार का कार्य नहीं हो पाता।

प्रश्नकर्ता : फिर भी कोई भी कार्य करने में शंका-कुशंका होती रहती है, तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह झंझट वाला ही है न! वह ज़रा मुश्किल में डाल देता है।

प्रश्नकर्ता : तब क्या करूँ फिर ?

दादाश्री : करना क्या है ? 'आपको' 'चंदूभाई' से कहना है कि, 'शंका-कुशंका मत करना। जो आए वह करना है।' बस, इतना ही। 'वह' शंका-कुशंका करे तो उसे कहने वाले 'आप' हैं न, साथ के साथ। पहले तो कोई कहने वाला था ही नहीं, इसलिए उलझन में रहते थे। अब तो वह, कहने वाला है न!

वहाँ शूरवीरता होनी चाहिए

जहाँ शंका हो वह काम ही शुरू मत करना। जहाँ हमें शंका हो न, वह काम करना ही नहीं चाहिए या फिर वह काम हमें छोड़ देना चाहिए। जहाँ शंका उत्पन्न हो, ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए।

संघ यहाँ से अहमदाबाद जाने के लिए निकला, चलने लगा। अंदर कुछ लोग कहेंगे, 'अरे, शायद बरसात हो जाए तो वापस पहुँच पाएँगे या नहीं, इसके बजाय वापस लौट चलो न!' ऐसी शंका वाले हों तो क्या करना पड़ेगा ? ऐसे दो-तीन लोग हों तो वहाँ से निकाल देने पड़ेंगे। वर्ना पूरी टोली बिगड़ जाएगी। अतः जब तक शंका होती रहे न, तब तक कुछ भी ठीक से नहीं हो सकता। उससे कोई भी काम नहीं हो सकता। बहुत प्रयत्न करे, बहुत पुरुषार्थ करने से अगर वह बदल जाए तो सुधर सकता है। बदल जाए तो अच्छा। सभी खुश होंगे न!

जिसमें शूरवीरता हो, वह अगर कभी फेंकने लगे तो सबकुछ फेंककर चलता बनता है और वह जैसा चाहे वैसा काम कर सकता है। इसलिए शूरवीरता रखनी चाहिए कि 'मुझे कुछ भी नहीं होगा।' अपने को ज़हर खाना होगा तभी खाएँगे और अगर नहीं खाना हो तो कौन खिला सकता है ?

हमें कहे, 'अभी गाड़ी टकरा जाएगी तो ?' ड्राइवर यदि ऐसा कहे तो हमें कहना चाहिए, 'रहने दे, तेरी ड्राइविंग बंद कर। उतर जा। बहुत हो चुका।' यानी ऐसे व्यक्ति को छूने भी नहीं देना चाहिए ? शंका वाले के साथ तो खड़े भी नहीं रहना चाहिए। अपना मन बिगड़ जाता है।

शंका क्यों आनी चाहिए? साफ-साफ होना चाहिए। विचार तो कैसे भी आएँ लेकिन हम 'पुरुष' हुए हैं न? 'पुरुष' नहीं हुआ तो इंसान मर जाएगा। पुरुष हो जाने के बाद कहीं पुरुषार्थ में शंका होती होगी? पुरुष होने के बाद फिर भय कैसा? स्वपुरुषार्थ और स्वपराक्रम उत्पन्न हुए हैं। फिर भय कैसा?

प्रश्नकर्ता : शूरवीरता रखनी पड़ती है या अपने आप रहती है?

दादाश्री : रखनी पड़ती है। हम यदि ऐसा नहीं सोचें कि 'गाड़ी का एक्सिडन्ट होगा' तब भी यदि वह होना होगा तो छोड़ेगा क्या? और जो सोचता है, उसे? उसका भी होगा। लेकिन जो सोचे बगैर बैठता है, वह शूरवीर कहलाता है। उसे लगती भी कम है, बिल्कुल कम चोट लगती है और बच जाता है।

गाड़ी में बैठने के बाद ऐसी शंका होती है 'परसों ट्रेन टकरा गई थी, तो आज भी टकरा जाएगी तो क्या होगा?' ऐसी शंका क्यों नहीं होती? अतः जो काम करना है, उसमें शंका मत रखना और अगर आपको शंका हो तो वह काम मत करना। 'आइदर दिस ऑर देट!' ऐसा तो कहीं होता होगा? जो ऐसी बात करे उसे तो उठाकर कहना कि, 'घर जा। यहाँ पर नहीं।' शूरवीरता की बात होनी चाहिए।

हमें घर जाना हो और कोई एक व्यक्ति ऐसा कहता रहे, 'घर जाते हुए कहीं टक्कर हो जाएगी तो क्या होगा? या फिर एक्सिडन्ट हो जाएगा तो क्या होगा?' तो सब के मन कैसे हो जाएँगे?! ऐसी बातों को घुसने ही नहीं देना चाहिए। शंका तो होती होगी?

समुद्र किनारे घूम रहे हों और कोई कहे, 'अभी लहर आए और खींचकर ले जाए तो क्या होगा?' किसी ने बात की हो कि, 'ऐसे लहर आई और खींचकर ले गई।' तब हमें शंका होने लगे तो क्या होगा? यानी ये 'फूलिशनेस' की बातें हैं। 'फूल्स पेरेडाइज़!'

यानी जो काम करना हो उसमें शंका नहीं और शंका होने लगे तो करना मत। 'मुझसे यह काम हो पाएगा या नहीं होगा' ऐसी शंका

हो तभी से काम नहीं हो पाता। शंका रहती है, वह तो बुद्धि का तूफान है।

और ऐसा कुछ भी होता नहीं है। जिसे शंका होती है न, उसे सभी झंझट खड़े होते हैं। कर्म राजा का नियम ऐसा है कि जिसे शंका होती है, वहीं पर वे जाते हैं! और जो ध्यान नहीं देते, उनके वहाँ तो वे खड़े भी नहीं रहते। इसलिए मन मज़बूत रखना चाहिए।

यह प्रिकॉशन है या दखल?

शंका तो दुःख भी बहुत देती है, भयंकर दुःख देती है। वह शंका कब निकलेगी?! कई बार हज़ार-दो हज़ार के ज़ेवर, घड़ी वगैरह किसी ने रास्ते में मारकर सब लूट लिया हो, तब फिर यदि कपड़े, घड़ी, ज़ेवर वगैरह पहनकर फिर से बाहर जाना हो तो उस घड़ी शंका उत्पन्न होती है कि अगर आज (लुटेरा) मिल जाएगा तो? अब न्याय क्या कहता है? यदि उसे मिलना होगा तो उससे बच नहीं पाएगा, फिर तू क्यों बिना बात के शंका करता है?!

प्रश्नकर्ता : वह शंका उत्पन्न हुई, अब वहाँ पर उसके लिए कोई 'प्रिकॉशन' वगैरह लेने की कोई ज़रूरत नहीं रहती?

दादाश्री : 'प्रिकॉशन' लेने से ही बिगड़ता है न! अज्ञानी के लिए ठीक है। यदि इस किनारे पर आना हो तो इस किनारे का सबकुछ एक्ज़ेक्ट करो। उस किनारे पर रहना हो तो उस किनारे का एक्ज़ेक्ट रखो। यदि शंका करनी हो तो उस किनारे पर रहो। बीच रास्ते में रहने का कोई अर्थ ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन कोई 'डेन्जर सिग्नल' आए तब उसमें शंका न रखें, लेकिन उसके लिए सहज भाव से 'प्रिकॉशन' लेने चाहिए न?

दादाश्री : 'प्रिकॉशन' आपसे लिया ही नहीं जा सकता। 'प्रिकॉशन' लेने की शक्ति ही नहीं है। वह शक्ति है ही नहीं, उसे 'एडोप्ट' करने का क्या अर्थ है?

प्रश्नकर्ता : हमारे में 'प्रिकॉशन' लेने की शक्ति है ही नहीं?

दादाश्री : बिल्कुल भी शक्ति नहीं है। जो शक्ति नहीं है, उसे यों ही मान लेना, वह काम का नहीं है न! यह तो, 'प्रिकॉशन' लेने की शक्ति नहीं है और करने की भी शक्ति नहीं है और 'प्रिकॉशन' 'चंदूभाई' ले ही लेते हैं। आप बिना बात के दख़ल करते हो। करता है कोई दूसरा और आप सिर पर ले लेते हो और इसीलिए बिगड़ता है।

प्रश्नकर्ता : यानी चंदूभाई 'प्रिकॉशन' ले, तो उसमें हर्ज नहीं है?

दादाश्री : वह लेता ही है। वह तो लेता ही है, हमेशा ही लेता है। बातें करते-करते कोई व्यक्ति चल रहा हो, यानी कि वह असावधानी से चल रहा होता है लेकिन यदि एकदम से ऐसे साँप जाता हुआ दिख जाए, तो एकदम से कूद जाता है वह। वह कौन सी शक्ति से कूदता है? कौन कुदाता होगा? ऐसा होता है या नहीं होता? इतनी अधिक साहजिकता है इस देह में। इन 'चंदूभाई' में इतनी अधिक साहजिकता है कि ऐसे देखते ही कूद पड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसी साहजिकता हमारे काम-धंधे में और व्यवहार में नहीं आती।

दादाश्री : वह तो इसलिए कि दखल करते हो।

और यदि शंका करो तो हर प्रकार से करनी चाहिए, कि 'भाई, कल मर जाएँगे तो क्या होगा?' कोई मरता नहीं है?

प्रश्नकर्ता : मरते हैं न!

दादाश्री : तब फिर! इसलिए यदि शंका करो तो हर प्रकार की करना। यह एक ही प्रकार की क्यों करनी? वर्ना कौन सी शंका नहीं होगी, ऐसा है यह जगत्! किस बारे में शंका नहीं होगी?! यहाँ से घर पहुँच गए तभी सही है। उसमें क्यों शंका नहीं होती? शंका होनी ही नहीं चाहिए। यानी शंका से कहना चाहिए, 'चली जा। मैं निःशंक आत्मा हूँ।' आत्मा को क्या शंका भला?!

बीज में से.... जंगल

मैं क्या कह रहा हूँ कि शंका, वह तो भूत है। उस डायन को चिपटाना हो तो चिपटाना, अपने को डायन पसंद हो तो चिपटाना लेकिन यदि शंका होने लगे तो उसे क्या कहना चाहिए? कि 'दादा के फॉलोअर बने हो और अब किस चीज़ की शंका रखते हो? आपको शर्म नहीं आती? दादा किसी पर शंका नहीं रखते, तो आप क्यों शंका रखते हो? वह बंद कर दो। दादा इस उम्र में शंका नहीं रखते हैं, फिर आप तो जवान हो।' ऐसा कहेंगे तो शंका बंद हो जाएगी।

हमने ज़िंदगी में शंका का नाम तक निकाल दिया है। हमें किसी पर भी शंका आती ही नहीं। वह सेफसाइड है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बहुत बड़ी 'सेफसाइड।'

दादाश्री : शंका का नाम तक नहीं। जेब में से रुपये निकालते हुए देख लिया हो तो भी उस पर शंका नहीं और दूसरे भयंकर गुनाह किए हों तो भी शंका-वंका, राम तेरी माया! जानते ज़रूर हैं, जानकारी में होता है। हमारे ज्ञान में होता है कि 'दिस इज़ दिस, दिस इज़ देट।' लेकिन शंका नहीं।

शंका वह तो भयंकर दु:खदाई है और उससे नये प्रकार का संसार उत्पन्न हो जाता है, ऐसा है। बबूल का बीज हो न, तब तो सिर्फ बबूल ही उगता है और एक बड़ का बीज हो न, तो उसमें से सिर्फ बड़ ही उगता है लेकिन शंका नाम का बीज ऐसा है कि इस बीज से तो सत्रह सौ तरह की वनस्पतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। एक ही बीज में से सत्रह सौ तरह की वनस्पतियाँ उग जाती हैं, उस बीज को रखा ही कैसे जाए? यह शंका नाम का बीज, उसे सिर्फ हम निकाल चुके हैं लेकिन आपको तो सहज रूप से कभी शंका हो जाती है। नहीं?

इसलिए हमारे जैसा रखना। शंका निकाल देना। चाहे किसी भी बारे में हो, नज़रों से देखी हुई बात हो न, तब भी शंका नहीं। जान लेना है, जान ज़रूर लेना। जानने में पाप नहीं है। आँखों से देखा हुआ भी

गलत निकलता है। मेरे साथ कितनी ही ऐसी घटनाएँ हुई हैं! इन आँखों से देखता हूँ, फिर भी गलत निकलता है। ऐसे उदाहरण 'एक्ज़ेक्ट' मेरे अनुभव में आए हैं तो और कौन सी चीज़ को सही मानें हम लोग? अत: देखने के बाद भी शंका नहीं करनी चाहिए। जानकारी में रखना। हमारी यह खोज बहुत गहरी है। यह तो जब बात निकलती है तब खुद के अनुभव में पता चलता है और दुनिया में कहीं ये सारी शंकाएँ निकल नहीं चुकी हैं। शंका निकलना, वह तो 'ज्ञानीपुरुष' खुद, खुद की ही शंकाएँ निकालने के बाद दूसरों की भी सारी शंकाएँ निकाल देते हैं। वर्ना और कोई निकाल नहीं सकता। इंसान से खुद से शंका नहीं निकाली जा सकती। वह तो बड़े से बड़ा भूत है। वह तो डायन कहलाती है।

आप इस तरफ गए हों और वहाँ से कोई व्यक्ति आ रहा हो, वह व्यक्ति किसी स्त्री के कंधे पर हाथ रखकर चल रहा हो और आपकी नज़र पड़े तो क्या होगा आपको? उसने हाथ किसलिए रखा वह तो वही बेचारा जाने, लेकिन आपको क्या होगा? और वह शंका घुसने के बाद, कितने सारे बीज उग जाते हैं फिर! बबूल, नीम, आम, अंदर तूफान! यह शंका तो डायन से भी अधिक खराब चीज़ है। डायन का चिपटना तो अच्छा है कि ओझा निकाल देता है लेकिन इस शंका को कौन निकाले? हम निकाल देते हैं आपकी शंकाएँ! बाकी, शंका कोई नहीं निकाल सकता।

प्रश्नकर्ता : पिछला याद करने से शंका होती है।

दादाश्री : उसे याद ही नहीं करना है। बीता हुआ भूल जाना। बीती हुई तिथि तो ब्राह्मण भी नहीं देखते। ब्राह्मण से कहे, 'हमारी बेटी पंद्रह दिन पहले विधवा हो गई थी या नहीं?' तो ब्राह्मण कहेगा, 'ऐसा कोई पूछता होगा क्या? जिस दिन वह विधवा हुई थी, वह तिथी तो गई।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन कभी-कभी शंका हो जाती है।

दादाश्री : भले ही हो, लेकिन कितने सारे पेड़ उग निकलते हैं फिर! बीज एक और सत्रह सौ तरह की वनस्पतियाँ उग निकलती हैं!

प्रश्नकर्ता : पूरा वन बन जाता है।

दादाश्री : हाँ, पूरा वन बन जाता है। बाग में से जंगल बन जाता है। इन 'दादा' ने महामुश्किल से बगीचा बनाया होता है, उसमें फिर जंगल बन जाता है। इतना बड़ा बगीचा, वापस जंगल बन जाता है? अरे, उस गुलाब को रोपते-रोपते तो 'दादा' का दम निकल गया। देखो, जंगल मत बना देना! जंगल मत बनने देना। अब नहीं बनने दोगे न?!

प्रश्नकर्ता : शंका तो बिल्कुल पसंद ही नहीं है, दादा लेकिन *निकाल* नहीं होता, इसलिए फिर 'पेन्डिंग' रहा करता है।

दादाश्री : वापस 'पेन्डिंग' पड़ा रहता है?! हल नहीं कर देते?! 'ए स्क्वेर, बी स्क्वेर,' ऐसा वह 'एलजेब्रा' में केन्सल कर देते हो न, उस तरह से? जिसे 'एलजेब्रा' आता है न, उसे यह सब आता है।

शंका से आपको सभी परेशानियाँ खड़ी होती हैं, तब फिर नींद में विघ्न डालती है कभी?

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं है लेकिन अगर *निकाल* नहीं होता है तो वापस आती है।

दादाश्री : अब क्या करोगे? सेक दो न! तो फिर उगे नहीं। जो बीज सेककर रख दिए, वे फिर उगेंगे नहीं। उगेंगे तब परेशानी है न?!

इसलिए आपको ऐसा कहना चाहिए कि, 'दादा' के 'फॉलोअर्स' होकर भी ऐसा करने में आपको शर्म नहीं आती? वर्ना कहना, 'दो तमाचे मार दूँगा। शंका क्या कर रहा है?' ऐसे डाँटना। दूसरे डाँटें उसके बजाय 'आप' डाँटो तो क्या बुरा है? कौन डाँटे तो अच्छा? अपने आपको ही डाँटे तो अच्छा, लोगों की मार खाने के बजाय!

प्रश्नकर्ता : यह तो, मार खाता है तब भी नहीं जाती।

दादाश्री : हाँ, मार खाने पर भी नहीं जाती इसलिए यह बात

निकली। शंका जाने वाली हो, तब बात निकलती है। नहीं तो बात नहीं निकलती।

काम सारा पद्धतिपूर्वक करो, लेकिन शंका मत करना। इस 'रेल्वे' के सामने ज़रा सी भी भूल करे, निमंत्रण दें, तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : कट जाएगा।

दादाश्री : वहाँ कितना समझकर रहता है?! किसलिए समझदारी से रहते हैं लोग? क्योंकि वह तुरंत फल देता है इसलिए जबकि इस शंका का फल देर से मिलता है। उसका फल क्या आएगा, वह आज दिखाई नहीं देता इसलिए इस प्रकार निमंत्रित करते हैं। शंका को निमंत्रण देना, वह क्या कोई ऐसी-वैसी बात है?!

प्रश्नकर्ता : आगे के लिए फिर से बीज डलता है न, दादा?

दादाश्री : अरे, बीज की कहाँ बात कर रहे हो?! आज की शंका के निमंत्रण से तो, पूरे जगत् की बस्ती खड़ी हो जाती है! शंका तो ठेठ 'ज्ञानीपुरुष' तक का उल्टा दिखा देती है। यह शंका, डायन घुस गई तो फिर क्या नहीं दिखाएगी?

प्रश्नकर्ता : सबकुछ दिखाएगी।

दादाश्री : 'दादा' का भी उल्टा दिखाएगी। इन 'दादा' पर तो एक भी शंका की न, तो अधोगति में चला जाएगा। एक भी शंका करने जैसे नहीं हैं ये 'दादा!' 'वर्ल्ड' में ऐसा निःशंक पुरुष कहीं होता ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि शंका हो जाती है, कोई करता नहीं है।

दादाश्री : वह चीज़ अलग है। किसलिए होती है, वह बात अलग है लेकिन इन 'दादा' पर शंका नहीं करनी चाहिए। हो जाए तो उसका उपाय करना चहिए। उपाय दिया हुआ है मैंने। मैं यह कहता हूँ न, कि शंका तो हो सकती है लेकिन उसका उपाय करना चाहिए कि 'दादा से

माफी माँगता हूँ। मुझे शंका नहीं होनी चाहिए, लेकिन हो गई।' ऐसा उपाय तो होना चाहिए न?! 'दादा' तो, इस काल के अद्‌भुत पुरुष हैं, आश्चर्य पुरुष हैं!

लेकिन आज यदि सिर्फ शुद्ध घी लेकर घूमें तो बिकेगा क्या? काल कैसा विचित्र है! कोई शुद्ध घी लेकर घूमेगा, तो उसे दुकान का किराया भी खुद भुगतना पड़ेगा! मिलावटी होगा तो तेज़ी से बिक जाएगा। यह धर्म सच्चा है। यह तो जैसे-जैसे सब का पुण्य परिपक्व होगा, वैसे-वैसे लाभ उठाएँगे लेकिन पुण्य परिपक्व होंगे। पुण्य परिपक्व हुए बगैर रहेंगे नहीं।

यह तो, जगत् तप रहा है। कैसा तप रहा है, कैसा तप रहा है! और शंका होने लगे तो कितनी घुटन होगी?

प्रश्नकर्ता : बहुत होगी।

दादाश्री : बहुत घुटन होती है या काटता है?

प्रश्नकर्ता : काटता भी है!

दादाश्री : देखना ऐसी कोई शंका मत करना। शंका किसी पर भी मत करना। शंका करने जैसा नहीं है यह जगत्। अंदर दूर तक का दिखता है तभी शंका होती है न! नहीं तो यह शंका, अगर एक बार घुस जाए न, तो जब वह शंका निकल जाए तब काम का! अब वह यों ही नहीं निकल जाती। इनका सामर्थ्य ही नहीं कि शंका कैसे निकाले?! 'ज्ञानीपुरुष' सारी निकाल देते हैं, किसी और का सामर्थ्य नहीं है। कम बुद्धि वाला हो न, तो चलता है। शंका किसे होती है? बहुत तेज़ बुद्धि वाला हो न, उसे अधिक शंका होती है। मुझे तो चलते-फिरते शंका होती थी, जब तक ज्ञान नहीं हुआ था तब तक।

जागृति नहीं हो तो कोई परेशानी नहीं है और जागृत के लिए तो बहुत परेशानी है न! जागृति हितकारी सिद्ध होती है या टेढ़ी सिद्ध होती है?

प्रश्नकर्ता : बहुत हितकारी होती है लेकिन अगर शंका करवाए तो उसे निकाल ही देना है।

दादाश्री : जागृति को निकाल देना है? जागृति निकाल देनी है या वह शंका निकाल देनी है?

प्रश्नकर्ता : शंका ही निकाल देनी है।

दादाश्री : हाँ, जागृति तो रहने देनी है न?! हमने तो शंका की सब जड़ें निकाल दी हैं। आपने जड़मूल से खोदकर निकाल दी है या रहने दी है कुछ-कुछ?

प्रश्नकर्ता : अंदर शंका की बहुत शोध चलती रहती थी।

दादाश्री : लेकिन उसे जड़मूल से निकाल नहीं दिया अभी तक?

प्रश्नकर्ता : आज दादा की तरफ से निमित्त मिला है।

दादाश्री : हाँ, ऐसा कुछ होगा तभी न! वर्ना बात निकलती नहीं न! अपने यहाँ तो, मैं थोड़े ही किसी खास टाइम पर यह बात निकालता हूँ? 'एविडन्स' मिलें, तभी निकलती है न! इनको कुछ समाधान होना होगा, उनको कुछ समाधान होना होगा, आपको थोड़ा बहुत समाधान होना होगा, तभी निकली होगी न!

वर्ना शंका आए तो पूरी रात नींद नहीं आती।

प्रश्नकर्ता : अंदर कचोटती रहती है। इतनी मार खाई तब भी वापस नहीं जाती।

दादाश्री : क्या फायदा मिला?

प्रश्नकर्ता : कुछ नहीं।

दादाश्री : इसके बावजूद भी रहती है? तो किसलिए यह बात निकली? मुझे पता नहीं था कि इतना सारा होगा! यह 'ज्ञान' दिया हुआ है इसलिए लगा कि आप ऐसी छोटी-मोटी चीज़ें तो निकाल दोगे, और अपने आप ही निकाल दोगे और जो चुभने वाली चीज़ चुभे, आपको

यों कंकड़ चुभें तो पता नहीं चलेगा? आपको 'ज्ञान' हुआ है न? चुभें तो निकाल देते हो या नहीं निकाल देते? उसे रहने देते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं। निकाल देता हूँ।

दादाश्री : अब नहीं रहेगा न?

शंकालु मन अलग, 'हम' अलग

प्रश्नकर्ता : अब शंका का 'इफेक्ट' तुरंत तो होता ही है लेकिन क्या ऐसा 'इफेक्ट' अगले जन्म में भी रहेगा क्या?

दादाश्री : जिसका बीज डलता है न, उसका फल आता है इसलिए बीज में से ही निकाल देना है। शंका का बीज उग जाए न, तो उसका पता चल जाता है कि यह कपास का पौधा नहीं है लेकिन दूसरा पौधा है इसलिए उसे उखाड़कर फेंक देना है ताकि फिर से उसका बीज ही नहीं आए न! बाली उगेगी तब जाकर फिर बीज डलेंगे न?!

प्रश्नकर्ता : फिर दूसरे जन्म में बाधक नहीं होगा?

दादाश्री : बीज नहीं डलेंगे तो दूसरे जन्म में कुछ भी असर नहीं होगा। यह पिछले जन्म का बीज पड़ा हुआ है, उसी वजह से यह शंका उत्पन्न हुई, इसलिए अब बीज ही उत्पन्न नहीं होने देना है। अतः यह जगत् शंका करने जैसा नहीं है। चैन से सो जाना।

प्रश्नकर्ता : दृष्टि निःशंक हो जाए तभी निर्दोष दिखाई देते हैं।

दादाश्री : इसलिए तो मुझे निर्दोष दिखाई देते हैं। अब आप शुद्धात्मा हो गए, उसके बाद मन नहीं बदलेगा, वह 'डिस्चार्ज' के रूप में है। मन शंकालु हो तो शंकालु और उल्टा कहे तो उल्टा, उसमें घबराने का कोई कारण नहीं है। 'आपको' देखते रहना है। वह कहेगा, 'हम मर जाएँगे।' तब भी क्या? 'जो होना हो वह होगा, उसमें भी हमें हर्ज नहीं।'

प्रतिक्रमण से 'प्योरिटी'

प्रश्नकर्ता : लेकिन कभी अगर प्रकृति में ही शंका की गांठें पड़ चुकी हों, तो उनका छेदन कैसे किया जा सकता है?

दादाश्री : 'दादा' क्या कहते हैं कि शंका रखना ही मत। शंका आए तो कहना, 'जा, दादा के पास!' ऐसा उदय आए, तब भी वह उदय और आप दोनों अलग ही हैं।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले पर शंका नहीं करनी है फिर भी शंका हो जाती है, तो उसे कैसे दूर करें?

दादाश्री : वहाँ पर फिर उसके शुद्धात्मा को याद करके क्षमा माँग लेना, उसका प्रतिक्रमण करना। यह तो पहले की भूलें की हुई हैं, इसलिए शंका होती है।

प्रश्नकर्ता : अपने कर्म के उदय के कारण जो भोगना पड़ता है, प्रतिक्रमण करते रहने से वह कम होगा न?

दादाश्री : कम होगा। और 'आपको' नहीं भोगना पड़ता। 'आप' 'चंदूभाई' से कहना, 'प्रतिक्रमण करो।' तब फिर कम हो जाएगा। जितना-जितना प्रतिक्रमण करते जाएँगे उतना वह कम होगा न! फिर रास्ते पर आ जाएगा।

यह तो कर्म के उदय से सब मिले हैं। इसे अज्ञानी बदल नहीं सकते और ज्ञानी भी नहीं बदल सकते तो फिर क्यों हम दो नुकसान उठाएँ?

प्रश्नकर्ता : यह आपने ठीक कहा दादा, कि यह जगत् पहले से ऐसा ही है।

दादाश्री : इसमें अन्य कुछ है ही नहीं। यह तो ढँका हुआ है इसलिए ऐसा लगता है और शंका ही मारती है। अतः अगर शंका होने लगे तो होने ही मत देना और प्रतिक्रमण करना। किसी भी व्यक्ति के प्रति कोई भी शंका हो तो प्रतिक्रमण करना।

वहाँ 'चार्ज' होता है

प्रश्नकर्ता : यह 'ज्ञान' लेने के बाद आपने व्यवहार को निकाली कहा है, वह बात ठीक है लेकिन उसमें कहीं कोई अनौपचारिक व्यवहार रहता है तो वहाँ पर 'चार्जिंग' का भयस्थान कहाँ है?

दादाश्री : 'चार्ज' हो जाए वैसे भयस्थान हैं ही नहीं लेकिन जहाँ शंका होने लगे, वहाँ पर 'चार्ज' हो जाएगा। शंका होने लगे तो उस भयस्थान को 'चार्जिंग' वाला मानना। शंका अर्थात्, कैसी शंका? कि नींद नहीं आए, ऐसी शंका। यों ही छोटी सी शंका हुई और बंद हो जाए, ऐसी नहीं क्योंकि जो शंका हुई, और बाद में फिर उसे भूल जाएँ तो उस शंका की कोई कीमत ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर बिंदास रहना है? निडर और बेलगाम रहना है?

दादाश्री : नहीं। बेलगाम रहोगे तो मार पड़ेगी। बेलगाम हो जाए और बेफिक्र हो जाए तो मार पड़ जाती है। इन अंगारों में क्यों हाथ नहीं डालते?

प्रश्नकर्ता : तो फिर वहाँ पर कौन सा औपचारिक 'एक्शन' लेना चाहिए?

दादाश्री : 'एक्शन' में दूसरा क्या लोगे? वहाँ पर पछतावा और प्रतिक्रमण, इतना ही 'एक्शन' है।

प्रश्नकर्ता : यानी अपने इस 'ज्ञान' के बाद का पुरुषार्थ कौन सा है? पछतावा करना है या भाव मन पर छोड़ देना है?

दादाश्री : भाव मन तो इस 'ज्ञान' के बाद रहता ही नहीं है लेकिन जिसका यह 'ज्ञान' कच्चा रह गया हो, उसमें शायद भीतर थोड़ा बहुत भाव मन रह जाता है। बाकी, भाव मन नहीं रहता। 'ज्ञान' कुछ कच्चा परिणामित हुआ हो, यह 'ज्ञान' पूरी तरह से सुना नहीं हो अथवा यह 'ज्ञान' पूरी तरह से बोला नहीं हो, तो उसमें अंदर कच्चा पड़ जाता है। यह तो, कई बार नया 'इंजन' भी शुरू नहीं होता, ऐसा होता है न?

इसलिए सिर्फ पछतावा ही करना है और पछतावा भी हमें नहीं करना है। हमें अपने आपसे पछतावा करवाना है कि, 'आप पछतावा करो। आप ऐसे हो, वैसे हो।' ऐसा 'आपको' 'चंदूभाई' से कहना है।

इस तरह 'आप' चाहे कितना भी डाँटोगे तो कोई शिकायत करेगा 'आपकी'?

पुद्‌गल भावों की नहीं सुनना

शंका होने लगे तो सबकुछ चिपट जाता है। भीतर जो बैठे हुए हैं वे सभी जकड़ लेते हैं। वह चेतन भाव नहीं हैं, जड़ भाव चेतन का क्या कर सकते हैं?

अब पुरुष बनने के बाद उल्टे-सीधे विचार नहीं आएँगे और अगर आ जाएँ तो उन्हें सुनना मत। वे सभी *पुद्‌गल* भाव हैं। यानी अगर वे आएँ तो उन्हें आप सुनना मत। फिर कोई नाम ही नहीं देगा न! कुत्ते भौंकते हैं, बस उतना ही। हाथी के पीछे कुत्ते भौंकते हैं न, तब हाथी पीछे नहीं देखता। वह समझ जाता है कि कुत्ते हैं। सौ-दो सौ कुत्ते हों और किसी हाथी के पीछे भौंक रहे हों तो क्या वह पीछे देखता है कि कौन-कौन भौंक रहा है? ये *पुद्‌गल* भाव भी उसी प्रकार के हैं लेकिन अज्ञानी का उससे टकराव हो जाता है, क्योंकि वह हाथी नहीं बना है न! अज्ञानी व्यक्ति तुरंत एकाकार हो जाता है, देर ही नहीं लगती।

'कोई कुछ भी नहीं करने वाला', उसे शूरवीरता कहते हैं। वह *पुद्‌गल* और हम हैं चेतन, आत्मा, अनंत शक्ति वाले!

प्रश्नकर्ता : वे विचार वगैरह जब आएँगे तब देख लेंगे।

दादाश्री : आएगा ही कैसे लेकिन? देख लेने को भी नहीं रहेगा और अगर आएँ तो हमें क्या लेना-देना? वह अलग बिरादरी है, अपनी अलग बिरादरी। बिरादरी अलग, जाति अलग! इसलिए उससे कुछ नहीं होता। यह तो कुछ हो चुका है, ऐसा देखा भी नहीं है। ये तो सिर्फ शंकाएँ हैं और जो शंका होती है, वह भी *पुद्‌गल* भाव है। कुछ होगा नहीं और सिर्फ अपना 'वेस्ट ऑफ टाइम एन्ड एनर्जी' है। हाँ, वह यदि कभी चेतन भाव होता तो हरा देता लेकिन ऐसा तो है नहीं। फिर क्या है?! वे जड़ वस्तुएँ हैं, वे चेतन को क्या कर सकती हैं? वे यदि चेतन होतीं तो बात अलग थी। मन-वचन-काया के तमाम लेपायमान भावों

को जड़ भाव कहा है और खुद निर्लेप ही है। फिर लेपायमान क्या करेंगे? वे जड़ भाव और प्राकृत भाव हैं, ऐसा हम लोग कहते हैं न?

प्रश्नकर्ता : कहते हैं न!

दादाश्री : तो फिर यह प्रश्न ही खड़ा नहीं होता न, कि 'क्या होगा और क्या नहीं!' मन-वचन-काया के तमाम लेपायमान भाव वे जड़ भाव हैं – प्राकृत भाव हैं, चेतन भाव नहीं है। वह जाति अलग, वेष अलग। उनका और अपना क्या लेना-देना?

'शंका' के सामने ज्ञान जागृति

प्रश्नकर्ता : अब इस ज्ञान के बाद अगर शंका हो तो उस समय हमें क्या करना है?

दादाश्री : आपको देखते रहना है, जो शंका आती हो उसे।

प्रश्नकर्ता : शंका के लिए हमें कोई प्रतिभाव नहीं देना है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं, अपने आप ही 'एडजस्टमेन्ट' लेगा। आपको देखते रहना है कि, 'ओहो, चंदूभाई को शंका हुई है!' और जब शंका हो, तब वह संताप में ही रहता है। भयंकर दुःखी रहता है, बेहद दुःख होते हैं उसे क्योंकि भगवान ने कहा है कि शंका ही सब से बड़ा गुनाह है और वह उसे तुरंत ही दुःख देता है। वह शंका जब सामने वाले को दुःख देगी तब की बात तब, लेकिन खुद को भयंकर दुःख देती है और प्रतिभाव करने से तो शंका का दुःख बढ़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर शंका के समय हमें जागृति रखकर जुदा रहना है?

दादाश्री : उस समय तो जुदा रहना ही है, लेकिन हमेशा के लिए जुदा रहना है। एक दिन रखकर देखो, हफ्ते में एक दिन रखकर देखो। तो आपको समझ में आ जाएगा कि दूसरे दिन ऐसा रखेंगे तो परेशानी नहीं होगी। गिर नहीं जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : गिर जाने के बजाय उलझन हो जाती है, उसकी परेशानी होती है।

दादाश्री : वह उलझन तो, पहले की जो प्रेक्टिस है न, वह जाती नहीं है। छूटती नहीं है वह। बाकी, अब शंका की ज़रूरत ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अगर हम अलग हो जाएँ, तो वह शंका टूट जाती है?

दादाश्री : हाँ, शंका अपने आप ही बिखर जाती है।

प्रश्नकर्ता : अत: अब जागृति ही अधिक रखनी है।

दादाश्री : देखने वाला हमेशा जागृत ही होता है। यदि देखने वाला है तो जागृत होगा। ज्ञाता-दृष्टा, वह अगर जागृत होगा तभी ज्ञाता-दृष्टा कहलाएगा। बाकी, जितनी अजागृति, उतनी ही मार पड़ती है।

सामने वाले के संशय के सामने

प्रश्नकर्ता : अब सामने वाला कोई हम पर संशय रखे तो उसका निबेड़ा कैसे लाएँ?

दादाश्री : वह संशय रखता है, ऐसा ज्ञान ही आपको भूल जाना है। वह जो ज्ञान है आपको, वह ज्ञान ही भूल जाना। सामने वाला संशय रखता है या नहीं रखता, उसका आपको क्या पता चलता है?

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसी-ऐसी शंका है, ऐसा मुँह पर कहे तो?

दादाश्री : मुँह पर कहे, तो कहना, 'शंका आपको है, आप दु:खी होओगे। शंका रखोगे तो दु:खी होओगे।' ऐसा कह देना। फिर जो भी हो, उसका आप क्या कर सकते हो?! और आपके आचरण वैसे नहीं होंगे तो आप पर कोई शंका करेगा भी नहीं। जगत् का नियम ही ऐसा है! कभी ऐसे आचरण किए हैं, इसलिए यह शंका खड़ी रही है क्योंकि जब पच्चीस साल का था तब गुनाह हुआ था और साठ साल का हुआ तब कोर्ट में केस चला! यह सब ऐसा होता है सारा इसलिए अगर कोई शंका करता है तो वह अपना ही गुनाह है।

प्रश्नकर्ता : उसे हम पर संशय हुआ हो तो क्या हमें पूछना पड़ेगा कि संशय क्यों हुआ?

दादाश्री : पूछने में मज़ा ही नहीं है। वह मत पूछना। आपको तुरंत ही समझ जाना है कि 'अपना ही कोई दोष है', वर्ना शंका क्यों हुई? कितने ही लोग चोर नहीं होते फिर भी उन पर चोरी की शंका होती है, तो वह पहले कभी चोर रहा होगा, वर्ना यों ही शंका नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले व्यक्ति की दृष्टि ऐसी हो तो हम क्या करें?

दादाश्री : नहीं, सामने वाले की दृष्टि ऐसी नहीं होती। वह अपनी ही भूल का परिणाम है। जगत् इतना अनियम वाला नहीं है कि आपमें भूल नहीं हो फिर भी सामने वाले की ऐसी दृष्टि उत्पन्न हो। जगत् बिल्कुल नियम वाला है, एक-एक सेकन्ड नियम वाला है!

'भुगते उसी की भूल' यह वाक्य लगा दिया कि हल आ गया। जो शंका कर रहा है, वह भुगत रहा है या जिस पर शंका होती है, वह भुगत रहा है? वह देख लेना।

प्रश्नकर्ता : मेरी समझ के अनुसार तो 'दादा' ने जो ये पाँच आज्ञा दी हैं, उनका पालन ठीक से नहीं होने के कारण ये सब प्रश्न और शंकाएँ उपस्थित होते हैं।

दादाश्री : हाँ, वर्ना होंगी ही नहीं। आज्ञा पालन करेंगे तो कुछ भी नहीं होगा। आज्ञापालन में ज़रा कमी आए तो वैसा हो जाता है। आज्ञा पालन करते हैं न, वैसे तो लगभग हज़ारों लोग अपने यहाँ समाधि में रहते हैं।

जहाँ शंका करनी है, वहाँ जग निःशंक

और शंका करने की एक ही जगह है कि "क्या मैं वास्तव में 'चंदूभाई' हूँ?" इतनी ही शंका करते रहना है। वह आत्महत्या नहीं है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं चंदूभाई हूँ' उस बात पर ही शंका हो....

दादाश्री : तब तो काम ही हो जाएगा! वह शंका तो किसी को होती ही नहीं न! मैं पूछता रहता हूँ तब भी शंका नहीं होती। 'मैं चंदू ही हूँ, मैं चंदू ही हूँ' कहता है। वह शंका होती ही नहीं है। नहीं क्या?!

फिर जब मैं बार-बार हिलाता हूँ तब कुछ शंका होती है, और उसके बाद सोचता है कि 'ये दादा कह रहे हैं वह भी सही है, बात में कुछ तथ्य है।' बाकी, अपने आप तो किसी को भी शंका नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : वैसी शंका हो, तभी आगे बढ़ता है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। यह शंका शब्द इसी के लिए है। 'क्या मैं वास्तव में चंदूभाई हूँ?' वह शंका 'हेल्प' करती है। दूसरी सभी शंकाएँ तो आत्महत्या करवाती हैं। 'क्या मैं वास्तव में चंदूभाई हूँ? और ये सब कहते हैं कि इनका बेटा हूँ। क्या वास्तव में हूँ?' यह शंका हुई तब काम का!

अर्थात् कौन सी शंका रखने जैसी है? आत्मा संबंधी शंका रखने जैसी है कि 'आत्मा यह होगा या वह होगा!' वास्तविक आत्मा की जब तक पहचान नहीं हो जाती, तब तक पूरे जगत् को शंका रहती ही है।

'मैं निश्चय से चंदूभाई हूँ, वास्तव में यह चंदूभाई मैं ही हूँ?' ऐसा मानता है उसी से सभी आरोप गढ़े गए लेकिन अब उस पर शंका हो गई न? वहम बैठ गया न? सच में वहम घुस गया! वह वहम तो काम निकाल देगा। ऐसा वहम तो किसी में घुसता ही नहीं न! हम वहम डालने जाएँ फिर भी नहीं डलता न!

वैसी शंका होगी ही किस तरह? अरे, सरकार भी 'अलाउ' करती है! सरकार 'अलाउ' नहीं करती? 'चंदूलाल हाज़िर है?' कहते ही चंदूलाल जाए तो सरकार 'अलाउ' कर देती है! लेकिन खुद को कभी भी शंका होती ही नहीं कि 'मैं चंदूलाल नहीं हूँ और यह मैंने दूसरी तरह से पकड़ रखा है?!'

खुद अपने आप पर शंका हो, ऐसा बाहर कहीं नहीं है न? दस्तावेज

में भी लिखते हैं कि वकील साहब ने हस्ताक्षर किए, कि तुरंत 'एक्सेप्ट'! इतने सारे लोग कबूल करते हैं, फिर उसे शंका होगी ही कैसे?!

झूठे ज्ञान पर वहम

यानी किसी के खुद के ही ज्ञान पर जो वहम डाल दे, वे कहलाते हैं 'ज्ञानी'! खुद का ज्ञान तो कभी भी झूठा हो ही नहीं सकता न? लेकिन 'ज्ञानी' वह सब कर सकते हैं, तो उसे खुद को वहम हो जाता है। वह 'रोंग बिलीफ' निकल गई तो काम हो गया!

एक व्यक्ति तो मुझसे ऐसा कहने लगा, 'दादा, मुझे कभी भी अपने आप पर शंका नहीं हुई, आज मुझे शंका हो गई।' मैंने कहा, 'मैं चंदूभाई हूँ, आपके उस ज्ञान पर वास्तव में वहम हुआ न?' वहम अर्थात् 'क्रेक' पड़ गया पूरे में। यानी 'मैं चंदूभाई हूँ' उस ज्ञान पर भी 'क्रेक' पड़ जाना चाहिए न? शंका होनी चाहिए न! और सच्चे ज्ञान में नि:शंक रहना है। ये तो, झूठे ज्ञान में नि:शंक रहे हैं, शंका रहित रहे हैं!

अर्थात् अभी तक जाने हुए ज्ञान पर वहम पड़ने लगे न, तभी से हम समझ जाते हैं कि वह ज्ञान टूटने को है। जिस पर वहम पड़ा, शंका हुई न, उस ज्ञान के खत्म होने की शुरुआत हुई। यानी सामने शंका पड़े, ऐसा ज्ञान होना चाहिए न! और सच्चे ज्ञान पर कभी भी शंका नहीं होती। हाँ, शायद कभी आवरण के कारण समझ में नहीं आए, तो वह बात अलग है। बाकी, सच्चे ज्ञान पर शंका नहीं होती, क्योंकि शरीर में आत्मा है न!

वहम 'अहंकार' पर ही

कभी भी इस अहंकार पर वहम नहीं हुआ। सभी चीज़ों पर वहम हुआ है लेकिन अहंकार पर वहम नहीं हुआ। 'यह चंदूभाई, वह मैं हूँ' इस पर वहम हुआ तो वह अहंकार पर वहम हुआ कहलाएगा।

और 'चंदूभाई' पर वहम हुआ, वह निकाल नहीं देना है आपको। उसे 'ड्रामेटिक' तौर पर रखना है। कोई भर्तृहरि का नाटक कर रहा हो,

तो वह यों पूरी एक्टिंग करता है। चिल्लाता है, वैराग लेता है, आँखों में पानी ले आता है, रोता है, अभिनय करता है। लोग समझते हैं कि इसे बहुत दुःख है और यदि हम उसे पूछने जाएँ कि, 'क्यों आपको बहुत दुःख था?' तब वह कहेगा, 'नहीं, मैं तो लक्ष्मीचंद हूँ। यह तो मुझे भर्तृहरि का पात्र निभाने को मिला है।' उसी तरह आपको यह 'चंदूभाई' का पात्र निभाना पड़ेगा और 'खुद कौन है' वह जान गए, तो समझो काम हो गया!

जन्मोंजन्म से निःशंकता

बाकी 'खुद कौन है' देखो न उसी पर किसी को शंका नहीं होती न! बड़े-बड़े आचार्यों और साधुओं को भी खुद का जो नाम है, उस पर शंका नहीं हुई कभी भी! यदि शंका होने लगे तो भी हम समझें कि सम्यक दर्शन होने की तैयारियाँ हो रही हैं। सर्वप्रथम तो वह शंका ही नहीं होती न! उल्टा उसी नाम को मज़बूत करते हैं और ये सब क्रोध-मान-माया-लोभ उसी के कारण हैं। यह असत्य की पकड़ पकड़ी है, उसी का उसे सत्य के रूप में भान हुआ है कि 'यही सत्य है।' बार-बार असत्य की पकड़ पकड़ी जाती है, उसके बाद वही उसके लिए सत्य बन जाता है। गाढ़ रूप से असत्य का उपयोग किया जाए तो फिर वह सत्य बन जाता है। फिर उसे ऐसा भान ही नहीं रहता कि असत्य है, सत्य ही है ऐसा रहता है।

इसलिए यदि यहाँ पर शंका हो जाए तो क्रोध-मान-माया-लोभ सबकुछ चला जाएगा लेकिन ऐसी शंका होती ही नहीं न! किस तरह से हो?! कौन करवाएगा यह? जिस बारे में जन्मजन्मांतर से निःशंक हो चुका है, उस बारे में खुद को शंका होने लगे, ऐसा कौन कर देगा? जिस जन्म में गया, वहाँ पर जो नाम पड़ा, वहाँ उसी को सत्य माना। शंका ही नहीं होती न! कितनी अधिक मुश्किल है?! और उसी के कारण ये क्रोध-मान-माया-लोभ खड़े रहे हैं न! आप यदि 'शुद्धात्मा' हो तो क्रोध-मान-माया-लोभ की ज़रूरत नहीं है और आप यदि 'चंदूभाई' हो तो क्रोध-मान-माया-लोभ की ज़रूरत है। पूरे शास्त्रों का 'सॉल्यूशन'

यहाँ पर सिर्फ इतना ही जानने से मिल जाता है! लेकिन उस आत्मज्ञान को जानें किस तरह? और आत्मज्ञान जानने के बाद कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता लेकिन वह जानें किस तरह?!

आत्मा संबंधी निःशंकता

अब भगवान ने कहा है कि, किसी को भी आत्मा संबंधी शंका नहीं जाती। कृष्ण भगवान की वह शंका चली गई थी। वर्ना, आत्मा संबंधी शंका कि 'आत्मा ऐसा होगा या वैसा होगा, फलाना होगा या वैसा होगा, ऐसा होगा या वैसा होगा? थोड़ा बहुत कर्ता तो वह होगा न? कुछ बातों का तो वह कर्ता होगा ही न?' फिर ऐसी शंका रहा करती है। वर्ना कहेगा, 'कर्ता के बिना तो कैसे चलेगी यह गाड़ी?' अरे, तुझे नहीं पता चलेगा! वह तो 'ज्ञानीपुरुष' ही जानते हैं कि यह कैसे चल रहा है! अब वह आत्मा, जैसा 'ज्ञानी' ने जाना है, वैसा होता है, इस पुस्तक में लिखा है वैसा नहीं होता। पुस्तक में आत्मा संबंधी बात ही नहीं है कोई।

अर्थात् आत्मा के बारे में कोई शंका रहित हुआ ही नहीं है। ये तो कहेंगे, 'आत्मा की इतनी भावना तो होनी ही चाहिए न!' अब वह जिसे आत्मा मान रहा है, उसे मैं निश्चेतन चेतन कहता हूँ। अब वहाँ पर आत्मा कैसे प्राप्त हो सकेगा? शंका ही रहेगी न फिर!

पूरा जगत् आत्मा को लेकर शंका में ही पड़ा हुआ है। लोग मुझसे पूछते हैं कि, 'ये क्रोध-मान-माया-लोभ आत्मा के अलावा तो कोई करेगा ही नहीं न?' मैंने कहा, 'शांति हो गई तब तो!' तब कहते हैं, 'लेकिन जड़ तो करेगा ही नहीं न?' मैंने कहा, 'जड़ ये नहीं करता, लेकिन चेतन भी कैसे कर सकेगा? जिसमें जो गुणधर्म नहीं हैं, वह उसे करेगा ही कैसे?' ऐसा है न, ये जो व्यतिरेक गुण हैं, इसका उसे पता नहीं होता न! कि दो चीज़ें साथ में हों तो तीसरा व्यतिरेक गुण उत्पन्न हो जाता है, खुद के गुणधर्म छोड़ते नहीं और नया गुण उत्पन्न हो जाता है लेकिन 'ज्ञानी' के बिना वह समझ में कैसे आए?!

ऐसे मनुष्यत्व नहीं खो सकते

अब 'आत्मा ऐसा होगा या वैसा होगा, ऐसा होगा या वैसा होगा' कोई ऐसी विचार श्रेणी में आ जाए, उसे भगवान ने सम्यक्त्व मोहनीय कहा है। ऐसी विचार श्रेणी में कोई आया ही नहीं है अभी तक। ऐसी मोहनीय भी जागृत नहीं हुई है। अभी तो यह, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय ही है अभी तक। सम्यक्त्व मोहनीय जागृत हो गई होती तो भगवान उसे महान अधिपति कहते। यह तो एक 'प्लॉट' होता है या एक मकान होता है, इतना ही अधिपति होता है, उसमें तो खुद अपने आपको कितना ही धन्य मानकर पेट पर हाथ फेरकर 'होइया' करके सो जाता है!

अरे, क्या देखकर सो जाता है?! अनंत जन्मों से ऐसे 'होइया' करके सो गया! शर्म नहीं आती?! और वापस पेट पर हाथ फेरकर 'होइया' कहेगा। अरे, क्या देखकर सो जाता है?! यह जगत् क्या सोने योग्य है? मनुष्यजन्म मिला, और सोया जाता होगा?! मनुष्यजन्म मिला, अच्छा योग मिला, उच्च धर्म पुस्तकें पढ़ने का योग मिला, उच्च आराधना मिली, वीतराग के दर्शन हुए, और तू 'होइया' करके सो जाता है?!

और फिर 'बेडरूम' बनाया है?! अरे, 'बेडरूम' नहीं बनाते! वह तो एक रुम हो तो सबको साथ में सो जाना है और अलग बेडरूम तो संसारी जंजाल! यह तो 'बेडरूम' बनाकर पूरी रात संसार की जंजाल में पड़ा रहता है। आत्मा की बात तो कहाँ से याद आए? बेडरूम में आत्मा की बात याद आती होगी?!

मैंने एक व्यक्ति से पूछा, 'क्या देखकर सो जाते हो?!' तब उसने कहा, 'साढ़े दस बजे हैं, तो अब नहीं सोऊँ?' 'अरे, कुछ कमाए बगैर सो गए? आज क्या कमाया वह कहो मुझे।' तब उसने कहा, 'मैं कुछ तो करता हूँ। वह तो कुछ भी नहीं करते!' और फिर उस दूसरे वाले से पूछा, तब उसने भी ऐसा ही कहा कि, 'वह नहीं करता है, यह नहीं करता।' सभी ऐसा कहते हैं!

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा हिसाब लगाते हैं, खुद का हिसाब निकालने के बजाय।

दादाश्री : यह तो सभी *पोल* (गड़बड़) मारते हैं!

अतः पूरा ही जगत् शंका में है, कुछ अपवाद छोड़कर क्योंकि 'आत्मा क्या है', उस पर शंका नहीं होती। संदेह रहा करता है कि, 'आत्मा ऐसा होगा या वैसा होगा, ऐसा होगा या वैसा होगा।' ऐसा संदेह होता ही रहता है! वह संदेह रहा करता है इसलिए फिर जगत् में तरह-तरह की दूसरी शंकाएँ खड़ी हो जाती हैं।

तब जाता है संदेह

प्रश्नकर्ता : संदेह गए हैं ऐसा नहीं कहता, लेकिन मुझमें अंदर से संदेह का उद्‌भव ही नहीं होता।

दादाश्री : हाँ, उद्‌भव नहीं होता, वह बात अलग है। ऐसा कुछ समय तक लगता है लेकिन जब मुश्किलें आती हैं तब वापस संदेह खड़े हो जाते हैं। यह सारा तो बदलेगा। हमेशा एक ही प्रकार का थोड़े ही रहता है? जैसे दिन-रात बदलते रहते हैं, टाइम निरंतर बदलता रहता है, वैसे ही ये अवस्थाएँ निरंतर बदलती रहेंगी!

इंसान का संदेह कब जाता है? वीतरागता और निर्भय होने के बाद संदेह जाता है। वर्ना संदेह तो जाता ही नहीं है। जब तक शांति रहे, तब तक अनुकूल लगता है लेकिन जब परेशानी आए तब अशांति हो जाती है न! तब वापस अंदर उलझन में पड़ जाता है, और उसी वजह से सारे संदेह खड़े होते हैं।

'आत्मा' के बारे में शंका किसे?

प्रश्नकर्ता : श्रीमद् राजचंद्र जी ने आत्मसिद्धि में लिखा है कि,

"आत्मानी शंका करे, आत्मा पोते आप।
शंकानो करनार ते, अचरज एह अमाप।"

इसमें आत्मा के बारे में शंका आत्मा करता है या बुद्धि करती है?

दादाश्री : यह आत्मा के बारे में शंका आत्मा करता है, वह बुद्धि

नहीं करती। आत्मा, यानी जो अभी आपका माना हुआ आत्मा है, वह और मूल आत्मा, वे दोनों अलग आत्मा हैं। आपका माना हुआ आत्मा बुद्धि सहित है। अहंकार, बुद्धि सभी साथ में मिलकर मूल आत्मा के बारे में शंका करते हैं। क्या शंका करते हैं? कि 'मूल आत्मा नहीं है। ऐसा कुछ लगता नहीं है।' उसे शंका होती है कि ऐसा हो सकता है या क्या?!

प्रश्नकर्ता : यानी बुद्धि के उपरांत जो आत्मा है वह उसके साथ ही जुड़ा हुआ है।

दादाश्री : यह जिसे आप आत्मा मानते हो, या फिर यह जगत् किसे आत्मा मानता है? 'मैं चंदूभाई और बुद्धि मेरी, अहंकार सारा मेरा और मैं ही यह आत्मा हूँ और इस आत्मा को मुझे शुद्ध करना है', ऐसा मानते हैं। उसे ऐसी खबर नहीं है कि आत्मा तो शुद्ध है ही और यह रूपक खड़ा हो गया है। यानी यह खुद, अहंकार-बुद्धि है उसमें, वे शंका करते हैं। सिर्फ बुद्धि शंका नहीं करती। बुद्धि अहंकारसहित शंका करती है। यानी वह 'खुद' हुआ।

''आत्मानी शंका करे, आत्मा 'पोते' आप!''

वह खुद आत्मा ही है और वह खुद अपने आप पर शंका करता है। यानी 'उसके' अलावा दूसरा कौन शंका कर सकता है? वह शंका क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं करते हैं, न ही मन करता है, न ही बुद्धि करती है। आत्मा ही आत्मा पर शंका करता है। यह आश्चर्य है, ऐसा कहते हैं। खुद अपने आप पर शंका करता है क्योंकि यह तो इतना अधिक अज्ञान फैल गया है कि खुद खुद पर शंका करने लगा है कि 'मैं हूँ या नहीं?' ऐसा कहना चाहते हैं। कृपालुदेव का यह बहुत अच्छा वाक्य है, लेकिन यदि समझे तो!

प्रश्नकर्ता : शंका पड़ना, वह क्या प्रतिष्ठित आत्मा का काम है?

दादाश्री : इसमें मूल आत्मा को शंका होती ही नहीं। और प्रतिष्ठित आत्मा तो शंकाशील ही है न! और वह आपने जैसी प्रतिष्ठा की है, हम

मूर्ति में प्रतिष्ठा करते हैं तो जैसी प्रतिष्ठा करते हैं, वह वैसा ही फल देती है। उसी तरह यह भी मूर्ति में प्रतिष्ठा की है। उन मूर्तियों में और इसमें फर्क ही नहीं है। इसमें जैसी प्रतिष्ठा की है, यह सिर्फ वैसा ही फल देगी। यदि प्रतिष्ठा अच्छी की है, तो अच्छा फल देगी।

प्रश्नकर्ता : यानी प्रतिष्ठित आत्मा शुद्धात्मा की शंका करता है!

दादाश्री : हाँ। प्रतिष्ठित आत्मा। मैंने प्रतिष्ठित आत्मा नाम दिया है। बाकी, यों इन लोगों ने व्यवहार आत्मा कहा है। जिसे तू अभी आत्मा मान रहा है वह व्यवहारिक आत्मा है, ऐसा कहा है लेकिन व्यवहारिक आत्मा कहने से क्या होता है? कि लोगों को वह समझ में नहीं आता लेकिन इसे फिर से उत्पन्न करने वाले 'आप' ही हो। प्रतिष्ठा करते हो इसलिए यह उत्पन्न हो जाता है। 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं चंदूभाई ही हूँ' करते रहोगे तो फिर से आत्मा तैयार हो रहा है आपका, दूसरी प्रतिष्ठा हो रही है। मूर्ति स्वरूप मानते हो इसलिए मूर्ति में प्रतिष्ठा हुई, इसलिए मूर्ति का जन्म होगा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो खत्म हो जाएगा।

प्रज्ञा है आत्मापक्षी ही

प्रश्नकर्ता : मैं शुद्धात्मा हूँ और देह नहीं, वह भी बुद्धि ही कहती है न?

दादाश्री : यह बुद्धि नहीं कहती है इसमें। बुद्धि तो 'मैं शुद्धात्मा' कहने ही नहीं देती। बुद्धि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा कहे तो उसका बहुत अधिक नाश होगा, उसका खुद का अस्तित्व खत्म हो जाएगा। इसलिए वह खुद इस शुद्धात्मा के पक्ष में बैठती ही नहीं कभी भी वर्ना खुद का अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा। यदि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोले, तो मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार का अस्तित्व खत्म हो जाएगा इसलिए यह मन भी ऐसा 'एक्सेप्ट' नहीं करता। समझते ज़रूर हैं, लेकिन 'एक्सेप्ट' नहीं करते। यह बुद्धि तो हमेशा संसारपक्ष में ही रहती है, शुद्धात्मापक्ष में नहीं रहती कभी भी, विरोध रहता है। अब वह प्रज्ञा नाम की शक्ति है, वह आत्मा में से ही बाहर निकलती है, कि जब तक संसार में हैं, तब तक

आत्मा को कुछ नहीं करना पड़ता। आत्मा की एक 'प्रज्ञा' नाम की शक्ति बाहर निकलती है। इसका काम क्या? दिन-रात 'यह' 'इसे' इसी तरफ मोड़ती रहती है। वह पूरे दिन उसे इस ओर मोक्ष में ले जाने के लिए ही मेहनत करती रहती है और 'अज्ञा' नाम की शक्ति जिसे बुद्धि कहा जाता है वह रात-दिन संसार में खींच ले जाना चाहती है। इन दोनों का संघर्षण रहता है अंदर। इन दोनों का संघर्षण निरंतर चलता ही रहता है। 'अज्ञा'-वह बुद्धि है और 'प्रज्ञा'-वह मूल वस्तु है। 'प्रज्ञा' हमेशा ही 'आपको' अंदर चेतावनी देती है और मोक्ष की तरफ ले जाना चाहती है। यह प्रज्ञाशक्ति उत्पन्न हुई है। स्थितप्रज्ञ दशा की तुलना में प्रज्ञाशक्ति बहुत उच्च है। स्थितप्रज्ञ दशा में तो व्यवहार में निपुण होता है। दूसरा, लोगों की निंदा वगैरह ऐसी चीज़ नहीं होती। वह अपने आपको स्थितप्रज्ञ मान सकता है क्योंकि उसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है लेकिन यह प्रज्ञा, वह तो मोक्ष में ले जाती है। स्थितप्रज्ञ को मोक्ष में जाने के लिए अभी आगे बहुत लंबा मार्ग तय करना पड़ेगा।

आत्मा से संबंधित शंका जाए तो समझना की मोक्ष हो गया। 'आत्मा यही है' ऐसा अपने मन में विश्वास हो गया कि सब काम हो गया!

निःशंकता - निर्भयता - असंगता - मोक्ष

वर्ना, जहाँ शंका है, वहाँ दुःख है। और 'मैं शुद्धात्मा,' कहते ही निःशंक हो गया, उससे दुःख चला जाएगा। अतः निःशंक हो जाएगा तभी काम होगा। निःशंक होना, वही मोक्ष है। बाद में फिर कभी भी शंका नहीं हो, उसी को मोक्ष कहते हैं। अतः यहाँ पर सभी कुछ पूछा जा सकता है। शंका निकालने के लिए ही तो ये 'ज्ञानीपुरुष' हैं। अंदर सभी प्रकार की शंकाएँ हों न, तब भी 'ज्ञानीपुरुष' हमें निःशंक बना देते हैं। निःशंकता से निर्भयता उत्पन्न होती है और निर्भयता से असंगता उत्पन्न होती है। असंगता ही मोक्ष कहलाता है।

कृपालुदेव ने तो क्या कहा है? 'निःशंकता से निर्भयता उत्पन्न होती है और उससे निःसंगता प्राप्त होती है।'

अब यह शंका यानी, ज्ञान की शुरुआत से, ज्ञान पर शंका, यहाँ पर अध्यात्म में उसे शंका कहा जाता है। ज्ञान और ज्ञान के साधनों पर शंका होना, वही है शंका! उसे कब तक शंका माना जाता है? कि जब तक ठेठ आत्मा से संबंधित निःशंक न हो जाए कि यही आत्मा है और यह नहीं है, तब तक निःशंकता उत्पन्न नहीं होती। आत्मा से संबंधित निःशंकता उत्पन्न हुई, तो 'वर्ल्ड' में कोई शक्ति उसके लिए भयावह नहीं बन सकती। निर्भयता! और निर्भयता उत्पन्न हो जाए तो संग में रहने के बावजूद निःसंग रह पाता है। अतिशय संग में रहने के बावजूद भी निःसंगता रहती है। कृपालुदेव ऐसा कहना चाहते हैं।

'वर्ल्ड' में कोई भी व्यक्ति आत्मा से संबंधित निःशंक यानी शंका रहित नहीं हुआ है। यदि निःशंक हुआ होता तो उसका निबेड़ा आ जाता और दूसरे पाँच लोगों का भी निबेड़ा ले आता। यह तो लोग भी भटक गए और वह भी भटक रहा है।

तब आती है निःशंकता

बाकी, किसी जन्म में निःशंक हुआ ही नहीं और आत्मा से संबंधित तो कोई निःशंक हुआ ही नहीं है। आत्मा से संबंधित निःशंक होना कोई आसान बात नहीं है।

जबकि यह 'ज्ञान' निःशंक बनाने वाला है। निःशंक कैसे हो सकेगा? कि इस शरीर में मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, दूसरी इन्द्रियाँ, सभी कर्मेन्द्रियों, सब एकमत हो जाएँगे तब निःशंक हो जाएगा। पूरे शरीर में सभी एकमत हो जाएँ, 'दादा' ने जो बताया है वह ज्ञान, एक आवाज़ हो जाए, सब 'एक्सेप्ट' करें, तब निःशंक हो जाएगा।

अब अंदर शंका नहीं करता न? वर्ना एक घंटे के लिए भी शंका किए बगैर नहीं रहते। यह इतनी सारी जमात है अंदर। ऐसा कोई ज्ञान नहीं है, जिसे अंदर सभी 'एक्सेप्ट' करें। या तो मन विरोध करता है, या फिर चित्त विरोध करता है लेकिन कोई न कोई टेढ़ा चले बगैर रहता ही नहीं। अतः अंदर सब एकमत हो जाएँ, ऐसा नहीं है। अंदर बहुत

जमात है। उनमें से एकाध भी टेढ़ा बोले कि 'ऐसा होगा तो?' कि शंका पड़ी! और आपके अंदर तो कोई बोलता ही नहीं है न?! सभी एकमत ही हैं न?! यानी अंदर सभी एकमत हो जाएँ, तब नि:शंक हो सकते हैं।

इस शरीर में कभी भी सब एकमत होते ही नहीं हैं। मूर्च्छित हो जाए, तब ठीक है। मूर्च्छा यानी मदिरा पिया हुआ! अंदर उन्हें मदिरा पिलाओ तो फिर सब मस्ती में रहते हैं। जबकि यह तो 'विदाउट' मूर्च्छा! और, यह 'ज्ञान' तो, थोड़ी बहुत मूर्च्छा चढ़ गई हो न, तो भी उतार देता है।

यानी आत्मा से संबंधित सभी शंका में ही रहते हैं, चाहे कहीं भी जाओ। सभी को आत्मा संबंधी शंका, और शंका के कारण ही यहाँ पड़े हुए है। वे नि:शंक होते नहीं और उनके दिन बदलते नहीं। 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा तो कहीं भी कोई आत्मा में नि:शंक हुआ ही नहीं है, एक भी व्यक्ति नि:शंक नहीं हुआ है, आत्मा से संबंधित शंका ही रहा करती है। लोग तो नि:शंक ज्ञान ढूँढते हैं लेकिन वह ज्ञान लोगों के पास है नहीं। क्रमिकमार्ग में भी वह ज्ञान नहीं है। यह तो 'अक्रम' का है, इसलिए संभव हो पाया। यह शंका चली जाए तो काम होगा।

यह तो यहाँ पर दरअसल आत्मा प्राप्त हो जाता है इसलिए एक घंटे में नि:शंक हो जाता है। यह ऐसा-वैसा ऐश्वर्य नहीं है लेकिन लोगों को समझ में नहीं आता, अक्रम का ऐश्वर्य है यह तो! वर्ना करोड़ों जन्मों में भी आत्मा के संबंध में नि:शंक नहीं हो सकता और आत्मा लक्ष (जागृति, ध्यान) में भी नहीं आता कभी भी।

'ज्ञानीपुरुष' के बिना आत्मा से संबंधित शंका कभी भी नहीं जाएगी। और जब तक आत्मा से संबंधित नि:शंक नहीं हो जाता, तब तक संसार व्यवहार में भी कोई शंका नहीं जाती। आत्मा से संबंधित शंका गई कि सभी शंकाएँ निरावृत हो जाएँगी और अपने यहाँ तो आत्मा से संबंधित शंका फिर रहती ही नहीं।

भेद विज्ञान 'अक्रम' द्वारा

किसी भी जगह पर शंका नहीं करनी चाहिए। शंका जैसा दु:ख

नहीं है इस दुनिया में क्योंकि मैंने आपको आत्मा दिया है, निःशंक आत्मा दिया है, कभी भी शंका उत्पन्न नहीं हो, ऐसा आत्मा दिया है इसलिए 'ऐसा होगा या वैसा होगा' ऐसी झंझट ही मिट गई न! यह तो 'अक्रम विज्ञान' है इसलिए सीधे शुद्ध आत्मा ही प्राप्त हो जाता है।

ऐसा है न, इस शरीर में दो भाग हैं। एक आत्मविभाग, वह खुद का क्षेत्र है और एक अनात्मविभाग, वह परक्षेत्र है। जब तक संसार इन दोनों विभागों को नहीं जानता, तब तक 'मैं चंदूभाई हूँ,' ऐसा कहता रहता है।

अपने यहाँ जो ज्ञान देते हैं न, वह 'अक्रम विज्ञान' है! अक्रम विज्ञान अर्थात् क्या? कि आत्मा और अनात्मा का विवरण होने के बाद दोनों अलग पड़ जाते हैं। आत्मा आत्मविभाग में बैठा, स्वक्षेत्र में बैठा, और अनात्मा परक्षेत्र में, इस प्रकार विभाजन हो गया। यानी 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डल जाती है, और सबकुछ रेग्युलर कोर्स में ही हो जाता है।

और बाहर जो आत्मा है वह मिलावट वाला है। अपने यहाँ बाज़ार में भेल आठ रुपये किलो मिलती है न, उतनी ही कीमत का है वह आत्मा। वह भी 'मिक्स्चर' है कोई स्वाद नहीं आता, बेस्वाद होता है। जबकि इसका तो तुरंत ही स्वाद महसूस होता है। खुद की स्वतंत्रता उत्पन्न हो गई। अब सिर्फ 'फाइलों' का *निकाल* करना बाकी रहा। तब तक 'इन्टरिम गवर्नमेन्ट' और 'फाइलें' पूरी हो गईं कि 'फुल गवर्नमेन्ट'!

फिर जोखिमदारी ही नहीं

अब, 'मैं चंदूभाई हूँ' उस ज्ञान पर तो आपको शंका हो गई न? या नहीं हुई?

प्रश्नकर्ता : शंका हो गई है। यानी कि मैं आत्मारूप हूँ और चंदूभाई परसत्ता है, पड़ोसी है।

दादाश्री : हाँ, चंदूभाई पड़ोसी है। अब एक 'प्लॉट' हो, वह जब

तक उन दो भाइयों के नाम हो, तब तक पूरे 'प्लॉट' में जो कुछ होता है, वह दोनों का नुकसान कहलाता है लेकिन फिर अगर दोनों में बँटवारा कर दें कि इस तरफ का चंदूभाई का और उस तरफ का दूसरे भाई का तो बँटवारा हो जाने के बाद उस दूसरे भाग के लिए आप ज़िम्मेदार नहीं हो। इसी प्रकार से आत्मा और अनात्मा का बँटवारा हुआ है। उसमें बीच में 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' मैंने डाली हुई है, 'एक्ज़ेक्ट' डाली हुई है। ऐसा विज्ञान इस काल में उत्पन्न हुआ है, उसका लाभ हम सब को उठा लेना है।

आत्मा और अनात्मा, दोनों के बीच में 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डाल दी इसलिए अब 'चंदूभाई' के साथ 'आपका' संबंध पड़ोसी जैसा रहा। अब पड़ोसी जो गुनाह करे, उसके गुनहगार आप नहीं हो। मालिकीपना नहीं है इसलिए गुनहगार भी नहीं है। मालिकीपना हो तभी तक गुनाह माना जाता है। मालिकीपना गया कि गुनाह नहीं रहता।

हम किसी से पूछें कि, 'आप नीचे देखकर क्यों चल रहे हो?' तब वे कहेंगे, 'नहीं देखेंगे तो पैर के नीचे जीव-जंतु कुचल जाएँगे न!' 'तो क्या ये पैर आपके हैं?' ऐसा पूछें, तो कहेंगे, 'हाँ, भाई, पैर तो मेरा ही है न!' ऐसा कहते हैं या नहीं कहते? यानी 'ये पैर आपका, तो पैर के नीचे कोई जीव कुचला गया तो उसके जोखिमदार आप!' और इस 'ज्ञान' के बाद आपको तो 'यह देह मेरी नहीं है' ऐसा ज्ञान हाज़िर रहता है। यानी कि आपने मालिकीपना छोड़ दिया है। यहाँ पर यह 'ज्ञान' देते समय मैं सारा मालिकीपना ले लेता हूँ अतः उसके बाद यदि आप मालिकीपना वापस ले लोगे तो उसकी जोखिमदारी आएगी। अतः यदि आप मालिकीपना वापस नहीं लोगे न, तो 'एक्ज़ेक्ट' रहेगा। निरंतर भगवान महावीर जैसी दशा में रखे, ऐसा यह विज्ञान है!

अतः यह बाहर का, शरीर का यह भाग जो कुछ करे उसमें आपको दखलंदाज़ी नहीं करनी है तो आप नाम मात्र को भी जोखिमदार नहीं रहोगे। और कुछ कर भी नहीं सकते। 'खुद' कुछ कर सकता है, ऐसा 'खुद' मानता है, वही नासमझी है, उससे अगला जन्म बिगाड़ता है।

अंदर धूल उड़ रही हो न, तो सामने का नहीं दिखाई देता। इसी प्रकार कर्म के जंजाल के कारण सामने का दिखाई नहीं देता और उलझन में डाल देता है लेकिन यदि ऐसी जागृति रहे कि 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ' तो वह जंजाल खत्म हो जाएगा। भगवान महावीर जैसी दशा रहे, ऐसे ये पाँच वाक्य (पाँच आज्ञा) दिए हैं आपको!

मार्ग सरल है, आसान है, सहज है, लेकिन उसकी प्राप्ति दुर्लभ है। 'ज्ञानीपुरुष' का मिलना बहुत मुश्किल चीज़ है। यदि मिल जाएँ तो 'ज्ञान' मिलना बहुत मुश्किल है। कई लोग तो सात-सात सालों से धक्के खा रहे हैं, फिर भी 'ज्ञान' नहीं मिला। कई तीन सालों से धक्के खा रहे हैं और 'ज्ञान' नहीं मिला, और कुछ को तो एक ही घंटे में मिल गया है। इस प्रकार हर किसी के संयोग अलग तरह के होते हैं न!

पुस्तक से न छूटे संदेह

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यों तो देहधारी मनुष्य के माध्यम से ही यह प्रक्रिया होती है न! देहधारी मनुष्य में ही भगवान प्रकट होते हैं और तभी संदेह छूटता है न? पुस्तक द्वारा संदेह नहीं छूटता न!

दादाश्री : पुस्तक में कुछ भी नहीं होता और कुछ नहीं मिलता। पुस्तक में तो लिखा होता है कि 'शक्कर मीठी है।' उससे क्या अपना मुँह मीठा हो गया? पुस्तक में 'शक्कर मीठी है' ऐसा लिखा है, लेकिन उससे हमें क्या फायदा हुआ? मुँह में रखेंगे तो मीठी लगेगी न?!

प्रश्नकर्ता : यानी ऐसे देहधारी मनुष्य, जिनमें भगवान प्रकट हुए हों, वे मिलते नहीं है, और पुस्तकें कुछ काम करती नहीं, तो क्या फिर घूमते रहें?

दादाश्री : हाँ, भटकना ही है बस।

प्रश्नकर्ता : इस दुकान से उस दुकान और उस दुकान से और किसी दुकान पर।

दादाश्री : हाँ, अलग-अलग दुकानों पर ही घूमता रहता है।

प्रश्नकर्ता : और जितनी दुकानों पर घूमते जाते हैं, वैसे-वैसे नकली माल बढ़ता जाता है।

दादाश्री : हाँ, बढ़ता जाता है और 'यहाँ से मिलेगा या वहाँ मिलेगा?' ऐसे विकल्प खड़े होते रहते हैं। वह तो जब अंतिम दुकान मिल जाए तब निबेड़ा आता है और उसमें भी जब सभी बातों में संदेह चला जाए तब हल आता है।

वह जाना हुआ तो शंका करवाता है

शंका कब होती है? बहुत पढ़ते रहे हों न, वह सारा आगे-आगे प्रति स्पंदन डालता रहता है। अतः मनुष्य वहाँ पर उलझ जाता है और उलझने से तो संदेह खड़े होने लगते हैं, शंका होने लगती है। वे शंकाएँ ही इस संसार से बाहर नहीं निकलने देतीं। बहुत काल से शास्त्र का परिचय हो, तब फिर आपको अंदर शंका खड़ी होती है। यानी कि जितना जानता है, वह तो बल्कि उतना ही अधिक खटकता है। उस जाने हुए को भगवान ने 'ओवरवाइज़पना' कहा है।

आप वकील बन गए तो उस बारे में आपको ओवरवाइज़पना खटकता रहता है। 'वाइफ' चीनी लेने जाए और वह काले बाज़ार की चीनी ले रही हो, तो भी आपके मन में ऐसा होता है कि, 'यह मत करना, मत करना।' यों यहाँ पर अगर वकील को कोई कार्य करना हो न, तो शंका रहती है कि, 'यह करूँगा तो मुझ पर वह कलम लागू हो जाएगी,' तब उसका उस स्टेशन पर जाना रह जाता है और वह कहीं और चला जाता है!

यह तो जो विशेष जान लिया है, उसका प्रभाव है! उससे धक्के लगते रहते हैं। वह जान लिया है न, इसलिए। इसलिए हमने कहा है न, कि 'मैं कुछ भी नहीं जानता' ऐसा करके फ्रेक्चर कर दो न, सारा माल! ये सब तो चूसे हुए गन्ने जैसे हैं। किसी प्रकार की मदद की ही नहीं है न! ये तो मन में मान बैठते हैं कि इसने यह 'हेल्प' की है लेकिन किसी प्रकार की 'हेल्प' नहीं की है। न तो चिंता खत्म हुई, न ही अहंकार घटा; न ही क्रोध-मान-माया-लोभ गए। अनादिकाल का पुराना

कलह वाला माल है, उसे फेंक दो न! इसीलिए हम कहते हैं आपको कि 'मैं कुछ भी नहीं जानता' इतना भाव करो न! यह सारा जाना हुआ तो रुलाता है। इससे कषाय गए ही नहीं हैं न! अतः यह तो कुछ भी नहीं जाना है। यदि जाना हुआ होता तब तो कषाय उपशम हुए दिखाई देते और तब भी उससे कुछ इतना फर्क नहीं पड़ता क्योंकि वह उपशम हो चुके कषाय कब चढ़ बठैंगे उसका कोई ठिकाना नहीं। यह तो खुद की अक्ल अंदर डालता रहता है। उसने खुद की अक्ल से ही तो मार खाई है, अनंत जन्मों से यही मार खाई है इसलिए 'मैं कुछ भी नहीं जानता' वह भाव किया हुआ हो न, तो हल आएगा।

अपने एक महात्मा ने बहुत शास्त्र पढ़े थे। वे जब यह ज्ञान लेने आए तब मैंने कहा कि, 'यह जो आपका कटोरा है न, आपकी खीर है न, वह मुझे दिखाइए तो ज़रा।' तब उन्होंने दिखाया। तब मैंने कहा, 'यह खीर लेकर अगर आप जाकर मिर्ची वाले से पूछो कि 'साहब, क्या इसे अंदर डाल सकते हैं?' तब मिर्ची वाले को तो बेचना है, इसलिए ऐसा कहेगा कि 'हाँ, साहब थोड़ा डाल सकते हैं।' फिर नमक वाले से आप पूछो कि 'साहब, यह इसमें डाल सकते हैं?' तब वह कहेगा, 'हाँ, यह भी डाल सकते हैं।' क्योंकि अगर इन लोगों से पूछने जाते हैं न, तब वे तो फिर डलवाते हैं। इस तरह आपकी खीर मुँह का स्वाद बिगाड़ देती है।'

इसलिए हम इस खीर को फिंकवा देते हैं, कटोरेसहित फिंकवा देते हैं। उसकी सुगंध तक नहीं चाहिए। यानी अभी तक जो भी जाना हुआ था, वह सारा गलत था। जिस जानकारी ने अपनी हेल्प नहीं की, क्रोध-मान-माया-लोभ गए नहीं, जिसे जानने से आत्मा प्राप्त नहीं हुआ, तब फिर उस जाने हुए का अर्थ ही क्या? और जिसे जानने से आत्मा प्राप्त हुआ है तब फिर और कुछ जानने की ज़रूरत नहीं है। किसी को यदि ऐसा लगता हो कि उन्होंने जो जाना है उससे उन्हें आत्मा प्राप्त हो गया है, तब फिर यह जानने की ज़रूरत ही नहीं है। यह अक्रम विज्ञान है। वह क्रमिक है। अतः यदि किसी को ऐसा लगता

है कि उन्हें प्राप्ति हो गई है तो मिक्स्चर करने की ज़रूरत नहीं है। एक के अंदर दूसरा मिक्स्चर करने से फायदा नहीं होगा। जिस प्रकार की दवाई आप पीते हों, वही पीते रहना अच्छा है। वापस दूसरा मिक्स्चर करेंगे तो बल्कि नई मुश्किलें खड़ी हो जाएँगी। तो मिक्स्चर क्यों करना है हमें? कृपालुदेव ने क्या कहा है कि, 'जिस रास्ते, जिससे अपना संसार मल चला जाए, उसी रास्ते का तू सेवन करना।' तो उसका सेवन करना है क्योंकि हमें तो इतना ही देखना है न कि मल जाए? अपना और काम भी क्या है?!

यानी जितने शंकाशील हैं न, उन्हें यह संसार छोड़ता नहीं है। जब तक किंचित् मात्र भी कोई भी संशय, संमोह या शंका हो, तब तक यह संसार उसे मुक्त नहीं करता। उसी से संसार बंधा हुआ है। शंका होने लगे तब आपका काम नहीं हो पाता। इसके बजाय अनपढ़ लोग अच्छे। ये सभी शास्त्रों के जानकार शंकाशील, संदेह में फँसे हुए हैं। इनके बजाय तो अपने 'ज्ञान' लिए हुए किसी महात्मा को शंका उत्पन्न ही नहीं हुई क्योंकि ऐसे अधिक शास्त्र पढ़े होंगे तभी शंका होगी न? अत: जो नि:शंक हो जाता है, उसका आत्मा निरंतर परमानंद देता है।

बाकी, यह जगत् शंका से ही फँसा हुआ है न! शायद ही कभी अपने 'ज्ञान' लिए हुए महात्मा को एक क्षण के लिए भी आत्मा संबंधी शंका हुई होगी! ऐसा तो हुआ ही नहीं, सुना ही नहीं न! यहाँ तो शंका जैसी चीज़ ही नहीं सुनी।

प्रश्नकर्ता : जिसने पहले कभी ऐसी चीज़ सुनी ही नहीं हो, उन्हें शंका नहीं होती, लेकिन जिसने सुनी हो, उसे ऐसा लगता है कि यह सच है या वह सच है?

दादाश्री : ऐसा है न, सुना हुआ हो, फिर भी शंका नहीं होती उसका क्या कारण है? यह 'ज्ञान' लेने के बाद उसे खुद को अंदर ऐसा अनुभव हो गया कि मेरा आत्मा कभी भी जाता ही नहीं, रात को दो बजे जब मैं जागता हूँ उससे पहले तो वह हाज़िर हो जाता है। तो ऐसा तो इस 'वर्ल्ड' में किसी भी जगह पर हो सके, ऐसा है ही नहीं। आत्मा

अपने आप हाज़िर हो जाए, ऐसा होता ही नहीं। यह तो अनुभव कहलाता है। आत्मा प्राप्त हो जाए, उसे अनुभव कहते हैं, आत्मा का लक्ष्य बैठ गया, उसे अनुभव कहते हैं क्योंकि खुद के जागने से पहले तो वह आत्मा हाज़िर हो जाता है।

अत: जिसकी शंका गई उसे संपूर्ण आत्मा प्राप्त हो गया। वर्ना 'आत्मा कैसा है' किसी का वह संदेह जा सके, ऐसा है ही नहीं। 'आत्मा है' वह संदेह शायद चला जाए, लेकिन 'आत्मा कैसा है' ऐसा वह संदेह नहीं जाता। वह चीज़ बहुत गहरी है।

जहाँ शंका है, वहाँ संताप खड़ा होता है। एक क्षण के लिए भी शंका नहीं हो, उसे कहते हैं आत्मा! यानी किसी भी प्रकार की शंका नहीं रहती।

वह भूल ढूँढनी है

शंका जाए तो हल आ जाए। अब, शंका का खत्म हो जाना, वह तो खुद के हिसाब में होना चाहिए न? सामने वाले की शंका खत्म हो गई, इसलिए क्या अपनी शंका भी खत्म हो गई? क्योंकि सभी को एक सरीखी शंका नहीं होती। इसलिए खुद अपने आपसे पूछना चाहिए कि, 'किस-किस बारे में शंका है?' तब कहेगा, 'नहीं, अब कोई शंका नहीं है।' और जिसे अभी कुछ-कुछ शंका हो, वह फिर यहाँ थोड़े समय तक बैठा रहे, और हमसे पूछे-करे तो फिर वह शंका चली जाएगी और शंका गई तो समझो हल आ गया।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं न, कि 'तू कौन है?' तब मुझे 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' उस पर शंका रहती है।

दादाश्री : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' आपको वह शंका रहती है, तो जो वह शंका करता है, वही शुद्धात्मा है। 'आपको' यहाँ नहीं बैठना है, उस जगह पर बैठना है अब, कौन शंका कर रहा है, वह ढूँढ निकालना है कि यह तो अपनी ही भूल है।

ऐसी शंका? वहाँ ज्ञान हाज़िर

इस 'ज्ञान' के बाद अब आप कोई काम करने जाओ न, तब अगर ऐसी शंका हुई कि 'दोष तो नहीं लगेगा?' उस समय आत्मा हाज़िर था इसलिए आपकी एक शंका खत्म हो गई। वर्ना ऐसी शंका किसे होती है? इस जगत् में लोगों को ऐसी शंका होती है? किसलिए नहीं होती? आत्मा हाज़िर ही नहीं है वहाँ पर!

शंका किसे होती है? 'मैं कर्ता हूँ' ऐसी शंका किसे होती है? अत: जब आपको शंका हो तब समझना कि आत्मा हाज़िर था इसलिए वह शंका खत्म हो गई।

प्रश्नकर्ता : जब तक ज्ञानज्योति जलती रहे, तभी शंका होती है। ज्ञानज्योति नहीं होगी तो शंका कहाँ से आएगी?

दादाश्री : हाँ। गाड़ी के आगे प्रकाश हो तब पता चलता है कि जीव-जंतु गाड़ी से कुचले जा रहे हैं लेकिन अगर प्रकाश ही नहीं होगा तो? शंका ही नहीं होगी न!

यह तो आपने 'ज्ञान' दिया इसलिए तन्मयाकार होता ही नहीं। फिर खुद के मन में ऐसा होता है कि 'मैं एकाकार हो गया होऊँगा?' लेकिन नहीं, वह शंका होती है और उसके लिए भगवान ने कहा है कि 'शंका होती है? इसका मतलब तू ज्ञान में ही है।' क्योंकि दूसरे किसी इंसान को शंका नहीं पड़ती कि 'मैं तन्मयाकार हो गया हूँ।' वे लोग तो तन्मयाकार हैं ही जबकि आपको तो यह 'ज्ञान' मिला है इसलिए आपको शंका होती है कि 'मैं तन्मयाकार हो गया होऊँगा या क्या?' वह शंका हुई! फिर भी भगवान कहते हैं, 'वह शंका हम माफ करते हैं।' कोई कहेगा, 'भगवान, माफ क्यों कर रहे हैं?' तब भगवान क्या कहते हैं? 'वह तन्मयाकार नहीं हुआ है, उसकी समझ में फर्क है।'

वह तन्मयाकार नहीं हुआ है लेकिन यह तो सिर्फ शंका हो गई है। औरों को क्यों शंका नहीं होती? औरों को शंका होती है क्या? नहीं। उन लोगों को तो 'मैं अलग हूँ' ऐसा सोच में भी नहीं आया। अत:

आप अलग ही हो और फिर भी 'मैं तन्मयाकार हो गया हूँ या क्या?' ऐसी शंका हुई तब भी भगवान 'लेट गो' करते हैं लेकिन 'अंत में धीरे-धीरे अभ्यास से, वह शंका भी नहीं होनी चाहिए, भगवान ऐसा कहते हैं।

निज शुद्धत्व में नि:शंकता

दरअसल आत्मा तो 'आकाश' जैसा है, और यह शुद्धात्मा, यह तो एक संज्ञा है। कैसी संज्ञा है?

प्रश्नकर्ता : पहचानने के लिए।

दादाश्री : नहीं। इस देह द्वारा तुझसे चाहे कैसे भी काम हो जाएँ, अच्छे हों या बुरे हों, तू तो शुद्ध ही है। तब कोई कहे कि, 'हे भगवान, मैं शुद्ध ही हूँ? लेकिन इस देह से जो उल्टे काम होते हैं, वे?' तब भी भगवान कहेंगे, 'वे कार्य तेरे नहीं हैं। तू तो शुद्ध ही है लेकिन यदि तू माने कि ये कार्य मेरे हैं, तो तुझे चिपकेंगे।' इसलिए शुद्धात्मा शब्द, उसके लिए 'संज्ञा' लिखा गया है।

और 'शुद्धात्मा' किसलिए कहा गया है 'इसे'? कि संपूर्ण संसार काल पूर्ण होने के बावजूद 'उसे' अशुद्धता छूती ही नहीं, इसलिए शुद्ध ही है। लेकिन 'खुद को' 'शुद्धात्मा' की 'बिलीफ' नहीं बैठती न? 'मैं' शुद्ध किस तरह से हूँ? 'मुझसे इतने पाप होते हैं, मुझसे ऐसा होता है, वैसा होता है।' इसलिए मैं शुद्ध हूँ, वह 'बिलीफ' 'उसे' बैठती ही नहीं और शंका रहा करती है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ किस तरह से कह सकते हैं? मुझे शंका है।'

अत: इस 'ज्ञान' के बाद अब तुझे 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का लक्ष्य बैठा है, इसलिए अब तुझसे चाहे कैसा भी कार्य हो जाए, अच्छा या बुरा, उन दोनों का मालिक 'तू' नहीं है। 'तू' शुद्ध ही है। तुझे पुण्य का दाग़ नहीं लगेगा और पाप का भी दाग़ नहीं लगेगा इसलिए 'तू' शुद्ध ही है। तुझ पर शुभ का भी दाग़ नहीं लगेगा और अशुभ का भी दाग़ नहीं लगेगा। हम 'ज्ञान' देने के साथ ही कहते हैं न, कि 'अब तुझे ये सब स्पर्श नहीं करेगा।' वह नि:शंक हो जाए, उसके बाद उसकी गाड़ी चलती है। तुझे

यदि शंका होगी तो तुझे चिपकेंगे और तू नि:शंक है तो तुझे स्पर्श नहीं करेंगे। 'दादा' की आज्ञा में रहेगा तो तुझे स्पर्श नहीं करेगा!

मूल हकीकत में, शंका होने जैसा है ही नहीं। वास्तव में कुछ करता ही नहीं है। 'तू' ऐसी कोई क्रिया करता ही नहीं है। यह तो सिर्फ भ्रांति ही है, गाँठ पड़ चुकी है। शुद्धात्मा, वह संज्ञा है। खुद शुद्ध ही है, तीनों काल में शुद्ध ही है, यह समझाने के लिए है। अत: जब संज्ञा में रहता है तो फिर मज़बूत हो जाता है। उसके बाद अपना 'केवलज्ञान स्वरूप!'

बाकी, 'दरअसल आत्मा' तो 'केवलज्ञान स्वरूपी' ही है। मुझमें और आपमें फर्क क्या है? 'हम' 'केवलज्ञान स्वरूप' में रहते हैं और 'आप' (महात्मा) शुद्धात्मा की तरह रहते हो। आपको मूल आत्मा की जो शंका थी वह चली गई, इसलिए दूसरी शंकाएँ भी चली जाती हैं लेकिन फिर भी बुद्धिशाली लोगों को कहीं फिर से शंका, मूल स्वभाव अगर वैसा हो न, तो फिर से शंका होने लगती है।

शंका रखने जैसा है ही कहाँ

प्रश्नकर्ता : आपके पास, अब अंत में ऐसा लगता है कि अब किसी भी जगह पर शंका नहीं रही और हम 'कन्विन्स' हो गए हैं।

दादाश्री : हाँ, यहाँ शंका रहती नहीं है न! और शंका रखने जैसा जगत् ही नहीं है। यदि शंका रखने जैसा जगत् होता न, तो मैं आपसे कहता ही नहीं कि 'अरे, मेरी गैरहाज़िरी में आप ऐसी-वैसी शंका मत करना।' और मैंने तो आपसे यह कहा है कि 'खाना, पीना,' सब कहा है ऐसा भी कहा है कि लेकिन 'ऐसी शंका वगैरह मत करना,' क्योंकि नि:शंक जगत् मैंने देखा है, तभी मैं आपसे कह सकता हूँ न?! मैंने नि:शंक जगत् देखा है, वह इस दिशा में नि:शंक है और दूसरी दिशा में शंका वाला है तो यह नि:शंक दिशा बता देता हूँ, ताकि फिर झंझट ही नहीं न!

अब अगर शंका रखें ही नहीं तो चलेगा या फिर नहीं चलेगा?

प्रश्नकर्ता : वह तो अच्छा चलेगा न! लेकिन ऐसा होना चाहिए न!

दादाश्री : वह तो फिर हो जाएगा! वर्ना इस हिन्दुसतान की प्रजा, वहम से, शंका से, डर से मरी हुई प्रजा है! यानी यह शंका शब्द तो मैं पूरी दुनिया से निकाल देना चाहता हूँ। यह शंका शब्द निकाल देने जैसा है। 'वर्ल्ड' में इसके जैसा कोई भूत नहीं है और इसी वजह से काफी कुछ लोग दुःखी हैं, शंका से ही दुःखी हैं।

किसलिए वहम रखना है फिर? यह वहम तो रखने जैसा है ही नहीं, दुनिया में! किसी भी प्रकार का वहम रखने जैसा नहीं है। वहम 'हेल्पिंग प्रोब्लेम' नहीं (परेशानी में मदद नहीं करता) है। वहम, वह नुकसानदायक है 'प्रोब्लेम' है। जो है उससे अधिक नुकसान करेगा और जो नुकसान होना है तो उसमें कोई रुकावट नहीं आएगी इसलिए वहम को छोड़ दो। मैं तो इतना ही कहता आया हूँ, और काफी कुछ लोगों को छुड़वा दिया है!

अब यह सारा मेरा अनुभवसहित ज्ञान है। यह तो मेरे ही अनुभव रखे हैं सभी, और वह भी 'अप्रोपिएट' (उपयुक्त)! ये मेरी हर क्षण की जागृति के अनुभव रखे हैं और यह सिर्फ अभी की लाइफ का नहीं है, लेकिन अनंत जन्मों की लाइफ का है! और वह भी फिर मौलिक है। शास्त्रों में न मिलें, तब भी हर्ज नहीं, लेकिन मौलिक है!

'डीलिंग' पुद्गल की, 'खुद' वीतराग

प्रश्नकर्ता : वीतराग कौन हो सकता है और वीतराग की कैसी दशा होती है उसके वर्णन शास्त्र में पढ़े हैं, लेकिन देहधारी वीतराग देखने को नहीं मिले....

दादाश्री : नहीं मिलते। वीतरागों के तो दर्शन तक करने को नहीं मिलते। इस काल में तो मैं फेल हुआ हूँ, तभी तो यहाँ पर रुका हुआ हूँ इसलिए इन सभी को दर्शन करने को मिल गए। नहीं तो ये केवलज्ञान के बिल्कुल ही नज़दीक पहुँचे हुए हैं इनके दर्शन भी करने को नहीं

मिलते। यह तो दर्शन करने को मिले तो वीतरागता का वर्णन समझ सकते हैं कि वीतरागता कैसी होती है! और हम उस तरह रहते हैं।

देखो न, किसी के साथ मतभेद या कोई झंझट है हमें? सामने वाला उल्टा बोले तब भी कोई झंझट है? उनके साथ किस तरह से 'डीलिंग' करना वह मुझे आता है! वीतराग रहना और 'डीलिंग' करना, दोनों साथ में रहता है। डीलिंग *पुद्गल* करता है और हम वीतराग रहते हैं। अतः वीतरागता देखने को मिली इस काल में, यदि समझे तो! गहरे उतरें न, तो 'प्योर' वीतरागता देखने को मिलेगी और हम ज़रा सी भी *नोंध* नहीं रखते। हो जाए, उसके बाद *नोंध* नहीं रखते। *नोंध* पोथी ही निकाल दी है।

प्रश्नकर्ता : तारीफ करें, फूल चढ़ाएँ उसकी भी *नोंध* नहीं, और पत्थर मारे उसकी भी *नोंध* नहीं?

दादाश्री : हाँ। वर्ना *नोंध* पोथियाँ इकट्ठी होते-होते पूरा उल्टा परिणाम आता है और उसके प्रति आपकी दृष्टि बदल जाती है। वह जब आपको देखता है न, तो उसे आपकी दृष्टि बदली हुई लगेगी। *नोंध* हुई उसका क्या सामने वाले को पता नहीं चलेगा? कि 'इसने *नोंध* रखी है, पिछली बार मैंने ज़रा कुछ बात की थी उसकी *नोंध* है इन्हें,' ऐसा तुरंत पता चल जाता है। इन लोगों को देखना बहुत आता है। बाकी कुछ तो नहीं आता लेकिन इस प्रकार सामने वाले की आँखें देखना बहुत आता है कि किस चीज़ की *नोंध* रखी है लेकिन वे जब हमारी आँख में वीतरागता देखते हैं तो तुरंत समझ जाते हैं कि 'दादा' वही हैं, जैसे थे वैसे के वैसे ही हैं! हमारी आँखों में वीतरागता दिखाई देती है। जैसे कोई खराब चारित्र का मनुष्य हो, वह उसकी आँखों पर से पहचाना जा सकता है, लोभी भी उसकी आँखों पर से पहचाना जा सकता है, उसी प्रकार से वीतराग भी उनकी आँखों पर से पहचाने जा सकते हैं। उनकी आँखों में कोई चंचलता (स्वार्थ,कपट) नहीं होती, किसी भी प्रकार की चंचलता नहीं होती! यानी कि हममें *नोंध* नहीं है।

जहाँ प्रेम है, वहाँ पर नोंध नहीं

और जो प्रेम उत्पन्न होता है, वह प्रेम भी ऐसा होना चाहिए कि घटे–बढ़े नहीं। दो–चार गालियाँ दे जाए न, फिर भी घटे नहीं, तब वह प्रेम कहलाएगा और जो घट जाए, बढ़ जाए वह आसक्ति कहलाती है। वही का वही प्रेम यदि कम–ज़्यादा हो तो आसक्ति हो गई! जैसे कि स्वास्थ्य होता है, तो वही का वही स्वास्थ्य यदि कम–ज़्यादा हो तो रोग कहलाता है! उसी प्रकार से वही का वही प्रेम यदि बढ़े या घटे तो आसक्ति! बेटा कमाकर आए तो वाह–वाह, वापस 'वाह भाई वाह' करता है। वही का वही बेटा दस सालों बाद खोकर आए तो कहेगा कि, 'पागल था, मैं कह–कहकर थक गया और मेरा दिमाग़ पागल हो गया।' जाने दे तेरा प्रेम, इसके बजाय अपने 'कॉलेज' का अभिप्राय अच्छा है कि हमेशा रहता है अपने पास।

प्रश्नकर्ता : पति–पत्नि के बीच भी ऐसा ही होता है न? 'मैं तुझे चाहता हूँ, मैं तुझसे प्रेम करता हूँ' कहते हैं लेकिन फिर वापस झगड़ते हैं।

दादाश्री : इसी को आसक्ति कहते हैं! ठौर नहीं और ठिकाना नहीं, बड़े आए चाहने वाले! सचमुच में चाहने वाला तो मरते दम तक हाथ नहीं छोड़ता। बाकी, होता सबकुछ है पर, उसकी *नोंध* नहीं लेता। जहाँ प्रेम है, वहाँ *नोंध* होती ही नहीं। *नोंध* बही रखो और प्रेम रखो, दोनों साथ में नहीं हो सकते। अगर *नोंध* बही रखें कि 'ऐसा किया और वैसा किया' तो वहाँ पर प्रेम नहीं होता।

हमारे साथ ये इतने सारे लोग हैं, लेकिन किसी की *नोंध* नहीं। किसी से चाहे कुछ भी हो जाए फिर भी *नोंध* नहीं। बाहर भी *नोंध* नहीं और अंदर भी *नोंध* नहीं। वर्ना हमें 'टेन्शन' नहीं रहता होगा तो भी खड़ा हो जाएगा। यह तो रात को भी, जिस घड़ी आओ उस घड़ी हम 'टेन्शन' रहित ही रहते हैं न! इसलिए झंझट ही नहीं न! हमारी तबियत अंदर नरम हो जाए तो कोई कहेगा, 'दादा, तो हँस रहे हैं!' अरे, 'टेन्शन' नहीं है इसलिए हँस रहे हैं! यानी किसी की पंचायत में नहीं पड़ना है। अगर

इस देह की पंचायत में भी पड़े कि 'इसका ऐसा हो गया, ऐसा हो गया,' तो 'टेन्शन' खड़ा हो जाएगा न!

प्रश्नकर्ता : 'जहाँ प्रेम है, वहाँ *नोंध* नहीं होती।' यह बहुत बड़ी बात निकली।

दादाश्री : हाँ, जिस प्रेम में *नोंध* हो, वहाँ प्रेम नहीं है! इस जगत् का प्रेम तो *नोंध* वाला है। 'आज मुझे ऐसा कह गया,' ऐसा कहे, तो फिर वह कैसा प्रेम? यदि प्रेम है तो *नोंध* नहीं चाहिए। नहीं तो आसक्ति हो जाएगी। जो प्रेम कम-ज़्यादा होता है उसे आसक्ति कहते हैं। तो यह जगत् तो *नोंध* रखे बिना रहता ही नहीं न! भले ही मुँह पर नहीं कहे, लेकिन मन में कहेंगे, 'मुझे परसों कह गए थे।' वह अपने मन में रखता है न? इसलिए *नोंध* तो है न उसके पास? जिसके पास *नोंध* नहीं है, उनका प्रेम सच्चा! हमारे पास *नोंध* बही है ही नहीं, तो फिर खाता (अकाउन्ट) कहाँ से होगा?! *नोंध* बही होगी तो खाता होगा। अब आप *नोंध* बही फेंक देना। उसे किसी दूसरे सेठ को दे देना। *नोंध* बही रखने जैसी नहीं है!

प्रश्नकर्ता : यदि *नोंध* रखे कि 'तूने मुझे ऐसा कहा, तूने ऐसा कहा।' उससे फिर वापस प्रेम टूट जाता है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन *नोंध* रखे बगैर नहीं रहता। पत्नी भी रखती है न? तेरी पत्नी नहीं रखती?

प्रश्नकर्ता : दादा, वह तो सभी रखते हैं, लेकिन प्रतिक्रमण करके ज्ञान द्वारा इस *नोंध* को पौंछा जा सकता है न?

दादाश्री : उसे कैसे भी पौंछने जाओगे न, फिर भी कुछ नहीं होगा। *नोंध* रखी तभी से, पौंछने से कुछ नहीं होगा। *नोंध* ढीली हो सकती है, लेकिन वह बोले बगैर रहते नहीं है न? ये भाई चाहे कुछ भी करें या फिर आपमें कितना भी बदलाव आ जाए, फिर भी हम उसकी *नोंध* नहीं रखते। तो हमें किसी प्रकार की दखल ही नहीं है न! क्या तूने देखा है? 'दादा' को कभी तेरे बारे में *नोंध* रही है, ऐसा?

प्रश्नकर्ता : कभी भी नहीं।

दादाश्री : हाँ, किसी की भी *नोंध* नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : इसीलिए वह शुद्ध प्रेम कहलाता है ?

दादाश्री : हाँ, वह शुद्ध प्रेम कहलाता है। तभी तो तू मुझे कभी भी अप्रिय लगता ही नहीं है, तू मुझे प्रिय ही लगता रहता है। तूने परसों कुछ उल्टा किया हो, उससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं *नोंध* रखूँ तब झंझट रहेगी न ? मैं जानता हूँ कि तुझमें से तो कमज़ोरी नहीं गई है, इसलिए उल्टा ही होगा न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन मुझे तो *नोंध* रखने की बहुत आदत है।

दादाश्री : वह आदत अब कम ही होती जाएगी। यह बात सुनी इसलिए अब तुझे समझ में आ गया न ? तू जब से इसे जानने लगेगा तब से फिर *नोंध* रखना कम हो जाएगा। तू तो पत्नी की भी *नोंध* रखता है न ?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : जो वाइफ खुद की कहलाती है, तूने उस पर भी *नोंध* रखी ? और वह भी *नोंध* रखती है। तू इतना कह जाए न, तो वह कहेगी 'मेरी बारी आने दो!' वह सच्चा प्रेम नहीं है, आसक्ति कहलाती है। सच्चा प्रेम उतरता नहीं है। हमारा प्रेम बिल्कुल सच्चा होता है। हम *नोंध* ही नहीं रखते न!

प्रश्नकर्ता : आपकी कृपा हो जाए तो ऐसा हो जाएगा जल्दी।

दादाश्री : हमारी कृपा तो है ही लेकिन तुझे खुद को नहीं निकालना है, तो वहाँ क्या हो सकता है ?! 'पत्नी ने ऐसा किया, वैसा किया' करता है। तो क्या तू ऐसा नहीं करता कि पत्नी का नाम दे रहा है ? तू *नोंध* रखेगा तो वह *नोंध* रखेगी। मैं *नोंध* रखना बंद कर देता हूँ तो कोई मेरी *नोंध* नहीं रखता। किसी को डाँटू करूँ तो भी कोई *नोंध* नहीं रखता। उसका कारण यह है, कि मेरी *नोंध* बंद है तो फिर आप

लोगों को क्यों *नोंध* रखनी है?! लेकिन तू तो तेरी पत्नी की *नोंध* रखता है तो फिर तेरी पत्नी तुझे छोड़ देगी क्या? वह तो अच्छा हुआ कि इसने शादी नहीं की, नहीं तो वह भी फिर पत्नी की *नोंध* रखता न! हम कभी भी किसी की *नोंध* रखते ही नहीं न! और दूसरा, हम किसी और से किसी की बात नहीं करते।

भूलें खत्म करनी हैं, 'साइन्टिफिकली'

प्रश्नकर्ता : दादा, यह जो *नोंध* रखी जाती हैं, उसका कारण क्या है?

दादाश्री : इस *नोंध* से क्या नुकसान है उसकी उसे खबर ही नहीं है। अब नुकसान की बात उसे समझ में आ गई तो फिर *नोंध* कम होती जाएगी।

तुझे प्रतीति बैठी कि तू जो *नोंध* रखता है, वह गलत है। अब तुझे वह अनुभव में आता जाएगा कि *नोंध* नहीं रखी, उससे मुझे फायदा हुआ। *नोंध* नहीं रखी, तो फिर धीरे-धीरे उसे स्वाद आता ही जाएगा कि वास्तव में यह लाभदायक ही है। फिर आचरण में आएगा। यह है इसका तरीका!

अगर आचरण में से छूटना हो तो आचरण छूटने से पहले प्रतीति बैठती है। फिर बाद में उसे अनुभव होता जाता है। उसके बाद वह आचरण छूट जाता है। यानी उसके 'साइन्टिफिक रिज़ल्ट' से आएगा न?! सीढ़ी चढ़नी हो तो क्या एकदम से चढ़ा जा सकता है? वह तो सीढ़ी दर सीढ़ी ही चढ़ा जा सकता है न! यों ही एकदम से सीढ़ियाँ नहीं चढ़ सकते।

तूने यह *नोंध* शब्द सुना ही नहीं था न? यह पहली बार ही सुना है न?

'नोंध' तो बंधवाए बैर

यानी *नोंध* रखनी ही नहीं है। *नोंध* रखकर क्या फायदा मिला अभी

तक? इससे तो बल्कि दु:ख बढ़े! इसलिए *नोंध* ही नहीं रखनी चाहिए। तूने देखा नहीं कि ये 'दादाजी' *नोंध* नहीं रखते?

प्रश्नकर्ता : वह आज ही अनुभव में आया। नहीं तो आप *नोंध* नहीं रखते उसका पता ही नहीं चलता न!

दादाश्री : लेकिन तू देखता होगा न, कि 'दादाजी' कोई *नोंध* नहीं रखते?

प्रश्नकर्ता : हाँ, *नोंध* नहीं रखते, लेकिन आपको याद सबकुछ रहता है न!

दादाश्री : हाँ। याद रहता है, लेकिन *नोंध* नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : उसमें क्या फर्क है, दादा?

दादाश्री : *नोंध* रखना अर्थात् अंदर उसके लिए बैर रखता है और याद यानी हम भी समझते हैं कि इसमें इतनी-इतनी कमज़ोरियाँ हैं, इतना ही! इतनी कमज़ोरी है, अत: उतना हम आशीर्वाद देने के लिए याद रखते हैं। वर्ना, हमें कोई *नोंध* नहीं रहती। यदि हमें *नोंध* रहेगी तो हमें खुद के लिए बैर रखने की वृत्तियाँ होने लगेगी इसलिए मैं *नोंध* नहीं रखता और इसीलिए तो तू भी मेरी *नोंध* नहीं रखता न! 'दादाजी' तुझे डाँट दें तब भी तू *नोंध* नहीं रखता।

प्रश्नकर्ता : दादाजी डाँट दें तब भी प्रेम ही रहता है।

दादाश्री : हाँ, इसलिए *नोंध* नहीं रखनी चाहिए। *नोंध* नहीं रखोगे तो आधा दु:ख तो चला जाएगा, यों ही!

जगत् के लोग *नोंध* रखते होंगे? धंधा ही यह है, *नोंध* रखने का ही धंधा। 'मेरा ऐसा कर गए थे और वैसा कर गए थे' कहेंगे।

मैं *नोंध* नहीं रखता हूँ इसलिए आप मेरी *नोंध* नहीं रखते। आप *नोंध* रखोगे तो सामने वाला *नोंध* रखेगा ही। आप यदि मेरी दुकान से कुछ ले जाओ और तब मैं *नोंध* रखूँ, तो आपकी दुकान में आप *नोंध*

रखे बगैर रहोगे? यदि मैं ही *नोंध* नहीं रखूँ तो सामने वाला भी मेरी *नोंध* नहीं रखेगा। मेरी *नोंध* कौन रखेगा! कुछ डाँटूँ-करूँ, कुछ भी कहूँ तब भी?! *नोंध* नहीं रखी तो हो चुका, सबकुछ अपना ही हो गया न! *नोंध* रखने योग्य नहीं है।

जहाँ व्यवस्थित, वहाँ नोंध नहीं

यह 'रिलेटिव' ज्ञान भ्रांति वाला है। उसमें से अगर इन सब के लिए *नोंध* रखें-करें, तो वह *नोंध* किसलिए रखनी है? तेरी 'वाइफ' भोजन से पहले ऐसा कह जाए कि, 'आपका स्वभाव खराब है। मैं अब अपने मायके से वापस यहाँ नहीं आऊँगी।' फिर भी हमें *नोंध* नहीं रखनी चाहिए क्योंकि वह सब 'व्यवस्थित' के ताबे में है न! वह क्या उसके ताबे में है? वह उसके ताबे में है या 'व्यवस्थित' के ताबे में है? और वहाँ अब तू *नोंध* रखे कि, 'ऐसा?! इतना रौब?! चल, मैं देख लूँगा!' तो क्या होगा? हल्दी घाटी का युद्ध शुरू हो गया!

प्रश्नकर्ता : वह ऐसा कहे तो दिमाग़ फट जाएगा, बहुत 'एक्साइटमेन्ट' हो जाएगा।

दादाश्री : हाँ, 'एक्साइटमेन्ट' हो जाएगा, और मानसिक लड़ाई शुरू हो जाएगी और मानसिक लड़ाई शुरू हो गई तो फिर मौखिक लड़ाई शुरू हो जाएगी और फिर मौखिक लड़ाई के बाद में कायिक लड़ाई शुरू हो जाएगी। यानी इन सब की जड़ ही, जड़ में से ही खत्म कर दें तो? 'रूट' उड़ा दी कि साफ! इसलिए इस झंझट में पड़ने जैसा है ही नहीं।

अत: यह *नोंध* रखने जैसा है ही नहीं। 'व्यवस्थित' किसे कहते हैं? कि किसी चीज़ की हम *नोंध* ही नहीं रखें, उसे कहते हैं 'व्यवस्थित।' *नोंध* रखें तो उसे 'व्यवस्थित' कैसे कहेंगे?

लेकिन वह संसार में ही गहरे उतारे

नोंध की ही नहीं जाए, फिर झंझट ही कहाँ रहा? मोक्ष में जाना और *नोंध* करना, दोनों साथ में नहीं हो सकता न! अब लोग क्या *नोंध*

रखे बगैर रहते हैं? और मोक्ष में जाना हो तो *नोंध* छोड़ देनी पड़ेगी, *नोंध* की 'बुक' निकाल देनी पड़ेगी। हमारे जैसे भोले तो, *नोंध* लिखी तो लिखी और नहीं लिखी तो कोई बात नहीं। वह दुकान ही नहीं चाहिए। हमारे लोग दुकानों में *नोंध* ही नहीं रखते जबकि लोग तो *नोंध* बही रखते हैं न? ये लोग तो बहुत *नोंध* बही रखते हैं। एक थान चंदूभाई ले गए, एक थान चतुरभाई ले गए, वे *नोंध* लिखते हैं और शाम को वापस बहीखाते में लिख देते हैं, लेकिन *नोंध* तो रखते हैं।

हम दुकान में एक किताब रखते हैं लेकिन अंदर लिखना भूल जाते हैं। इसलिए व्यापार नहीं होता। यानी *नोंध* संसार को रोशन करती है, लेकिन वह संसार में से निकलने नहीं देती। और हमें तो अब *नोंध* करने की झंझट ही नहीं है, किताब पकड़ने की ज़रूरत ही नहीं है। पेन पकड़कर लिखने की क्या ज़रूरत है? तो हम भोले-भाले ही अच्छे कि *नोंध* नहीं रखते और कोई मेरी *नोंध* भी नहीं रखता इसलिए हम छूट जाते हैं, हल आ जाता है। *नोंध* ही नहीं और झंझट भी नहीं! बात पते की नहीं है?

तो टूटे आधार संसार के

प्रश्नकर्ता : पते की बात है लेकिन दादा, यह तो ऐसा होता है कि संसार में *नोंध* रखनी ही चाहिए, ऐसा शिक्षण मिला हुआ है।

दादाश्री : उस शिक्षण की ज़रूरत है। संसार में रहना हो, तब तक उस शिक्षण की ज़रूरत है, लेकिन मोक्ष में जाना हो तो, ऐसा शिक्षण मिलना चाहिए कि '*नोंध* नहीं रखनी चाहिए।'

प्रश्नकर्ता : इस संसार में तो कहेंगे '*नोंध* रखो। इसने क्या किया, उसने क्या किया, आपको क्या करना है!'

दादाश्री : *नोंध* रखोगे, तो आप सच में संसारी कहलाओगे। और जब तक *नोंध* है, तब तक संसार आपको निकलने नहीं देगा। *नोंध* रखोगे तब तक निकल नहीं पाओगे। *नोंध* नहीं रखोगे तो संसार अस्त हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : संसार में इस प्रकार से देखने की आदत हो चुकी है कि यह बहुत सतर्क व्यक्ति है, और यह असतर्क देखकर लगता है कि यह क्या हुआ?

दादाश्री : असतर्कता दिखाई दे, इसका मतलब यही है कि 'संसार के सभी आधार गिर चुके हैं।' संसार के आधार टूट जाएँगे तब क्या संसार रहेगा? संसार के आधार टूट जाएँगे, तो संसार रहेगा नहीं न! संसार गिर जाएगा न! लोग सोच में पड़ जाएँगे कि यह क्या हुआ! लेकिन ऐसी असतर्कता होगी तभी मोक्ष में जा सकेंगे। वर्ना यों ही तो, वही के वही कपड़े और वही का वही वेष और ऐसे सतर्कता, वैसे सतर्कता, इसके पैसों के बारे में सतर्कता, तो उससे तो कहीं दिन बदलते होंगे? कोई भी *नोंध* नहीं चाहिए। यह तो, आपसे यदि कल कुछ कह गया हो तो सारी *नोंध* होती है आपके पास।

अब लोग क्या कहते हैं कि, 'ये ही मोक्ष में जा सकते हैं। ऐसी सतर्कता रहेगी तभी मोक्ष में जा पाएँगे।' और मैं कहता हूँ कि जो सतर्क नहीं रहेगा, वही मोक्ष में जाएगा। दुकान का दिवालिया निकलेगा और हल आ जाएगा। यदि मोक्ष में जाना हो तो यह दिवालिया निकालना पड़ेगा। यहाँ पर सतर्क रहना है, और मोक्ष में जाना है, ये दोनों एक साथ नहीं हो सकता। जो *नोंध* नहीं करते, ऐसे कितने लोग होंगे? ये सब मुमुक्षु, मोक्ष की इच्छा वाले हैं, उनमें से?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष की इच्छा तो शब्दों में ही रह गई है!

दादाश्री : इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि अध्यात्म में कौन आया है? आत्मसन्मुख कौन हुआ है? सभी इच्छाएँ छोड़कर हाथ खाली कर दिए हों और बिल्कुल भी *नोंध* नहीं हो, वह आत्मसन्मुख हुआ है। संसार में सतर्क रहना और आत्मसन्मुख होना, दोनों एक साथ नहीं हो सकता। इसलिए भगवान ने क्या कहा है कि घर से यहाँ पर आ जा, यदि मोक्ष में जाना हो तो! किसलिए? हाँ, वर्ना (क्रमिक मार्ग में) घर में रहना, नहीं चलेगा।

अपने यहाँ ऐसा है कि घर में रखकर करना है। अत: मैं क्या

करवाता हूँ? *नोंध* बंद कर दो आप। घर में रहो ज़रूर लेकिन बगैर *नोंध* के! निकाल दो वह सब। यह उसी की दखल है। *नोंध* नहीं रखनी चाहिए। वह तो वहाँ संसार में रखनी थी, वह यहाँ पर नहीं रखनी है। जो यहाँ पर रखना है, वह वहाँ नहीं रखना है।

सहमत नहीं, तो छूट गए

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाना हो तो यह *नोंध* करने की प्रकृति हो चुकी हो तो वहाँ पर क्या करें?

दादाश्री : 'चंदूभाई' से कहना कि 'अब *नोंध* मत करना।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह जो *नोंध* करने की प्रकृति है, उसका क्या करें?

दादाश्री : प्रकृति करे तो 'हमें' हर्ज नहीं है न! यह तो 'आप' और 'वह', ऐसे दोनों सहमत होकर करते हैं। 'अपनी' सहमति नहीं रहे तो, फिर वह *नोंध* रहेगी ही नहीं न! वह करेगा ही नहीं फिर, ऊब जाएगा। अगर आप नहीं करोगे तो सामने वाला *नोंध* करेगा ही नहीं। मेरी दुकान में से आप माल ले जाओ उसकी मैं *नोंध* नहीं रखूँ, तो आप भी नहीं रखोगे। आप ही कहोगे, 'यह *नोंध* नहीं रखते, तो मैं किसलिए रखूँ?' ऐसा नियम है न!

प्रश्नकर्ता : *नोंध* छोड़ना तब आसान हो जाता है कि जब आपकी 'जलेबी' चखने को मिले, तब।

दादाश्री : हाँ, वर्ना तो नहीं छूटता।

प्रश्नकर्ता : वर्ना तब तक *नोंध* छोड़ना बहुत कठिन लगता है।

दादाश्री : अरे, लोग तो कहते हैं 'मर जाऊँगा, लेकिन *नोंध* नहीं छोड़ूँगा, पहाड़ पर से कूद जाऊँगा, लेकिन *नोंध* नहीं छोड़ूँगा', क्योंकि उसे ऐसा लगता है कि 'मैं उसी के आधार पर जी रहा हूँ।' हम पूछें, 'आपका भोजन ले लेंगे तो चलेगा?' तब वह कहेगा, 'नहीं, भोजन तो

चाहिए न!' लेकिन फिर भी उसे *नोंध* ही जीवित रखती है। वह *नोंध* करना नहीं छोड़ता।

'नोंध करने वाले' से 'हम' अलग

अभी तक यह तंत है, तो इस तंत की वजह से अभी भी *नोंध* रहती है। अब यों तो ऐसे आपको तंत नज़र नहीं आता, उसका पता नहीं चलता लेकिन वह *नोंध* करे न, तब समझना कि तंत है यह।

कल आपका कोई अपमान कर गया हो, तब अगर आप उसकी *नोंध* रखो तो मैं समझ जाता हूँ कि आपको तंत है। यह तंत बहुत जोखिमी चीज़ है। *नोंध* बिल्कुल भी नहीं रहनी चाहिए। यह सब कहने का भावार्थ यही है कि यों ही कुछ नहीं हो जाता, सबकुछ 'व्यवस्थित' होता है। जहाँ 'व्यवस्थित' है, वहाँ *नोंध* कैसी? और *नोंध*, वह तंत है।

प्रश्नकर्ता : अभ्यास नहीं हो तो भी *नोंध* हो ही जाती है।

दादाश्री : हाँ, ले ली जाती है। लेकिन वह ली जाती है, उसे फिर हमें मिटा देना चाहिए कि 'यह जो *नोंध* ली गई वह भूल हुई है।' इतना ही बोलें न, तो छूट जाएगा। 'हम उससे अलग हैं' ऐसा अभिप्राय होना चाहिए। 'यह जो *नोंध* ली जा रही है, हम उससे अलग हैं,' ऐसा अभिप्राय रहना चाहिए तो फिर हम उस मत के नहीं हैं। अपना अभिप्राय वैसा नहीं है। वर्ना अगर कुछ कहें नहीं, तो उसी मत के हो जाएँगे। यह तो अनादिकाल का अभ्यास है, लेकिन यह ज्ञान ऐसा है कि इससे *नोंध* बिल्कुल भी नहीं रहती। ये *नोंध* रखने से ही तो सारी परेशानियाँ है!

प्रश्नकर्ता : *नोंध* का ही अभ्यास किया है हमने।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह अभ्यास छोड़ना ही पड़ेगा न! अभी तक तो 'आप' 'चंदूभाई' थे, लेकिन अब 'शुद्धात्मा' बन गए तो फिर अगर वह बदल गया है तो यह भी बदलेगा न? *नोंध* तो छोड़नी ही पड़ेगी न? *नोंध* कब तक चलेगी? हमें किसी भी प्रकार की *नोंध* नहीं रहती। इतने सब लोगों में, कोई कुछ भी कहे, लेकिन हमें *नोंध* है ही

नहीं। *नोंध* पहले से ही नहीं थी, इसे संसार के लोग क्या कहते हैं? 'पूर्वग्रह चला गया' ऐसा कहते हैं। *नोंध* को तो 'प्रेजुडिस' कहो या कुछ भी कहो, लेकिन यह *नोंध* नुकसानदायक है, *नोंध* ही तंत है। थोड़ा सा भी दु:ख क्यों रहना चाहिए? यदि कुछ भी दु:ख रहता है तो इसी से है, *नोंध* की वजह से ही रहता है। सुख के समुद्र में रहकर भी फिर दु:ख क्यों रहना चाहिए? सुख का समुद्र नहीं है क्या यह 'ज्ञान'?

प्रश्नकर्ता : है दादा, है।

दादाश्री : फिर भी *नोंध* रखते हो न?

प्रश्नकर्ता : रह जाती है, दादा।

दादाश्री : अब मत रखना, और रख ली जाए तो वापस मिटा देना। वर्ना तंत का मतलब है हठ करना। आग्रह! कहने वाले तो मुझे भी कह जाते हैं या नहीं कह जाते?

प्रश्नकर्ता : लेकिन अब किसके प्रति तंत रखने हैं?

दादाश्री : हाँ, तंत रखने से कुछ हासिल नहीं हुआ। सिर्फ इतना ही है कि पोथियाँ भरती हैं, लेकिन कुछ हासिल नहीं होता।

बदलते कर्मों की नोंध क्या?

कोई आपसे कुछ कह जाए तो वहाँ पर न्याय क्या कहता है? कि वह कर्म के उदय की वजह से आपको कह गया। अब वह उदय तो उसका पूरा हो गया, और आपका भी उदय पूरा हो गया। अब आपको लेना-देना नहीं रहा। अब आप वापस उसे तंत सहित देखते हो, तब आप उन्हीं कर्मों के उदय ले आते हो, इससे उलझन खड़ी करते हो। अब वह व्यक्ति किसी और ही कर्म में होता है उस समय। समझने जैसी बात है न? लेकिन सूक्ष्म बात है।

इसका कोई खुलासा ही नहीं हो सकता न, तंत रखा हुआ हो, उसका? और तंत रखने वाले लोग खुलासा ढूँढें तो उसका कब अंत आएगा?

यानी कल अपना किसी ने अपमान किया हो और आज उस व्यक्ति को देखें तो वह नया ही लगना चाहिए और वह नया ही होता है लेकिन अगर ऐसा नहीं दिखता तो उसमें आपसे भूल हो रही है। आप दूसरे ही रूप में देख रहे हो लेकिन वह नया ही होता है। एक कर्म पूरा हो गया, इसलिए अब वह दूसरे ही कर्म में होता है। वह दूसरे कर्म में होता है या उसी कर्म में होता है?

प्रश्नकर्ता : दूसरे कर्म में होता है।

दादाश्री : और आप उसी कर्म में रहते हो, तो कितना बुरा कहलाएगा?! आपसे क्या कभी ऐसी भूल होती है? *नोंध* रखते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : पहले तो *नोंध* लेने की आदत थी, अब नहीं लेते।

दादाश्री : नहीं लेते न? बेकार ही पोथियाँ बिगाड़नी। लोग तो *नोंध* बही रखते हैं।

इन्हें एक व्यक्ति ने कहा कि 'आप प्रकृति के नचाने से नाचते हो। आप लट्टू हो।' लेकिन तब भी हमने *नोंध* नहीं रखी। उसके बाद मैंने उसे डाँटा। मैंने कहा, 'अरे, इन्हें ऐसा तो कहा जाता होगा? कैसा आदमी है तू?' लेकिन उसकी *नोंध* नहीं रखी। हम *नोंध* नहीं रखते। हम उसके मुँह पर ज़रूर कह देते हैं, लेकिन फिर *नोंध* नहीं रखते। *नोंध* रखना तो भयंकर गुनाह है।

यानी किसी की दाद नहीं, फरियाद नहीं। कुछ भी नहीं। कोई अपमान कर जाए तो आपको मुझे दाद-फरियाद नहीं करनी है। दाद-फरियाद बेकार गई। जो हुआ वही ठीक है, न्याय ही है न? प्रश्न ही खड़ा नहीं होता न? ऐसा है यह विज्ञान, साफ!

नोंध लेने का आधार

प्रश्नकर्ता : *नोंध* वास्तव में किस तरह से ली जाती है, उसका एक उदाहरण दीजिए न!

दादाश्री : यहाँ रास्ते पर आप जा रहे हों और कोई आपसे कहे

कि, ''इन 'दादा' के पीछे नहीं घूमो तो चलेगा। बिना काम के आप बहुत परेशानी उठाते हो।'' वह थोड़ा-बहुत एकाध-दो शब्द ऐसे कहे कि जो आपको पसंद नहीं आएँ, तब फिर आप *नोंध* ले लेते हो कि 'ऐसा इंसान, नालायक इंसान कहाँ से मिल गया?' ऐसी *नोंध* ले लेते हो। या फिर 'पसंद आए' ऐसा हो, तब भी *नोंध* लिए बगैर नहीं रहते। यानी 'पसंद नहीं हो' तब भी *नोंध* लेते हैं और 'पसंद हो' तब भी *नोंध* लेते हैं।

ज़रा सी भी अरुचि उत्पन्न हुई कि *नोंध* ले लेते हैं। अरुचि होने पर भी *नोंध* नहीं ले तो वह मोक्ष देगा। किसी ने हमें अरुचि करवाई तब अगर *नोंध* नहीं लेंगे तो मोक्ष होगा। वह मोक्ष की सीढ़ी है। वापस उसी सीढ़ी से वह उतर जाता है। जिस सीढ़ी से चढ़ा जा सकता है, उसी सीढ़ी से उतर जाता है इंसान।

अभिप्राय देने का अधिकार

प्रश्नकर्ता : अब किसी भी प्रकार के खराब भाव के बिना, जैसा है वैसा अभिप्राय बता दें, तो उसमें क्या बुरा है?

दादाश्री : जैसा है वैसा कह दो, वह अधिकार है आपको? आपके पास वह दृष्टि है ही नहीं। यथार्थ दृष्टि के बिना तो नहीं बोल सकते। अभिप्राय शब्द तो पूरा ही खत्म हो गया। अभिप्राय तो, ''*पुद्गल,* आत्मा और छः तत्व ही हैं और कोई अभिप्राय नहीं''- ऐसा होना चाहिए।

वर्ना अभिप्राय तो यदि कोई राग-द्वेष होंगे तभी अभिप्राय बनता है। वर्ना अभिप्राय नहीं बनता। पसंद या नापसंद हो तभी अभिप्राय बनता है।

हमें यदि चाय अच्छी नहीं लगी हो तो हम अभिप्राय देते हैं कि यह चाय अच्छी नहीं है। यानी हम चाय की बुराई किए बगैर नहीं रहते। यह तो कहाँ रहा, लेकिन *नोंध* लेते हैं। इस तरह हम बनाने वाले व्यक्ति की भी बुराई किए बगैर नहीं रहते और चाय की बुराई करते हैं तो उससे चाय के साथ जो शादी हो चुकी है, वह बंद हो जाएगी न? नहीं। यानी कम लफड़ा हो, वह अच्छा है। किसी भी चीज़ का लगाव कम हो तो

अच्छा है और यदि है तो हम मना नहीं कर रहे हैं। किसी भी प्रकार के लगाव के बारे में हम सवाल नहीं करते। हम तो ये अभिप्राय में या यह जो *नोंध* लेते हो, उसके लिए मना करते हैं। आपको जो भाता है वह खाओ-पीओ, वह बासुंदी बनाना न! बासुंदी बनाकर खाओ, उसकी हम *नोंध* नहीं रखते। अपने यहाँ उसमें हर्ज नहीं है। खाना-पीना! अपना विज्ञान और कोई आपत्ति नहीं उठाता। इस *नोंध* की बहुत ही जोखिमदारी है। पर यदि *नोंध* की जोखिमदारी समझे तो न!

जहाँ नोंध वहाँ पुद्गल सत्ता ही

बाकी, *नोंध* किए बगैर रहते नहीं न! बड़ी से बड़ी अज्ञानता की निशानी कौन सी? तब कहे, '*नोंध!*' अपना 'ज्ञान' मिलने के बाद सिर्फ यह *नोंध* ही नहीं रहनी चाहिए, दूसरा सबकुछ रह सकता है। *नोंध* और *पुद्गल* दोनों साथ में ही खड़े है। *नोंध* रहे तब तक *पुद्गल* रहेगा ही। तब सत्ता भी *पुद्गल* की ही रहती है। आत्मा की सत्ता नहीं रहती।

इसलिए सिर्फ *नोंध* के बारे में तो हमें दस-पंद्रह दिन में बोलना ही पड़ता है। सावधान करते रहना पड़ता है। यह *नोंध* रखने से तो सत्ता भी *पुद्गल* की ही रहती है, खुद की सत्ता नहीं रहती। बिल्कुल भी सत्ता नहीं रहती।

नोंध : अभिप्राय

प्रश्नकर्ता : *नोंध* और अभिप्राय में क्या फर्क है?

दादाश्री : है न फर्क! *नोंध* से संसार खड़ा होता है और अभिप्राय से मन खड़ा होता है। *नोंध* पूरा संसार खड़ा कर देती है, पूरा ही! जैसा था वैसा ही बना देती है, हरा-भरा कर देती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह *नोंध* करेगा तब जाकर अभिप्राय बैठेगा न?

दादाश्री : वह ठीक है लेकिन *नोंध* का मतलब अभिप्राय नहीं है। अभिप्राय तो हम *नोंध* लेने के बाद में देते हैं। *नोंध* ली उसके बाद अच्छा-बुरा कैसा भी अभिप्राय दे देते हैं, लेकिन अगर *नोंध* लेंगे तो!

लेकिन *नोंध* लेना ही सब से बड़ा गुनाह है। अभिप्राय को तो चलाया जा सकता है।

अभिप्राय से तो मन बना है। उसका *निकाल* फिर हमें खुद को ही कर देना है लेकिन यह *नोंध* तो वापस संसार ही खड़ा करती है। *नोंध* में खोया हुआ कभी वापस नहीं आता। *नोंध* में खो गया वह वापस नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : यह जो *नोंध* ली जाती है, वह पहले ली जाती है और फिर रूपक में बोलकर उसका अभिप्राय देते हैं?

दादाश्री : *नोंध* ली इसलिए फिर उस 'साइड' चला। देह की 'साइड' चला सबकुछ, आत्मा वाली 'साइड' बंद हो गई, इसलिए इस पक्ष वाला हो गया। तब फिर वह आत्मा बंद हो गया, उस घड़ी आत्मा नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : यानी जब *नोंध* लेते हैं, उस घड़ी अभिप्राय है या...

दादाश्री : अभिप्राय में हर्ज नहीं है। अभिप्राय इतना बड़ा जोखिम नहीं है। वह मन बनाता है बस उतना ही, लेकिन जोखिम तो सारा *नोंध* का है।

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय और *नोंध* के बीच का फर्क और भी 'डिटेल' में समझना है।

दादाश्री : अभिप्राय थोड़ा बहुत रहा होगा तो हर्ज नहीं है। *नोंध* तो एक 'सेन्ट' भी नहीं रहनी चाहिए। *नोंध* अर्थात् *पुद्गल। नोंध* तो खास *पुद्गल* पक्षी ही है। *नोंध* रखने से फिर था, वैसे का वैसा ही बन जाता है। जिसने 'ज्ञान' नहीं लिया हो और लिया हो, उनमें कोई फर्क ही नहीं रहे, वह कहलाती है *नोंध*।

प्रश्नकर्ता : लेकिन किसी भी चीज़ की *नोंध* लेंगे तभी अभिप्राय बैठेगा न?

दादाश्री : अभिप्राय तो उसके पीछे है ही। लेकिन अभिप्राय होगा

तो शायद कभी चला लेंगे, लेकिन *नोंध* नहीं होनी चाहिए। अभिप्राय दिया मतलब, अभिप्राय से तो सिर्फ मन ही बनता है। आपने ऐसा अभिप्राय दिया है कि 'कढ़ी खारी है' तो मन बंधेगा लेकिन *नोंध* तो कढ़ी बनाने वाले को भी गुनहगार ठहराती है।

प्रश्नकर्ता : *नोंध* अर्थात् किस प्रकार की *नोंध* ली जाती है उस घड़ी ?

दादाश्री : 'मुझे ऐसा कह गया, फलाँ कह गया, ऐसा कह गया, वैसा कह गया' ऐसी कितने ही प्रकार की *नोंधें!* ये 'चंदूभाई' होटल में गए थे, यदि मैं ऐसी *नोंध* करूँ तो वह कौन सा पक्ष है ? *पुद्गल* पक्ष! बहुत जोखिम है इस *नोंध* में तो।

प्रश्नकर्ता : 'यह कढ़ी खारी है' ऐसी *नोंध* कैसे लेते हैं ?

दादाश्री : *नोंध* अर्थात्, 'कढ़ी खारी है' कहते ही 'बनाने वाला कौन है' उसी पर सबकुछ जाता है। *नोंध* कर्ता को देखता है और अभिप्राय चीज़ को देखता है!

जागृति की ज़रूरत है, नोंध की नहीं

प्रश्नकर्ता : संक्षेप में, जागृति रहेगी तो *नोंध* की 'मशीनरी' ही नहीं रहेगी।

दादाश्री : नहीं रहेगी। जागृति मंद है उसी का तो झंझट है न! जागृति लानी है, *नोंध* नहीं रखनी है। ऐसा यदि वह खुद करे न, तो उतना ही जागृत हो जाएगा न! नहीं तो हमारा देखकर किया जा सकता है। इन 'दादाजी' को कोई ऐसा-वैसा कुछ कह जाए, फिर भी मुँह की रेखा तक नहीं बदलती। उसका क्या कारण? अरे, यहाँ क्या 'रिज़ल्ट' ढूँढ रहे हो ? मैंने उस पर लेख ही नहीं लिखा न! उस पर कहाँ 'एॅसे' (निबंध) लिखूँ ? मैं तो *नोंध* ही नहीं रखता न! ऐसे तो सब कितने ही आते हैं और जाते हैं। फिर भी मैं उन्हें मुँह पर जो कह देता हूँ, वैसा मैं मानता नहीं हूँ। है तो वह शुद्धात्मा! निर्दोष! बाह्य निर्दोष! आंतरिक शुद्धात्मा! ऐसी दृष्टि रखकर हम उसे मुँह पर कुछ कहते हैं और यों तो

हमारी यह पाटीदारियों वाली भाषा, भाषा तो जाती नहीं है न! लेकिन *नोंध* नहीं रखते।

यानी बात को समझना ही है। अधिक नुकसान करती हो तो वह, यह *नोंध* है और वणिक लोगों को तो खास, वे एक किताब तो रखते ही है। ये बहनें भी रखती हैं ऐसी किताब। 'पापा ऐसा कह गए और मम्मी ऐसा कह रही थीं।' हर एक मनुष्य *नोंध* तो रखता ही है, छोड़ता नहीं है। 'ज्ञान' लेने से पहले जो *नोंध* की किताब थी, *नोंध* बही थी, वह अभी तक ऐसी की ऐसी रहने दी है। दूसरा सबकुछ दे दिया!

जहाँ नोंध वहाँ मन डंकीला

अब कुछ लोगों को लोगों के लिए अभिप्राय नहीं होता लेकिन फिर वह *नोंध* अधिक रखता है, सिर्फ *नोंध* रखता है। उस *नोंध* से क्या होता है? कि वह अपने मन को डंकीला बना देती है। अगर वह डंक मार जाए न, तो फिर अपना मन डंकीला हो जाता है। इसलिए किसी की *नोंध* मत रखना। यह सब तो चलता ही रहेगा न! उसकी *नोंध* नहीं रखनी है, कर्म के उदय से वह बेचारा भटकता रहता है। *नोंध* तो अगले जन्म के लिए संसार खड़ा कर देती है। *नोंध* मन पर नहीं चढ़ती, न ही *नोंध* से मन बनता है। *नोंध* तो डंकीली होती है, डंक रहता है उससे। बहुत *नोंध* इकट्ठी हो जाए न तो वह डंक मारे बगैर नहीं रहता। वह डंक मारता है, बदला लेता है।

प्रश्नकर्ता : *नोंध* लेने वाला कौन है? और अभिप्राय देने वाला कौन है?

दादाश्री : वे दोनों ही अहंकार!

प्रश्नकर्ता : बुद्धि *नोंध* लेती है, ऐसा है क्या?

दादाश्री : बुद्धि को कोई लेना-देना नहीं है। लेने-देने का धंधा ही नहीं है न! लेने-देने का धंधा ही अहंकार का है।

'ज्ञानी' का सर्वांग दर्शन

यह *नोंध* लेना बहुत अलग चीज़ है। यह जो मैं कहता हूँ वह बात ऐसे मेरी समझ में आ जाती है, लेकिन उसे आपको दिखाना ज़रा मुश्किल लगता है। मैं भी कुछ लोगों से कहता ज़रूर हूँ कि *नोंध* मत रखना, और वे फिर समझ भी जाते हैं कि 'इसकी *नोंध* रखी इसलिए गड़बड़ हुई।'

हम कोई भी *नोंध* नहीं रखते। ये सारी अवस्थाएँ खड़ी होती हैं, लेकिन *नोंध* नहीं रखते।

प्रश्नकर्ता : आप क्या देखते हैं उस समय?

दादाश्री : हम 'होल फोटोग्राफी' लेते हैं। 'यह अकेला ही दौड़ रहा था,' ऐसी *नोंध* नहीं रखते।

प्रश्नकर्ता : वह 'होल फोटोग्राफी' में वह दौड़ ही रहा होता है न?

दादाश्री : वैसा अंदर रहता ही है, लेकिन 'होल फोटोग्राफी' लेते हैं।

वीतरागता की राह पर...

अब अगर *नोंध* नहीं करे तो जगत् में वीतराग बन जाएगा। जो *नोंध* नहीं करे वही वीतराग कहलाता है! तो हम ऐसा नहीं कहते कि 'तू संपूर्ण *नोंध* मत करना,' लेकिन थोड़ी बहुत कम करेगा, तब भी बहुत हो गया, तब फिर अपने को ऐसा लगेगा कि वीतराग हो गया लगता है। उस पर से हम ऐसा मानते हैं कि कुछ वीतराग दशा लग रही है। फिर भी वास्तव में ऐसा नहीं बोल सकते कि 'वीतराग है'।

अब ये बातें सुनते रहने से सब अपने आप ही छूट जाएगा। इसके लिए कोई क्रिया नहीं करनी हैं, न ही दो उपवास वगैरह करने हैं। बात को सिर्फ समझने की ही ज़रूरत है।

[३]

कॉमनसेन्स : वेल्डिंग

'कॉमनसेन्स' की कमी

यह वाणी राग-द्वेष रहित है। वीतराग वाणी है। इस वाणी को सुने और यदि धारण कर ले तो उसका कल्याण ही हो जाए। इस वाणी को यदि धारण कर ले न तो सारा रोग जुलाब की तरह निकल जाए! अवगुणों के जो परमाणु हैं न, वे सभी जुलाब की तरह निकल जाएँ!

सभी बातों का मैं सार कहता हूँ, और यह सब पूरा अर्क ही है। यह सारा हमारे अनुभव का निचोड़ है। वर्ना पुस्तक में कहीं लिखा जाता होगा कि आज 'कॉमनसेन्स' किसी में है ही नहीं! वर्ना ऐसा पढ़कर तुरंत ही लोग यहाँ पर 'अप्लाइ' करने आएँगे कि 'साहब, मुझमें कॉमनसेन्स तो है।' यदि कभी ऐसा कोई आ जाए न, तो मैं उसे कहूँगा कि, 'चल, देखते हैं तेरे घर आता हूँ, पंद्रह दिन रहता हूँ!' बड़े आए 'कॉमनसेन्स' वाले!

यदि ऐसा नहीं कहें न, तो इंसान खुद अपने आपको न जाने क्या मानकर घूमता है कि अपने जैसा तो कोई है ही नहीं।

'एवरीव्हेर एप्लिकेबल'

'कॉमनसेन्स' क्या है? 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल, थ्योरीटिकल एज़ वेल एज़ प्रैक्टिकल'! ऐसा 'कॉमनसेन्स' तो हमने किसी में देखा ही नहीं है। कॉमनसेन्स अर्थात् वह ऐसी चाबी है कि एवरीव्हेर एप्लिकेबल होती है, उससे कैसे भी जंग लगे हुए ताले खुल जाते हैं। वर्ना यह तो अच्छे, नये ताले भी बंद हो जाते हैं! बेकार से बेकार व्यक्ति का ताला अपने

से खुल जाए तो समझना कि अपने पास कॉमनसेन्स है। वर्ना सभी बिना कॉमनसेन्स की बातें करते हैं, उसमें उनकी खुद की समझ बिल्कुल भी नहीं है।

कॉमनसेन्स वाला इंसान देखा है? अभी तक मैंने कोई कॉमनसेन्स वाला इंसान देखा ही नहीं है। तो बड़े से बड़े 'कलेक्टर' मुझसे पूछते हैं कि, 'आपने किसी में कॉमनसेन्स देखा ही नहीं है?' तब मुझे कहना पड़ता है कि, 'कॉमनसेन्स' कहाँ से लाएँगे?' पत्नी से झगड़ा तो होता है, फिर तू 'कॉमनसेन्स' कहाँ से लेकर आया? 'कॉमनसेन्स' वाले का पत्नी के साथ झगड़ा होता होगा? जिसके साथ रहना है, जिसके साथ खाना है, जिसके साथ पीना है, जिसके साथ टेबल पर भोजन करने बैठना है, उसके साथ कहीं झगड़ा किया जाता होगा? वह क्या 'कॉमनसेन्स' कहलाएगा? ऐसा कॉमनसेन्स कहाँ से ले आए? यह तो पूरा जगत् मन में बेकार की दंभ लेकर घूमता रहता है कि 'मैं कुछ जानता हूँ!' अरे, क्या जाना है तूने, कॉमनसेन्स तो जाना नहीं है अभी तक, फिर और क्या जाना? यह तो कर्म के उदय से चलता है।

जिससे पूरी दुनिया डर जाती है, वह पत्नी के साथ किच-किच किए बगैर नहीं रहता है न! अरे, पत्नी के साथ क्यों किच-किच करता है? बारह सालों में दो-चार बार तो किच-किच करता ही होगा न?

प्रश्नकर्ता : अरे, रोज़ किच-किच होती है!

दादाश्री : रोज़?! तब तो उसे इंसान कहेंगे ही कैसे? और फिर कहते हैं, 'मुझमें सेन्स है।' अरे, लेकिन 'सेन्स' कहाँ था? बेकार ही किसलिए शोर मचाता रहता है?! 'सेन्स' होता तो पत्नी के साथ झंझट क्यों होती? पत्नी से मतभेद हो जाता है, तब हम नहीं समझ जाएँ कि 'सेन्स' कुछ कम होगा।

प्रश्नकर्ता : दोनों में से किसमें कम है, वह कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : वह तो पता चलता है न, कि दोनों में से कौन पहले मतभेद डालता है? यानी 'सेन्स' तो चाहिए न!

'कॉमनसेन्स' वाला व्यक्ति 'एवरीव्हेर एडजस्टेबल' होता है। कोई गालियाँ दे तो उसके साथ भी 'एडजस्ट' होकर कहेगा, 'आइए, आइए, बैठिए न! कोई बात नहीं।' यानी, 'कॉमनसेन्स' की ज़रूरत पड़ेगी। जबकि यहाँ तो, 'बेअक्ल हो,' ऐसा कहते ही मुँह फूल जाता है। अरे, कॉमनसेन्स नहीं है? तेरा मुँह किसलिए फूल गया इसमें?! 'अक्ल वाला हूँ' ऐसा अपने आपको मान बैठा है तू? देखो अक्ल का बोरा! ये आए बड़े अक्ल के बोरे! बेचने जाएँ तो चार आने भी नहीं आएँ। और बेकार ही अकड़ता रहता है। अक्ल वाला तो 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल' वाला होता है। इस काल में तो 'कॉमनसेन्स' मुश्किल हो गया है।

कॉमनसेन्स का अर्थ ठीक से किया है? यह पहले का अर्थ होगा या नया अर्थ होगा?

प्रश्नकर्ता : मौलिक, नया ही अर्थ है।

दादाश्री : मौलिक है, है न? पहले किसी ने नहीं किया? इस 'कॉमनसेन्स' का अर्थ हमने कहा है न, कि 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल, थ्योरीटिकल एज़ वेल एज़ प्रैक्टिकल,' यह सुनकर लोग बहुत खुश हो जाते हैं। 'कॉमनसेन्स का बहुत सुंदर अर्थ निकाला' कहते हैं। तब मैंने कहा, 'यही हमारी मैट्रिक में फेल होने की निशानी है न!'

'कॉमनसेन्स' का प्रमाण

और आप तो 'सी.ए.' हैं न! लेकिन अभी तो आपको कितने सारे भाग बींधने पड़ेंगे। सी.ए. के भाग, फिर पत्नी के भाग, सबकुछ आना चाहिए न? वर्ना बीवी तो तेल निकाल देगी। आपको नहीं आता इसलिए न? यदि आता तो कोई तेल नहीं निकालता! और बीवी, वह कहीं तेल निकालने नहीं आई है। वह तो घर बसाने आई है। लेकिन फिर अगर एक 'पार्टी' झुक जाए तो किच-किच करते रहते हैं। हाँ, कुशलता नहीं देखी इसलिए!

ये आज की लड़कियाँ क्या कहती हैं? मैं पूछता हूँ कि, 'बहन, इन लड़कों के बारे में आपका क्या अभिप्राय है?' तब वे कहती हैं, 'वे

तो बेवकूफ हैं।' क्या यह शर्मनाक बात नहीं कहलाएगी? ये लड़कियाँ अगर ऐसा कहें तो?!

क्योंकि कुदरत का तरीका ऐसा है कि दस साल का लड़का होता है और दस साल की लड़की होती है, लेकिन दस साल की लड़की में पंद्रह साल के लड़के जितना ज्ञान होता है, इतनी समझदारी होती है। कहलाती है दस साल की, लेकिन उसमें दूरदर्शिता होती है। इसलिए स्त्रियों में एडवान्स ज्ञान, मैनेजमेन्ट, वगैरह अधिक होता है।

व्यवहारिकता रहित

एक स्त्री से मैंने पूछा कि, 'क्यों! क्या तेरे पति के साथ तेरी नहीं बनती?' तब उसने कहा, 'दादाजी, अक्ल तो इतनी अधिक है कि पूछो ही मत!' तब मैंने कहा कि, 'यह तो तेरे लिए अच्छा है अगर पति अक्ल वाला है तो!' तब उसने कहा, 'लेकिन व्यवहारिकता है ही नहीं।' यानी क्या कहती है कि कॉमनसेन्स नहीं है, इसलिए बात-बात में झगड़े हो जाते हैं। फिर उस स्त्री ने मुझसे पूछा कि, 'कॉमनसेन्स नहीं है, दादाजी। क्या करूँ?' तब मैंने कहा, 'सबकुछ समझ गया। अब तू और कोई बात ही मत करना।' ऐसे तो चलेगा ही नहीं न! थोड़ा बहुत कॉमनसेन्स तो चाहिए या नहीं चाहिए इंसान में? व्यवहारिकता तो होनी चाहिए न?

इसलिए फिर स्त्रियों से मैं क्या कहता हूँ कि, 'बहन, पति ऐसा नॉनसेन्स मिल जाए तो तेरी क्या दशा होगी? तुझे ऐसा नॉनसेन्स जीवन जीना पसंद है क्या? फिर भी प्रारब्ध में जो लिखा होगा वह छोड़ेगा नहीं न और अपना मनचाहा होगा नहीं, ऐसा है यह जगत्! तुझे ऐसा नॉनसेन्स पति मिल जाए तो मुझे बता देना कि मुझे ऐसा पति मिला है। तो तुरंत ही मैं उसे रिपेयर कर दूँगा और तुझे चाबी दे दूँगा।' उसे रास्ते पर ले आऊँगा।

अहंकार डाउन, तो डीलिंग बेस्ट

जिसमें कॉमनसेन्स नहीं हो न, उसका तो पत्नी के साथ एक घंटा

भी मेल-मिलाप नहीं रहता। कॉमनसेन्स नहीं है इसीलिए गड़बड़ होती है न! उसकी शादी कर दी जाए तो क्या दशा होगी? आज उसकी वाइफ आई, रात को मिले, एक घंटे में तो दोनों अलग। 'हाउ टु डील' सब से पहले तो वही नहीं आता। बिगिनिंग कैसे की जाए, वह भी नहीं आता है। कला वगैरह की ज़रूरत है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : है ही न! उसके बिना तो चलेगा ही नहीं।

दादाश्री : पति जो है, वह कॉमनसेन्स वाला चाहिए न? यह तो अगर कभी पत्नी से भूल हो जाए, तो उसके साथ झगड़ा करने बैठ जाता है! अरे, झगड़ा करने के लिए भूल नहीं हुई!

कोई कॉमनसेन्स वाला हो, वह तो पनवाड़ी के साथ भी समझदारी से निकाल कर लेता है। लड़ने वाला इंसान कौन होता है? जिसे 'सेन्स' नहीं हो, वह इंसान हर कहीं सब बिगाड़ देता है। कौन से संयोगों में बेचारे ने भूल की होगी, वह जाने बिना हम झगड़ा करें, तो उससे फायदा होगा क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं होगा। नुकसान पहुँचाएगा।

दादाश्री : यानी जिसमें कॉमनसेन्स नहीं होता वह लड़ता है और लड़े तो हो चुका! उसके और आपके बीच टूट गया।

अत: खुद के अहंकार को इतना अधिक डाउन ले जाना कि सब के साथ में मिलजुलकर रहा जा सके। अब अहंकार में क्या कोई पेच होता है कि ऐसे घुमाकर उसे डाउन किया जा सके?! यानी समझदारी से होना चाहिए या नासमझी से होना चाहिए? और समझदारी का अहंकार हो जाए तो उसमें भी हर्ज नहीं है, लेकिन यह तो नासमझी का अंहकार है। उसे क्या कहेंगे?

मिलनसारिता से बढ़ता है कॉमनसेन्स

इसलिए मैं कहता हूँ न, कि इन सब के साथ बैठे तो उन लोगों को अपने पर प्रेम उत्पन्न होगा। और दूसरी बातचीत चलेगी, अपनी-

अपनी बाते करेंगे उसमें बात में से पकड़ लें तो कॉमनसेन्स बढ़ेगा अपना। सभी लोगों के साथ मिलजुलकर चलने से कॉमनसेन्स बढ़ता है।

प्रश्नकर्ता : सभी के साथ मिलजुलकर रहना, ऐसा आपने कहा है न, लेकिन मुझे तो इसमें तिरस्कार जैसा रहता है।

दादाश्री : यह तिरस्कार है इसीलिए तो ऐसा हो गया है न! इसलिए अब तिरस्कार निकालकर सब के साथ मिलजुलकर चलेंगे तो अंदर कॉमनसेन्स बढ़ेगा। तिरस्कार तो गायों-भैसों का भी नहीं करना चाहिए, तो इन मनुष्यों के प्रति कैसे किया जा सकता है? किसी भी तरह का सलीका तो है नहीं! आपके पास सलीका हो और तिरस्कार करो तो ठीक है भाई बहुत सलीके वाले इंसान हैं इसलिए तिरस्कार कर रहे हैं!' लेकिन इनके पास तो सलीका भी नहीं है।

सलीका किसे कहते हैं? कि शादी करता है, लेकिन पूरी ज़िंदगी में पत्नी के साथ थोड़े बहुत झगड़े होते हैं, लेकिन हररोज़ झगड़े नहीं होते। उसे सलीका कहते हैं। और जिसमें सलीका नहीं है, अगर वह शादी करे और पत्नी रूठकर दूसरी तरफ बैठ जाए, तब उसे इतना भी नहीं आता कि मनाऊँ किस तरह। तो फिर पत्नी का क्या होगा?

सुर मिलाते मिलाते...

यह तो अगर पत्नी से झगड़ा हो जाए तो फिर पाँच दिनों तक बोलता नहीं है। ज़रा यों ही थोड़ी बहुत झंझट हो जाए, तो बात नहीं करता। अब अगर वहाँ उसे कुछ और नहीं आता, तो ताला कैसे खुलेगा? ताला तो यों ही ज़ंग खाता रहेगा और कई लोग तो तुरंत बीवी के ताले खोल देते हैं। कॉमनसेन्स अर्थात् सुर मिल जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : सुर मिलने का अर्थ क्या है?

दादाश्री : वह तरीका हमारे जैसा ही होता है। जैसा हमारा तरीका है, लगभग उसी तरीके से बर्ताव करता है। समझदार आदमी क्या कहेगा? 'मैं बीवी के साथ झगड़े में पड़ूँगा ही नहीं न! वह झगड़ा करे, लेकिन मैं झगड़ा नहीं करूँगा।'

जो कॉमनसेन्स वाला होता है, उसे फिर ऐसा नहीं होता कि 'मेरे साथ ऐसा हो गया, वहाँ पर अब क्या करूँ?' इस तरह से यदि अप्लाइ नहीं होता है तो वह कॉमनसेन्स है ही नहीं।

वह टकराव टालता है

प्रश्नकर्ता : यदि कोई कॉमनसेन्स वाला हो तो वह सभी जगह हल निकाल लेता है न?

दादाश्री : कॉमनसेन्स वाला तो बहुत प्रकार से हल ला देता है, व्यवहार की सभी गुत्थियाँ सुलझा देता है।

प्रश्नकर्ता : उससे भी टकराव होता है?

दादाश्री : टकराव कम होते हैं। यदि टकराव नहीं करवाने वाली कोई चीज़ हो तो वह कॉमनसेन्स ही है!

प्रश्नकर्ता : तो जहाँ टकराव हो वहाँ पर कॉमनसेन्स कहलाता ही नहीं।

दादाश्री : ऐसा नहीं, लेकिन वहाँ कॉमनसेन्स कम है ऐसा कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ज्ञानी के अलावा तो कौन टकराए बगैर रह सकता है?

दादाश्री : लेकिन यदि कॉमनसेन्स होगा न, तो टकराएगा नहीं। कॉमनसेन्स वाला तो तुरंत सुलह कर लेता है। उल्टा हो जाए तो भी पलट देता है, तुरंत ही। उसे तो कोई देर ही नहीं लगती। वही कॉमनसेन्स है न! एवरीव्हेर एप्लिकेबल!

प्रश्नकर्ता : लेकिन जहाँ पर राग-द्वेष आएँ, वहाँ पर कॉमनसेन्स खत्म हो जाता है न?

दादाश्री : कॉमनसेन्स तो अनुभव की बात है। उसका राग-द्वेष से लेना-देना नहीं है। संसार का, व्यवहार का अनुभव है न, वह है कॉमनसेन्स!

तो रुके स्वच्छंद

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में जहाँ-जहाँ डिसिज़न लेना हो, वहाँ व्यवहारिक सूझ काम में आती है या नहीं?

दादाश्री : हाँ, सूझ ही काम में आती है। लेकिन अगर सूझ नहीं हो तो कहाँ से लाए? हाँ, वर्ना फिर अपना विश्वासपात्र हो तो उसे पूछकर काम करना चाहिए। पूछकर काम करने जैसा तो कुछ भी नहीं है इस दुनिया में! पूछकर करे कि, 'साहब, पेशाब करने जाऊँ?' तब वह कहेगा, 'जाओ।' फिर उसका गुनाह नहीं है न! फिर भले ही वहाँ दस मिनट तक बीड़ियाँ पी हों। लेकिन यों ही पूछे बगैर जाए तब पकड़ेंगे उसे। 'क्यों बीड़ी पीने गया था?' कहेगा। इसलिए पूछकर जाओ।

प्रश्नकर्ता : पूछकर जाने में स्वच्छंद नामक भाग पूरा टूट जाता है न?

दादाश्री : हाँ, इसीलिए, स्वच्छंद निकालने के लिए ही यह पूछकर करना चाहिए न! इसीलिए गुरु बनाने के लिए कहा है न! खुद की अक्ल से नहीं चलना है न! और गुरु कहे वह सोलह आना।

हम इनसे कहें कि, 'इस तरफ दौड़,' तब फिर वह पूछने के लिए रुकता ही नहीं। उसे कहा जाता है कि स्वच्छंद चला गया। और किसी और से पूछने जाए कि 'ये दादा कह रहे हैं उस तरफ दौड़ूँ या नहीं दौड़ूँ?' तो वह स्वच्छंद कहलाएगा।

हाँ, व्यवहारिक बातों में मुझसे कुछ पूछने की ज़रूरत नहीं है। उसमें आप फादर से पूछो, या दूसरे किसी से, जो उम्र में आपसे बड़े हों, अनुभवी हों, उनसे पूछो। व्यवहारिक बातों में सभी व्यवहारिक व्यक्ति जो बड़ी उम्र के होते हैं न, वे सब समझा देते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसे व्यवहार में, 'समय' पर तो कॉमनसेन्स ही एप्लिकेबल होता है न?

दादाश्री : लेकिन कॉमनसेन्स लाए कहाँ से वह? वह तो अपनी

पुस्तकें पढ़ता रहे तो उसे ऐसी सूझ पड़ती जाती है फिर। वर्ना, कॉमनसेन्स कहाँ से लाए? वह क्या रास्ते में पड़ी हुई चीज़ है?

सरलता से बढ़ता है कॉमनसेन्स

प्रश्नकर्ता : सरलता से भी कॉमनसेन्स बढ़ता है न?

दादाश्री : हाँ, बहुत बढ़ता है। सरलता से धोखा भी खाता है, लेकिन कॉमनसेन्स बहुत बढ़ जाता है। ज़्यादा पैसा लेकर कोई हमें ठग लेता है, लेकिन उसके बदले में हमारा कॉमनसेन्स बढ़ता है। इस दुनिया में जिसका बदला न मिले, ऐसी कोई चीज़ होती ही नहीं। कुछ न कुछ बदला मिल ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कॉमनसेन्स का मतलब तो एवरीव्हेर एप्लिकेबल है न? तो फिर धोखा कैसे खा जाता है?

दादाश्री : सरलता है, इसलिए धोखा खाता है न! दो-तीन जगहों पर धोखा नहीं खाता, लेकिन एक-दो जगह पर धोखा खा जाता है। पर जब धोखा खाता है, उस समय उसका कॉमनसेन्स खिलता है, और समझ में आता है कि ऐसे संयोगों में धोखा खा जाते हैं, इसलिए उसका कॉमनसेन्स बढ़ता जाता है।

सोल्यूशन कॉमनसेन्स से

कॉमनसेन्स तो बहुत बड़ी चीज़ है। एक व्यक्ति आकर एक साहब से उल्टा-सीधा कहने लगा। कॉमनसेन्स के कारण उन साहब पर ज़रा सा भी असर नहीं हुआ। देखो कॉमनसेन्स था, इसलिए! इससे हमें कॉमनसेन्स का उदाहरण देखने को मिला कि 'इन साहब ने कॉमनसेन्स का उपयोग किया।' दूसरा कोई व्यक्ति तो वहाँ पर डिस्करेज ही हो जाता न, यों ही! ज़बरदस्त डिप्रेशन आ जाता लेकिन मैंने तो उनमें डिप्रेशन नहीं देखा। मैं यही देख रहा था कि डिप्रेशन आता है या नहीं? वह व्यक्ति न जाने क्या कुछ कह गया, तब भी डिप्रेशन नहीं आया।

अतः इन सब से मैं क्या कहता हूँ? कि कॉमनसेन्स से प्रश्न हल

करो। कोई व्यक्ति कुछ भी बोल सकता है, यह उसके दिमाग़ पर आधारित है न! और आपका कुछ पुण्य होगा तभी बोलेगा न! वर्ना अगर पुण्य न हो तो कोई कुछ बोल सकता है?

जहाँ स्वार्थ, वहाँ पूर्णता नहीं

प्रश्नकर्ता : जिसमें कॉमनसेन्स है उसे खुद को कुछ भी नहीं होता है, लेकिन उसके निमित्त से सामने वाले को दु:ख हो सकता है?

दादाश्री : वह तो हो सकता है न! सामने वाला कमज़ोर हो तो दु:ख हो सकता है। इस दुनिया में कमज़ोर इंसान को दु:ख होता है। जितनी कमज़ोरी उतना ही उसे दु:ख। अगर कमज़ोर को दु:ख हो तो उसमें बलवान क्या करे? यदि कोई राक्षस जैसा, जिसके शरीर का डील डौल वैसा हो, ऐसा व्यक्ति जा रहा हो, उसे देखकर लोग घबराकर भाग जाएँ तो उसमें वह क्या करे? उसका क्या गुनाह है?

प्रश्नकर्ता : उसमें उसका खुद का व्यवहार, वाणी ऐसे होते हैं कि सामने वाले को दु:ख नहीं हो, राज़ी-खुशी से सब काम करवा ले, उसके पास ऐसी गिफ्ट होती है न?

दादाश्री : वह सब होता है, लेकिन मूलत: वे स्वार्थमय परिणाम होते हैं, वे अच्छे नहीं है। उससे कम्पलीट कॉमनसेन्स नहीं आ पाता। जहाँ ज़रा सा भी स्वार्थ हो न, वहाँ पूर्ण कॉमनसेन्स नहीं है। स्वार्थ नहीं हो तब सही है। बाद में वह सामने वाले को राज़ी रखे तो वह बगैर स्वार्थ के राज़ी रखता है, उसे दु:ख नहीं हो इसलिए। बाकी, जगत् तो अपने ही मतलब के लिए राज़ी रखता है, इसलिए उनका कॉमनसेन्स पूर्ण नहीं हो पाता, क्योंकि उसका उपयोग मतलब के लिए हुआ!

सूझ उससे अलग

प्रश्नकर्ता : क्या कॉमनसेन्स का मतलब यह है कि किसी व्यवहारिक काम को कम समय में स्पीडी कर लाए, और किसी के साथ टकराव टाल दे? वह है?

दादाश्री : व्यवहारिक काम जल्दी, तेज़ी से कर लाए न, उसे अधिक सूझ कहा जाता है। उसे ऐसा कहा जाएगा कि वह सूझ वाला है। कॉमनसेन्स अर्थात् 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल,' जो ताले नहीं खुल रहे हों, उसके वे ताले खोल देता है।

प्रश्नकर्ता : कोई निर्णय लेना हो तो कुछ लोग उलझते रहते हैं और कुछ तो यों तुरंत ही डिसिज़न ले लेते हैं, उसे सूझ कहते हैं ?

दादाश्री : नहीं। यह निर्णय लेना, वह बुद्धि कहलाती है और स्पीडी काम कर ले, घंटे का काम पंद्रह मिनट में कर ले तो वह सूझ कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : उसे व्यवहारिकता कहते हैं ?

दादाश्री : नहीं। वह सूझ कहलाती है। कईयों में सूझ और बुद्धि दोनों ही होते हैं। और फिर उनमें ऐसी बुद्धि होती है कि जो तेज़ी से निर्णय ले लेती है। सूझ को दर्शन कहते हैं और बुद्धि को ज्ञान कहते हैं लेकिन ये विपरीत ज्ञान और दर्शन हैं। अर्थात् सांसारिक ज्ञान और दर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्यादर्शन!

कॉमनसेन्स सर्वांगी

प्रश्नकर्ता : व्यवहारिकता उसी को कहते हैं न कि व्यक्ति व्यवहार में एक्सपर्ट हो ?

दादाश्री : हाँ, लोग यही कहते हैं न! उसे लोग एक्सपर्ट कहते हैं लेकिन एक्सपर्ट के बजाय व्यवहारिकता ज़्यादा बड़ी कहलाती है। व्यवहारिकता अर्थात् कॉमनसेन्स। कॉमनसेन्स सर्वांगी होता है और यह जो 'एक्सपर्ट' हैं, वे 'वन साइडेड' होते हैं। लेकिन उसमें वह एक्सपर्ट होता है। यह कॉमनसेन्स वाला एक्सपर्ट नहीं होता। एक साइड में एक्सपर्ट होने जाए तो दूसरी सब साइड बंद हो जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : लिमिटेड फील्ड में ही एक्सपर्ट बन सकता है।

दादाश्री : हाँ, किसी लिमिटेड फील्ड में ही। बाकी सभी जगह पर कमी रह जाती है।

प्रश्नकर्ता : कॉमनसेन्स से व्यवहार को देखे, तब उसमें उसके सभी कैल्क्यूलेशन रहते हैं और अगर ज्ञान से देखे तो स्वयं किसी को भी कर्ता नहीं देखता, 'व्यवस्थित' के ताबे में देखता है। तो इन दोनों में, व्यवहारिक 'सॉल्यूशन' लाने में क्या फर्क पड़ता है?

दादाश्री : अपना ज्ञान का सॉल्यूशन अलग तरह का है।

प्रश्नकर्ता : दोनों में उच्च प्रकार का सॉल्यूशन कौन सा?

दादाश्री : कॉमनसेन्स वाला। बाकी, ज्ञान का सॉल्यूशन तो इतना (इस तरह का) होता ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : ज्ञान का सॉल्यूशन आए तो खुद की जलन बंद हो जाती है।

दादाश्री : जलन बंद हो जाती है, लेकिन बाह्य व्यवहार का काम नहीं हो पाता न! अपने सभी महात्माओं को व्यवहार में ज्ञान काम में नहीं आता। उनमें कॉमनसेन्स है ही नहीं न! पत्नी से विवाह किया, तो उसके साथ *निकाल* किस तरह करना है, वह नहीं आता। इन साधु-आचार्यों की शादी करवा दें तो वे तीसरे दिन भाग जाएँगे! क्यों भाग जाएँगे? उस लाइन के बारे में कुछ जानते ही नहीं न कि अब किस तरह इसका हल लाए!

प्रश्नकर्ता : कॉमनसेन्स वाले को इस ज्ञान का जैसा लाभ होना चाहिए वैसा नहीं होता न? क्योंकि उसकी दृष्टि व्यवहार की तरफ ही होती है।

दादाश्री : वह कॉमनसेन्स नहीं माना जाता। वे तो सब स्वार्थमय परिणाम हैं सारे, वन साइडेड होते हैं। कॉमनसेन्स तो 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल,' 360 डिग्री वाला होता है, लेकिन 'एक्सपर्ट' किसी भी क्षेत्र में नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन एक्सपर्ट तो व्यवहारिकता में आता है।

दादाश्री : एक्सपर्ट तो किसी खास व्यवहार में ही पड़े हुए होते हैं। उसी क्षेत्र में एक्सपर्ट बने होते हैं, किसी और विषय में नहीं होते। अन्य किसी चीज़ में ज़ीरो होते हैं। जबकि कॉमनसेन्स वाला किसी भी क्षेत्र में ज़ीरो नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : दादा, ये 'कॉमनसेन्स' और 'ज्ञान,' इन दोनों का कोई लेना-देना है क्या?

दादाश्री : ज्ञान को इतना ही लेना-देना है कि निःस्वार्थता होती है 'ज्ञान' में! जिन्हें 'ज्ञान' की प्राप्ति होने वाली हो, वे निःस्वार्थता में होते हैं। उनमें कॉमनसेन्स विकसित होता जाता है और साथ-साथ ज्ञान भी विकसित होता जाता है। वर्ना कॉमनसेन्स का और ज्ञान का कुछ लेना-देना नहीं है। 'ज्ञान' तो आप सभी को है ही न! कहाँ नहीं है? लेकिन निःस्वार्थता के कारण कॉमनसेन्स और ज्ञान दोनों विकसित होते जाते हैं। जबकि स्वार्थी में कॉमनसेन्स 'वन साइडेड' हो जाता है, और ज्ञान का बिल्कुल भी विकास नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिसमें स्वार्थ हो उसकी व्यवहारिकता का विकास होता है न?

दादाश्री : व्यवहार सुंदर होता जाता है, लेकिन 'वन साइडेड,' किसी खास साइड में होता है। वन साइडेड को कॉमनसेन्स नहीं माना जाता। कॉमनसेन्स अर्थात् 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल'! इसलिए मैंने उसके लिए दूसरा अग्रेज़ी शब्द रखा है 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल,' ताकि लोग उनकी भाषा में न समझ लें।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, क्या ऐसा होता है कि उनमें अंदर राग-द्वेष हो भी सकते हैं या नहीं भी?

दादाश्री : निःस्वार्थता की ओर जाए न, तो राग-द्वेष कम होते जाते हैं। स्वार्थी को ही सारे राग-द्वेष हैं।

प्रश्नकर्ता : और कॉमनसेन्स वाले को राग-द्वेष?

दादाश्री : उसके राग-द्वेष कम होते जाते हैं दिनोंदिन, ज्ञान बढ़ता जाता है, कॉमनसेन्स का विकास होता जाता है, सभी कुछ बढ़ता जाता है।

प्रश्नकर्ता : टकराव होने से कॉमनसेन्स का विकास होता है क्या? अगर उसमें से सार निकालना आए तो?

दादाश्री : निःस्वार्थता के कारण उसके द्वारा तुरंत ही सार निकल ही जाता है। स्वार्थी को तो पता ही नहीं चलता। ऐसी-ऐसी घटनाएँ होती हैं लेकिन घटनाएँ 'फ्री ऑफ कॉस्ट' निकल जाती हैं। घटनाएँ तो बहुत सारी होती हैं, लेकिन भूल जाता है पूरा जगत्। जबकि उसमें (निःस्वार्थता में) तो पूरा सार निकल ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : सार निकल ही जाता है? उसे कुछ करना नहीं पड़ता?

दादाश्री : नहीं, कुछ भी नहीं। अपने आप ही सार निकल जाता है और उधर जब वह सार निकाल लेता है, तब ज्ञान प्रकट होता है।

प्रश्नकर्ता : जैसे ज्ञान में दिखाई देता है कि यह 'रियल,' यह 'रिलेटिव,' कर्ता कौन, यह कौन, ऐसा सब दिखाई देता है अंदर तो कॉमनसेन्स वाले में दूसरी कोई लाइट होगी न?

दादाश्री : कॉमनसेन्स वाले तो हर उस ताले को खोल देता है जो नहीं खुल पा रहा हो।

प्रश्नकर्ता : कौन से सॉल्यूशन से, कौन सी चाबियों से खुलता है, ऐसा?

दादाश्री : नहीं, वह स्वाभाविक रूप से होता है उसमें, वह अनुभवजन्य होता है। हर एक घटना में से अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त हुआ होता है, वे ही चाबियाँ होती हैं। घटनाओं में से जो अनुभवजन्य चीज़ होती है न, उन चाबियों के आधार पर सारे काम करता है वह जबकि जो एक्सपर्ट होता है, वह वहाँ पर धोखा खा जाता है। वह भी धोखा खा जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कॉमनसेन्स वाला उलझन में नहीं पड़ता न!

दादाश्री : उलझन में नहीं पड़ता, लेकिन धोखा ज़रूर खा सकता है। धोखा खाकर भी खुद उस गुत्थी को सुलझा लेता है। ये वकील 'एक्सपर्ट' होते हैं, अन्य तरह-तरह के 'एक्सपर्ट' होते हैं। अपनी-अपनी लाइन में वे एक्सपर्ट होते हैं न, लेकिन वे धोखा खा जाते हैं। जितना अधिक विश्वास करने वाला होता है उतना अधिक उसके कॉमनसेन्स का विकास होता है। ज़्यादा धोखा खाता है, इसलिए कॉमनसेन्स बढ़ जाता है, निःस्वार्थता बढ़ती जाती है।

प्रश्नकर्ता : एक प्रकार से तो आप कहते हैं कि 'कॉमनसेन्स वाला किसी भी जगह पर उलझन में नहीं पड़ता,' तो फिर वह धोखा खा सकता है क्या?

दादाश्री : वह तो कॉमनसेन्स विकसित हो जाने के बाद में फिर उलझन में नहीं पड़ता। विकास होते समय तो उलझ जाता है न! धोखा खाता है न? लोगों से धोखा खाकर ही वह 'कॉमनसेन्स' सीखता है।

प्रश्नकर्ता : अब वह जो सार निकालता है, उसमें यदि खुद की भूल ढूँढे, तो सिर्फ स्थूल भूलें ही देख सकता है न?

दादाश्री : नहीं, नहीं। स्थूल भूलें नहीं देख सकता, लेकिन सामने वाले सब लोग कैसे होते हैं, धोखेबाज़, उसे वह सारा अभ्यास बहुत होता है।

प्रश्नकर्ता : कॉमनसेन्स वाले के पास सामने वाले की प्रकृति की स्टडी होनी चाहिए न?

दादाश्री : वह होती ही है। उसी को कॉमनसेन्स कहते हैं। तभी वह ताला खुल सकेगा न!

प्रश्नकर्ता : किसी से हमारी नहीं बनती हो, बिगड़ गया हो, तो अब अगर उसके साथ हमें मेल-मिलाप करना हो तो... अब यों अगर

उसके नज़दीक जाएँ मेल-मिलाप करने तो वह बिगड़ेगा तो क्या दूर रहकर उससे काम लेना चाहिए?

दादाश्री : वह कुछ कला करता है, दूसरी किसी कला से काम लेता है।

प्रश्नकर्ता : तो उसे कॉमनसेन्स कहेंगे?

दादाश्री : हाँ, वह भी कॉमनसेन्स माना जाता है!

प्रश्नकर्ता : तो दादा, उस हिसाब से आपका कॉमनसेन्स बहुत 'टॉप' पर है।

दादाश्री : हमारा यह अलग तरह का कॉमनसेन्स कहलाता है। इसमें तो नि:स्वार्थ रूप से सारे अनुभव ही देखे हैं, सभी अनुभव दिखाई देते हैं। यह तो, स्वार्थ के कारण अनुभव दिखाई नहीं देते। अनंत जन्मों से स्त्री से विवाह करता है, लेकिन क्या स्त्री के प्रति मोह जाता है लोगों का? अरे, मार भी बहुत खाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें से सार नहीं निकलता। सार नहीं निकालता?

दादाश्री : सार नहीं निकालता। स्वार्थ की वजह से वह पूरा सार नहीं निकल सकता। इन साधु, आचार्यों ने, जिन्होंने भावना की होती हैं न, कि 'अब विवाह करना ही नहीं है।' उन्होंने तो सार निकाला है इनमें से।

....और बुद्धि, सूझ, प्रज्ञा

प्रश्नकर्ता : जो कॉमनसेन्स है, वह बुद्धि के आधार पर है या सूझ के आधार पर है?

दादाश्री : कॉमनसेन्स, सूझ के आधार पर है। सूझ अलग चीज़ है। वह कुदरती गिफ्ट है। हर एक में अंतरसूझ होती है न, उसी के आधार पर सब चलता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सूझ तो आत्मा का डायरेक्ट प्रकाश है न?

दादाश्री : नहीं, वह डायरेक्ट प्रकाश नहीं है लेकिन अंतरसूझ, वह तो एक प्रकार की कुदरती गिफ्ट है। उसी के आधार पर संसार में किस प्रकार से रहना और किस प्रकार से नहीं, वह सब चलाता रहता है।

प्रश्नकर्ता : सूझ में बुद्धि नहीं आती?

दादाश्री : नहीं। बुद्धि तो फायदा और नुकसान ही दिखाती है। बाकी कुछ नहीं दिखाती।

प्रश्नकर्ता : तो प्रज्ञा और सूझ में क्या फर्क है?

दादाश्री : सूझ तो हर एक में होती हैं। जानवरों में भी होती हैं। छोटा बच्चा होता है न, तो वह अपनी सूझ के अनुसार घूमता रहता है। पिल्लों में भी सूझ होती हैं, प्रज्ञा नहीं होती। प्रज्ञा, वह तो ज्ञान का प्रकाश होने के बाद उत्पन्न होने वाली चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : सूझ से जो काम होते हैं, वे अच्छे माने जाते हैं न?

दादाश्री : सूझ के अनुसार काम करें न, तो वे काम अच्छी तरह से होते हैं।

प्रश्नकर्ता : कॉमनसेन्स और प्रज्ञा में क्या फर्क है?

दादाश्री : कॉमनसेन्स हमेशा संसार के हल ला देता है, संसार के कैसे भी ताले खोल देता हैं, लेकिन मोक्ष का एक भी ताला नहीं खोल सकता। जबकि प्रज्ञा ज्ञान मिले बिना उत्पन्न नहीं हो सकती। या फिर समकित हो जाए, तब प्रज्ञा की शुरुआत होती है।

सभी 'तालों' की चाबी 'एक'

अब यह 'ज्ञान' मिलने के बाद आपको शुद्ध व्यवहार के लिए क्या चाहिए? कम्पलीट कॉमनसेन्स चाहिए। स्थिरता ऐसी चाहिए, गंभीरता इतनी ही चाहिए। सभी गुण उत्पन्न होने चाहिए न! वह अगर कच्चा रह जाएगा तो चलेगा नहीं और बाहर के लोग एक्सेप्ट भी नहीं करेंगे न! ताला बंद हो जाए तो चाबी लगानी पड़ेगी न? एक ही चाबी से सभी

ताले खुल जाएँ, ऐसी चाबी चाहिए। चाबी के झुमके रखने से नहीं चलेगा!

अत: यह जो कॉमनसेन्स है, वह व्यवहार शुद्ध रखने के लिए है। और शुद्ध निश्चय कब रहेगा? शुद्ध व्यवहार होगा, तब। और शुद्ध व्यवहार कब आएगा? कॉमनसेन्स 'एवरीव्हेर एप्लिकेबल' होगा, तब।

संसार में सीखो इतना ही

अभी तक एक भी व्यक्ति हमारे साथ डिसएडजस्ट नहीं हुआ है। जबकि इन लोगों के साथ घर के चार लोग भी एडजस्ट नहीं हो पाते। हमारा देखकर भी आपको एडजस्ट होना आएगा या नहीं आएगा? ऐसा हो सकता है या नहीं हो सकता? आप जैसा देखो, वैसा तो आपको आएगा न? इस जगत् का नियम क्या है? जैसा आप देखोगे उतना तो आएगा ही। उसमें कुछ सीखने को नहीं रहता। कौन सी चीज़ नहीं आती? कि यदि आपको कोई उपदेश ही देता रहे, तो वह नहीं आता लेकिन अगर आप मेरा व्यवहार देखोगे तो आसानी से सीख जाओगे।

संसार में भले ही और कुछ भी नहीं आए, लेकिन 'एडजस्ट' होना आना चाहिए। दूसरा कुछ भले ही नहीं आए, कोई हर्ज नहीं। व्यापार करना कम आता हो, तब भी हर्ज नहीं लेकिन 'एडजस्ट' होना आना चाहिए। यानी वस्तुस्थिति में 'एडजस्ट' होना सीखना चाहिए। इस काल में 'एडजस्ट' होना नहीं आए तो मारा जाएगा।

शिकायत? नहीं, एडजस्ट

ऐसा है न, घर में भी एडजस्ट होना आना चाहिए। आप सत्संग से घर पर देर से पहुँचो तो घर वाले क्या कहेंगे? कि 'ज़रा टाइम पर आना चाहिए न?' तब आप जल्दी घर जाओ तो क्या बुरा है? बैल भी जब नहीं चलता, तब उसे अंकुश से मारते हैं। इसके बजाय अगर वह चलता रहे तो वह अंकुश नहीं चुभोएगा न! वर्ना तो वह अंकुश चुभोएगा, और उसे चलना पड़ेगा। चलना तो है ही न? आपने देखा है ऐसा?

जिसमें पीछे कीलें होती हैं न, उससे मारता है। गूंगा प्राणी क्या करे? किससे शिकायत करे वह?!

इन लोगों को तो यदि कोई अंकुश चुभोए तो उन्हें दूसरे बचाने निकलते हैं। वह गूंगा प्राणी किससे फरियाद करे? अब इस बैल को क्यों इस तरह मार खानी पड़ी? क्योंकि पहले बहुत फरियाद की थी, उसका ऐसा परिणाम आया। उस दिन सत्ता मिली थी, तब फरियाद करता रहा। अब सत्ता नहीं है इसलिए फरियाद किए बगैर रहना है। अत: अब प्लस-माइनस कर दो। इसके बजाय फरियादी ही नहीं बनें तो क्या बुरा है? फरियादी बनेंगे तो आरोपी बनने का समय आएगा न? अपने को तो आरोपी भी नहीं होना है और फरियादी भी नहीं होना है। सामने वाला गालियाँ दे जाए तो उसे जमा कर देना है फरियादी बनना ही नहीं है न! आपको क्या लगता है? फरियादी बनना अच्छा है? लेकिन इसके बजाय पहले से ही एडजस्ट हो जाएँ तो क्या बुरा?!

'डाउन' के साथ 'लेवलिंग'

प्रश्नकर्ता : हम किसी एक लेवल पर आ गए और दूसरे लोग उस लेवल पर नहीं हैं। अब उनके साथ काम तो करना ही है, इसलिए कई बार वहाँ फिर मेल नहीं खाता।

दादाश्री : यों मेल तो नहीं खाएगा न! मेल नहीं खाएगा, लेकिन हमें उसके साथ एडजस्ट होना है। इसीलिए मैंने कहा है न कि वहाँ 'समभाव से *निकाल*' करना।

ऐसा है न, हमारे पास अधिक लाइट हो तो उसे डिम की जा सकती है, लेकिन डिम लाइट वाला नहीं बढ़ा सकेगा। अपनी लाइट ज़्यादा है न, इसलिए डिम करके उसके साथ बैठना। आपकी लाइट बढ़ जाए तो इस भाई से किस तरह काम लेना है, वह फिट कर देते हो न? ऐसे सभी जगह फिट कर देना। आपको फिट कर देना है, अनंत शक्तियाँ हैं! आप 'दादा' का नाम लेकर कहो कि 'हे दादाजी, मुझे फिट हो जाए' तो फिट हो जाएगा तुरंत। आपके भाव में पक्का है कि किसी को किंचित्

मात्र दुःख नहीं हो। ऐसा आपने तय किया हो तो उसे दुःख होगा ही नहीं। इसलिए आपको तय करना चाहिए।

अभेदता ऐसे साधी जाती है

एक व्यक्ति मुझसे कहता है कि, 'हमारे घर में मतभेद रहता है तो वह किस तरह जाएगा? उसका उपाय बताइए।' मैंने उससे कहा, ''बड़ी उम्र के लोगों में मतभेद होते हैं, जबकि छोटे बच्चों के बीच तो मतभेद होते ही नहीं हैं। जिसमें अहंकार होता है और जागृति होती है, उसे मतभेद होते रहते हैं इसलिए जिसमें अहंकार जागृत हो चुका है, उसे सुबह सब से पहले पाँच बार बोलना चाहिए कि 'हम सब एक हैं और हममें कोई जुदाई नहीं है।' ऐसा पाँच बार बोले और ऐसा तय करे, तो पूरे दिन वैसा रहेगा। फिर दूसरे दिन वापस बोलना पड़ेगा, वर्ना जो 'चार्ज' किया था वह वापस उतर जाएगा! घर में तीन लोग हों तो इन तीनों लोगों को इस प्रकार से बोलना चाहिए।''

प्रश्नकर्ता : जिन-जिन में मतभेद हैं, वे सभी इस मुद्दे पर एकमत कैसे हो सकेंगे? इसमें भी मतभेद पड़े तो?

दादाश्री : नहीं, नहीं। ऐसे नहीं वह उसमें तो आप सब से कहे न, 'यदि आपको मतभेद टालना हो, मतभेद आपको पसंद नहीं हो तो हम सब इकट्ठे होकर 'दादा' के कहे अनुसार करें।' तब वे कहेंगे कि 'क्या करें?' तो कहना कि, ''दादाजी ने कहा है कि 'हम सब एक ही हैं, हममें कोई जुदाई नहीं है' ऐसा पाँच बार बोलो।'' ऐसा पाँच बार बोलोगे तो उसका 'चार्ज' चौबीस घंटे तक चलेगा, वह 'चार्ज' चौबीस घंटे तक रहेगा, ऐसा है। वापस दूसरे दिन बोलना पड़ेगा। नहीं तो फिर पावर उतर जाएगा। ऐसा करते-करते ठीक हो जाएगा।

कच्चे कान के नहीं बनना चाहिए

वर्ना जगत् तो बहुत अलग ही प्रकार का है। घर में हमें मतभेद टालना हो, तब भी बाहर से लोग दरार डाल जाते हैं।

मुझसे कोई कहे कि 'फलाने भाई ऐसे हैं' तो सब से पहले मैं

उसी को पकड़ूँगा कि 'तू मुझसे ऐसा कहने आया ही क्यों? वह मुझे बता! 'तू कहने आया इसलिए तू ही गुनहगार है।' ऐसे लोग, यदि कहने आएँ न तो उन्हें तो सुनना ही नहीं चाहिए। बिना बात के अपने पूछे बगैर जो कुछ भी कहा जाता है, उस पर तो हमें ध्यान ही नहीं देना चाहिए। ऐसे लोगों की तो मैं सुनता ही नहीं हूँ। उन्हें *घालमेलिया* कहते हैं। घालमेल करने वाले (प्रपंची) को तो पास ही नहीं आने देना चाहिए। मेरे पास तो किसी व्यक्ति ने कोई प्रपंच किया ही नहीं है। और शायद कभी कोई ऐसी बात मुझसे करने आ जाए तो उससे ऐसी बात कही भी नहीं जा सकेगी। वास्तव में धर्म के संबंध में किसी की भी बात सुननी ही नहीं चाहिए। मैं तो किसी की संसार से संबंधित बात भी नहीं सुनता हूँ न! कोई कहे कि, 'हीरा बा ऐसा कह रहे थे,' तो मैं कहूँगा कि, 'तुझे मुझसे ऐसा क्यों कहना पड़ा? मुझे यह बता, कि इससे तुझे क्या फायदा?'

अपने सत्संग में यदि *घालमेलिया* हों, उन्हें तो ढूँढ निकालना चाहिए, और उनसे सभी को सावधान कर देना चाहिए। हम लोगों को उनके प्रति कोई राग-द्वेष नहीं है, लेकिन सब को सावधान करने के लिए करना पड़ेगा।

हमें कोई कहने ही क्यों आए?! उसमें भी कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, कि हितैषी बनकर बात करते हैं। वह किसी के बारे में बात करे तो हमें उसकी सुननी ही नहीं चाहिए। आपको ऐसी बातें करने वाले को पकड़ना आना चाहिए कि, 'हमें क्यों कहने आया है? तुझे क्या दलाली मिल रही है? तुझे क्या फायदा होता है कि तू यह सब मुझे बताने आया है?'

वास्तव में किसी की भी ऐसी कुछ सुननी ही नहीं चाहिए लेकिन आजकल लोगों के मन कच्चे पड़ जाते हैं। अगर किसी की ऐसी तोड़-फोड़ वाली बात हो, 'सबोटाज़' की बात हो तो सुननी ही नहीं चाहिए क्योंकि यदि हम उसकी बात सुनेंगे तो अपना मन भी उसके लिए बिगड़ेगा, और उसका असर वापस सामने वाले पर पड़ेगा। लेकिन लोगों में समझने की क्षमता नहीं है। शायद कभी कोई व्यक्ति 'इनडायरेक्ट' बात कर रहा हो, तो उसे वह 'डायरेक्ट' खुद पर ले लेता है!

ऐसा कुछ भी कहना जिससे हमारे कारण सामने वाले को ज़रा सी भी परेशानी हो, तो वह सब से बड़ा गुनाह है। फिर भी लोग तो कहते ही हैं न! बल्कि ऐसा कहा गया हो तो भी उसे दबा देना चाहिए, उसे इंसान कहते हैं। किसी जगह पर कोई व्यक्ति गरमागरमी में कुछ कह दे, तो भी हमें वह बात दबा देनी चाहिए।

वेल्डिंग, सूक्ष्म जोड़

हम तो पहले से ही, ज्ञान होने से पहले ही कोई यदि ऐसी दरार डालने वाली बात कर रहा होता, तो सुनते ही नहीं थे। बल्कि किसी का टूट रहा होता तो जोड़ देते थे, वेल्डिंग कर देते थे लेकिन ज्ञान नहीं था न, इसलिए ऐसे वेल्डिंग करने से हमें तकलीफ बहुत पड़ी।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि 'ज्ञान' नहीं था तब 'वेल्डिंग' करने से बहुत तकलीफ पड़ी, वह किस तरह?

दादाश्री : बहुत ही अड़चन आई थी। मेरा स्वभाव पहले से ही, बचपन से ही कैसा? वेल्डिंग करने का। किसी जगह पर विवाद खड़ा हो गया तो वेल्डिंग कर देते थे हम। वेल्डिंग तो बहुत ही उच्च गुण है। इसके लिए तो कोई आपत्ति ही नहीं उठाएगा न!

वेल्डिंग करने से हमें बहुत तकलीफ़ें पड़ी थीं। फिर भी, वे तकलीफ़ें उठाकर भी वेल्डिंग करते रहे थे।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा हो सकता है कि आप दो लोगों के बीच में मेल-मिलाप करवाने जाओ और एक को अच्छा न लगे?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। वेल्डिंग तो हम इस तरह से करते थे कि उस समय दोनों को अच्छा लगे और दोनों को अच्छा नहीं लगे तो वेल्डिंग हो भी नहीं सकती। वेल्डिंग करना, वह तो एक प्रकार की सिद्धि होती है इंसान के पास। वेल्डिंग तो, दोनों के छोर मिलाकर तुरंत वेल्डिंग कर देते थे लेकिन फिर बाद में उस वेल्डिंग से मुझे बहुत नुकसान हुआ था। हर बार नुकसान, नुकसान और नुकसान!

प्रश्नकर्ता : वह किस तरह? उसका उदाहरण दीजिए न!

दादाश्री : कोई दो भाई यदि चार-पाँच बार लड़ चुके हों, आमने-सामने बहुत घर्षण हो जाता था, तो फिर मैं क्या करता था? दोनों में वेल्डिंग करवा देता था। अब मेरी कीमत फ्रेन्ड के रूप में कब तक अधिक रहती? जब तक वे लड़ रहे होते, तब तक दोनों के आगे अधिक कीमत रहती थी। जब वेल्डिंग कर देता तो, कई जगह पर तो मेरे पैसे भी डूबे हैं। यदि वेल्डिंग नहीं किया होता तो मेरे दिए हुए पैसे हाथ में वापस आ जाते। अब, वेल्डिंग किया, एक ही होकर! लेकिन वे तो एक हो गए, मैं अलग। लेकिन कुदरत तो वह देखती है न! वह हिसाब मैंने चलने दिया। वर्ना मुझे ऐसे कड़वे अनुभव हो चुके हैं, लेकिन हमने तो कुदरत पर छोड़ दिया था न! वेल्डिंग करने से मेरे रुपये भी डूबे हैं। यदि वेल्डिंग नहीं किया होता तो रुपये वापस मिल जाते। तब उनकी पत्नी कहती, 'इनके रुपये क्यों नहीं दे देते?' यहाँ तो उसकी पत्नी ने भी कुछ नहीं कहा।

यह एक उदाहरण आपको समझ में आया? इसी पर से दूसरे उदाहरण सोच सकते हैं?

वेल्डिंग करवाने वाले को...

और लोग क्या करते हैं? एक बार मार खाए तो वेल्डिंग करना छोड़ देते हैं, दरार ही डालते रहते हैं। ताकि उनका रौब तो रहे ठेठ तक!

ऐसे लोग बहुत होते हैं जो कि दरार नहीं डालते लेकिन डली हुई दरार को जोड़ते नहीं हैं, और वह भी खुद अपने रौब के लिए। वर्ना, ऐसे भी लोग होते हैं जो खुद दरार डाल दें, लेकिन ऐसे लोग कम होते हैं। दरार पड़ जाए तो उसमें से खुद का लाभ उठाते हैं, इसलिए फिर वे उस दरार को जोड़ते नहीं हैं और मेरे जैसी भूल शायद ही कोई करता होगा! मैंने तो ऐसा सब जगह पर किया हुआ है। एक जगह पर नहीं, सभी जगह पर मिलाप करवा दिया क्योंकि मेरा काम ही जोड़ने का था, तोड़ने का नहीं न!

प्रश्नकर्ता : यह वेल्डिंग तो दादा, बहुत बड़ा विज्ञान है!

दादाश्री : हाँ, विज्ञान बहुत बड़ा है, लेकिन जगत् को माफिक

नहीं आता न! जगत् तो, दो लोग एक हो गए तो भाई कहेगा, 'ये ऐसे हैं।' तब वह भी कहने लगता है, 'हाँ, ऐसे हैं।'

मेरी बात समझ में आनी चाहिए न?!

हमारे परिवार में भी ऐसा हुआ था। वेल्डिंग करते थे तो मार पड़ती थी, और वेल्डिंग नहीं करते थे तो 'आइए चाचा, आइए चाचा' करते थे लेकिन उस मार से सभी ने वैराग दिया न?! फिर अंत में इसके सार के रूप में हमें क्या मिला? वैराग आ गया। वर्ना वैराग आएगा ही नहीं न! इस जगत् के प्रति वैराग कैसे आ सकता है?! आपको आता है थोड़ा बहुत वैराग? और ऐसे वेल्डिंग करने में तो हमेशा मार ही खानी पड़ेगी। यदि वेल्डिंग करोगे तो! वेल्डिंग करने वाला तो मार ही खाता है, इस दुनिया में। उसके बाद फिर वैराग आता है कि इन दोनों के सुख के लिए वेल्डिंग की न, फिर भी हमें ही मार पड़ी?! तो इतनी अधिक हमने मार खाई है, कि बेहद मार खाई है।

'भाव' में कमी मत रखना

प्रश्नकर्ता : शुरुआत में मेरी प्रकृति में वेल्डिंग करने का गुण था। फिर मार पड़ी तो वेल्डिंग करना बंद हो गया।

दादाश्री : बंद ही हो जाएगा न! पूरी दुनिया को ऐसा ही है। खानदानी के घर पर पले-बढ़े व्यक्ति को वेल्डिंग करने का मूल भाव उत्पन्न होता है। फिर जब मार खाता है तो छूट जाता है। वह तो सहन नहीं कर सकता न! मार पड़ेगी उसमें तो। देखना मार खाने की शक्ति हो, तभी इसमें पड़ना।

प्रश्नकर्ता : यों भी कहाँ पर मार नहीं पड़ती। आत्मा का बिगाड़कर मार सहन करनी, इसके बजाय आत्मा का ही नहीं सुधार लें?

दादाश्री : क्योंकि आत्मा तो अंदर समझ ही जाता है कि 'यह मुझे गधा कह रहा है और ऐसा-वैसा कह रहा है।' उसके फल भी मिलते हैं और अगर कोई वेल्डिंग करता है तो आत्मा उसे भी

समझ जाता है। वे आत्मपक्षी हो जाते हैं और *पुद्गल* को मार पड़ती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इस तरह से वैराग बढ़े तो हर्ज नहीं है।

दादाश्री : वैराग तो बहुत बढ़ जाता है लेकिन यदि उस व्यक्ति के प्रति मन में अभाव हो जाए तो क्या होगा? अपने मन में यदि अहंकार जागे कि 'देखो मैं इनका अच्छा करने गया और ये लोग ऐसे!' यहाँ पर तब उस व्यक्ति के प्रति अभाव उत्पन्न हो जाए, तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : वह दूसरा गड्ढा। इस गड्ढे के बदले दूसरी खाई।

दादाश्री : फिर वापस दूसरी खाई खड़ी करता है। वह सब हमने नहीं किया था। हमारा अहंकार तो बहुत अधिक था, लेकिन ऐसा नहीं किया था। तकलीफ उठाकर भी ऐसा नहीं किया था।

पहले से ही सूझ वेल्डिंग की

प्रश्नकर्ता : अहंकार भी नहीं जागे और वेल्डिंग भी हो जाए, मार पड़े तब भी खुद को कोई परेशानी नहीं हो, ऐसा आपने किस तरह रखा था?

दादाश्री : वह अहंकार ही वैसा होगा, एक प्रकार का!

प्रश्नकर्ता : हम किस तरह से ऐसा रखें? अब हमारे पास तो यह ज्ञान है।

दादाश्री : आप ऐसा तय करो कि 'मार खानी है,' उसके बाद रहेगा। वर्ना फिर भी मारते तो हैं ही न! जगत् में कौन मार खाए बगैर रहा है? इसके बजाय यह सीधी मार ही खाओ न!

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है लेकिन इसमें तो मार भी पड़ती है और खुद का भी बिगड़ता है।

दादाश्री : नहीं, अब यह तो अंदर जलन बंद हो जाती है, और मार खानी है वर्ना जगत् के लोगों को तो जलन व मार, सबकुछ साथ में। मार तो, जब तक देह है तब तक पड़ती ही रहेगी। हालांकि मुझे तो

'ज्ञानी' होने के बाद मार नहीं पड़ी। हमें तो 'ज्ञान' होने के बाद, 'यह किसके कर्म का उदय है और किस तरह से आया, इसमें अपना कुछ हिस्सा होगा तभी मारेगा न!' सबकुछ दिखाई देता है न! फिर भी अब मुझे ऐसा कुछ नहीं आता है। अतः मैंने तो पहले मार खा ली है। ऐसे लोग कितने होते हैं? दुनिया में वे गिनती के ही होंगे न? बेटे और बाप में झगड़ा होने पर, उसकी भी वेल्डिंग कर दी जाए तब उन दोनों के एक हो जाने के बाद फिर वहाँ अपना हिसाब नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : इसमें ऐसा हो सकता है कि हम वेल्डिंग करने जाएँ और वे दोनों उस बात से सहमत नहीं हों और बल्कि हम पर ही इल्ज़ाम लगाते हैं कि 'आप ही ऐसे हो, उसका झूठा पक्ष लेते हो और ऐसा करते हो!'

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। मेरे पास ऐसा कहने जैसा था ही नहीं न! मैं तो, अज्ञान दशा थी तब भी किसी को छेड़ने जैसा रखता ही नहीं था। अरे, इतना भी नहीं रखता था न कि मुझ पर कोई उँगली उठा सके इसलिए ऐसा नहीं होता था। वे तो दोनों उपकार भाव में आ जाते थे उस समय। फिर चाय-नाश्ता वगैरह सभी करवाते। उसके बाद जब वे दोनों वास्तव में एक हो जाते थे, तब उसके बाद परेशानी होती थी।

वेल्डिंग, एक कला

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर हमें वेल्डिंग करना नहीं आए तो उल्टा भी हो सकता है।

दादाश्री : आपमें वह योग्यता नहीं है। मेरे साथ ऐसा नहीं हुआ था। योग्यता यदि कुछ कच्ची हो तभी ऐसा होता है। हमारे साथ ऐसा नहीं होता है। सभी एक्सेप्ट ही करते हैं। मैं कहूँ कि ऐसा है, तो सभी वह एक्सेप्ट कर लेते हैं। आपका तो अभी कच्ची दशा में है।

कितनी ही बार खुद में ऐसे कच्चे गुण होते हैं और सामने वाले को शांत करने जाएँ, सामने वाले का टूटा हुआ जोड़ने जाएँ, तब फिर वह खुद ही उसके साथ टूट जाता है, ये सारी कच्ची दशाएँ। मैं तो टूटूँ ही नहीं। कभी टूटा ही नहीं किसी से। कमी होगी तब तक सामने वाले

पर असर ही नहीं होगा न! सामने वाला व्यक्ति तोड़कर मज़बूत करे, वह बात अलग है, लेकिन मैं नहीं तोड़ूँ। मैं बीड़ी नहीं पीता हूँ और सामने वाले से कहूँ कि 'अरे, बीड़ी नहीं पीनी चाहिए' तो फिर वह एक्सेप्ट कर लेगा। ऐसी शक्ति होनी चाहिए न! किसी से आपकी दोस्ती टूट जाती है और आप लोगों का जोड़ने निकलो, तो आपके अंदर शक्ति ही काम नहीं करेगी न!

प्रश्नकर्ता : कभी अगर वेल्डिंग करना नहीं आए तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : योग्यता नहीं हो और फिर हम करने जाएँ तो वह काम का नहीं है न! हो सके उतना करना और नहीं हो पाए तो छोड़ देना। मन में भाव रखना कि यह वेल्डिंग हो जाए तो अच्छा। यों सही तरीके से वेल्डिंग नहीं हो पाए तो भाव रखना चाहिए, लेकिन भाव तो टूटने ही नहीं देना चाहिए। ऐसा तो होना ही नहीं चाहिए न कि 'ये लोग जुदा हो जाएँ तो अच्छा है!' वे साथ में हैं, वे ही दुःख में हैं न! उनके भी मन में तो ऐसा है कि 'यह कहाँ झंझट में फँसे!' और उन्हें वापस हम जुदा करने जाएँ! वह नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा उस समय समता नहीं रहती। उस समय ऐसा हो जाता है कि 'यह ऐसा कर रहा है?!'

दादाश्री : वह सारी कमी है ! वह कमी है न! वह ऐसा ही करेगा, समय आने पर। साँप को दूध पिलाकर बड़ा करें, पाले-पोसें, फिर उसे एकाध लगाकर देखो! 'मैंने इतने दिनों तक दूध पिलाया है, एक लगा दूँ ।' तो क्या करेगा वह?!

प्रश्नकर्ता : अब, जिसके लिए वेल्डिंग करें, वह यदि विरोधी बन जाए तो ऐसा लगता है कि 'ऐसा क्यों कर रहा है?' तो उसे अहंकार से ही वेल्डिंग किया हुआ कहा जाएगा न?

दादाश्री : हाँ, अहंकार से ही हुआ है। उसमें से मिठास लेने के लिए।

प्रश्नकर्ता : भाव में रहता है कि वेल्डिंग करना है, लेकिन कर नहीं पाते। पहले मिठास लगती है, लेकिन फिर सहन नहीं होता इसलिए छोड़ देते हैं।

दादाश्री : वह तो फिर भाव रखना है। फिर वेल्डिंग हो सके तो ठीक है, वर्ना भाव रखना और जो कुछ भी हुआ उसमें 'उनका था और उन्हें हुआ' हमें ऐसा रहना चाहिए।

वेल्डिंग से सर्वत्र आनंद

यानी 'ये सब किस तरह से एक हो जाएँ? गुत्थियाँ किस तरह से सुलझें?' ऐसी सब बहुत सारी चीज़ें जानता हो तो, उसे वेल्डिंग करने वाला कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : आपकी जो वेल्डिंग है, वह सूक्ष्म लेवल की होती है। लोगों की स्थूल में होती है।

दादाश्री : हाँ, ऐसे स्थूल वाले भी बहुत होते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपका यह गुण मुझे बहुत पसंद आया। आप किस प्रकार से सभी को समझाकर वेल्डिंग करते हैं और अंत में सभी आनंद में आ जाते हैं, ऐसा कर देते हैं।

दादाश्री : और सभी आनंद में आ जाते हैं तो उसका फिर मुझे आनंद-आनंद रहता है। कभी किसी का मुँह चढ़ा हुआ हो तो मैं उससे पहले पूछता हूँ कि, 'क्या है? ऐसा है, वैसा है? किस दुःख के कारण मुँह चढ़ा रहा है? मरना तो है ही, तो जीते जी क्यों आनंद में न रहें?! अगर मरना ही है, तो उस दिन देख लेंगे लेकिन अभी तो आनंद में रहना है।'

ये तो साल-दो साल दुःख में नहीं होते और बाद में फिर वापस दुःख ही दुःख में। यह शरीर ही ऐसा है *पुद्गल* का कि दुःख रहता ही है। सिर में दर्द हो तब देह का दुःख नहीं होता? तब यदि देह का दुःख होता है तो पति का नहीं होगा?! लेकिन फिर भी वेल्डिंग हो जाने के बाद दोनों एक हो जाते हैं, तब असली मज़ा आता है!

ज्ञानी की मौलिक बातें

प्रश्नकर्ता : 'वेल्डिंग' शब्द तो, दादा की मौलिक बात है!

दादाश्री : 'वेल्डिंग' शब्द ही 'दादा' का है! कोई कहे कि ''मैंने दो लोगों की 'वेल्डिंग' करवा दी'' तो वह दादा का ही शब्द है, यह बात पक्की हो जाती है। यह 'वेल्डिंग' चीज़ ही मौलिक हैं। अभी तो कई लोग यह 'वेल्डिंग' शब्द सीख गए हैं।

प्रश्नकर्ता : यही कितना बड़ा विज्ञान है!

दादाश्री : ऐसे तो बहुत सारे विज्ञान हैं मेरे पास!

प्रश्नकर्ता : तो कुछ निकालिए न!

दादाश्री : वह तो संयोग होंगे तो निकलेगा न!

तोड़ते सभी हैं, जोड़ता है विरला ही

आप क्या ऐसा नहीं जानते थे कि ये 'दादा' जोड़े हुए को तोड़ते नहीं हैं?

प्रश्नकर्ता : वह जानता हूँ, और टूटे हुए को जोड़ते हैं, वह भी मालूम है।

दादाश्री : लोग तो दरार डालने आते हैं। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कितनी आपत्तियाँ उठाते हैं। अप्रत्यक्ष को तो हम 'लेट गो' कर देते हैं लेकिन प्रत्यक्ष वाले को तो हमने मुँह पर ही सुना दिया था। हमने किसी का भी नहीं चलने दिया। फिर भी, अगर अपना गुनाह होगा तभी चलेगा न! और इसके बावजूद भी यदि सामने वाले का चल जाए, तो हम समझ जाते हैं कि पिछला गुनाह होगा, वह सुलझकर निकल गया।

हम सब जहाँ-तहाँ से सुलझाने ही बैठे हैं न?! मैं तो ज़िंदगी भर सुलझाने के लिए ही बैठा हूँ। जो कुछ भी होता है, उसे सुलझाने ही बैठा हूँ!

[४]

ममता : लालच

कीचड़ से दूर ही अच्छे

इस संसाररूपी घर में तो सभी मेहमान की तरह आए हुए हैं। जितने दिन रहे उतने दिन मेहमान, फिर चले जाएँगे। जाते हुए नहीं दिखते? ममता वाले और बिना ममता वाले, सभी चले जाते हैं न?

इसलिए एक मिनट भी मत बिगाड़ना। पाँच-पचास सालों तक रहना है, वहाँ हम एक मिनट भी क्यों बिगाड़े? दाग़ पड़ जाएगा। कपड़ा यहीं रह जाएगा और दाग़ हमें लगेगा और वह दाग़ हमारे साथ आएगा। तो हम दाग़ क्यों पड़ने दें? अब, दाग़ कहीं सभी जगह नहीं पड़ जाते। सिर्फ जहाँ पर कीचड़ हो, वहीं पर हमें सँभलकर चलना है। धूल उड़े तो उसकी हम बहुत फिक्र नहीं रखते। धूल तो अपने आप ही झड़ जाएगी, लेकिन कीचड़ तो चिपक जाता है। धूल तो, यों कपड़ों को झाड़ने से उड़ जाएगी लेकिन कीचड़ तो नहीं जाएगा और दाग़ पड़ जाएगा। इसलिए जहाँ पर भी कीचड़ जैसा है, वहाँ से दूर रहना है।

निरपेक्ष जीवन देखे ज्ञानी के

संपूर्ण शुद्धता इस दुनिया में शायद ही कभी होती है, क्योंकि सभी अज्ञानियों के जीवन तो सापेक्ष होते हैं और क्रमिक मार्ग के सभी ज्ञानियों के जीवन भी सापेक्ष होते हैं। भगवान ने सिर्फ 'हमें' ही अपवाद रखा है कि निरपेक्ष जीवन! हाँ, किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं, ऐसा जीवन! वहाँ पर संपूर्ण शुद्धता होती है। किसी भी प्रकार का दाग़ नहीं होता वहाँ पर।

ममता नाम मात्र को भी नहीं

जगत् के लोग अपेक्षा रहित हैं ही नहीं, कुछ न कुछ अपेक्षा रहती है जबकि ये ज्ञानीपुरुष तो निरपेक्ष हैं! यानी किसी भी प्रकार का ममत्व नहीं है उनमें कि 'देह मेरी है, मन मेरा है, चित्त मेरा है, यह मेरा है, या वह मेरा है।' ऐसा किसी भी प्रकार का ममत्व नहीं, उसी वजह से यह ग़ज़ब का विज्ञान है।

हम सूरत गए थे। वहाँ सूरत के एक त्यागी पुरुष थे, बहुत ज़बरदस्त त्यागी इंसान, बहुत तपस्वी इंसान। आसपास के बहुत से लोग उनके दर्शन करते थे, ऐसे थे वे व्यक्ति। वहाँ उन्होंने सब से कहा कि, "देखो, देखो, ये 'दादा' कौन है? ममत्व रहित पुरुष कोई देखा हो तो सिर्फ इन्हीं को देखा है। लगभग दो सौ लोगों से मैं मिला हूँ, बड़े-बड़े लोगों से, संतों से, लेकिन मैंने ऐसा एक भी संत नहीं देखा जो बिल्कुल ममता रहित हो। थोड़ी बहुत ममता हो ऐसे मिले हैं सभी। जबकि सिर्फ यही एक पुरुष, सिर्फ ये 'दादा' ही एक ऐसे देखे हैं जो ममता रहित हैं। मेरी ज़िंदगी में एक ही ममता रहित पुरुष देखे हैं।" मैं भी समझ गया कि ये धन्य हैं, इन्हें इतनी परीक्षा करना आया क्योंकि मैं अपने आपको जानता हूँ कि ममत्व तो है ही नहीं। बचपन से ही ममत्व नहीं! यानी कि ममता रहित पुरुष दुनिया में होते ही नहीं। ममता रहित पुरुष यानी अहंकार रहित पुरुष। जहाँ ममता नहीं होती वहाँ अहंकार तो ढूँढने को रहा ही नहीं।

अत: 'ज्ञानीपुरुष' तो कैसे होते हैं? ममता रहित होते हैं, अहंकार और ममता रहित होते हैं! जिस तरह कुदरत रखे, वे उसी तरह रहते हैं। उनमें *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण, मेरापन) नहीं होता।

संपूर्ण निर्ममत्व वहाँ परमात्मपन

जहाँ खुद का स्वार्थ है, जहाँ पर कुछ न कुछ ममता है, वहाँ कुछ भी कल्याण नहीं हो पाता। थोड़ी सी भी ममता हो वहाँ कल्याण नहीं हो पाता और जहाँ ममता नहीं हो, वहाँ भगवान प्रकट हो जाते हैं। ममता के कारण ही अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा होता है कि ममता के कारण अहंकार होता है और अहंकार के कारण राग होता है?

दादाश्री : नहीं। ममता की वजह से ही यह सब है। 'आइ' (I) किस वजह से रहता है? 'माइ' (My) की वजह से। वर्ना 'आइ' तो परमात्मा है। 'माइ' अर्थात् ममता। 'आइ' और 'माइ' इनका सेपरेशन हो जाए तो बचा क्या? 'आइ।' और वही परमात्मा है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा निर्ममत्व सभी में आ जाए तो सभी ज्ञानी बन जाएँगे न?

दादाश्री : हाँ। निर्ममत्व हो जाए तो वह ज्ञानी ही हुआ न, फिर! क्योंकि जितने भी तीर्थंकर हो चुके हैं वे सभी निर्ममत्व! वहाँ ममत्व खड़ा नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : यह जो ममत्व होता है, वह किस वजह से होता है?

दादाश्री : लालच की वजह से, किसी न किसी लालच के कारण।

प्रश्नकर्ता : पिछले जन्म में जो कुछ किया होता है, उसके कारण ऐसा सब होता है क्या?

दादाश्री : वह तो आप इस 'ज्ञान' में आने के बाद समझे हो कि यह पिछले जन्म का किया हुआ हैं। संसार के लोगों को तो यह समझ में ही नहीं आता न! वह लालच है उनका। स्पष्ट, खुला लालच दिखाई देता है और जहाँ लालच हो वहाँ पर ममता रहती ही है, अवश्य। हमें लालच पहले से ही नहीं था, मान बहुत था।

प्रश्नकर्ता : तो यह जो अहंकार खड़ा है, वह लालच और ममता के कारण ही खड़ा है?

दादाश्री : 'माइ' के कारण 'आइ' खड़ा है। नहीं तो 'आइ' 'क्लियर' हो जाए तो परमात्मा ही है। 'आइ' जब तक 'माइ' के साथ है तब तक अहंकार है। जिसका 'माइ' गया, उसका अहंकार गया, वह परमात्मा हो गया! दीये जैसी बात है।

वही लक्षण ममता के

ममता तो उसे कहते हैं कि जिसमें जी उलझ जाए। जैसे हम कहे कि 'यह मेरा' तो उसके अंदर जी उलझ जाता है वापस और वह चीज़ टूट जाए तो क्या करता है? अपने ये प्याले फूट जाएँ तो परेशानी! अरे, कई तो इतने छोटे-छोटे बच्चे आते हैं तब मैं उन्हें चाय पीकर रखा हुआ कप दिखाकर कहता हूँ, 'बेटा, ये चाय का प्याला डाल दे बाहर।' तब बच्चा क्या कहता है? कि 'इसे डालते होंगे?' ऐसा करके बच्चा कंधे उचकाता है। इससे ममता समझ में नहीं आती? तो फिर वह कंधे क्यों उचकाता है? फिर यदि मैं बच्चे से कहूँ कि, 'दादाजी के बूट फेंक दे।' तब वह कहता है, 'नहीं फेंक सकते।' देखो, ये समझदार! बहुत पक्के हैं। यह सब तो अहंकार के कारण उल्टा हो गया है। हम् हम् हम् हम्!

प्रश्नकर्ता : यह अहंकार ज्ञान द्वारा मिट सकता होगा न?

दादाश्री : अहंकार अर्थात् अज्ञानता! अहंकार का अर्थ ही अज्ञानता! और ज्ञान अर्थात् निर्‌अहंकारिता। अत: ज्ञान से किसी का अहंकार नहीं मिट सके, ऐसा नहीं है। ज्ञान ही निर्‌अहंकारिता और अज्ञान अर्थात् अहंकार, ये दो ही स्टेशन हैं!

ममता का विस्तार

वर्ना जगत् तो ममता के पौधे को ही पानी पिलाता रहता है। पूरा जगत् क्या करता है? ममता के पौधे को बड़ा करता है कि 'यह हमारा, यह हमारा, यह हमारा,' तब उसे पूछे कि, 'कौन सा तेरा नहीं है?' तब कहेगा, 'यह हमारा नहीं है, यह हमारे भाई का है।' फिर कुछ सालों बाद फिर कहता है, 'भाई ने हमारा दबा लिया है।' अरे, कितना दबाया है? तब कहेगा, 'इतनी, डेढ़ हाथ जितनी ज़मीन दबा ली है।' तब वह फिर कोर्ट में जाता है। वकील से कहें कि, 'साहब, इतना सारा दबा लिया।' वह वापस 'अंतिम स्टेशन' तक चला जाता है। और फिर बेटा भी लड़ता है और बेटा भी कहता है कि 'इतना दबा लिया है!'

अब इन्हें अक्ल वालें कहें या अक्ल के बोरे कहें? बेचें तो कितने पैसे आएँगे? चार आने भी नहीं आएँगे। है न?

और ममता तो इस हद तक कि 'हिन्दुस्तान देश हमारा है' कहेगा। फिर गुजरात में क्या कहेगा? 'गुजरात हमारा।' वहीं पर यदि कोई गुजरात में है और वे सब बातें करते हैं कि 'सौराष्ट्र तो आपका, लेकिन हमारा चरोतर बहुत अच्छा।' ऐसे पूरे चरोतर के मालिक बन बैठते हैं! फिर चरोतर में आणंद वाले कहते हैं कि 'हम ऐसे।' जबकि भादरण वाले कहते हैं, 'हमारे भादरण वाले ऐसे।' तब वहाँ पर पूरे गाँव का मालिक बन बैठता है। फिर गाँव में दो मोहल्ले वाले लड़ रहे हों तब कहता है, 'आपका मोहल्ला ऐसा और हमारा मोहल्ला ऐसा।' फिर एक ही मोहल्लेवालों में झगड़ा हो तब कहते हैं, 'तुम्हारा खानदान ऐसा और हमारा खानदान ऐसा।' खानदानवालों में झगड़ा हो तब कहते हैं कि, 'आपका घर ऐसा और हमारा घर ऐसा।' कहाँ तक? तो आखिर में दो भाईयों के बीच में अनबन हो, तब कहते हैं, 'तुझसे तो मैं कुछ अलग हूँ।' तो अंत तक यही का यही। फिर उसे संभालने के लिए अंतिम सीमा तक चला जाता है। पूरे गुजरात, पूरे हिन्दुस्तान को संभालने जाता है। पूरे हिन्दुस्तान में अपना सामान फैलाया है, उसका अर्थ ही क्या है फिर? यह तो, खुद का तो कल्याण किया नहीं और ऐसे सब जगह अपने बिछौने बिछाता रहता है।

अब यह दृष्टिभेद कौन करवाता है? बुद्धि! और वह इतनी हद तक दृष्टिभेद करवाती है कि इन सब से हमारा कोई लेना-देना नहीं है। 'यह हमारा, यह हमारा घर, हमारा है यह सबकुछ। दूसरे किसी से हमारा लेना-देना नहीं है।' इतना अधिक दृष्टिभेद करवाती है। हम कहें, 'आपका घर, तो अब तो आपके घर में जुदाई नहीं है न?' तब वह कहता है, 'नहीं, हमारे घर में जुदाई नहीं है।' लेकिन जब दो लोग आपस में लड़ते हैं न, तब क्या करते हैं? घर में वापस दो लोग आपस में लड़ते हैं या नहीं लड़ते कभी?

प्रश्नकर्ता : हाँ, लड़ते ही है न!

दादाश्री : तब क्या करते हैं फिर? 'आप ऐसे।' और पति कहेगा, 'तू ऐसी।' ऐसा करते हैं या नहीं करते? इस तरह भेद पड़ते-पड़ते कहाँ तक आकर रुकता है? कहाँ तक पहुँचती है उसकी जड़? खुद अपने आप पर कि 'अब मैं ही हूँ। बाकी दूसरा कोई मेरा अपना नहीं है।' इस तरह यह भेददृष्टि 'मेरा-तेरा, मेरा-तेरा' करवाती है। यही की यही हाय-तौबा, हाय-तौबा, हाय-तौबा।

ममता बाउन्ड्रीसहित

एक भाई कहते हैं, 'मेरी ममता नहीं जाती।' तब मैंने कहा कि, 'कैसे जाएगी लेकिन? यह आपके मकान की बाउन्ड्री है, तो इतना ही आपका है ऐसा जानते हो न? या आप ऐसा कहते हो कि इससे आगे भी कुछ है? इतनी ही बाउन्ड्री है, इस तरह बाउन्ड्री बताते हो या नहीं बताते आप? तो ममता की बाउन्ड्री बताओगे? ममता की बाउन्ड्री कितनी है? घर की बाउन्ड्री तो दूसरा भी बता सकता है कि यह आपका ही है। यों ममता दिखानी पड़ेगी न?

इस संसार के लोगों ने तो ममता की बाउन्ड्री नहीं देखी है। हर एक चीज़ बाउन्ड्री से ही शोभित होती है। यह आपका मकान है, उससे बाहर आपकी दृष्टि जाती है क्या कि यह पास वाला मकान भी हमारा ही है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : उसकी बाउन्ड्री है न? ऐसा नहीं कहते न, कि यह सभी कुछ मेरा है? यानी मैं क्या कह रहा हूँ कि ममता भले ही रहे, लेकिन वह बाउन्ड्रीपूर्वक होनी चाहिए। लेकिन 'बाउन्ड्री कितनी होनी चाहिए?' जिस पर ममता की हो वह चीज़ अपने साथ आए, वह ममता की बाउन्ड्री! तो ममता की बाउन्ड्री यानी क्या कि आप जीवित हो तब तक वह आपका ही रहे, उसके बाद आपका नहीं रहे। इस उँगली की ममता रखने को कहा है भगवान ने कि 'यह उँगली मेरी है' कहना। लेकिन इस अँगूठी की ममता रखने को मना किया है। क्योंकि यह अँगूठी

तो यहीं रह जाएगी और हमारे चले जाने के बाद भी वह यहीं पर रहती है। फिर तो पीछे वाले लोग अँगूठी निकाल लेते हैं या नहीं निकाल लेते? और अँगूठी नहीं निकले न, तो उँगली काटकर भी निकाल लेते हैं। इसलिए वहाँ पर ममता नहीं करनी है।

यानी हमारे जाने के बाद जिसका अस्तित्व नहीं रहे, उतनी ममता अपनी। उसके आगे की ममता खत्म हो जानी चाहिए। यानी मेरा क्या कहना है कि कौन सी ममता खत्म हो जानी चाहिए? कि खुद का इकलौता बेटा हो उस पर से भी ममता चली जाए, और इस तरह सभी जगह पर से ममता चली जानी चाहिए। यह गप्प नहीं है। लोगों की परीक्षा में तो गप्प गुणा गप्प करके जवाब लाए तब भी पास हो जाते हैं। लेकिन 'ज्ञानी' की परीक्षा में पास नहीं होंगे। वहाँ गप्प नहीं चलेगी। वहाँ तो एक्ज़ेक्टनेस चाहिए।

फैलाई हुई ममता

कोई इन्श्योरेन्स वाला देख रहा हो कि यह स्टीमर डूब रहा है, वह खुद ऐसे देखता ज़रूर है, लेकिन उस पर असर क्या होता है? और यदि स्टीमर डूब जाए तो इन्श्योरेन्स वाले को पैसे तो देने पड़ेंगे न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, पैसे तो देने पड़ेंगे।

दादाश्री : लेकिन उस पर कोई असर होता है क्या?

प्रश्नकर्ता : उस पर असर नहीं होता।

दादाश्री : ऐसा क्यों? यदि कंपनी की चीज़ें खो जाएँ तो किसे दुःख होता है? सभी 'हमारा, हमारा' कहते हैं, लेकिन है कोई ममता किसी प्रकार की?

यों दो तरह की ममता होनी चाहिए। शरीर पर पूरी ममता होनी चाहिए और बाहर की ममता, जो फैलाई हुई ममता है, वह ऐसी होनी चाहिए।

'यह घर हमारा, यह घड़ी हमारी, यह अँगूठी हमारी' कहते हैं,

वह सारी फैलाई हुई ममता है लेकिन 'जाते समय' तो ये लोग कान काट लेते हैं और ज़ेवर निकाल लेते हैं।

अत: ममता की बाउन्ड्री होनी चाहिए। हर एक चीज़ की बाउन्ड्री होनी चाहिए न? ममता की बाउन्ड्री नहीं होनी चाहिए?

प्रश्नकर्ता : अत: फैलाई हुई ममता वाली चीज़ों पर राग-द्वेष नहीं रखना, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : इन इन्श्योरेन्सवालों पर जैसे कोई असर नहीं होता, उस तरह से रहना चाहिए।

रखो ममता लेकिन...

ममता रखने पर जो चीज़ अपने साथ आए, उतनी ही ममता करनी चाहिए या फिर ऐसी कोई चीज़ है कि जिसका हमारे जाने के बाद अस्तित्व नहीं रहता? 'यह पैर मेरा, हाथ मेरा, नाक मेरा, कान मेरा, आँख मेरी, यह उँगली मेरी, दांत मेरे, बत्तीसों दांत मेरे।'- अरे, इस शरीर में तो बहुत चीज़ें हैं लेकिन अगर इतनी ही ममता रखे, तब भी बहुत हो गया। फिर कोई दखल ही नहीं रहेगी न! ममता को बाहर फैलाने की ज़रूरत नहीं है। फैली हुई ममता तो भूल से हो गई हैं इन लोगों से। यह नासमझी से खड़ा हुआ है। वर्ना बाहर ममता का विस्तार करना ही नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ ऐसा हुआ कि इस शरीर तक की ही ममता रखनी चाहिए?

दादाश्री : इस शरीर तक की ही, और वह ममता पूरी तरह से रखनी चाहिए। उसे खिलाना, पिलाना, इस ममता में बहुत सुख है लेकिन इस सुख को नहीं भोगते और 'यह घर मेरा, यह प्लॉट मेरा, यह फलाना मेरा, यह मेरी वाइफ!' अरे, कोई भी तेरा नहीं होगा। जिसे हम 'मेरा' कहते हैं वह अपने हाथ में नहीं आता। 'हम' परमानेन्ट हैं। विनाशी चीज़ों के साथ आपका मेल ही नहीं खाएगा न? इसका गुणाकार ही नहीं हो सकता।

आखिर में तो यह शरीर भी अपना नहीं रहेगा, तो पत्नी कब अपनी बनेगी? पत्नी अपनी बनती है क्या? आज इस पत्नी पर ममता करते रहें और परसों पत्नी ने डाइवोर्स ले लिया तो? और इस शरीर में तो कोई झंझट ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन इस शरीर पर अधिक ममता रखने जैसा क्या है?

दादाश्री : तो बाहर भी ममता रखने जैसा क्या है? यानी कि कुछ भी आपका नहीं है। जो आपका है, वह आपके साथ आएगा। नियम ऐसा है कि जो आपकी चीज़ है वह आपके साथ आती ही है, नियम से आती ही है। जो आपकी नहीं है, वे चीज़ें आपके साथ नहीं आने वाली। तो जो आपकी नहीं हैं, उन पर ममता रखने का क्या अर्थ है? वह मीनिंगलेस है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन शरीर पर तो कितनी ममता रहती है?

दादाश्री : शरीर में तो बहुत चीज़ें हैं। ये तो बत्तीस दांत हैं। यह जीभ और सबकुछ देखो न, ऐसे पूरा दिन काम करती रहती है, लेकिन देखो थोड़ी सी भी कुचली जाती है कभी? अतः ममता को इस देह जितना बढ़ाएँ न, तो बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : इतनी ममता रहने से क्या फायदा?

दादाश्री : इस देह की ममता रखते हो न, तो इस देह का एडजस्टमेन्ट होता है, हर एक चीज़ की व्यवस्था होती है, उसके नियम होते हैं, कि आँख को क्या-क्या चाहिए, वह सब उसे मिल जाता है। कान को क्या चाहिए, पेट को क्या चाहिए, शरीर के हर एक अंग को उसकी ज़रूरत की चीज़ें मिल जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ शरीर पर ममता आ गई तो?

दादाश्री : शरीर पर सारी ममता आ गई तो चैन से चार बिस्तर बिछाकर सो जाना है लेकिन ये तो चैन से सोते भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन लोगों की ममता तो बहुत विस्तृत होती है न?

दादाश्री : विस्तार करते हैं लेकिन किसी को क्या फर्क पड़ता है? हर एक की इच्छा तो होती ही है न? यह किसान है, तो हर एक किसान को कितनी ज़मीन रखने की इच्छा होती होगी? और ज़मीन तो सीमित ही है न? और ज़मीन के लिए लोगों की इच्छा असीमित हैं। वह कहेगा 'मुझे पाँच सौ बीघा चाहिए।' दूसरा कहेगा 'मुझे सौ बीघा चाहिए।' तीसरा कहेगा 'मुझे सौ बीघा चाहिए।' तो इसका मेल ही कैसे पड़ेगा? ऐसा हो नहीं पाता, और मार खा-खाकर लोगों का दम निकल जाता है।

मिटाओ ममता समझ से

एक व्यक्ति का खुद का बंगला है, बहुत ही पसंद आए वैसा बंगला है। उस बंगले को बेचने की बात निकली तब वह रोने लगा। वह कहता है, 'यह बंगला बेचना मत, कुछ भी हो जाए।' इसके बावजूद पैसों की तकलीफ के कारण बंगला बेचना पड़ा और दस्तावेज हो जाने के बाद वह बंगला जल गया। तब किसी ने उस व्यक्ति से पूछा कि, 'अरे, तेरा वह बंगला जल गया?' तब वह कहता है, 'मुझे क्या लेना-देना?' 'लेकिन अरे, वह तेरा बंगला था न!' तब वह कहता है, 'लेकिन वह मैंने बेच दिया।'

अब इतना अच्छा बंगला जिसमें कि वह रहता था, लेकिन दूसरे दिन उसकी ममता क्यों खत्म हो गई?

प्रश्नकर्ता : बंगला बिक गया इसलिए?

दादाश्री : लेकिन उसकी ममता क्यों खत्म हो गई?

प्रश्नकर्ता : उसने अपनी ममता छोड़ दी इसलिए खत्म हो गई।

दादाश्री : छोड़ तो नहीं दी, लेकिन मजबूरन छोड़ देनी पड़ी न! दूसरे दिन अगर बंगले में आग लग जाए तो बल्कि वह हँसता है, कि

'चलो शांति हो गई!' यानी एक ही दिन में 'मेरापन' चला गया? और उसे बदले में क्या दिया? कागज़ दिए? अरे, 'मेरापन' कागज़ों से जाता है? हाँ, चला गया, वह देखा न! और कागज़ भी चले जाएँगे या नहीं जाएँगे? वे भी चले जाएँगे। यदि कागज़ों से 'मेरापन' चला जाता है, तो अगर उसे हम समझ से निकाल दें तो क्या बुरा? जो कागज़ों से चला जाता है उसे समझ से निकाल दें तो क्या बुरा है? और समझ से निकल सकता है या नहीं निकल सकता? फिर घर जल जाए, तब भी रोएगा नहीं न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन कोर्ट उन दस्तावेज को इनवैलिड (अमान्य) कर दे तो वापस रोने लगेगा।

दादाश्री : हाँ, तो वापस रोने लगेगा।

प्रश्नकर्ता : आज तक तो ममता खत्म नहीं हुई, ऐसा क्यों?

दादाश्री : वह तो उसका तरीका जाने बिना खत्म नहीं होती न! और अंत में वह बीस लाख से बनाया हुआ बंगला क्या कहता है? 'हे नगीनदास सेठ, या तो आप चले जाओगे या फिर मैं चला जाऊँगा।' तब नगीनदास सेठ कहते हैं, 'तू कहाँ जाएगा?' तब बंगला कहता है, 'आपका दिवालिया निकलेगा तब मुझे चले जाना पड़ेगा। वर्ना फिर भी आप तो चले ही जाओगे। मैं तो रहूँगा।' अब अगर बंगला ऐसा कहे तब शरमिंदगी होगी या नहीं होगी?

यानी ममता का विस्तार किया है इन लोगों ने, गलत विस्तार। मकान का विस्तार क्यों नहीं करते कि 'यह मेरा इतना ही है?' और इस ममता का विस्तार पूरी दुनिया पर करता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिसका ममता का विस्तार बड़ा है, उसे संसार की दृष्टि से बड़ा आदमी कहते हैं।

दादाश्री : हाँ, बड़ा आदमी कहते हैं लेकिन उसे दु:ख भी उतना ही रहता है न! यह तो सभी ने झूठी ममता का विस्तार किया है।

म्यूज़ियम की शर्तें

यह जो ममता होती है वह किस वजह से हो जाती है? सांसारिक स्वभाव से। बंधन-स्वभाव से ममता होती है और बुद्धि ने क्या कुछ कम काम किया है? बुद्धि से यह पूरा जगत् सुंदर बनाया है? लेकिन इसमें फँसने को मना किया है। तू देखना, घूमना, खाना, पीना, लेकिन फँसना मत लेकिन फिर भी लोग चिपट जाते हैं। चिपटना मत। चखकर सो जा न!

यह दुनिया क्या है? सब से बड़ा म्यूज़ियम! यह अपने यहाँ बड़ौदा का म्यूज़ियम है न, ऐसा ही एक बड़ा म्यूज़ियम हैं। उस म्यूज़ियम में टिकट लेकर अंदर जाते समय क्या शर्त होती है? कि 'आप अंदर जाओ। अंदर देखो करो, घूमो, जितने समय तक अंदर सबकुछ न देख लो तब तक घूमो। खाने की चीज़ें खाओ, पीओ। भले ही चाय पीओ। भूख लगी हो तो नाश्ता करना। भोगने की चीज़ भोगना, लेकिन कुछ लेना मत। अंत में दरवाज़े से बाहर निकलना हो तब कुछ लेकर मत निकलना, वर्ना गुनाह लागू होगा।' तब उसमें जाने के बाद फिर क्या जोड़तोड़ करनी? संग्रहालय में देखते रहना है लेकिन वापस यह धमा-चौकड़ी किसलिए? बाहर निकलते समय कुछ लेकर नहीं जाना है, ऐसे संग्रहालय के अंदर आए हो। तब वह कहता है, 'साहब, हाथ में लेंगे, तब जोड़तोड़ है न।' लेकिन नहीं, मन में भी लेकर नहीं निकलना, और वाणी में भी लेकर नहीं निकलना। कुछ लेना-करना मत। फिर भी इसे भोगने की छूट दी है, तो क्या गलत कहा है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : अब उस तरह से निकल सकते हैं या नहीं निकल सकते? लेकिन लोग तो भरते रहते हैं और कईं तो जेब में भी लेकर आ जाते हैं, लेकिन फिर वहाँ पकड़े जाते हैं। मन में तो बहुत सारे लोग बहुत कुछ ले गए हैं। 'वो वाली जो देखी थी, उसके जैसी तो नहीं है।' तब वह कहेगी, 'उनके जैसे तो मैंने देखे ही नहीं।' अरे क्या करना है उसका?

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह संग्रहालय है ही ऐसा कि सभी प्रकार का लालच करवाता है।

दादाश्री : संग्रहालय ऐसा ही होता है लेकिन साथ में कुछ भी ले नहीं जाना है, ऐसी शर्त है। तब फिर क्या है? आपके गाँव में साथ ले जाने का रिवाज़ है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो फिर किसलिए यह 'हाय, हाय' है सब? देखना-जानना! आम आए तो क्या फेंक देने हैं? हाफूस के आम आएँ तो चैन से खाओ, पंखा चलाकर। एयर कंडीशनर चलाओ हर्ज नहीं, लेकिन साथ में कुछ ले नहीं जाना है, और 'हाय, हाय' नहीं करनी है। यानी पूरा जगत् संग्रहालय है इसमें आराम से खाओ-पीओ। टेस्टफुली खाओ लेकिन इस तरह से नहीं भोगते। सिर पर तलवार लटकी हुई हो, और नीचे भोजन करना! अरे, रहने दे तेरा भोजन! जाने दे इसे! वर्ना तलवार का भय लग रहा हो तो उसे कहकर बैठ कि 'जब गिरना हो तब गिरना। यहाँ भोजन करने बैठे है।' वर्ना यों एक-एक व्यक्ति की ऐसी दशा है कि सिर पर तलवार और नीचे भोजन करना। और मुँह पर तो एरंडी का तेल ही चुपड़ा हुआ होता है। एरंडी का तेल चुपड़ा हुआ देखाई देता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यानी कि सब खाना, पीना। जो आपको अनुकूल आए वह खाना। स्त्रियों में कोई हर्ज नहीं है। विवाह मत करना और विवाह करो तो भी व्यवहार से विवाह करना। निश्चय से विवाह मत करना। यह लोग तो निश्चय से विवाह कर लेते हैं। निश्चय से विवाह नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : हाँ, करते हैं न!

दादाश्री : अब ये लोग विवाह करते हैं और आप भी विवाह करते हो लेकिन वे लोग 'मेरी, मेरी,' करते रहते हैं जबकि आप फाइल का *निकाल* करते हो। 'ज्ञान' लिया है इसलिए। लेकिन क्या 'मेरी, मेरी' कही हुई कोई भी चीज़ साथ में ले जाई जा सकती है? कोई लेकर गया है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कोई अभी तक साथ में नहीं ले गया।

दादाश्री : यदि साथ में ले जाने की शर्त नहीं है तो किसलिए यह 'हाय, हाय' करते हैं लोग? अतः अंदर से कुछ लेना मत, बहुत पसंद आए फिर भी। लोगे तो जोखिमदारी आएगी। लेकिन लोग जेब में डाल देते हैं और दूसरी तरफ से निकल जाते हैं। फिर जब वहाँ पर पकड़े जाते हैं तब जोखिमदारी आती है इसलिए कुछ लेना मत, भोगना सबकुछ लेकिन 'मेरा' है, ऐसा मत रखना। संग्रहालय में 'मेरा' कहा जाता होगा? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : सही बात है।

दादाश्री : और जहाँ कलह है, वहीं पर ममत्व है। बाहर किसी के साथ कलह नहीं है। फिर कहेगा, 'मेरी पत्नी नालायक है।' तब फिर 'मेरी' किसलिए कह रहा है? फिर भी 'मेरापन' नहीं छोड़ता। नहीं छोड़ता, है न?

प्रश्नकर्ता : यह 'मेरी' कहना और 'नालायक' कहना, वे दोनों बातें एक साथ बोलते हैं, ऐसा किसी को विचार ही नहीं आएगा।

दादाश्री : हाँ, 'मेरी पत्नी नालायक है, डाइवोर्स लेने जैसी है' ऐसा भी कहता है। अब जो कुछ कहता है, उसका असर रहता है। हाँ, हर एक शब्द का असर रहता है। 'नहीं है मेरी' कहे, उसका भी असर रहता है और 'मेरी' कहे, उसका भी असर रहता है।

साइकोलॉजिकल इफेक्ट ही

हमारा एक फ्रेन्ड था, उसकी शादी दस साल तक ही रही और फिर पत्नी मर गई तीन छोटे बच्चों को छोड़कर। तब मेरा फ्रेन्ड बहुत रो रहा था। लोग आश्वासन देने जाते हैं न, तो तब मैं भी आश्वासन देने गया था। मैंने कहा, 'किसलिए रो रहा है अब? उसका क्या अर्थ है?' तब वह मुझसे कहने लगा, 'लेकिन ये तीन बच्चे.... मुझे तो उसके बगैर अच्छा नहीं लगता।' तब मैंने कहा, 'तू क्या करेगा लेकिन? अब वह

वापस आएगी?' तब वह कहने लगा, 'मुझे अच्छा नहीं लगता, उसका क्या करूँ?' मैंने कहा, 'अरे, अभी तेरी पत्नी के बिना तुझे अच्छा नहीं लगता। अगर आज से ग्यारह साल पहले तू और तेरी वाइफ गाड़ी में मिले होते तो तू धक्का मारता न, कि खिसक यहाँ से? दस साल पहले विवाह किया था, तो विवाह करने के एकाध साल पहले ऐसा हो सकता था या नहीं हो सकता था?' तब वह मुझसे कहता है, 'हाँ, तब तो पहचान नहीं थी न!' मैंने कहा, 'यह तो, अगर विवाह के एकाध साल पहले ही मिली होती तो झगड़ा करता।' तब वह कहता है, 'इससे आप क्या कहना चाहते हैं?' मैंने कहा, ''तू शादी करने बैठा था न, तब कौन सा रोग घुस गया था तुझमें? तू शादी करने बैठा, उस घड़ी तूने उसे देखा। 'यह मेरी वाइफ' करके पहली बार लपेटा। उसने भी एक लपेट लगाई कि 'यह मेरा पति।' उसके पहले ऐसी लपेटें नहीं लगाई थीं। जब से विवाह किया, तभी से, दस सालों तक ममता की ये लपेटें मारते रहे। 'मेरी, मेरी, मेरी, मेरी!' तो इतना अधिक मानसिक इफेक्ट हो गया है, इतनी अधिक सायकोलॉजिकल असर हो गया है। एक ही बार बोले होते तो सायकोलॉजिकल हो जाता है, फिर यह तो है दस सालों की सायकोलॉजी।'' तब वह मुझे कहता है, 'हाँ, हाँ, मुझे लगता है कि यह सायकोलॉजी हो गई है मेरी। अब कैसे जाएगी यह?' मैंने कहा, 'नहीं है मेरी, नहीं है मेरी, बोल। जिस तरह बंधा था उसी तरह छोड़ दे न! यही उसका रास्ता है, और कोई रास्ता नहीं है।'

वास्तव में कोई बंधन है ही नहीं। यह तो सायकोलॉजिकल इफेक्ट ही हो जाता है। फिर जब पत्नी तीन बच्चे रखकर मर जाए तो रोता है। रोएगा नहीं बेचारा? लेकिन फिर इस तरह समझ में आया तो खुश हो गया। नहीं है पहचान! यह तो 'मेरी, मेरी' करके चिपट गया है यह सब। 'नहीं है मेरी, नहीं है मेरी' करेंगे तो खत्म हो जाएगा। उसकी हम गारन्टी देते हैं।

कोई भी चीज़ 'मेरी' करके रखी हो, उसे उखाड़नी हो तो 'नहीं है मेरी' कहने से उखड़ जाएगी और वहाँ पर फिर से चिपकाना हो तो 'नहीं है मेरी' करने के बजाय 'मेरी, मेरी' करोगे तो चिपकेगा। समझ

में आया न? इसमें गोंद की ज़रूरत नहीं पड़ती। बगैर गोंद के चिपक जाए, ऐसी टिकट है यह।

ममता के बिना भी सबकुछ प्राप्त

यह तो ममता नामक भूत घुस गया है। उसे तो जब मैं निकाल दूँगा तब जाएगा। हम उसके ओझा हैं। ममता डायन है, उसके हम ओझा हैं इसलिए निकाल देते हैं। तू बगैर ममता के चल, तो कितना मान मिलेगा! लेकिन किसी ने भी ममता नहीं छोड़ी। मैं उसे पूछता हूँ कि 'तुझे क्या-क्या चाहिए? किस-किस चीज़ की भूख है?' तब वह कहता है, 'मान की बहुत भूख है।' और किसकी भूख? तब वह कहता है, 'खाने-पीने में से थोड़ा सुख मिलता है,' 'अरे, तब ममता छोड़ न, तो सभी चीज़ें तुझे सामने से मिलेंगी।' तब वह कहता है, 'वह छोड़ दूँ तो मेरा चला जाएगा, जो है वह भी चला जाएगा।' इसलिए फिर ममता नहीं छोड़ता।

लालच के परिणाम स्वरूप फँसाव

घड़े में हाथ डालते समय बंदर ऐसे करके ज़ोर से हाथ डालता है, लालच के मारे। 'अंदर से चने निकाल लूँ' सोचता है। वह ज़ोर से हाथ डालता है और फिर चने से मुट्ठी भर लेता है। अब ज़ोर से हाथ डाला तो ज़ोर से निकल भी सकता है, लेकिन मुट्ठी बाँधी हुई है, उसका क्या होगा? वह फिर मुट्ठी बाँधकर खींचता है न! फिर हाथ नहीं निकलता, इसलिए फिर चीखना-चिल्लाना, चीखना-चिल्लाना, चीखना-चिल्लाना! अब वह किसलिए नहीं छोड़ता? उसे ज्ञान है कि 'मैंने हाथ डाला है तो मैं निकाल सकता हूँ ऐसा है, तो वह निकल क्यों नहीं रहा? यानी कि किसी ने मुझे पकड़ा है अंदर से।' लेकिन वह छोड़ता ही नहीं, मुट्ठी ही नहीं छोड़ता और बाहर चीख-चिल्लाहट, शोर-शराबा। छूटने के लिए प्रयत्न करता है, पूरी मटकी को उठाने जाता है, लेकिन उठा ही नहीं पाता न! मटकी आसपास में मिट्टी लगाकर दबाई हुई होती है न! ज़ोर लगाकर उठाता ज़रूर है, लेकिन फिर मटकी और वह, दोनों साथ में पकड़े जाते हैं। फिर उस बंदर को लोग पकड़ लेते हैं। बंदर पकड़ में

आ जाते हैं। लोग भी कारीगर हैं न! क्योंकि उनके बीच रहकर आए हैं वे। खुद के रिश्तेदारों को पहचानते हैं ये लोग। लेकिन देखो पकड़ लेते हैं न ये लोग! बात तो समझनी पड़ेगी न?

ऐसा स्वभाव, फिर भी सूक्ष्म अवलोकन

और फिर, अपने यहाँ तो पहले इतनी छोटी-छोटी मटकियों में दही जमाते थे न। बिल्ली को दही-दूध खाने की आदत होती है न, तो बिल्ली क्या करती है? वह मुँह डालती है चखने के लिए क्योंकि उसे सुगंध आई। सुगंध आई इसलिए समझ गई कि अंदर दही है। अब, छोड़ती तो नहीं है और आसपास कोई है नहीं। ज़ोर से मुँह डालते समय ताकत लगाती है, लेकिन फिर खींचते समय ताकत नहीं लग पाती इसलिए फिर मटकी को लेकर घूमती रहती है। मैंने देखा है ऐसी बिल्ली को। धन्य है। लोग दही खाते हैं, लेकिन तूने तो श्रीखंड खाया!

आपने ऐसा नहीं देखा? मैं तो शरारती था तो मुझे ऐसा सब मिल जाता था और न हो तो कोई मुझे दिखाने आता कि 'चलो हमारे यहाँ....' शरारती था न इसलिए! आपको शरारती बनना पड़ेगा उसके लिए। नहीं बनना पड़ेगा? मेरा कहना है कि शरारती स्वभाव के कारण यह सब देखने को मिला।

प्रश्नकर्ता : हम सभी मटकियाँ लेकर ही घूमते हैं न?

दादाश्री : अरे, लेकिन घूमते ही हैं न! मैं देखता हूँ न? कईयों की मटकियाँ तो मैंने फोड़ डाली थी। तब क्या करे बेचारा? कहाँ लेकर घूमता रहेगा? आँखों से दिखाई नहीं देता।

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसे कितने लोगों की मटकियाँ फोड़ी हैं?

दादाश्री : नंबर तो मैं नहीं कहूँगा लेकिन फोड़ी ज़रूर हैं मैंने मटकियाँ और अब वे देखने लगे हैं। 'अब फिर से नहीं डालूँगा।' उन्हें ऐसा अनुभव हो गया। वह अनुभव हो जाने के बाद वे नहीं डालेंगे।

मान्यता ही लगाती है ममता

वर्ना संसार में कोई चीज़ बाधक नहीं है। संसार में बाधा डालने जैसा है ही क्या? जहाँ खुद का है ही नहीं! और यह तो खुद का माना हुआ था। खुद का है ही नहीं, ऐसा हमने डिसीज़न ले लिया है न! और खुद का है वह माना हुआ है। वह माना हुआ यानी कैसा कि हमने मान लिया होता है कि यह बैंक अपना है। उसके बाद एक दिन हम वहाँ पर जाएँ और मैनेजर से कहे कि, 'भाई, यह बैंक हमारा है। आप अब खाली कर दो।' तब वह क्या कहेगा? यानी कि माना हुआ सभी कुछ जेल में डलवाएगा। ऐसा मानें ही क्यों फिर? और माना हुआ किस काम का? डिसिज़न वाला होना चाहिए, एक्ज़ेक्ट होना चाहिए। माने हुए से तो फिर फज़ीहत होगी, बल्कि जेल में डलवा देंगे।

यह तो हम सबने ममता की इसलिए बंध गए हैं। वर्ना, कोई चीज़ अपनी है ही नहीं। शरीर भी अपना नहीं है। यदि अपना होता तो अपना साथ देता लेकिन यह तो जाते समय देखो न, कितने दुःख देकर जाता है शरीर और हमें घर खाली कर देना पड़ता है। और फिर क्या किसी जन्म में बगैर ममता के मरे है? चाचा बन के मर गए, मामा बन के मर गए, यही किया है न! यदि ममता रहित मरो तभी वहाँ पर प्रवेश है और ममता सहित मरोगे तो यहाँ पर है ही आपका। अनंत जन्मों से मरते आए हैं, लेकिन वह ममता तो गई नहीं न! वह तो रही हुई है। अभी तक तो ममता गई ही नहीं न! यह ममता सचमुच की नहीं है, ऐसा ज्ञान हुआ लेकिन ममता अभी तक गई नहीं है। 'यह ममता सचमुच की नहीं है' ऐसा ज्ञान होना, वह भी बहुत कठिन हैं, अत्यधिक कठिन है।

जो ममता वाला है, वह 'खुद' नहीं है

मैंने आपको ममता रहित बना दिया, फिर भी कहते नहीं हो आप! आपको ममता रहित बना दिया, फिर भी आप ऐसा नहीं कहते कि 'मैं भी ममता रहित हूँ।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन ममता ऐसे कैसे निकल सकती है?

दादाश्री : इस 'ज्ञान' के बाद आपकी ममता चली गई है। अब उसे कहाँ निकालोगे फिर से? दोनों की साझेदारी में दुकान थी, 'आपकी' और 'चंदूभाई' की, उसका हमने बँटवारा कर दिया। 'चंदूभाई' ममता वाले हैं, उसमें हर्ज नहीं है, 'अपनी' ममता चली गई है। साझेदारी की दुकान का बँटवारा कर दिया तो ममता किसके हिस्से में गई? 'चंदूभाई' के हिस्से में गई। अपने हिस्से में नहीं आई इसलिए हल आ गया।

यह संग्रहस्थान है। होटल आ जाए तो हम भी चाय पीते हैं और लोग भी चाय पीते हैं लेकिन लोग इस संग्रहस्थान में क्या करते हैं? 'वह चाय अच्छी थी, यह ठीक नहीं है। वह वाली कड़क थी, यह कड़क नहीं है।' जबकि हम लोग ऐसा कुछ भी नहीं करते। जो आया उसका *निकाल!*

ड्रामेटिक ममता, ड्रामे तक ही

फिर भी भगवान ने ममता रखने के लिए मना नहीं किया है। ममता रख, लेकिन नाटकीय ममता रख। नाटक में ममता नहीं रखते सभी? भर्तृहरि राजा आए, पिंगला रानी आई, भर्तृहरि रोते हैं, लेकिन सबकुछ नाटकीय इसलिए उसमें बंधन ही नहीं है। नाटक करो पूरा। खाओ, पीओ, सबकुछ लेकिन नाटकीय! मैं भी नाटक ही करता हूँ न!

प्रश्नकर्ता : इस काल में नाटकीय ममतावाला मिलता है?

दादाश्री : नाटकीय ममता तो है ही नहीं न! वर्ना हम तो नाटक ही करते हैं न! हम कैसे हीरा बा का ध्यान रखते हैं! और पंद्रह दिन में एक बार हीरा बा, भाणा भाई से कहती हैं कि, 'आज कहना दादा से कि भोजन के लिए आएँ।' तब हमें जाना ही पड़ता है। कितना भी काम हो, लेकिन सबकुछ एक तरफ रख देना पड़ता है। उन्हें राज़ी रखना पड़ता है। अगर वे चिढ़ जाएँ तो अपनी आबरू चली जाएगी। यह जो थोड़ी बहुत आबरू बची है, वह भी चली जाएगी। लेकिन वे चिढ़ें, ऐसा मैंने रखा ही नहीं है इसलिए हम हीरा बा के यहाँ जाकर भोजन कर आते हैं। अगर हीरा बा कहें, 'कल भोजन के लिए आना।' तो हम फिर

से वहाँ जाते हैं। सभी लोग भी कहते हैं, 'दादा, आज भोजन के लिए आए थे।' लेकिन कैसा नाटक किया! हीरा बा यह नहीं समझ पाते कि ये नाटक कर रहे हैं, फिर भी मैं कहता हूँ कि 'आपके बिना मुझे अच्छा नहीं लगता।' उन्हें पता नहीं चल पाता कि ये नाटक कर रहे हैं, यह तो आपसे कह रहा हूँ।

भोगवटा, लेकिन ममता रहित

आप यहाँ दो दिन रहने के लिए आए, तो यह पलंग, कुरसी, गद्दे सभी चीज़ें भोगनी तो हैं, भोगने में हर्ज नहीं है, लेकिन ममता रहित भोगना है। उसी को *भोगवटा* (सुख या दु:ख का असर, भुगतना) कहते हैं। अत: आप ममता रहित भोगते हो कि 'यह तो मेरा नहीं है।' अब यदि घर के मालिक को भी समझ में आ जाए कि यह सब उसका नहीं है, तो फिर उसका ममता रहित *भोगवटा* कितना सुंदर होगा! इसलिए फिर यों अच्छी सी तिपाई हो और कोई बच्चा उस पर कूदा और तिपाई बैठ गई, तो उसकी छाती नहीं बैठ जाएगी।

अत: यह सब 'ज्ञानीपुरुष' से समझ लेने की ज़रूरत है। वर्ना, अनंत जन्मों से भटक रहे हैं, भटकने में कुछ बाकी नहीं रखा, फिर भी सेन्ट्रल स्टेशन नहीं आया। यहाँ 'ज्ञानीपुरुष' मिल गए तो अब अंतिम स्टेशन आ गया।

उसे मोक्ष मिलता है

अब यह 'सेन्ट्रल' स्टेशन ही है। अब यहाँ से और आगे नहीं जाना है, फिर से सफर नहीं करना है। कोई *उपाधि* (बाहर से आने वाला दु:ख और परेशानी) नहीं। आधि नहीं, व्याधि नहीं, कुछ भी नहीं, वर्ना हर एक स्टेशन पर भटकना तो है ही न! और भटकते ही रहते हैं, इधर से उधर भटकते हैं और उधर से इधर भटकते हैं क्योंकि उसे यह लालच है 'यह चाहिए, वह चाहिए।' भगवान तो कहते हैं कि, 'जब तेरा लालच खत्म हो जाए तब मेरे पास आना। मेरे आश्रय में आ जा, तो तू और मैं एक ही हैं।' लेकिन उसे खुद को ये लालच है न! लालच हैं, इसलिए भटकन मौजूद है।

इस जगत् में जो लालच नहीं रखे, वह अपने आप मोक्ष ढूँढ ही निकालेगा। यदि लालच में नहीं बंधे, तो मोक्ष ढूँढ ही निकालेगा। इस लालच से ही तो पूरा जगत् भटकता रहता है, और लालच से भयंकर दु:ख भोगता है।

एक व्यक्ति यहाँ आए थे। उनसे मैंने कहा, 'लालच है क्या?' तब वे कहने लगे, 'लालच बिल्कुल भी नहीं रखा।' मैंने कहा, 'बहुत अच्छा एडजस्टमेन्ट है।' जिसने ज़िंदगी में कभी भी लालच नहीं किया है, वह भगवान तक पहुँच सकता है।

लालच में, नियम भी नहीं

प्रश्नकर्ता : लालच एक प्रकार का होता है या अनेक प्रकार का होता है?

दादाश्री : एक प्रकार का लालच हो तो उसमें हर्ज नहीं है। उसे एक प्रकार का लोभी कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप जिसे लालच कहते हैं, वह एक ही प्रकार का होता है?

दादाश्री : नहीं, सभी प्रकार का लालच। जहाँ-तहाँ से सुख चाहिए।

प्रश्नकर्ता : भ्रांति का सुख?

दादाश्री : हाँ, वही तो, और क्या? नियम नहीं होता है कोई। सिर्फ विषय का लालच हो तो हर्ज नहीं है। उसे लोभ कहा जाता है। बाकी किसी चीज़ में लालच नहीं है न? नहीं। जबकि लालची इंसान को सभी लालच होता है, तमाम प्रकार का लालच होता है।

लालच तो ध्येय चुकवा दे

कुत्ते को एक पूड़ी दिखाई जाए न, उसमें तो वह पूरी फैमिली को भूल जाता है। बच्चों, पिल्लों, सभी को भूल जाता है और जो पूरा खुद

का स्थान है, जिस मोहल्ले में रहता है, उसे भी भूल जाता है और न जाने कहाँ जाकर खड़ा रहता है। लालच के कारण पूँछ पटपटाता है, एक पूड़ी के लिए! लालच, जिसका मैं स्ट्रोंग विरोधी हूँ। लोगों में जब मैं लालच देखता हूँ तब मुझे होता है, यह 'ऐसा सब लालच?' ओपन पोइज़न है! जो मिले, वह खाना लेकिन लालच नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लालच रहित रहने से मिल भी जाता है।

दादाश्री : यानी इस लालची को ही यह परेशानी है। नहीं तो सबकुछ मिल जाता है, घर बैठे ही मिल जाता है। हम ये कोई भी इच्छा नहीं करते फिर भी सभी चीज़ें मिल जाती है न! लालच तो नहीं, लेकिन इच्छा भी नहीं करते!

प्रश्नकर्ता : लालच और इच्छा, इन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : इच्छा रखने की छूट है सभी को, सभी प्रकार की। इच्छा में हर्ज नहीं है। लालची तो, कुत्ते को एक पूड़ी दी जाए तो कहीं से कहीं पहुँच जाता है। उसे उसमें लालच घुस गया है न!

प्रश्नकर्ता : यानी लालच में अच्छे-बुरे का विवेक नहीं रहता?

दादाश्री : लालच तो, जानवर ही कह दो न उसे! मनुष्य के रूप में जानवर ही घूमता रहता है।

प्रश्नकर्ता : तो अगर हमारी धर्म क्रियाएँ लालच, प्रतिष्ठा, और कीर्ति के कारण हों, तो उसका फल क्या है?

दादाश्री : उसे लालच नहीं कहते। कीर्ति के लिए, वह तो स्वाभाविक रहता है इंसान को। संसार में है, इसलिए नाम कमाने की इच्छा रहती है, दूसरी इच्छा रहती है। वह लालच नहीं कहलाता। लालच तो, इस कुत्ते जैसा रहता है। एक पूड़ी दिखी न, तो उसके पीछे ही घूमता रहता है। उसे भान भी नहीं रहता कि 'मैंने अपने बीवी-बच्चे छोड़ दिए और यह मोहल्ला भी छोड़ दिया।' कुछ भी भान नहीं।

थोड़ा बहुत लालच तो सभी में होता है, लेकिन उस लालच को

निभा सकते हैं लेकिन जिसे लालची ही कहा जाता है, उसे तो जैसे जानवर ही देख लो न, मनुष्य के रूप में!

किसी व्यक्ति को, कोई खाने की अच्छी चीज़ ला दें, और उसे वह बहुत भाती हो तो वह लालच के मारे वहीं बैठा रहता है। दो-तीन-चार घंटों तक बैठा रहता है। उसे थोड़ा बहुत दे दें, उसके बाद ही वह जाता है लेकिन वह लालच के मारे बैठा रहता है लेकिन जो अहंकारी है वह तो कहेगा, 'रख तेरे पास, इसके बजाय मेरे घर जाने दे न!' वह लालची नहीं होता।

अतः यह जगत् लालच से बंधा हुआ है। अरे! लालच तो कुत्ते व गधे में होता है लेकिन अपने में लालच क्यों होना चाहिए? कहीं लालच तो होता होगा?

चूहा पिंजरे में कब आता है? पिंजरे में कब पकड़ा जाता है?

प्रश्नकर्ता : लालच हो तब।

दादाश्री : हाँ, रोटी की सुगंध आई और रोटी खाने गया कि तुरंत अंदर फँस जाता है। पिंजरे के अंदर रोटी देखी तो बाहर रहकर वह विकल होता रहता है कि 'कब घुस जाऊँ? कब घुस जाऊँ?' फिर अंदर घुस जाता है, तब ऑटोमैटिक पिंजरा बंद हो जाता है। मनुष्यों को ऐसा सब 'ऑटोमैटिक' आता है। अतः अपने आप ही फँस जाता है। यानी सर्व दुःखों की जड़ लालच है।

जोखिम, लोभ या लालच?

प्रश्नकर्ता : लालच कौन करवाता है? मन करवाता है?

दादाश्री : मन करवाता है, लेकिन मूलतः तो यह अहंकार का ही गुण है न! पिछले जन्म का लालच मन के माध्यम से निकलता है, और फिर इस अहंकार से वापस लालच खड़ा होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : यह लालच कौन से कषाय में जाता है?

दादाश्री : लालच, वह राग कषाय है। राग और कपट, इन दोनों के इकट्ठे होने से लालच उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : उसका समावेश मोह में भी होता है, दादा?

दादाश्री : उसे जो मानो वह, लेकिन लालच शब्द अलग है।

प्रश्नकर्ता : कपट जैसा होता है, लालच?

दादाश्री : कपट भी नहीं है यह तो। यह तो लालचवाला ही होता है सारा। कपट तो आपको भी आता है। यह तो लालची! लालच में मुख्यत: लोभ होता है।

प्रश्नकर्ता : वह लोभ धीरे-धीरे लालची बना देता है?

दादाश्री : नहीं। लालच होने के बाद ही लोभ उत्पन्न होता है।- ? लोभी होना इतना बुरा नहीं है। लोभी तो फिर भी कभी न कभी जीत जाएगा, लेकिन लालची नहीं जीत सकता।

लोभी से भी ज़्यादा खराब लालची होता है। लोभी अच्छा होता है कि धूर्त को भूखा नहीं मरने देता। धूर्त को भूखा कौन रखता है? बाकी सभी मरने देते हैं, लेकिन यह लोभी नहीं मरने देता।

प्रश्नकर्ता : तो लोभी में और लालची में क्या फर्क है?

दादाश्री : लालची तो सभी चीज़ों में लालची! लोभी को तो, उसे सिर्फ एक ही बात में लोभ। सिर्फ पैसों का ही लोभ! और पैसों के बारे में, जिससे पैसा प्राप्त हो उन चीज़ों का लोभ! जबकि लालची को तो जो आया वह! ज़रा भांग आ जाए न, तो भी लालच, गांजा आ जाए, तो भी लालच! हर एक चीज़ में से सुख लेता है, भोग लेने का लालच! लालची इंसान बिफर जाए तो *त्रागा* (अपनी मनमानी, बात मनवाने के लिए किया जानेवाला नाटक) करता है। 'मैं मर जाऊँगा, ऐसा करूँगा या आत्महत्या करूँगा' यों डराकर भोगना चाहता है, और ऊपर से बिफरता है।

प्रश्नकर्ता : वहाँ उसे कौन सा लालच होता है, जिस वजह से वह बिफरता है?

दादाश्री : सुख भोग लेने का। जब लोग भोगने नहीं देते, तब यों बिफरता है कि 'आत्महत्या कर लूँगा, मैं तो ऐसा कर लूँगा।'

प्रश्नकर्ता : लालच खास तौर पर विषय के लिए होता है?

दादाश्री : विषय के लिए, और बाकी सब के लिए भी होता है।

प्रश्नकर्ता : इसके अलावा, मान, पूजे जाने की कामना ऐसा सब भी होता है?

दादाश्री : हाँ, वह भी होता है। और अगर (शराबी को कोई) ज़्यादा दारू नहीं पीने दे, तब भी ऐसा करता है।

प्रश्नकर्ता : लालच चीजों के लिए होता है या चीज़ों में से आने वाले सुख के लिए होता है?

दादाश्री : सुख का ही है न! चीज़ का नहीं। चीज़ का तो क्या करना! चीज़ में से आने वाले सुख का लालच है।

प्रश्नकर्ता : लोभी को भी ऐसा ही होता है न?

दादाश्री : लोभी तो अच्छा होता है, लोभ तो उसे किसी खास प्रकार का ही होता है। और कोई झंझट नहीं। कई बार उसे स्त्री का झंझट नहीं भी होता, दूसरे सुखों का भी झंझट नहीं होता। सिर्फ इस लोभ का ही झंझट!

प्रश्नकर्ता : लोभी और लालची में से ज़्यादा खराब किसका कहलाता है?

दादाश्री : लालची का! लालची को तो छूटने की बारी ही नहीं आती। सीधे लोगों को ऐसी-वैसी परेशानियाँ नहीं आतीं जबकि लालची इंसान की लाइफ अपमान भरी रहती है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी उसे अपमान का दु:ख नहीं होता?

दादाश्री : ऐसा रहे, तब तो वह लालची नहीं रहेगा न! अधिक लालची को ढीठ कहते हैं लोग!

प्रश्नकर्ता : यानी जिसे मान की पड़ी होती है, क्या उसे लालच की नहीं पड़ी होती?

दादाश्री : जिसे मान की पड़ी होती है, उसमें बहुत अवगुण नहीं घुसते। अपमान के भय से ही नहीं घुसते।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मान का लालच घुस जाए तो?

दादाश्री : हाँ, वह भी लालच होता है। वही लालच! उसे मान की भीख कहते हैं हम।

प्रश्नकर्ता : लेकिन लोभी भी लालची हो सकता है या नहीं?

दादाश्री : नहीं। लोभी और लालची में बहुत डिफरेन्स है! लोभी यानी लोभी और लालची यानी लालची! लोभी मूर्छित नहीं रहता, लालची मूर्छित रहता है। लालची तो खुद का अहित ही करता रहता है, निरंतर अहित करता रहता है।

प्रश्नकर्ता : उसे खुद को ऐसा पता चलता है कि यह मैं अहित कर रहा हूँ?

दादाश्री : नहीं, ऐसा पता ही नहीं रहता न! भान ही नहीं होता न!

अत: लोभी शायद कभी छूट सकता है। सब से पहले कौन छूटता है? मानी। यानी क्रोधवाला। क्रोध और मानवाला सब से जल्दी छूटता है, क्योंकि दोनों ही भोले होते हैं। रास्ते चलते ही कोई कह दे कि बड़े आए छाती फुलाकर घूम रहे हो? लेकिन लोभी को तो खुद को भी पता नहीं चलता कि मुझ में लोभ है। इतना गहन व्यवहार होता है कि मालिक को भी पता नहीं चलता कि मुझमें लोभ है। वह तो हमें बताना पड़ता है!

प्रश्नकर्ता : लोभ इतना गहरा होता है, क्या इसलिए वह जल्दी नहीं छूटता?

दादाश्री : हाँ, वह जल्दी नहीं छूटता। बहुत तेल निकाल देता है। फिर भी लोभी नियमवाला होता है। जबकि लालची में तो नियम ही नहीं होता। लालची में कोई नियम नहीं। वह 'ज्ञानी' की आज्ञा ही नहीं पालता न! पालन करनी हो तब भी पालन नहीं कर सकता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'ज्ञानी' के प्रति बहुत भाव हो, तो उसका क्या?

दादाश्री : भाव होता है, तब भी कुछ भला नहीं होता न! यानी लोभी छूट सकता है, लेकिन लालची नहीं छूट सकता।

इस 'ज्ञान' के बाद कुछ लोभ भी जीवित रहता है और लालच भी जीवंत रहता है लेकिन लालची की 'सेफसाइड' नहीं है। लोभी की 'सेफसाइड' हो जाती है, लेकिन लालची की 'सेफसाइड' नहीं हो पाती, मैंने ऐसा बहुत जगह पर देखा है।

बड़ा लोभी हो न, तो वह 'ज्ञानी' की आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। वह भी शायद कभी 'ज्ञानी' की आज्ञा का पालन कर सके, लेकिन लालची, वह 'ज्ञानी' की आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। ये सब डिफरेन्स हैं बिट्वीन लोभी और लालची! लालची आत्मघाती व्यक्ति होता है। खुद का घात करता है, निरंतर खुद का आत्मघात कर रहा है!

जहाँ-तहाँ से सुख का ही लालच

प्रश्नकर्ता : लालच में और क्या-क्या आता है?

दादाश्री : लालच में सभी कुछ आ जाता है न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह किस प्रकार का लालच होता है?

दादाश्री : सभी प्रकार का लालच! कुछ भी बाकी ही नहीं रहता न!

प्रश्नकर्ता : उदाहरण देकर समझाइए न।

दादाश्री : वह तो सभी समझते हैं। मार खाने का लालच किसी को होता है? गालियाँ खाने का लालच किसी को होता है? किस प्रकार का लालच, वह नहीं समझते सभी? यह भोग लूँ, वह भोग लूँ, फलाना भोग लूँ, वही लालच।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह लालच किस आधार पर टिका रहता है?

दादाश्री : सुख चखने के आधार पर! जहाँ-तहाँ से सुख चख लेना है। ध्येय वगैरह कुछ भी नहीं। मान-अपमान भी नहीं, कुछ भी नहीं। ढीठ होकर सुख चखना है। कोई नियम ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसे लालच का कारण क्या है? किस प्रकार से यह लालच आ जाता है?

दादाश्री : हर कहीं से सुख प्राप्त करना, और हर किसी से छीन लेना। अतः फिर 'लॉ,' नियम जैसा कुछ भी नहीं रहता। यहाँ तक कि यदि वह लोकनिंद्य हो, फिर भी उसे कुछ नहीं पड़ी होती, और वह सब लोकनिंद्य ही होता है। यानी फिर लालच ऐसे काम करवाता है। मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देता।

प्रश्नकर्ता : तो लालच में उसे कैसे भाव उत्पन्न होते हैं?

दादाश्री : जो कुछ भी मिले, उसके लिए लालच होता है। लालच अर्थात् पूरे दिन भौतिक सुख ढूँढता रहता है।

प्रश्नकर्ता : किसी भी कीमत पर भौतिक सुख लेना?

दादाश्री : हाँ, बस। अपने 'ज्ञान' लिए हुए महात्मा ऐसा सुख नहीं ढूँढते। वे तो फाइलों का समभाव से *निकाल* करते हैं। जो आ पड़े उसका *निकाल* करते हैं, लेकिन ढूँढते नहीं हैं?

किसी भी जन्म में लालच नहीं गया है, इसीलिए यह सारा दुःख है न! और दुःख भी अनंत जन्मों तक मिलता है, सुख कभी भी नहीं मिलता। लालच दुःख का ही कारण है। सुख की संतुष्टि ही नहीं होती

कभी भी। यह एक ही जन्म का लालच नहीं है इंसान को, कितने ही जन्मों का लालच है लेकिन अगर अब इस एक जन्म में लालच को तोड़ डालेगा तो सीधा हो जाएगा। अत: लालच का गुण जब तक नहीं छूटता, तब तक जोखिम खत्म नहीं होता।

अपना 'ज्ञान' क्या कहता है? संसार में भोगने जैसा है क्या? तू बेकार ही इसके लिए भटक रहा है। भोगने योग्य तो आत्मा है!

प्रश्नकर्ता : उसमें जो सुख समाया है, वैसा सुख और कहीं पर भी है ही नहीं?

दादाश्री : और कहीं सुख होता होगा? वह तो सारा कल्पित सुख है। आप सुख की कल्पना करोगे तो सुख महसूस होगा।

एक व्यक्ति कहता है, 'मुझे जलेबी बहुत भाती है' और एक व्यक्ति कहता है, 'मुझे जलेबी देखकर ही घिन आती है।' यानी ये सभी कल्पित सुख हैं।

पूरी दुनिया सोने को स्वीकार करती है और 'ज्ञानीपुरुष' उसे स्वीकार नहीं करते, या फिर जैन साधु भी सोने को स्वीकार नहीं करते।

संसार के लोगों ने विषय में सुख की कल्पना की। विषय अर्थात् निरी गंदगी, उसमें कहीं सुख होता होगा?

विषय का लालच, कैसी हीन दशा

प्रश्नकर्ता : अब विषय में सुख लिया, उसी के परिणाम स्वरूप सभी झगड़े और क्लेश होते हैं न?

दादाश्री : सबकुछ इस विषय में से ही उत्पन्न हुआ है और उसमें सुख कुछ भी नहीं है। सुबह से ही ऐसा मुँह रहता है जैसे एरंडी का तेल पी लिया हो। जैसे एरंडी का तेल नहीं पी लिया हो?

प्रश्नकर्ता : यह तो कँपकँपी छूट जाती है कि इतने से सुख के लिए इतने सारे दु:ख सहन करते हैं ये लोग!

दादाश्री : वही लालच है न, इस विषय को भोगने का! फिर जब वहाँ नर्कगति का दु:ख भोगता है, तब पता चलता है कि क्या स्वाद आता है इसमें! और विषय का लालच, उसे तो जानवर ही कह दो न! विषय में घृणा उत्पन्न हो, तभी विषय बंद होता है। वर्ना विषय किस तरह से बंद हो? इसीलिए कृपालुदेव ने कहा है कि, 'वहाँ थूकना भी अच्छा न लगे।'

प्रश्नकर्ता : इन सब चीज़ों में जो दोष उत्पन्न होता है, वह जागृति नहीं होने की वजह से ही उत्पन्न होता है न?

दादाश्री : लालच हो तो जागृति नहीं रहती। इसकी जड़ में लालच ही है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर लालच निकालने के लिए क्या पुरुषार्थ करना चाहिए? मुझे विषय नहीं चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : वह तो यदि बात को समझ ले एक बार, विषय को यदि अच्छी तरह से समझ ले तो! विषय तो आँख को भी पसंद न आए ऐसा है, कान को सुनना अच्छा नहीं लगे ऐसा है, नाक को सूंघना अच्छा नहीं लगे ऐसा है, जीभ को चाटना अच्छा नहीं लगे ऐसा है, पाँचों इन्द्रियाँ नाखुश हो जाती हैं, पाँचों इन्द्रियों को अच्छा नहीं लगता, ऐसे सभी प्रकार से विवरण करके समझना पड़ेगा। मन को भी पसंद नहीं, बुद्धि को भी पसंद नहीं, अहंकार को भी पसंद नहीं, इसके बावजूद भी कैसे चिपक गया है, वही समझ में नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : उसमें क्षणिक सुख दिखाई देता होगा न!

दादाश्री : नहीं। क्षणिक सुख का सवाल नहीं है, लेकिन ये सभी लौकिक रूप से ही चिपके हुए हैं न!

जिसे कोई भी इन्द्रियाँ कबूल नहीं करती। जलेबी में हर्ज नहीं है। जलेबी विषय है लेकिन उसमें हर्ज नहीं है। उसे देखना आँख को अच्छा लगता है। उसे यों तोड़ें तो सुनाई देता है तब कान को अच्छा लगता है।

नाक को खुश्बू अच्छी लगती है। जीभ को भी उसका स्वाद अच्छा लगता है। हाथ से छूएँ तो वह भी अच्छा लगता है, पसंद आता है। इसलिए हम क्या कहते हैं कि जलेबी खाओ। यदि ये इन्द्रियाँ कबूल करें तो खाओ लेकिन इस विषय में तो अगर इन्द्रियों को सूँघ लें न, तो तीन दिन तक भोजन नहीं भाए।

लालची को तो अगर कोई स्त्री विषय नहीं दे न, तो उसे 'माँ' कहता है, ऐसे मूर्च्छित लोग हैं! मेरा क्या कहना है कि आत्मसुख चखने के बाद विषय सुख की ज़रूरत ही कहाँ रही?

वर्ना, विषय यानी निरी गंदगी, गंदगी और गंदगी! यह तो ढकी हुई गंदगी है! यह चादर हटा दी जाए न, यह पोटली खोल दी जाए न, चादर खोल दी जाए न, तो पता चलेगा। सब घोटाला! यह बात याद नहीं रहने से, उसका भान नहीं रहने से ही यह हाल है न! और लालची तो क्या करता है? अगर स्त्री के हाथ से पीप निकल रहा हो न, और यह बहुत लालच में आ जाए न और अगर वह स्त्री कहे कि 'चाट ले।' तो वह चाट लेता है। कुत्ते भी जिसे नहीं चाटते, उसे यह चाट जाता है। उसे लालच कहते हैं। तब भी उसका अहम् नहीं जागता। अहम् नहीं जागता कि, 'ऐसा कैसे कर सकते हैं? जाने दे, मुझे नहीं चाहिए।' यह लालच तो मार डालता है इंसान को। नियम है कि बहुत प्याज़ खाता है न, उसे कहीं पर प्याज़ का ढेर पड़ा हो तब भी गंध नहीं आती लेकिन जो प्याज़ नहीं खाता है न, और अगर तीन कमरे छोड़कर दो प्याज़ रखे हुए हों न, तो यहीं से उसे गंध आ जाती है। इस प्रकार से लालची को मूर्च्छा हो जाती है।

विषय अर्थात् पाशवता! विषय तो पाशवता की निशानी कहलाती है! वह क्या मनुष्यपन की निशानी है? विषय तो, एक-दो बच्चे हो जाएँ वहीं तक होता है। उसके बाद विषय रहना चाहिए क्या इंसान में?

उसी से टकराव

प्रश्नकर्ता : विषय के लालच में जब खुद सफल नहीं हो पाता तब शंका वगैरह करता है न?

दादाश्री : सफल नहीं होने पर सबकुछ करता है। शंकाएँ करता है, कुशंकाएँ करता है सारी। सभी तरह के नाटक करता है वह फिर। या अल्लाह परवरदिगार हो जाता है फिर! फिर लालच भी हो जाता है लेकिन वही फिर उसकी फज़ीहत करता है, वह अलग। उसके कब्ज़े में गए तो फज़ीहत किए बगैर रहता नहीं है न!

वाइफ के साथ मन-वचन-काया से कोई संबंध है ही नहीं और पतिपन (स्वामित्व) रखता है, ऐसा नहीं होना चाहिए। पतिपन तो कब कहलाएगा? जब तक मन-वचन-काया से पाशवता वाला संबंध रहे, तभी तक पतिपन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन विषय हो, तभी पतिपन करता होगा न?

दादाश्री : पतिपन यानी क्या कि डरा-धमकाकर भोग लेना लेकिन फिर अगले जन्म का हिसाब बंध जाता है न?

प्रश्नकर्ता : उससे क्या होता है?

दादाश्री : बैर बंधता है! कोई आत्मा दबा हुआ रहता होगा एक घड़ी भर भी?

बहुत टकराव हो जाए न, फिर कहेगा, 'क्या तूँबड़े जैसा मुँह लेकर घूम रही हो?' तब फिर तूँबड़ा और अधिक बड़ा हो जाता है। फिर वह रोष रखती है। पत्नी कहती है, 'मेरे हत्थे चढ़ेगा तब मैं उसका तेल निकाल लूँगी।' वह रोष रखे बगैर रहती नहीं न! जीवमात्र रोष रखता है, बस उसे छेड़ने की देर है! कोई किसी से दबा हुआ नहीं है। किसी का किसी से लेना-देना नहीं है। यह तो सब भ्रांति से ऐसा दिखाई देता है कि मेरा है, मेरा-तेरा!

ये तो मजबूरन समाज में आबरू के लिए इस तरह पति से दबी हुई रहती हैं लेकिन फिर अगले जन्म में तेल निकाल देती है। अरे, साँपिन बनकर काटती भी है।

और लालच में से लाचारी में

एक स्त्री अपने पति से चार बार साष्टांग करवाती, तब जाकर एक

बार छूने देती थी! इसके बजाय समुद्र में समाधि ले लेता तो क्या बुरा था? किसलिए ऐसे चार बार साष्टांग?

प्रश्नकर्ता : इसमें स्त्री ऐसा क्यों करती है?

दादाश्री : वह एक प्रकार का अहंकार है?

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे फिर क्या फल मिलता है?

दादाश्री : कोई फायदा नहीं, लेकिन अहंकार है कि 'देखा न, इसे कैसा सीधा कर दिया!' और पति बेचारा लालच से ऐसा करता भी है! लेकिन स्त्री को फिर फल तो भुगतना पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : उसमें खुद स्त्रीपने का बचाव करती है?

दादाश्री : नहीं। स्त्रीपन का बचाव नहीं, वह अहंकार ही रौब मारता है और पति को बंदर की तरह नचाती है, बाद में उसका रिएक्शन तो आएगा न? पति भी फिर बैर रखता है कि 'मैं तेरे कब्ज़े में आया, तो तूने मेरा ऐसा हाल किया और मेरी इज़्ज़त ली। तू मेरे कब्ज़े में आए उतनी ही देर है!' फिर वह ले लेता है आबरू! घड़ीभर में तहस-नहस कर देता है फिर।

लालची का स्पर्श बिगाड़े संस्कार

छोटे लड़के-लड़कियाँ होते हैं न, उन्हें लालची व्यक्ति को छूने तक नहीं देना चाहिए। वर्ना उस लालची व्यक्ति का हाथ छू जाए न तो उस छोटी बच्ची में खराब संस्कार पड़ जाते हैं। छोटा बच्चा हो, फिर भी उसमें खराब संस्कार पड़ जाते हैं इसलिए उसका हाथ नहीं लगे तो अच्छा, क्योंकि वह लालची छेड़खानी करने के लिए बुलाता है उसे। अभी यदि बच्चे दिखने में काले हों, अच्छे नहीं दिखते तो नहीं बुलाता जबकि यह तो गुलाब के फूल जैसी होती है इसलिए बुलाता है। वह भी छेड़खानी करने के लिए। ऐसी छेड़खानी, उसमें क्या कुछ विषय है? लेकिन जब तक नहीं छूए तब तक उत्तम! क्योंकि लालची का मन तो वहीं पर जाता है फिर। आकर्षण क्या सिर्फ विषय का ही होता है?

हालांकि यहाँ पर किसी चीज़ का विषय नहीं है, लेकिन आकर्षण है। इसके बजाय तो अपवित्र नहीं हो, वही अच्छा।

यही पुरुषार्थ

बाकी, लालच क्या सिर्फ विषय का होता है? सभी प्रकार का लालच! खाने-पीने के भी सारे लालच ही हैं न! कुछ भी खाने में आपत्ति नहीं है, लेकिन लालच नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लालच अर्थात् देखते ही लार टपकने लगे?

दादाश्री : लार तो बहुत टपकती है, लेकिन अगर ऐसा पहचान ले कि यह लालच है तो भी अच्छा!

किसी को देखे, तो तुरंत ही लालची के मन में ऐसा होता है कि 'चलो, आज इनके साथ जाकर भोजन करूँगा।' ऐसा लालच हो, तब उस घड़ी हमें क्या करना चाहिए? 'मैंने तो अभी ही खाया है, अब नहीं चलेगा।' स्वमान जैसा होना चाहिए न? लोग तो हमें खिलाएँगे, लेकिन मन में रहता है न! मन की किताबों में थोड़े ही मिट जाता है? अत: जब वह मिले तो विचार तो आता है न, कि 'ये खिला दें तो अच्छा?' लेकिन उस विचार को पलटाना, वह अपना काम है! विचारों को बदलना, वह अपना पुरुषार्थ है। उन्हें नहीं पलटने के जोखिमदार आप खुद हो। जिन विचारों को पलट दिया, उन विचारों के आप जोखिमदार नहीं हो और जिन विचारों को नहीं पलटा, तो उस विचार के आप जोखिमदार हुए!

प्रश्नकर्ता : अब, अगर खाने के लिए एकदम मना कर दिया, तो उससे उस व्यक्ति के भाव का तिरस्कार किया नहीं कहा जाएगा?

दादाश्री : कैसा तिरस्कार? वह तो अगर कोई कहे कि 'चलो, बाहर दारू पीने।' तो? उसमें कैसा तिरस्कार? ऐसे खोखले बहाने किसलिए ढूँढते हो? वह कहे तो हम जाएँ और नहीं खाना हो तो ऐसे लेकर फिर इधर से उधर डाल दें। सब करना आता है। ऐसे बटन दबाकर चला लेना है। कुछ नहीं आए, ऐसा थोड़े ही है?

एक ही चीज़ खाए तो भी हर्ज नहीं है न! उसे अन्य और कोई लालच नहीं है न! यानी एक ही लालच में खेलता रहता है, बस। एक चीज़ पर आ जाए तब भी हर्ज नहीं है न! लालची तो हर किसी चीज़ के लालच में पड़े होते हैं! यानी फिर जहाँ-जहाँ से चोर घुस सकते हैं न, वहाँ-वहाँ बाड़ बना देनी पड़ेगी। लालच तो बहुत ज़हरीली चीज़ है। लालच यदि एक लिमिट तक हो, एकाध चीज़ में, तो उसमें हर्ज नहीं है।

लालची मोल लेता है जोखिम ही

प्रश्नकर्ता : कोई एक ही लालच जो 'एकस्ट्रीम' है, तो क्या वही उसे फँसाता है?

दादाश्री : हाँ, ऐसा होता है न! कोर्ट में बहुत ही महत्वपूर्ण तारीख हो तब भी अगर लालच की जगह आ जाए, लालच पूरा हो ऐसी जगह मिल गई, तो वह कोर्ट भी छोड़ देता है। यों जोखिम मोल लेता है।

प्रश्नकर्ता : उस व्यक्ति को बहुत गैरज़िम्मेदार व्यक्ति कहा जा सकता है?

दादाश्री : गैरज़िम्मेदार नहीं कहा जा सकता, लेकिन बहुत अधिक ज़िम्मेदारीवाला कहलाता है! लालच में ही शूरवीर होता है इसलिए बहुत ज़िम्मेदारी सिर पर लेता है।

लालची की नज़र भोगने में ही

लेकिन लालची यानी सभी बंदरगाहों का मालिक। फिर उसका स्टीमर तो सभी बंदरगाहों पर खड़ा रहता है। और जैसा खुद का माल होता है, उसे उसी माल का व्यापारी मिल जाता है। ऐसा नियम है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसकी तो नज़र ही वहीं रहती है न?

दादाश्री : नहीं। नज़र पर से नहीं। नियम ही ऐसा है क्योंकि

अगर हम अपने मुँह से दवा पीएँगे तो कहाँ जाएगी? जहाँ पर दर्द होता है, वहीं पर जाती है। यह मुँह से, जहाँ दर्द होता है, वहाँ दवा किस तरह से गई? वह नियम है, आकर्षण है वहाँ पर। अत: हम क्या कहते हैं? दर्द दवाई को आकर्षित करता है, न कि दवाई दर्द को पकड़ती है।

यानी दर्द ही दवाई को आकर्षित करता है। बाज़ार में किसी जगह पर जो बोतल नहीं मिलती, वही बोतल यहाँ पर हाज़िर हो जाती है। फिर कहता है, 'यह दवाई किसी भी जगह पर नहीं मिल रही थी। यह एक ही मिली है। सिर्फ एक ही थी उसके पास।' मैंने कहा, 'हाँ, मैं समझ गया। तेरे कहे बिना भी मैं समझ गया!'

इसका क्या लालच?

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा होता है कि लालची को नौकरी-धंधा करने का मन ही नहीं होता, लालच के कारण?

दादाश्री : उसे मिलता भी नहीं है और उसका मन भी नहीं होता।

अब लोग तो नए-नए लालच दिखाते हैं, तब मन में लगता है कि केला लूँ या केले का गुच्छा ले जाऊँ? कोई बहुत मेहनत करके कुछ कमाकर लाता है, लेकिन जब वह कमाई जाने को हो, तब उसे ऐसा लालची मिल आता है। लोग तो लालच दिखाएँगे, लेकिन खुद में लालच खड़ा हुआ कि मुश्किल में आ जाओगे। अपने को तो ऐसा धंधा करना चाहिए कि जो हमें 'हेल्प' करे। अपनी प्रकृति में जो काम हैं, उतने ही काम करें, तभी कर पाएँगे लेकिन अगर ऐसा कुछ करने जाएँगे जिसका प्रकृति में सिर्फ आभास मात्र दिख रहा हो तो उसी में मारे जाएँगे! प्रकृति में भी आभास जैसे व्यापार होते हैं। किसी ने कहा कि तुरंत ही अंदर लालच के मारे उसमें पड़ने का मन हो जाता है। वह सब आभास जैसा कहलाता है। हमारे साथ ऐसा हुआ था। हमने ये सभी आभासी व्यापार देखे हैं।

इस संसार की आशा रखें, लालच रखें या नहीं रखें, तब भी फल वही का वही आएगा। फिर इसका लालच क्या? नाशंवत चीज़ें हैं। आप

ठोकर मारोगे तब भी वे वापस आएँगी। वर्ना अगर आप 'आओ, आओ' करोगे तब भी नहीं आएँगी क्योंकि वह सब 'मिकेनिकल' है!

स्वच्छंद, अटकण और लालच

यह तो अभी तक जो लालच रह गया है न, वह लालच मार डालता है खुद को! इसलिए हम चेतावनी देते रहते हैं कि सावधान, सावधान। वर्ना, बहुत मज़बूत व्यक्ति हो, फिर भी आगे नहीं बढ़ सकता न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि लालच निकल जाए तो आगे बढ़ सकेगा न?

दादाश्री : लेकिन लालच निकलता ही नहीं है न! उस लालच को निकालने में तो बहुत टाइम लग जाता है।

प्रश्नकर्ता : स्वच्छंदी और लालची में क्या फर्क है?

दादाश्री : स्वच्छंदी होने में भी बहुत परेशानी नहीं है। स्वच्छंदी तो होते हैं, लेकिन लालची होने में बहुत परेशानी है।

प्रश्नकर्ता : आप अटकन कहते हैं वह और लालच, वे दोनों एक ही परिणाम वाली चीज़ें हैं?

दादाश्री : अटकन अलग चीज़ है। अटकन तो निकल सकती है। अटकनें तो बहुत होती है हर एक व्यक्ति में, लेकिन निकल सकती हैं। अपने यहाँ अटकन वाले बहुत सारे लोग हैं न! फिर भी, वे ऐसे हैं कि निरंतर मेरी आज्ञा में ही रहते हैं। अटकन में परेशानी नहीं है। अटकन तो टूटेगी कभी न कभी, लेकिन लालची तो आज्ञा में रह ही नहीं सकता न! क्योंकि जब लालच की जगह आए न, वहाँ वह खुद ही भ्रमित हो जाता है। वहाँ पर जागृति नहीं रहती।

लालच की ग्रंथि

प्रश्नकर्ता : वह लालच जन्मजात चीज़ है या संग से उत्पन्न हुई चीज़ है?

दादाश्री : जब से जन्मा, तब से यह ग्रंथि साथ में आई है।

प्रश्नकर्ता : तो यह लालच इस जन्म का है या पिछले जन्म का है?

दादाश्री : वह तो पिछले जन्म का ही है न! लेकिन अभी तक तो इस जन्म में भी भ्रमित हो जाता है। यानी जब उस घड़ी भ्रमित नहीं होगा तब जाकर लालच छूटेगा लेकिन ऐसा होता नहीं है न कि वह भ्रमित नहीं हो!

लालच तो सब से ज़्यादा खराब चीज़ है। अब यह लालच मरने पर ही जाता है। फिर भी उस लालच का बीज रह जाए, तभी वापस दूसरे जन्म में फिर से लालच उत्पन्न होता है। लालच नहीं जाता। लालच तो इंसान को मार डालता है, लेकिन जाता नहीं है। लालच तो अज्ञानता की निशानी है।

ऐसा निश्चय छुड़वाए लालच

यानी 'कोई चीज़ नहीं चाहिए' ऐसा नक्की किया, तब से लालच शब्द ही खत्म हो जाता है। वर्ना लालच ही जोखिम है न! क्रिया जोखिम नहीं है, लालच जोखिम है। 'कोई भी चीज़ नहीं चाहिए,' फिर हम ले लें, वह बात अलग है। बाकी, अपने को लालच होता नहीं है। लालच तो नर्क में ले जाता है और ज्ञान को पचने नहीं देता।

प्रश्नकर्ता : यह 'ज्ञान' लेने के बाद भी ये सारे लालच रहेंगे क्या?

दादाश्री : किसी किसी को रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : उसे इस लालच में से छूटना हो तो किस तरह से छूटे?

दादाश्री : वह यदि निश्चय करे तो सबकुछ छूट सकेगा। लालच से छूटना तो चाहिए ही न। खुद के हित के लिए है न! निश्चय करने के

बाद, छूटने के बाद उस तरफ सुख का ही अनुभव होगा। उससे तो और अधिक सुख का अनुभव होगा, बल्कि चैन मिलेगा। यह तो, उसे भय है कि 'मेरा यह सब चला जाएगा,' लेकिन उसके छूटने के बाद और अधिक सुख का अनुभव होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब तक वह भय नहीं निकलेगा, तब तक सुख का लाभ नहीं हो पाएगा न? वह भय है उसे, इसलिए तब तक वह इस तरफ का निश्चय नहीं होने देता है न, उसका?

दादाश्री : भय के कारण उसका लालच नहीं छूटता और उसे भय है कि 'मेरा यह सुख चला जाएगा।' अरे, चला जाने दे न, यहाँ से। तभी तो दूसरावाला सुख आएगा।

अहंकार करके भी निकाल देना है

प्रश्नकर्ता : एक प्रकार से तो यह लालच भी कर्म का उदय ही है न?

दादाश्री : हाँ, कर्म का उदय है लेकिन यह कर्म का उदय गलत है न?

प्रश्नकर्ता : तो फिर लालच उत्पन्न होने का कारण क्या?

दादाश्री : वैसे संयोग मिल जाएँ तब लालच उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : जिस चीज़ के प्रति लालच है, जब उस चीज़ का तिरस्कार होगा तब लालच छूट जाएगा?

दादाश्री : तिरस्कार हो या कुछ भी हो, लेकिन वह तो एक चीज़ का तिरस्कार हो, तब दूसरी किसी चीज़ का लालच होने लगेगा। और चीज़ें तो बहुत सारी हैं न! यह तो जैसे पंसारी के वहाँ सभी प्रकार की चीज़ें होती हैं न, उसी तरह इन्हें, लालची के पास भी सभी चीज़ें होती है, सभी तरह की डिब्बियाँ होती हैं। वह अगर एक साथ सब फेंक दे तभी कुछ ठीक हो पाएगा, वर्ना एक का तिरस्कार करेगा तो दूसरा और

अधिक घुस जाएगा। वह तो, यहाँ सत्संग में बैठे-बैठे किसी दिन निकल जाएगा लेकिन वह भी एकदम नहीं निकल सकता। यह आसान बात नहीं है।

लालच किस तरह से जाए, उसका कोई रास्ता नहीं है लेकिन अहंकार करके लालच को निकाल दिया जाए, तो लालच चला जाएगा। अत: लालच को अहंकार करके निकाल देना है। उसके लिए तो ज़बरदस्त अहंकार किया जाए तो भी हर्ज नहीं है। 'दादा' के पास शक्तियाँ माँगकर अहंकार उत्पन्न करे और अहंकार से उसे निकाल दे, तब! वह भी यों ही तो नहीं निकल जाएगा न! जो सहज हो चुका है, वह निकलेगा कैसे? इसलिए अहंकार से निकाल देंगे, तब जाएगा लेकिन फिर वापस उस अहंकार को धोना पड़ेगा। पहले लालच निकाल देना है, और फिर अहंकार को धोना है!

यानी अहंकार करके भी निकाल देना है। फिर उस अहंकार को हम निकाल देंगे, वर्ना अनंत जन्मों का यह रोग कब निकलेगा? वह तो मेरे जैसे की हाज़िरी में निकला तो निकला, नहीं तो राम तेरी माया!

तब लालच जाएगा

प्रश्नकर्ता : इस लालची के लिए छूटने का दूसरा कोई उपाय तो होगा न?

दादाश्री : इसमें तो, जब वह खुद छोड़ देगा, तभी लालच जाएगा। सभी बातों में ऊपर से खत्म कर दे तभी हो सकेगा, वर्ना इसका स्वभाव तो आत्मघाती है! लालच अर्थात् खुद, खुद का आत्मघात करना। उसका कोई उपाय नहीं लिखा गया है।

प्रश्नकर्ता : उसे हर तरफ से खत्म करना हो तो वह किस तरह से हो पाएगा?

दादाश्री : नहीं, ऐसा होगा ही नहीं। वह तो खुद अपना सबकुछ ही बंद कर दे, ललचाने वाली सभी चीज़ें बंद कर दे, बारह महीनों तक

अपरिचय हो जाए, तो फिर भूल जाएगा। विस्मृत हो जाएगा। अपरिचय की ज़रूरत है। लालची व्यक्ति को तो रात को दो बजे भी कोई कुछ दिखाए तो तैयार! उसे नींद की भी परवाह नहीं होती।

जितनी चीज़ें ललचाने वाली हों वे सभी एक तरफ कर दे, उन्हें याद न करे, याद आएँ तो प्रतिक्रमण करे, तभी वे छूटेंगी। बाकी, शास्त्रकारों ने तो कहा है कि उसका कोई उपाय नहीं है। सभी का उपाय होता है, लालच का उपाय नहीं है। लोभ का उपाय है। लोभी व्यक्ति को तो बड़ा नुकसान हो जाए न, तब लोभ का गुण चला जाता है एकदम से!

लालच की खातिर तो दुःख देता है

यह तो पूरा दिन लालच और सिर्फ लालच में ही पड़ा रहता है। लालच के कारण जलन होती है। वह यहाँ सत्संग में आता है, उतने समय तक शांति रहती है और इसीलिए तो यहाँ आता है। वर्ना, पूरे दिन लालच में ही पड़ा रहता है।

उसके पास 'ज्ञानी' की कृपा भी कुछ नहीं कर सकती। कृपा भी हार जाती है वहाँ तो। लालची यानी धोखेबाज़।आज्ञा पालन कर ही नहीं सकता न! कृपा किस तरह उतरेगी फिर? और दुनिया में किसी को सुख नहीं देता है, सभी को दुःख देता है। अपने लालच की खातिर वह किसी को भी दुःख दे देता है। वे सभी दुःख पाने वाले तो एक जन्म के लिए कत्ल होंगे, लेकिन दूसरे जन्म में कहाँ कत्ल होने वाले हैं? जिसके भाग्य में होगा, उसका एक जन्म के लिए कत्ल होगा। दूसरे जन्म में थोड़े ही कत्ल होना है?

ऐसा दुरुपयोग होता नहीं है न

प्रश्नकर्ता : उसे उसके लालच से मार पड़ती है न?

दादाश्री : बहुत मार पड़ती है।

प्रश्नकर्ता : तो वह वापस नहीं मुड़ता है?

दादाश्री : जब मार पड़ती है, तब दूसरा लालच याद आता है कि अब वह कर आऊँगा, इसलिए घाव भर जाता है।

प्रश्नकर्ता : मतलब उसके पास घाव भरने के लिए कई दिशाएँ होती हैं!

दादाश्री : हाँ, फिर भी यदि कभी वह शुद्धात्मा में रहे, आज्ञा का पालन करे, और दूसरी तरफ सभी चीज़ों को छोड़ दे तो ठीक हो जाएगा लेकिन यह तो उसे खुद को भी पता नहीं चलता कि मुझमें लालच है। भान ही नहीं होता न, ऐसा। अगर ऐसा भान होता तब तो वह खुद मुक्त नहीं हो जाता? यह तो हमारे दिखाने पर उसे कुछ दिखता है। वह तो ऐसा ही समझता है कि मैं 'समभाव से *निकाल*' कर रहा हूँ। लोकनिंद्य कार्य करना और समभाव से *निकाल* करना, वे दोनों साथ में होते होंगे कभी? खुद की स्त्री के साथ हर्ज नहीं है लेकिन लोकनिंद्य कार्य करना और 'आज्ञा का पालन करता हूँ,' ऐसा मानना, इसे आज्ञा का दुरुपयोग करना कहेंगे। 'लास्ट' लेवल का (अंतिम दर्जे का) दुरुपयोग - जिसे सौ बार दुरुपयोग बोलें, ऐसा दुरुपयोग कहलाता है। दुरुपयोग तो ये साधारण लोग भी करते हैं और यह लालची तो आत्मघाती, खुद का ही घात कर रहा है। यदि पुण्यशाली होगा तो सावधान हो जाएगा, वर्ना नहीं हो पाएगा। सावधान होगा भी किस तरह? क्योंकि उसमें उसे 'इन्टरेस्ट' आता है, इसलिए वापस वहाँ पर भ्रमित हो जाता है।

यानी बीज गया नहीं है। बीज तो अभी पानी गिरते ही उग जाएगा! संयोग मिले नहीं है इसलिए। संयोग मिलते ही तुरंत फूटता है। हम समझते हैं कि यहाँ पर सबूत कुछ रहा नहीं है, सिर्फ बाड़ ही दिखाई दे रही है, गाँठें-वाँठें, पौधे, कुछ है ही नहीं, लेकिन अंदर गाँठें होती हैं। पानी मिलते ही फूटती हैं! इसलिए कोई अभिप्राय नहीं देना चाहिए कि इसका कुछ कम हो गया है। यों कम होता ही नहीं है। कैसे हो सकेगा वह?

यानी सभी का किनारा आएगा, लेकिन लालची का किनारा नहीं आएगा।

कुसंग का रंग

अनंत जन्मों से इसके कारण ही बिगड़ा हुआ है। खुद की ही ज़िंदगी मिट्टी में मिल जाती है और औरों की भी, साथवालों की भी मिट्टी में मिल जाती है।

कुसंगों की वजह से यह सारा ताल बैठ गया है। अब एक बार ताल बैठ जाने के बाद गाँठें जाती नहीं हैं न! वे गाँठें इतनी बड़ी-बड़ी हो जाती हैं। इतनी छोटी सी गाँठ हो तो जा सकती है। इतना बड़ा लोहचुंबक हो, तो वह पिन को खींचता है लेकिन उससे बड़े लोहे को खींचने जाएँ तो? लोहचुंबक ही खिंच जाएगा। लोहचुंबक को पकड़कर रखेंगे तो अपना हाथ भी खींच ले जाएगा। कुसंग का तो ऐसा सब है।

इसी वजह से शास्त्रकारों ने कहा है कि ज़हर खाकर मरना अच्छा, लेकिन कुसंग का संग नहीं लगना चाहिए!

उसके आवरण भारी

उसे कोई लालच नहीं होता, ऐसा नहीं है। यानी ऐसे लोग तो जब से यहाँ पर आएँ तभी से मैं उन्हें कह देता हूँ कि, 'सीधा रहना। अनंत जन्मों से मार खाई है लेकिन फिर भी लालच नहीं जाता। यहाँ आने के बाद भी तेरा ठिकाना नहीं पड़े, तो किस काम का?'

हमारी, 'ज्ञानीपुरुष' की वाणी वीतराग वाणी होती है, यानी वीतरागता के चाबुक होते हैं। वे लगते बहुत हैं, असर बहुत करते हैं, लेकिन दिखाई नहीं देते।

लेकिन यह जो लालच का मुख्य अवगुण काम कर रहा है, वह तो 'ज्ञानी' के वाक्य को भी खा जाता है, पीसकर खा जाता है! लालच! वह लालचरूपी अहंकार है न, वह टूटता नहीं है इन लोगों का! 'ज्ञान' देते हैं, तब यह अहंकार नहीं टूटता, यह भाग जीवित रहता है इसलिए फिर परेशानी बढ़ जाती है।

आज्ञापालन ही अंतिम उपाय

प्रश्नकर्ता : यह 'ज्ञान' लेने के बाद उसका वह लालचवाला भाग चला नहीं जाता?

दादाश्री : वह लालच जीवित रहता है।

प्रश्नकर्ता : यानी उसका अर्थ ऐसा है कि उसमें 'ज्ञान' परिणामित नहीं हुआ।

दादाश्री : कुछ भाग परिणामित हुआ, लेकिन दूसरे लालच जीवित रह गए।

प्रश्नकर्ता : तब फिर इस ज्ञान ने जैसा होना चाहिए वैसा फल नहीं दिया। तभी ऐसा होगा न?

दादाश्री : नहीं। लालची है इसलिए 'ज्ञान' फल ही नहीं देता। मूल में से ही, ग्रंथि ही लालची है! वह लालच 'ज्ञान' का असर नहीं होने देता। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा है न, लालची व्यक्ति नीचे उतरते-उतरते नर्कगति में जाता है। लालची तो कोई भी चीज़ बाकी नहीं रखता।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा हो सकता है कि 'ज्ञान' लेने के बाद लालचों का भी ज्ञाता-दृष्टा रह सके?

दादाश्री : नहीं। तब फिर से कुछ लालच आ जाए न, तो वापस वहाँ जाता है। जहाँ उनका 'स्लिपिंग पाथ' है न, जहाँ फिसलने की जगह है न, वहाँ पर उन लोगों को जागृति नहीं रहती। किसी जगह पर तो बहुत अच्छी जागृति रहती है लेकिन जहाँ स्लिपिंग, उसकी जो फिसलने की जगह है न, वहाँ पर जागृति ही नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, शुद्धात्मा पद मिल गया है, तब वह तो उस लालची को देखता ही रहेगा न?

दादाश्री : लेकिन वह फिसलने की जगह पर नहीं देखता। बाकी

सभी जगहों पर देखता है और फिसला, वह तो अंदर उसे लालच है इसलिए ही न!

प्रश्नकर्ता : उस समय यदि आज्ञा में नहीं रहे तो फिसल जाता है?

दादाश्री : लालच है इसलिए वहाँ पर आज्ञा में रह ही नहीं सकता न! जहाँ लालच हो वहाँ पर आत्मा एकाकार हो जाता है इसलिए उसे तो बहुत पुरुषार्थ करने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : अगर फिर से 'ज्ञान' लेने बैठे तो क्या लालच निकल जाएगा?

दादाश्री : नहीं निकलेगा। 'ज्ञान' में बैठने से थोड़े ही निकल जाता है? यह तो, अगर वह खुद आज्ञा में रहने का प्रयत्न करे, निरंतर आज्ञा में रहना ही है ऐसा निश्चय करे और आज्ञाभंग हो जाए तो प्रतिक्रमण करे, तब कुछ बदलाव हो सकेगा।

'ज्ञानी' के पास आकर बदल जाए तो शायद बदल भी जाए! मन-वचन-काया से बहुत मज़बूत रहकर, शुद्ध चित्त से बात करे न, तो कुछ हो सकता है, तो बदल सकता है। वर्ना नहीं बदल सकता। लेकिन लालच तो चित्त को शुद्ध होने ही नहीं देता न। निर्णय रहता ही नहीं न! लालच उसके खुद के निर्णय को तोड़ देता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कभी क्या उसके मन में ऐसा आता है कि 'मुझे इसमें से निकलना है?'

दादाश्री : वह रहता है! लेकिन लालच ऐसी चीज़ है न, कि पहले लालच जाए तभी फिर वह उसमें से निकल पाएगा।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानीपुरुष' की आज्ञा में रहने से उसका अंत आएगा न?

दादाश्री : लालच का अंत लाएगा तो आएगा। लालच को उखाड़ेगा तो आएगा। यानी उसके विरुद्ध प्रयोग करे कि आज्ञा का पूरी तरह से पालन करना है और नहीं कर पाए तो प्रतिक्रमण करने हैं। फिर घर के

सभी लोगों के साथ 'रेग्युलर' हो जाना चाहिए। 'समभाव से *निकाल*' करने की आज्ञा का पालन करने से 'रेग्युलर' हो जाएगा न? और फिर 'रियल-रिलेटिव' देखना चाहिए।

लेकिन फिर भी हम पूछकर देखें कि एक भी दिन आज्ञापूर्वक देखा है क्या? यदि वह आज्ञापूर्वक देखेगा तो ऐसा परिणाम ही नहीं आएगा न? देखने का परिणाम तुरंत आता है। यह तो सब बुद्धि का, कुछ भी 'हेल्प' नहीं करता। वे बातें भी सारी बुद्धि की करेंगे।

प्रश्नकर्ता : यानी बुद्धि से ही सारी आज्ञाएँ 'एडजस्ट' करते हैं?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान से नहीं। बुद्धि से 'एडजस्ट' करते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उसका परिणाम कैसा आता है?

दादाश्री : कुछ भी नहीं। बुद्धि से तो नाश हो जाता है सारा! बुद्धि विनाशी, और उसके द्वारा यह जो कुछ भी हुआ वह सब विनाशी होता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन फिर 'ज्ञान' से किस प्रकार से होता है, वह? ज्ञान से पालन और बुद्धि से आज्ञा पालन, उसमें फर्क क्या है?

दादाश्री : ज्ञान से आज्ञा पालन करे तो सभी जगह परिणामित हो जाता है और बुद्धि से आज्ञा पालन करे तो कुछ भी परिणामित नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : परिणामित हो जाए, वहाँ पर क्या होता है?

दादाश्री : समभाव से *निकाल* होता है। उससे सबकुछ ठीक हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् परिणाम बाहर आता है?

दादाश्री : ज़रूर आता है 'पास' हो ही जाता है। यह तो, यदि हम देखे न, तो कभी भी कुछ ठीक नहीं हुआ होता है। एक दिन भी नहीं, एक घंटे भी नहीं न!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह सब उल्टा था कि 'मैं आज्ञा पालन करता हूँ, मैंने सारी प्राप्ति कर ली है?'

दादाश्री : उल्टा ही है न! नहीं तो और क्या? बुद्धि का ही खेल है सारा। सभी से जो कुछ कहता है, सब के साथ जो बातें करता है वह भी बुद्धि की ही बातें हैं! वे स्पर्श नहीं करतीं, और सामनेवाला न जाने क्या समझता है कि 'ओहो, ये क्या बन गए!' इसलिए मुझे सामने वाले से कहना पड़ता है कि, 'भाई, वहाँ पर कुछ भी नहीं है!'

वर्ना परिणाम तो सभी पता चलते हैं, सुगंध ही आने लगती है।

प्रश्नकर्ता : यानी बाहर परिणाम नहीं आ रहा हो तो तब तक बुद्धि से ही पालन कर रहा है, ऐसा माना जाएगा? दूसरे 'महात्माओं' के लिए पूछ रहा हूँ।

दादाश्री : नहीं, दूसरों के लिए नहीं। दूसरों को तो कुछ छूता ही नहीं, बेचारों को! वह तो लालच वाले के लिए, लालची को मूल ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।

अपना यह 'ज्ञान' लालची को पूरा हाज़िर रहता है, लेकिन बुद्धि का ज्ञान ही रहता है, इसलिए ज़रूरत केसमय गायब हो जाता है। बुद्धि का ज्ञान यानी ज़रूरत के समय हाज़िर नहीं रहता, ज़रूरत के समय वह गायब हो जाता है। यों 'इसी के' जैसा दिखाई देता है सारा, उसमें कुछ अलग नहीं दिखता लेकिन ज़रूरत के समय गायब हो जाता है और बाकी लोगों का ज़रूरत के समय गायब नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का ज्ञान यानी उसने इस ज्ञान को बुद्धि से समझा होगा?

दादाश्री : उसमें बुद्धिज्ञान प्रकट हुआ होता है, क्योंकि लालच की जो खराबी रह गई है न, इसलिए ज्ञान उत्पन्न नहीं होता न! बड़ी परेशानी है बेचारे को! बहुत पछताता है, लेकिन क्या हो सकता है? एक मिनट भी सुख नहीं मिलता।

प्रश्नकर्ता : अब ये जो सब भूलें की हों, 'ज्ञानी' के पास उन सभी भूलों का प्रतिक्रमण कर ले और वापस निश्चय करके 'ज्ञानी' के बताए अनुसार चले तो?

दादाश्री : लेकिन अगर अभी तक भूल दिखाई ही नहीं देती, तो किस तरह प्रतिक्रमण करे वह? वह तो, जैसे-जैसे हमारे कहे अनुसार आगे बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे भूलें दिखती जाएगी। यह तो अभी तक जो भूलें हुई हैं, वे भी नहीं दिखाई देतीं।

यानी आज्ञा पालन की शुरुआत करे, फिर घर में, और सभी जगहों पर आसपास में सभी को संभाले, ऐसे करते-करते सभी भूलें दिखने लगेंगी और ऐसे सभी भूलें दिखेंगी, कुछ हद तक पहुँचेगा, तो हम रास्ता कर देंगे फिर आगे का! यह तो सारी शक्तियाँ फिर लालच तक पहुँचती है, इसलिए शक्तियाँ उसी में समा जाती हैं। यह हमारी दी हुई शक्ति उस लालच में खर्च हो जाती है। उसकी ज़िम्मेदारी तो हम पर आएगी। इसका थोड़ा-बहुत हल आने के बाद हमें यदि ऐसा लगे, विश्वास आए, तब हम इसके लिए शक्ति देते हैं। वर्ना वह शक्ति फिर लालच में खर्च हो जाएगी। तो उस शक्ति के आधार पर इसमें वापस मलीदा मिलेगा।

यानी वह तो यदि हमें ऐसा लगे, कुछ हद का संयम आ जाए, तो दी हुई शक्ति काम की है। वर्ना यों शक्ति दे-देकर ही ऐसा हुआ है न! ऐसा मैं समझ गया हूँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिस प्रकार से लाभ हो, आप वैसा कुछ कहिए न!

दादाश्री : हाँ, वह तो उसी प्रकार से कहते हैं, लेकिन जैसा कहा वैसा यदि करे न, घर के सभी लोगों के साथ के व्यवहार में थोड़ा बहुत परिवर्तन आने लगे तो फिर लक्ष्मी की भी कभी कमी नहीं रहेगी।

यानी पहले तो भूल की प्रतीति बैठनी चाहिए। फिर जब उसे वह पक्का हो जाए तो उसके बाद भूल खत्म होने लगती है और फिर दूसरी तरफ ज़बरदस्त पुरुषार्थ करना चाहिए। यह भूल ऐसी नहीं है कि बगैर

पुरुषार्थ के चली जाए। ज़बरदस्त पुरुषार्थ करना पड़ेगा। फिर बीस शक्तियाँ उत्पन्न हुई, तो बीस शक्तियाँ वापस से खर्च कर लीं तो चालीस की शक्ति उत्पन्न होगी, फायदा होगा। ऐसे करते-करते शक्ति बहुत बढ़ जाएगी।

प्रश्नकर्ता : यदि वह खुद भावना करे कि आज्ञा पालन करना ही है तो उसका परिणाम आएगा या नहीं?

दादाश्री : आज्ञा का पालन तो करना ही चाहिए न! और समभाव से *निकाल* करना ही चाहिए। फिर सभी घर वाले कहेंगे, 'नहीं, दादाजी, हमारी तरफ से कोई शिकायत नहीं है।' महीने में ही परिणाम आए बगैर रहेगा क्या? सच हमेशा परिणाम लाता है और झूठ भी परिणामवाला होता है। इसलिए हम तो कहते हैं कि इन घरवालों का पहले *निकाल* करो, रास्ता निकालो।

परिणाम लाएगा तभी उसे लाभ है न! कुछ परिणाम आएगा न, अर्थात् जब दस परिणाम प्राप्त होने तक पहुँचे तब बीस की शक्ति उत्पन्न होगी। फिर वापस जब बीस परिणाम प्राप्त होने तक पहुँच जाएँगे तो चालीस की शक्ति उत्पन्न होगी। फिर उसे खुद को मालूम हो जाएगा न कि मेरी यह शक्ति बढ़ी है? वर्ना यह तो 'डिज़ोल्व' हो चुकी शक्ति है।

अभी तक तो वह एक मिनट भी आज्ञा में नहीं रहता है। आज्ञा में रहा होता तो घर के लोगों को दु:ख होता? समभाव से *निकाल* करके सब का प्रेम जीत लेता! यह तो आज्ञा में रहता ही नहीं है, आज्ञा क्या है वह जानता ही नहीं। सिर्फ बुद्धि से जानता है या शब्दों से जानता है, लेकिन भावार्थ नहीं जानता। वर्ना आज्ञा में रहने वाले को थोड़ा बहुत मतभेद रहता है, बाकी, झंझट नहीं होती। घर के लोग उससे तंग नहीं हो जाते।

प्रश्नकर्ता : यानी उपाय में तो शुद्धात्मा में रहना है, प्रतिक्रमण करना है, चीज़ों से दूर रहना है?

दादाश्री : हाँ, और फिर घर के प्रत्येक व्यक्ति के साथ 'एडजस्ट' हो सके। समभाव से *निकाल* करने की यह आज्ञा मुख्य है न! और घर के सभी लोगों में शुद्धात्मा देखने चाहिए न? लेकिन यह तो कुछ भी याद नहीं, भान ही नहीं न, उस तरह का!

रास्ता यह है कि 'दादा' की आज्ञा में रहना है ऐसा निश्चय करके अगले दिन से शुरू कर दे और जितना आज्ञा में नहीं रह पाए, उतने के लिए प्रतिक्रमण करने चाहिए और घर के प्रत्येक व्यक्ति को संतोष देना चाहिए, समभाव से *निकाल* करके। फिर भी यदि घर वाले परेशान करें तो हमें देखते रहना है। अपना पिछला हिसाब है इसलिए परेशान करते हैं। अभी तो आपने आज ही तय किया है। अत: घर के सभी लोगों को प्रेम से जीतो। वह तो फिर आपको खुद को भी पता चलेगा कि अब रास्ते पर आने लगा है। फिर भी जब घर के लोग अभिप्राय दें, तभी मानने जैसा है। अंत में तो उसी के पक्ष में होते हैं घर के लोग।

फिर वाइफ पर पतिपना (स्वामित्व) नहीं करना चाहिए। पति हो नहीं, और पतिपना करते हो! नाम मात्र के कहे जाने वाले पति है। उसमें फिर पतिपना करते हो! सच्चे पति होते तो हर्ज नहीं था। अब जहाँ पति नहीं है, वहाँ पर हम पतिपना करने जाएँ तो बल्कि मुसीबत खड़ी हो जाएगी न? यानी आपको पतिपना नहीं करना चाहिए। अब यदि पत्नी आप पर रौब जमाए तो आप हँसना कि 'ओहोहो! आपने भी उधार किया हुआ जमा तो करवा ही दिया' ऐसा कहना। यह तो अच्छा ही है न, यह जो जमा करवाते हैं, वह?

निरंतर 'दादा' की आज्ञा में रहा जा सके तो परेशानी नहीं है। आज्ञा में नहीं रहा जा सके तो फिर से प्रतिक्रमण करना।

पूजे जाने का लालच

यह तो कैसा है कि यह लालच कब बाहर आ जाए, वह कह नहीं सकते। पाँच-सात लोग ही यदि मिल जाएँ तो भी बहुत हो गया न! पूरे मुंबई शहर में खबर पहुँचा देंगे कि ये ज्ञानी आए हैं। टोली खड़ी

हुई कि सबकुछ तैयार कर देगी। सिर पर बाल नहीं होंगे तो खरीदकर चिपका देंगे।

अनंत जन्मों से यही किया है। उसी के हैं ये लक्षण! ये दु:ख और ये अड़चनें उसी की हैं सारी, यही किया है! नगाड़ा बजाने वाले पाँच-सात-दस लोगों की ही ज़रूरत है कि फिर चल पड़ेगी गाड़ी! इसकी ज़िम्मेदारी क्या आएगी उसका भान नहीं है। अगर इस जन्म में भी छूट पाए तो अच्छा है, बहुत अच्छा है लेकिन इस बात को समझेगा तो छूटेगा। वर्ना लालच तो मोक्ष में नहीं जाने देता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसे नगाड़ा बजानेवालों को इकट्ठा करके खुद ज्ञानी बन जाए, तो उसकी ज़िम्मेदारी क्या आती है?

दादाश्री : वह तो धधकती हुई अग्नि! नर्कगति! वह भुगत लेने के बाद फिर वापस तैयार होकर यहाँ पर आता है, वापस फिर वही का वही! जो लालच पड़ चुका है, वह जाता नहीं है न! 'ज्ञानीपुरुष' हो तब कुछ बदल जाता है।

हमें खुद को लालच नहीं हो तो पीछे-पीछे कीट-पतंगे भी नहीं मँडराएँगे। जहाँ लालच है, वहीं पर कीट-पतंगे मँडराते हैं। जिसमें लालच नहीं है वह दुनिया का राजा! जबकि लालची तो लार टपकाता रहे, तब भी कुछ नहीं होता।

लालच को ज़िंदा रहने की और मज़बूत बनने की जगह मिल जाती है, तो अब अगर वह जगह देंगे तभी न? इसलिए वहाँ फिर प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। 'अब फिर से इस रास्ते पर नहीं जाना है' कहना। आपको कहना चाहिए कि, 'चंदूभाई, फिर से इस रास्ते पर नहीं जाना है।'

खुद की छूटने की मज़बूत भावना, 'स्ट्रोंग' भावना हो, लेकिन वह लालच वगैरह उसमें रुकावट डालता रहता है न! लेकिन अगर खुद के ध्यान में रखे, कि 'कब खत्म कर दूँ?' जैसे दुश्मनों को ध्यान में रखते हैं न, उसी तरह। तब इसका निबेड़ा आएगा, वर्ना निबेड़ा नहीं आएगा।

प्रश्नकर्ता : यह लालच तो भयंकर रोग है!

दादाश्री : वह बहुत पुराना रोग है तो वे क्यों मेरी बात मानने लगेंगे! तब फिर पेड़ पर आम हिला कि अंदर एकदम से पूरा हिल जाता है! पेड़ पर आम हिलना चाहिए तो अंदर भी आम हिलने लगता है!

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग ऐसे होते हैं कि किसी भी प्रकार से उन्हें खुद को सब के सामने लाना होता है, सौ लोगों के बीच में।

दादाश्री : वह तो पाँच-दस लोगों का गुरु बनने की आदत है उसे। शिष्य होना तो आता नहीं और गुरु बन बैठना है! इसलिए फिर कोई ग्राहक हाथ में आया कि वहाँ पर बैठ जाता है। लेकिन वह भी लालच है इसलिए, सबकुछ भोगने के लिए। कोई चीज़ भोगनी नहीं है, ऐसा नहीं है।

एक जन्म, ज्ञानी की अधीनता में

इसलिए हम क्या कहते हैं कि इस सत्संग की एकता मत छोड़ना। नहीं तो अलग जाने की कोशिश करता है। लेकिन कुछ भी करना नहीं आएगा। लोग धक्का मारकर निकाल देंगे! ऐसा नहीं चलेगा। कहीं चलता होगा? बनावटी बाघ कितने दिन तक चलेगा? बाघ की खाल पहनकर घूमेगा तो चलेगा क्या? वह पौधा उगेगा ही नहीं इसलिए कह दिया है, वह पौधा उगना ही नहीं चाहिए अपने में। हमें तो यह जन्म अधीनता में ही बिताना है। अधीनता मत छोड़ना, क्योंकि मंडली बनाई जाए तो लोग इकट्ठे हो जाएँगे लेकिन उसमें खुद का अहित होगा और लोगों का भी अहित होगा।

अपने यहाँ एक व्यक्ति अलग दुकान लगाकर बैठा भी था। दो-चार जगहों पर 'दादा' के नाम पर सभा कर आया। बड़ी-बड़ी सभाएँ इकट्ठी कीं और सबकुछ करके आया लेकिन मैंने कहा, 'अरे, मार खाएगा आखिर में। यह ओढ़ा हुआ कितने दिनों तक चलेगा?' और वापस, ऐसे वापस पलट भी जाता है। यों टेढ़ा नहीं हो जाता, लेकिन लालच घुस जाए तो, वह सोचता है 'मैं कुछ कर आऊँ'। वह फिर ऐसा

था भी कि टोली जमा दे। एक बार तो हज़ारों लोग इकट्ठे कर लिए थे, क्योंकि चेहरा ज़रा अच्छा था, भव्यता अच्छी थी! लेकिन उसे मैंने चेतावनी दे दी, ''ज़रा सी भी यदि 'दादा' की अधीनता छोड़ेगा तो नर्क में जाएगा। तू शब्द कहाँ से लाएगा? ये मेरे ही शब्द कहने पड़ेंगे लोगों से। मेरे कहे हुए शब्द ही चलेंगे, लेकिन नए शब्द कहने जाएगा तो नर्क में जाएगा।''

यों मुझे चेतावनी देनी पड़ती है। ऐसा भी लालच होता है, 'दादा' से स्वतंत्र होने का! अरे, इसमें भी स्वतंत्र होना है? स्वतंत्र तो हो गए, क्या परतंत्र हो? यदि मुझसे दबे हुए हो तो बात अलग है। बाहर किसी गुरु से दबे हुए हो, तो वहाँ पर शायद अगर स्वतंत्र होने की कोशिश करो तो बात अलग है। यहाँ दबे हुए नहीं हो, कुछ भी नहीं है, और मैं तो कहता हूँ कि, 'मैं तो सभी का शिष्य हूँ।' फिर झंझट किसलिए? लेकिन अनादि की आदत पड़ी हुई है, स्वतंत्र में मज़ा आता है, 'इन्टरेस्ट' आता है। रख न एक तरफ इन्टरेस्ट को! इसमें पड़ा रह न, इस सत्संग में ही!

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, स्वंतत्रता के बजाय 'मैं कुछ जानता हूँ' ऐसा दिखाने की इच्छा रहती है।

दादाश्री : वही झंझट है न! 'मैं जानता हूँ,' वही सब लेकिन जानता कुछ भी नहीं है।

अब एक जन्म अधीनता में बिता दो।

प्रश्नकर्ता : अधीनता से तो अच्छा है न, कोई परेशानी तो नहीं रहेगी।

दादाश्री : हाँ, परेशानी नहीं है। सब अधीनता से ही जीवन बिताते हैं, लेकिन किसी में अंदर जड़ टेढ़ी हो तो अपना रंग दिखाकर रहती है फिर। अलग नगाड़ा बजाता है!

अधीनता, लेकिन ऊपरी नहीं

कई लोग मुझसे ऐसा कहते हैं कि, 'आप थोड़ी बहुत चाबियाँ

अलग से अपने पास क्यों नहीं रखते?' मैंने कहा, मैं किसलिए रखूँ चाबियाँ? मुझे गुरु की तरह रहना हो और वैसा रौब जमाना हो तो चाबियाँ रहने दूँ लेकिन मुझे रौब भी नहीं जमाना और गुरु की तरह रहना भी नहीं है। मेरे लिए तो तू ही गुरु है अब। जिसे गुरु की तरह रहना हो न, वह अपना खुद का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं देगा क्योंकि अगर शिष्य को थोड़ा-थोड़ा देता रहे तो शिष्य चला नहीं जाएगा, और उसकी गाड़ी चलती रहेगी।

और यहाँ पर तो सभी को छूट है। यहाँ तो जो मेरे पास रहते हैं न, उनसे कह देता हूँ कि आपको जब भाग जाना हो तब भाग जाना। मैं मना नहीं करूँगा। आप मुझे परेशानी में डालोगे, तब भी मैं आपको मना नहीं करूँगा। आपको जब भागना हो तब भाग जाना। क्या परेशानी है फिर? अरे, मैं कहाँ उन्हें सिर पर बिठाऊँ? वैसा तो ये गुरु करते हैं कि जिन्हें दूसरा कोई लालच होता है।

जिसे कोई लालच नहीं है, उसे भगवान भी नहीं पूछते क्योंकि अगर भगवान पूछें कि, 'तुम कहाँ गए थे?' तो भगवान फँस जाएँ! 'किससे पूछा साहब, आपने यह? भूल कर दी यह!' जिसे किसी भी प्रकार का लालच नहीं है, उनसे किसी को कुछ भी पूछने का अधिकार नहीं है। भगवान को भी अधिकार नहीं है पूछने का। लालच छोड़ो। लालच में सबकुछ आ जाता है।

हेतु, पूर्णकाम का होना चाहिए

आपने देखा है लालच?

प्रश्नकर्ता : अरे, मैं ही लालची था न!

दादाश्री : ऐसा? किस बारे में?

प्रश्नकर्ता : अरे, किसी भी बारे में, सत्संग के बारे में लालची ही था न!

दादाश्री : यह मेरे साथ रहने का लालची, वह लालची नहीं

कहलाता। बाकी सभी बातों में लालची कहा जाएगा। यह लालच नहीं कहलाता। मेरे साथ रहना तो स्वार्थ भी नहीं कहलाता। मेरे साथ आप जो स्वार्थ रखोगे, वह परमार्थ ही है!

प्रश्नकर्ता : मैं यहाँ आया और खिंचकर आया हूँ लेकिन ज्ञान लेने के लालच से ही आया हूँ न!

दादाश्री : वह लालच तो सब से अच्छा! वह सर्वोत्तम लालच है! जो यह लालच नहीं रखे न, उसे तो हम कहेंगे कि, 'ज़रा कमी है आपमें, पक्के नहीं हो।' लालच तो इसी का रखने जैसा है। बाकी, संसार में किसी चीज़ का लालच रखने जैसा है नहीं। लालच तो इसी चीज़ का रखने जैसा है। आपने रखा वह उत्तम काम किया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह ज्ञान का लालच कहलाएगा?

दादाश्री : किस हेतु के लिए लालच है, वह देखा जाता है क्योंकि लालच तो बहुत अच्छा काम करता है, यदि हेतु अच्छा हो तो।

प्रश्नकर्ता : यह लालच शुभ हेतु के लिए है, ऐसा माना जाएगा न?

दादाश्री : शुभ हेतु नहीं, यह पूर्णकाम का लालच! शुभ हेतु तो अभी दान देना या और कुछ सीखे तो उसमें शुभ हेतु है ही। उसके बाद वापस अशुभ हेतु आएगा। लेकिन जहाँ पर शुद्ध हेतु है या जहाँ पर पूर्णकाम होना है, फिर कोई काम बाकी नहीं रहे ऐसा पूर्णकाम स्वरूप हो, तो वह शुद्ध हेतु है!

शास्त्र में नहीं, सुना नहीं....

प्रश्नकर्ता : अब ज्ञानी के अलावा ऐसे स्पष्टीकरण कौन दे सकता है? वर्ना, जगत् में से छूटना तो कितना जोखिमी है!

दादाश्री : ऐसा भान ही नहीं है न! वास्तव में तो, मैं बंधा हुआ हूँ या नहीं, यदि ऐसा जान ले तब भी बहुत अच्छा लेकिन बंधा हुआ है

इसलिए वह समझता है कि 'सभी लोग यह करते हैं न!' यानी उसे बहाना मिल गया। अरे, सभी कुएँ में गिर रहे हों तो तुझे भी कुएँ में गिरना चाहिए?

लेकिन लालच छूटा कि उसकी सुगंधी आती है!

प्रश्नकर्ता : अध्यात्म में लालची शब्द कभी नहीं सुना।

दादाश्री : कोई पृथक्करण करता ही नहीं न! पृथक्करण कौन करेगा? यह तो हम विस्तारपूर्वक समझा देते हैं। जिन्होंने शास्त्र पढ़े होते हैं, वे चार प्रकार बताते हैं क्रोध-मान-माया-लोभ! तब कोई कहेगा, 'वह तो साहब, शास्त्रों में है। कुछ नया बताइए न!' यानी कि पहले से चली आई है। वह शास्त्र जब बना होगा न, तभी से उसमें लिखा है 'जली हुई डोरी से साँप की भ्रांति हुई, उसी प्रकार यह जगत् भ्रांतिवाला दिखाई देता है!' तो अभी तक भी इन शब्दों को बदलनेवाला कोई निकला नहीं है। उन्हीं शब्दों से चल रही है गाड़ी! 'सिमिली' ही है यह। और कोई 'सिमिली' नहीं आती है। महान पुरुषों ने भी यही 'सिमिली' दी है। और दूसरी, 'सीप में चांदी की भ्रांति हुई।' ये दो शब्द तो पहले से चले आए हैं। तू दो नए शब्द बोल। शब्द नए होने चाहिए या 'डिज़ाइन' वाले होने चाहिए या 'प्रैक्टिकल' होने चाहिए, ऐसा होना चाहिए। तभी किसी व्यक्ति में परिवर्तन होगा, नहीं तो, 'पहले से चली आई,' उसे क्या करना है? वह 'सिमिली' तो अगर मैं पढ़ता तो मुझे भी मिल जाती!

इसलिए कृपालुदेव ने कहा है न, कि जो शास्त्रों में नहीं है, सुनने में नहीं आया, फिर भी अनुभव में आए, ऐसी जिनकी वाणी है, वे ही 'ज्ञानी' कहलाते हैं! वर्ना फिर उसे 'ज्ञानी' कहेंगे ही नहीं न!

[५]

मान : गर्व : गारवता

मान, ममता रहित

'ज्ञानीपुरुष' से तो सभी कुछ पूछा जा सकता है। यह 'अक्रम विज्ञान' ऐसा है कि यहाँ हर एक चीज़ पूछी जा सकती है। पैंतालीस 'आगमों' की हर एक चीज़ पूछी जा सकती है और वेदांत की भी सभी बातें पूछी जा सकती हैं। यह तो कुदरती रूप से हुआ है! और सब से बड़ा आश्चर्य, ग्यारहवाँ आश्चर्य माना जाता है। यहाँ एक घंटे में आपका सारा काम हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : पूर्वजन्म के आपके इतने अच्छे कर्म थे, फिर भी आपको क्यों इतनी बड़ी उम्र में ज्ञान हुआ? पहले क्यों नहीं हो गया?

दादाश्री : ऐसा है न, जब हमारा मोहनीय कर्म खत्म हो जाएगा तभी ज्ञानावरण टूटेगा। ज्ञान का आवरण कब टूटता है? मोहनीय कर्म खत्म होने के बाद। हमें किस चीज़ का मोह था? हमें किसी प्रकार का मोह नहीं था। पैसों का या विषय का कोई मोह नहीं था। सिर्फ मान का ही मोह!

प्रश्नकर्ता : हाँ। यह समझाइए न! 1958 में आपमें ज्ञान का अविर्भाव हुआ, उससे पहले की आपकी आंतरिक स्थिति के बारे में ज़रा विस्तारपूर्वक समझाइए न!

दादाश्री : हाँ, ज्ञान का अविर्भाव होने से पहले क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष और उनमें भी विशेष रूप से मान का ज़ोर था, साम्राज्य ही मान का था और उसी के आधार पर बाकी के जी रहे थे। मान का

ही ज़ोर! और अभिमान का ज़ोर नहीं। अभिमान तो, जब ममता हो तब अभिमान होता है। जबकि यह तो ममता रहित मान!

प्रश्नकर्ता : ममता रहित मान कैसा होता है?

दादाश्री : मैं ही, मैं ही कुछ हूँ, मैं ही कुछ हूँ, ऐसा।

प्रश्नकर्ता : वह तो ममता कहलाती है।

दादाश्री : नहीं। ममता तो दूसरी चीज़ है। 'यह मेरा है,' उसे अभिमान कहते हैं। 'यह मेरा है, यह कितना अच्छा है, यह मेरा है,' इसे अभिमान कहते हैं और मान क्या है 'मैं' का ही बहुवचन, उसे मान कहते हैं। मान तो रहता है। उसमें हर्ज नहीं है। अभिमान, ममता को प्रदर्शित करता है। जब ममता हो तभी अभिमान होता है। ममता का लक्षण शुरू से मुझ में कम ही था, बिल्कुल ही कम! इस मान का ही था कि ''मैं कुछ हूँ,' सभी लोगों से बढ़कर 'मैं कुछ हूँ,'' वह सब गलत था। कोई बरकत नहीं थी। बस, इतना ही कि मान बैठे थे।

मैं 'ज्ञान' से पहले के जीवन की बात कर रहा हूँ, कि क्रोध-मान-माया-लोभ, सब इसके, मान के 'अन्डरहैन्ड' बनकर रहते थे और ममता का गुण शुरू से था ही नहीं।

मन में माना हुआ मान

यानी मन में ऐसा समझता था कि 'मैं ही हूँ। इस दुनिया में और कोई है ही नहीं।' देखिए, खुद को न जाने क्या समझ बैठे थे! जायदाद में कुछ नहीं था। दस बीघा जमीन और एक मकान, उसके अलावा और कुछ नहीं था। फिर भी चरोतर का राजा हो ऐसा रोब रहता था। क्योंकि आसपास के छः गाँव के लोगों ने हमारा दिमाग़ चढ़ा दिया था। दहेजिया दूल्हा, जितना माँगे उतना दहेज मिलता, तभी दूल्हा विवाह करने जाता था। उससे दिमाग़ में यह मद रहा करता था। वह पूर्वजन्म से लाया था, इसलिए ऐसी खुमारी थी सारी!

उसमें भी मेरे बड़े भाई ज़बरदस्त खुमारी वाले थे। अपने बड़े भाई

को मैं मानी कहता था, जबकि वे मुझे मानी कहते थे। तब एक दिन मुझसे क्या कहा? 'तेरे जैसा मानी मैंने नहीं देखा।' मैंने पूछा, 'किसमें मेरा मान देख रहे हैं?' तब कहा, 'हर एक बात में तेरा मान रहता है।'

और उसके बाद मैंने जाँच की तो सभी बातों में मेरा मान दिखाई दिया और वही मुझे काटता था। और मान के लिए क्या किया? हर कोई बुलाता कि 'अंबालाल भाई, अंबालाल भाई!' अब 'अंबालाल' तो कोई कहता ही नहीं था न! छः अक्षरों से बोलता और फिर आदत पड़ गई, 'हेबिच्युएटेड' हो गए उससे। अब मान बहुत भारी था इसलिए मान का रक्षण करते थे न! तब फिर 'अंबालाल भाई' के छः अक्षर नहीं बोले और जल्दबाज़ी में कोई 'अंबालाल' बोल उठे, तो वह क्या कोई गुनाह है उसका? छः अक्षर एक साथ एकदम जल्दबाज़ी में कैसे बोले जा सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप ऐसी आशा रखते थे न?

दादाश्री : अरे, मैं तो फिर तोल करता था कि ''इसने वापस मुझे 'अंबालाल' कहा? क्या समझता है? क्या 'अंबलाल भाई' नहीं बोला जा सकता था उससे?'' गाँव में दस-बारह बीघा ज़मीन हो और दूसरा कोई भी रौब नहीं हो तब भी न जाने मन में क्या मान बैठा था? हम छः गाँव के 'अमीन, वांकडावाले'! इधर आपके यहाँ 'देसाई वांकडावाले' होते हैं न? और वे भी रौबीले होते हैं।

अब सामनेवाला 'अंबालाल भाई' नहीं कहे तो मुझे पूरी रात नींद नहीं आती थी, बेचैनी होती रहती थी। लो! उससे क्या मिल जाता? इससे क्या मुँह मीठा हो जाता? इंसान को कैसा स्वार्थ रहता है! वह स्वार्थ, उसमें कोई स्वाद ही नहीं होता है। फिर भी मान बैठा है, वह भी लोकसंज्ञा से। लोगों ने बड़ा बनाया और लोगों ने बड़ा माना भी सही! अरे, इन लोगों के माने हुए का क्या करना है?

ये गाय-भैंस अपने सामने देखती रहती हैं, सभी गाय अपने सामने देखती रहती हैं, और फिर कान हिलाएँ तो हमें ऐसा समझ जाना है कि

ये हमें मान दे रही हैं? ऐसा है यह सब तो। अपने मन में मान लेते हैं कि ये लोग सब मान सहित देख रहे हैं, मन में मान लेते हैं! वे तो सभी अपने-अपने दु:ख में है बेचारे, अपनी-अपनी चिंता में हैं। वे क्या आपके लिए पड़े हैं? फालतू हैं? हर कोई अपनी-अपनी चिंता में घूम रहा है!

वह सब मान के लिए ही

मैंने लोगों से कहा था, 'आपका काम करवा जाना मुझसे, जो कुछ भी हो, वह। सलाह मशवरा, और कुछ भी हो! मेरे पास पैसे होंगे तो वे भी दूँगा, लेकिन आपका काम करूँगा। आपको मेरा काम नहीं करना है।' क्योंकि अगर आपको मेरा काम करने को मना करूँ न, तो आपको मेरी तरफ से भय नहीं रहेगा। रात को कभी सिनेमा गए हो और वहाँ से आपके यहाँ आएँ, तब आप सोचते हो, 'ये कभी भी नहीं आते, और ऐसे आ गए हैं! ज़रूर इन्हें कुछ चाहिए!' तो यह तो बल्कि आप 'सती' पर दृष्टि बिगाड़ रहे हो। हमें कुछ चाहिए नहीं और वे दृष्टि बिगाड़ें, अंदर डर रखें कि 'कुछ माँगेगा, माँगेगा।' तब मैंने सब से कह दिया कि 'ये हाथ फैलाने के लिए नहीं हैं इसलिए आपको जो भी ज़रूरत हो, वह मुझे बताना।' इससे सब निर्भय हो गए।

रोज़ चार-चार गाड़ियाँ घर के आगे पड़ी रहती थीं। मामा की पोल में पंद्रह रुपये का किराया, संस्कारी पोल (मुहल्ला)। आज से पैंतालीस साल पहले कहाँ लोग बंगले में रहते थे? मामा की पोल बहुत उत्तम मानी जाती थी। उन दिनों हम मामा की पोल में रहते थे और पंद्रह रुपये किराया। उन दिनों लोग सात रुपये के किराए में पड़े रहते थे, हम पंद्रह रुपये में। यों बड़े कॉन्ट्रैक्टर कहलाते थे। अब वहाँ मामा की पोल में बंगले में रहने वाले आते थे मोटर लेकर क्योंकि परेशानी में फँसे हुए होते थे, वे यहाँ पर आते थे। तो उल्टा-सीधा करके आए होते थे न, तब भी उन्हें 'पिछले दरवाज़े' से निकाल देता था। 'पिछला दरवाज़ा' दिखाता कि यहाँ से निकल जाओ। अब गुनाह उसने किया और 'पिछले दरवाज़े' से मैं छुड़वा देता था। यानी गुनाह मेरे सिर पर लिया। किसलिए? मान खाने के लिए! 'पिछले दरवाज़े' से निकाल देना, क्या वह गुनाह

नहीं है? यों फिर अक्ल लगाकर दिखाया था, उससे फिर वे बच जाते थे। इसलिए फिर वे हमें मान सहित रखते, लेकिन गुनाह हमें लगता था। फिर समझ में आया कि अभानता में ये सभी गुनाह हो जाते हैं, मान खाने के लिए। फिर मान पकड़ में आया। बहुत चिंता होती थी मान की!

प्रश्नकर्ता : आपने मान को पकड़ा, फिर मान को कैसे मारा?

दादाश्री : मान मरता नहीं है। मान को यों उपशम किया। बाकी, मान मरता नहीं है क्योंकि मारनेवाला खुद ही है, किसे मारेगा? खुद अपने आपको कैसे मार सकता है? आपको समझ में आया न? अर्थात् उपशम किया और जैसे-तैसे दिन बिताए।

क्रोध से भी भयंकर है उत्तापना

मुझ में बचपन से ही लोभ नहीं था लेकिन मान बहुत भारी था, इसलिए क्रोध भी भारी था!

प्रश्नकर्ता : मान में ज़रा सी भी मगज़मारी हुई तो आप कोपायमान हो जाते थे, ऐसा न?

दादाश्री : मान में एक बाल जितनी भी कमी हो जाए न, तो भयंकर उत्तापन होता था और सामनेवाला भी काँप जाता था बेचारा! ऐसा क्रोध, सामने वाले को जलाकर रख दे ऐसा क्रोध निकलता। ऐसा ज़बरदस्त क्रोध था क्योंकि अन्य कोई लोभ वगैरह नहीं था न! कई बार तो मेरे क्रोध से, अज्ञानता में मेरा जो क्रोध था वह यदि सचमुच में भभक उठे तो सामनेवाला व्यक्ति वहीं के वहीं मर जाए। एक सिख तो मरने जैसा हो गया था, तो मुझे उसे देखने जाना पड़ा था। जब सिर पर हाथ फेरा तब जाकर ठीक हुआ।

यानी हम इस स्थिति में थे। घर पर बहुत रुपये नहीं थे। सिर्फ ऊपर का दिखावा! उसमें यह परेशानी, बेहद चिंता!

अच्छा लगनेवाला अहंकार दुःखदाई बना

जबकि आसपास के लोग क्या कहते थे? बहुत सुखी इंसान है!

कॉन्ट्रैक्ट का धंधा, पैसे आते-जाते रहते थे, लोगों पर प्रेम। लोगों ने भी प्रेमदृष्टि कबूल की कि भगवान जैसे इंसान, बहुत सुखी इंसान! लोग कहते थे कि बहुत सुखी इंसान है, जबकि मैं बेहद चिंता करता था और फिर एक दिन जब चिंता मिट ही नहीं रही थी, नींद ही नहीं आ रही थी, तब फिर मैं बैठा और चिंता की पुड़िया बना दी। ऐसे मोड़ा, वैसे मोड़ा फिर उस पर विधि की। मंत्रों से विधि की और फिर दो तकियों के बीच में रखकर सो गया, तब अच्छी नींद आ गई। और फिर सुबह पुड़िया को विश्वामित्री नदी में बहा आया, फिर चिंता कम हो गई। लेकिन जब 'ज्ञान' हुआ तब पूरे जगत् को देखा-जाना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'ज्ञान' से पहले इसकी भी जागृति तो थी न, कि यह अहंकार है, ऐसी?

दादाश्री : हाँ, वह जागृति तो थी। अहंकार है, वह भी पता चलता था, लेकिन वह अच्छा लगता था। फिर जब बहुत चुभा तब पता चला कि यह तो अपना मित्र नहीं है, यह तो अपना दुश्मन(शत्रु) है, मज़ा नहीं है इनमें किसी में।

प्रश्नकर्ता : वह अहंकार कब से दुश्मन लगने लगा?

दादाश्री : रात को नींद नहीं आने देता था न, तब समझ गया कि यह कैसा अहंकार! इसलिए एक रात को यों पुड़िया बनाकर सुबह विश्वामित्री नदी में बहा आया। क्या हो सकता था लेकिन?

प्रश्नकर्ता : पुड़िया में क्या रखा?

दादाश्री : यह सारा अहंकार! खत्म करो इसे यहीं से। किसके लिए लेकिन? बिना बात के, न लेना, न देना! लोग कहते 'बहुत सुखी हैं' और मुझे तो यहाँ सुख की बूंद भी नहीं दिखती थी, अंदर अहंकार की चिंता-परेशानियाँ होती रहती थीं न!

अहंकार को ज़रा सी चोट लगी की आ बनी। पूरी रात नींद नहीं आती थी। अरे, पहले तो किसी के विवाह में जाऊँ न, तो वहाँ पर किसी ने ऐसे जय-जय किया हो लेकिन देखा नहीं हो तो ग़ज़ब हो जाता था।

खुद अपने आपको न जाने क्या मान बैठा था। कुछ भी नहीं था फिर भी, लेकिन मन में मान बैठा था! एक स्टेट हो तो समझो ठीक है कि बड़ौदा स्टेट थी। यह तो कुछ भी नहीं था न! बिना स्टेट का आडंबर। आडंबरी लोग! और कपड़े तो ऐसे पहनता था जैसे बहुत बड़ा, गायकवाड़ सरकार का रिश्तेदार हो न! अब इससे क्या हासिल करना था? लेकिन बाद में फिर अच्छे से राह पर आ गया।

प्रश्नकर्ता : उस अहंकार से जुदा रहकर बर्तते थे? ऐसा कुछ था?

दादाश्री : नहीं। जुदा नहीं रहे, तभी तो यह दशा हुई थी न! तभी नींद नहीं आती थी न! जुदा रहे होते तो बैठा नहीं देते उसे?

लेकिन सिर्फ अहंकार को ही पोषण मिलता था। कपट नहीं, ममता तो बिल्कुल नहीं। ममता थी ज़रूर, लेकिन बहुत कम। अहंकार की ही ममता, पैसों की ममता नहीं। यानी आता कुछ भी नहीं था और अहंकार बेहद था। सिर्फ इतना ही आता था... किसी को 'हेल्प' करना!

खानदान का अहंकार

मुझ में मान बहुत था। जैसे न जाने मैं कितना बड़ा! क्योंकि क्षत्रिय कुल में जन्म हुआ था। पटेल अर्थात् क्षत्रिय। इसलिए वह दहेज देते हैं न! तो जन्म लेते ही बड़ी बातें करते कि इतना चेक आएगा और इतना आएगा। बड़े चेकवाला दूल्हा आया! और फिर वैसे गुण भी थे। वे दहेज यों ही नहीं दे देते थे। ऐसे गुण हों, कुल के गुण हों, उसी वजह से देते थे और सिर्फ कुल से ही नहीं चलता था, जाति और कुल दोनों होने चाहिए, तब पैसे देते थे। वर्ना देते क्या? सिर्फ 'कुलवान' कैसा होता है? 'नोबल' होता है। 'नोबल' होता है इसलिए कुलवान के कुछ अच्छे गुण होते हैं। वह किसी को धोखा नहीं देता, कोई लुच्चाई नहीं करता। कोई कुलवान और जातिवान, दोनों हो तब दहेज के लायक माना जाता था। जातिवान का मतलब क्या? नोबल भी होता है और यों किसी को ठगता भी नहीं। ठगने का कोई भी गुण उसमें नहीं होता।

अब नोबल किसे कहें? जो जाते हुए भी लुटता है और आते हुए भी लुटता है। यानी लेते समय खुद लुटता है, सामनेवाला उसे ठग लेता है और देते समय भी खुद ठगा जाता है, ऐसा सोचकर कि 'उस बेचारे को दु:ख होगा, इसलिए जितना देना है उससे ज़रा ज़्यादा दे दो।' यानी दोनों तरफ से लुटता है। उसे खानदानी कहते हैं, वह नोबल कहलाता है।

और यह खानदानियत का अहंकार है, उसमें परेशानी नहीं। वह अहंकार खानदानियत की हिफाज़त करता है। हाँ, वर्ना यदि अहंकार नहीं हो तो खानदानियत गायब हो जाएगी, दिवाला निकाल देगा।

हमारे बड़े भाई यहाँ बड़ौदा में रहते थे। जब मैं बड़ौदा आऊँ तब आसपासवाला कोई कहता, 'हमारा बनियान वगैरह ले आना, हमारे लिए यह ले आना, हमारे लिए दो चड्डियाँ लेते आना।' सभी मित्र कहते हैं न? और मेरा स्वभाव कैसा? जिस दुकान के सामने खड़ा हुआ और पूछा तो वहीं से लेना। फिर कम-ज़्यादा हो तो भी चला लेता था। उसे दु:ख नहीं हो इसलिए उसी के यहाँ से ले लेता। मैं अपना स्वभाव समझता था और जो लोग चीज़ें मँगवाते थे, वे लोग सात जगह पर पूछ-पूछकर, सभी का अपमान कर-करके लाते थे। मैं जानता था कि ये लोग ऐसे हैं कि मुझसे दो आने कम में लाएँ और मुझसे मँगवाया है तो मेरे दो आने ज़्यादा खर्च होने वाले हैं। यानी मैं दो आने वे और एक आना बढ़ाकर, ऐसा करके तीन आने कम करके उन्हें कीमत बताता था। बारह आने दिए होते थे तो उनसे ऐसा कहता था कि 'मैंने नौ आने दिए हैं' ताकि वे ऐसा नहीं कहें कि, 'मुझसे कमिशन निकाल ले गए। मैं तो दस आने का लाता था और आपको मुझे बारह आने देने पड़े। मतलब बीच में आपने दो आने ले लिए।' लोग मुझ पर इस तरह कमिशन का आरोप न लगाएँ इसलिए तीन आने कम लेता था, तीन आने कम कर देता था। हाँ, वर्ना कहते, 'दो आने कमिशन निकाल लिया!' ले! ''अरे, नहीं निकाला 'कमिशन'। मैं कमिशन निकालना सीखा ही नहीं।''

हमने नहीं लिया कमिशन, पूरी ज़िंदगी में नहीं किया ऐसा।

सामने वाले व्यक्ति ने कहा हो कि, 'वहाँ से मेरा ज़रा इतना काम कर दो न!' तो क्या है कि अगर पच्चीस हज़ार का माल दिलवाना हो तो उसमें हम तीन सौ-चार सौ कमिशन खा जाएँ तो? क्या सामनेवाला व्यक्ति ऐसा जानता था कि यह 'कमिशन' खाएगा? क्या इसलिए उसने आपको दिया है? नहीं। यानी उसने हमें सौंपा और उसमें यह विश्वासघात?! ऐसा शोभा नहीं देता अपने को!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह सब तो नैचुरल है न?

दादाश्री : क्या नैचुरल? पैसे खाने चाहिए? पैसे नहीं खाने चाहिए। यह तो खानदानियत है। अब अज्ञान दशा में भी यदि खानदानियत का अहंकार नहीं हो तो खानदानियत का दिवालिया निकल जाएगा। हम तो खानदानी! खानदानी इंसान से कुछ गलत हो ही नहीं सकता। कुछ भी गलत नहीं करे, उसी को कहते हैं खानदानी। जो कोई भी लोकनिंद्य कार्य नहीं करे, उसे कहते हैं खानदानी। जो खानदानी होता है, उससे कोई लोकनिंद्य कार्य हो ही नहीं पाता। खानदानी से ऐसा कार्य नहीं होता कि लोग निंदा करें। यदि लोग निंदा करें, तब भी यदि वह कहे कि 'हम खानदानी हैं,' तो वह झूठा खानदानी कहलाएगा। कोई एक्सेप्ट करेगा ही नहीं न! लोग निंदा करें और खानदानी कहलाए, ये दोनों एक साथ हो ही नहीं सकते न!

अब, कोई काम करे और कह दे कि 'मैंने किया,' तो उसकी खानदानियत चली जाएगी। खानदानी तो दोनों तरफ नुकसान उठाता है, आते हुए भी नुकसान उठाता है और जाते हुए भी नुकसान उठाता है। जबकि आरी जैसा इंसान तो दोनों तरफ से काटता है, देते हुए भी काटता है और लेते हुए भी काटता है!

मान की भूख

अब बचपन में हर एक बात में जिसे मान मिला हो, उसे बड़ी उम्र में मान की भूख नहीं रहती। बचपन में मान की भूख मिट गई हो तो उसे मान की नहीं पड़ी होती। अपमान की *तरछोड़* (तिरस्कार सहित

दुतकारना) लगे तो इंसान खत्म हो जाता है। बचपन में दो–पाँच–दस बार जिसका अपमान हो जाए, मान नहीं मिले और मान को *तरछोड़* लगे, तब वह मान का ही *नियाणां* (अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक चीज़ की कामना करना) करता है। वह बड़ा होकर बहुत मानी बनता है, ज़बरदस्त मानी बनता है। बचपन से ही उसने तय किया होता है कि मुझे इन सब से 'आगे' जाना है। यानी फिर वह हेन्डल मारकर कहता है, 'इन सब से आगे आ जाऊँ, तभी सही है,' और वह आगे आता भी है! हाँ, तन–तोड़ मेहनत वैगरह सबकुछ करता है, लेकिन आगे पहुँचता है और जिसे बचपन में मान मिला हो, वह मान के लिए अधिक आगे नहीं बढ़ता।

अब, अगर मान बहुत मिले तो मान की भूख मिट जाती है। 'आउट ऑफ प्रपॉर्शन' (अतिशय) मान मिलता ही रहे, तो फिर मान की भूख मिट जाती है। फिर उसे मान अच्छा नहीं लगता। हमें क्या कम मान देते होंगे लोग? ऐसा मान आपको मिले तो भूख ही मिट जाए फिर।

मान के स्वाद से लोभ छूटता है

आपको मान पसंद है?

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी तक अपमान के भय के कारण जो संकुचितता थी या मान की हानि होगी, उससे डिप्रेशन रहता था, जिसके कारण मैं किसी प्रक्रिया में भाग ही नहीं लेता था, दूर हट जाता था तो यह मान मिला तो उससे मुक्तता आती गई।

दादाश्री : नहीं, यह लोभग्रंथि है इसलिए उसे मान मिलने से जो स्वाद आया तो लोभ की ग्रंथि टूटने लगी। लोभग्रंथि टूटती है। मान का स्वाद चखने को मिला, उससे लोभ की ग्रंथि टूट जाती है, एकदम से!

अब जो मान की गाँठ होती है न, वह मान उसे भटकाता रहता है। जहाँ मान मिल रहा हो, वहाँ उसे कोई कहे कि 'आपके नाम की एक तख़्ती लगवा देंगे।' तो कहेगा, 'पचास हज़ार लिख लो।' मान मिलने पर लोभ छोड़ देता है। जबकि लोभी तो लाख मान मिले तब भी लोभ

नहीं छोड़ता। ऐसे लोभी तो इस काल में ढूँढने भी मुश्किल है। इस काल में ऐसे लोभी हैं ही नहीं। लोभी तो तीसरे या चौथे *आरे* (कालचक्र का एक हिस्सा) में थे। बहुत ज़बरदस्त लोभी। इस काल में न तो मान का ठिकाना है, न ही लोभ का ठिकाना।

मान व मान की भीख

जिसे 'कुछ भी नहीं चाहिए,' उसका सारा काम हो जाता है। चीज़ सामने से आकर गिरे तब भी नहीं चाहिए। आपको तो चाहिए न? क्या-क्या चाहिए?

प्रश्नकर्ता : ऐसा पता चलता है कि अभी तक मान चाहिए।

दादाश्री : मान चाहिए उसमें हर्ज नहीं है लेकिन मान के लिए उपयोग रहा करता है? कि मान कैसे मिले, ऐसा?

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा उपयोग नहीं रहता।

दादाश्री : फिर यदि मान नहीं मिले तो?

प्रश्नकर्ता : तो कोई परेशानी नहीं।

दादाश्री : तब फिर कोई परेशानी नहीं है। वर्ना मान की कामना हो तो उसी को भीख कहते हैं। किसी भी चीज़ की कामना, वह भीख कहलाती है। कामना, भीख वगैरह निकाली नहीं माने जाते। कामना, भीख लगभग एक ही अर्थ वाले शब्द हैं। वर्ना, यदि उस तरफ उपयोग नहीं जाए तो कुछ स्पर्श ही नहीं करेगा। यानी इसमें मार्ग नहीं रुंधता, लेकिन भीखवाला तो 'दूसरे मार्ग पर चला गया।' ऐसा कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कोई मान दे और अच्छा लगे तो, उसे मान की भीख कहते हैं?

दादाश्री : नहीं। अच्छा लगता है, वह तो स्वाभाविक रूप से अच्छा लगता ही है। आपको चीनी वाली चाय पसंद है या बिना चीनी की? चीनी वाली चाय स्वाभाविक रूप से अच्छी ही लगती है, लेकिन

यदि कोई कहे कि, 'भाई, मुझे तो बगैर चीनी की ही चाय अच्छी लगती है, बोलो!' तब मैं कहूँगा कि यह अहंकार है। इसके बजाय चीनी वाली चाय पी न, चुपचाप। स्वादिष्ट तो रहेगी! सही है या गलत?

प्रश्नकर्ता : अब, यदि मान अच्छा लगे, तो वह कैसा कहलाएगा?

दादाश्री : वह पसंद है तो उसमें हर्ज नहीं है। पसंद तो आएगा न! लेकिन भले ही मान अच्छा लगे, कोई हर्ज नहीं। कोई कहे कि, 'उस मान का मुझसे *निकाल* नहीं हो सकता,' तो मैं कहूँगा कि, 'अब यदि इस जन्म में *निकाल* नहीं हो पाए, तो अगले जन्म में *निकाल* करेंगे।' अभी मान खा ले, चैन से!

मान चखो, लेकिन...

अर्थात् मान की इच्छा नहीं होनी चाहिए। मान दिया जाए और आपकी थाली में आए तो खाओ चैन से। धीरे से, शांति से खाओ, रौब से खाओ लेकिन उसकी इच्छा नहीं होनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह मान भुनाए, तो उसमें उसे कोई परेशानी नहीं आएगी?

दादाश्री : मान भुनाने में हर्ज क्या है? मान को भुना सकते हैं, तब तो वह खर्च हो गया। अब फिर से खड़ा नहीं होता है न? मान तो चखो। मैं कहता हूँ न कि चखो। फिर क्या वहाँ आगे जाकर चखना है? क्या वहाँ सिद्ध गति में मान मिलनेवाला है? यहाँ मिलता है उतना चखो चैन से। लेकिन आदत मत डाल देना, 'हेबिच्युएटेड' मत हो जाना।

प्रश्नकर्ता : वह मान नीचे नहीं गिरा देगा?

दादाश्री : वह तो, अभिमान नीचे ले जाता है। यानी लोग मान दें तो चखने में हर्ज नहीं है लेकिन साथ-साथ ऐसा भी रहना चाहिए कि 'यह नहीं होना चाहिए।' और मान दे तो उसे लेने की अपने यहाँ छूट दी है। मान की छूट है, लेकिन मान देने वाले पर राग नहीं होना चाहिए।

मान में कपट : मान की विकृति

प्रश्नकर्ता : इस मान को चखे, तो फिर वह जागृति को 'डाउन' नहीं करता, दादा?

दादाश्री : जागृति कम ही हो जाती है न! अब जहाँ मान में कपट हो वहाँ पर जागृति उत्पन्न नहीं होती। जहाँ मान में कपट हो वहाँ मान दिखाई ही नहीं देता।

प्रश्नकर्ता : मान सहज रूप से मिले तो चखने में आपत्ति नहीं है लेकिन वह फिर विकृत होने लगे और उसकी इच्छा होती है। ऐसा होता है न, फिर?

दादाश्री : ऐसा सब होता है, लेकिन वैसी इच्छा तो होनी ही नहीं चाहिए और इच्छा हो तो नुकसानदायक है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मान की वह विकृति कौन-कौन सी और किस हद तक की हो सकती है?

दादाश्री : बहुत तरह-तरह की विकृतियाँ होती हैं। मान की विकृतियाँ तो बहुत सी हैं और वह मान की विकृति ही इंसान को पीछे धकेल देती है। यानी मान चखने में हर्ज नहीं है। कोई आपसे कहे 'आइए, पधारिए साहब, ऐसा है, वैसा है।' आप वह मान आराम से चखो-करो, लेकिन उसका आपको कैफ नहीं चढ़ जाना चाहिए। हाँ, चखो आराम से, और अंदर संतोष होगा लेकिन यदि कैफ चढ़ा तो वह हो जाएगा कुरूप! बाकी, जब तक मान है तब तक इंसान कुरूप दिखता है और कुरूप बना इसलिए किसी को आकर्षण नहीं होता। कुरूप दिखता है या नहीं दिखता? चेहरे पर रूप होता है, फिर भी कुरूप दिखता है।

मान किससे टिका हुआ है? खुद सामने वाले को हल्का मानता है इसलिए मान टिका हुआ है। इसलिए उसे हल्का मत मानना और 'यह तो मेरा *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) है' ऐसा कहना, तो मान चला जाएगा।

अपमान करनेवाला, उपकारी

प्रश्नकर्ता : अब तो ये मान-अपमान बहुत चुभते हैं, इनसे मुक्त कैसे हो सकते हैं?

दादाश्री : अपमान चुभता है या मान चुभता है?

प्रश्नकर्ता : यों तो अपमान।

दादाश्री : अरे, मान भी बहुत चुभता है। यदि मान भी ज़रा ज़्यादा दे न तो इंसान खड़ा हो जाता है। मान बहुत दे न, तो वहाँ से ऊबकर भाग जाता है इंसान। यदि हररोज़ पूरे दिन मान देते रहें न, तो इंसान ऊबकर वहाँ से भाग जाता है। अपमान तो घड़ीभर भी अच्छा नहीं लगता। मान तो कुछ समय तक अच्छा भी लगता है। इसके बावजूद इंसान अपमान सहन कर सकता है, मान सहन नहीं कर सकता। हाँ, मान सहन करना तो सीसा पीने के बराबर है। बेटे की शादी हो और, वह नीचे झुककर पिता के पैर छूए तब पिता खड़ा हो जाता है, उठ जाता है। 'अरे, तू क्यों हिल रहा है?' तब वह कहता है, 'सहन नहीं होता।'

प्रश्नकर्ता : इसके बावजूद भी अपमान अच्छा न लगे तो उसे क्या कहा जाएगा?

दादाश्री : अपमान अच्छा न लगे, वह तो बहुत ही गलत कहा जाएगा। अपमान तो अच्छा नहीं लगता और वह तो, हम सभी को अपमान अच्छा नहीं लगता। वह अच्छा लगे ऐसी शक्ति लोगों में उत्पन्न नहीं हुई है। उन्हें तो अपमान करनेवाला किराए पर रखना चाहिए लेकिन कोई किराए पर रखता ही नहीं है न! लेकिन किराएवाला सचमुच का अपमान नहीं करेगा न! और लोग तो, जब कोई सचमुच में अपमान करे, तब दु:खी हो जाते हैं। जो सचमुच में अपमान करे, उसे उपकारी मानना लेकिन तब इंसान दु:खी हो जाता है। वास्तव में जब कोई अपमान करे तब दु:खी नहीं हो जाना चाहिए। अत: जब कोई अपमान करने वाले मिल जाएँ न, तो बहुत उपकारी मानकर 'यह साथ ही रहे तो बहुत अच्छा' ऐसा तय करना।

अपमान का प्रेमी

कोई व्यक्ति कुछ अपमान करे, उस समय वह अपमान करनेवाला व्यक्ति, जब आपके कर्मों के उदय हों, तब वह निमित्त मिलता है। आपके कर्म का उदय आपको भुगतना है, उसमें उसका क्या दोष बेचारे का? अत: करके देखना यह प्रयोग इस तरह। ''अपमान करे, शायद गालियाँ भी दे, फिर भी इतना मानना कि 'अपने कर्म का उदय है।' या फिर 'हम रास्ते पर जा रहे हों और पहाड़ पर से लुढ़कते-लुढ़कते इतना बड़ा पत्थर आकर गिरे तो हम क्या करेंगे उस समय?''

प्रश्नकर्ता : भाग्य में होगा तो लगेगा ही।

दादाश्री : पहाड़ पर से पत्थर लुढ़कते-लुढ़कते अपने सिर पर गिरा और उससे लगी, तो हम देख लेते हैं कि कोई नहीं है इसलिए उसमें किसी पर कषाय नहीं करते और यदि कोई व्यक्ति इतना छोटा सा कंकड़ मारे तो कषाय करते हैं। इसका क्या कारण है? अपनी समझ में फर्क है। वह कंकड़ मारनेवाला भी पहाड़ है और पत्थर लुढ़का, वह भी पहाड़ है। उसमें शुद्ध चेतन नहीं है, वह मिश्र चेतन है। यह भी पत्थर ही है, पहाड़ ही है बेचारा। इसलिए यदि इतना करोगे तो बहुत हो गया।

ऐसा है जब कोई अपमान कर दे, तब अपमान का प्रेमी नहीं बन सकता न? जितना मान का प्रेमी है, उतना अपमान का प्रेमी नहीं बन सकता, है न? जितना फायदे का प्रेमी है, उतना नुकसान का प्रेमी नहीं बन सकता, है न?

गणतर (सूझ-बूझ) की हेल्प

यदि कोई आपका अपमान करे तो आप क्या करोगे? मेरा कहना है कि जहाँ सत्ता नहीं है, वहाँ कह देना, 'पसंद है'। सत्ता नहीं हो तब क्या करोगे? वर्ना अगर 'पसंद नहीं है' कहेंगे, तो वह कचोटता रहेगा अंदर। पूरी रात कचोटता रहेगा, है न! आपको कभी कचोटा है?

प्रश्नकर्ता : पूरी रात कचोटता रहता है, झटके लगते रहते हैं।

दादाश्री : लोग किस तरह से दिन निकालते हैं, वही देखो न! पढ़े-लिखे लोग परेशानियों को कम कर देते हैं। हो सके वहाँ तक दुःख और परेशानी को कम कर देते हैं और उसे पूरी तरह से खत्म कर देते हैं लेकिन जब इसमें खुद का नहीं चलता तब फिर उलझ जाते हैं। पढ़े-लिखे लोगों में सूझ-बूझ और विवेक-बुद्धि नहीं होती इसलिए वे उलझन में पड़ जाते हैं। शिक्षण होता है, लेकिन विवेक-बुद्धि नहीं है न! विवेक-बुद्धि, वह अलग चीज़ है। मुझे पढ़ना-लिखना नहीं आया, लेकिन सूझ-बूझ और विवेक-बुद्धि बहुत अच्छी है! मैट्रिक 'फेल' हुआ लेकिन विवेक-बुद्धि व सूझ-बूझ से काम निकालना बहुत अच्छी तरह से आता है।

जहाँ प्रतिकार, वहाँ प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : अपमान होने पर अच्छा नहीं लगता तो वहाँ क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन जब अपमान हो, तब हमला नहीं करते हो न?

प्रश्नकर्ता : वाणी ऐसी निकल जाती है, वाणी से 'अटैक' हो जाता है।

दादाश्री : लेकिन आपका भाव वैसा नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : बिल्कुल नहीं। ऐसी वाणी निकलने के बाद खुद को बिल्कुल अच्छा नहीं लगता लेकिन ऐसी वाणी निकली वह असंयम तो हो गया न? उससे लाभ नहीं होता न, कुछ भी!

दादाश्री : लेकिन 'फर्स्ट' संयम अर्थात् अंदर ऐसा रहना चाहिए कि 'नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। ऐसा क्यों हो रहा है?' वह पहला संयम। लेकिन यह संयम शुरू हो जाना चाहिए। वही सच्चा संयम कहलाता है। 'लास्ट' संयम फिर धीरे-धीरे आएगा।

प्रश्नकर्ता : कभी कोई यों अपमान कर दे तो वहाँ मन से प्रतिकार होता रहता है, वाणी से प्रतिकार शायद न भी हो।

दादाश्री : उस समय क्या हुआ, उसमें कोई हर्ज नहीं है। अरे, देह का भी प्रतिकार हो गया, तब भी जितनी-जितनी वह शक्ति होती है, उस अनुसार व्यवहार होता है। जिसकी संपूर्ण शक्ति उत्पन्न हो चुकी है, उसका मन का प्रतिकार भी बंद हो जाता है, फिर भी हम क्या कहते हैं? मन से प्रतिकार चलता रहे, वाणी से प्रतिकार हो जाए, अरे देह से भी प्रतिकार हो जाए, तो तीनों प्रकार की निर्बलता खड़ी हुई तो वहाँ तीनों प्रकार का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : उदाहरण के तौर पर कोई अपमान करे, तो उसे अंदर से इतना ज़बरदस्त मान खड़ा होता है, खुद के ही सामने *त्रागा* खड़ा हो जाता है, तो वह उसे कहाँ तक गिराएगा?

दादाश्री : गिर ही चुके हैं न! *त्रागा* हुआ, उसका मतलब गिर ही चुके हैं न! *त्रागा* हो जाए तो वह सब से अधिक अहितकारी कहलाता है। *त्रागा* होना तो सब से बड़ा भय ही है। वह संपूर्ण रूप से गिर ही गया है, उससे आगे गिरने का रहा ही नहीं।

अपमान की निर्बलता

हम तो क्या कहते हैं? अपमान पसंद नहीं है तो उसमें हर्ज नहीं है लेकिन मान की भीख नहीं रखनी है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अपमान का भय, वह कमज़ोरी तो निकालनी ही है न?

दादाश्री : वह तो जैसे-जैसे अपमान खाते जाएँगे, वैसे-वैसे अपमान की कमज़ोरी कम होती जाएगी। जितना दिया है, वह वापस आता जाएगा। मान की भीख हो तो परेशानी है।

प्रश्नकर्ता : 'अपना अपमान न हो जाए,' यदि वैसा *लक्ष* (जागृति, ध्यान) में रहे तो, वह क्या कहलाएगा?

दादाश्री : अपमान नहीं होने देने के लिए ही वहाँ पर उपयोग रहा करे, संभालता रहे, वह भीख कहलाती है। वर्ना तो चारित्र मोहनीय,

वह तो *निकाली* मोह है। आया और गया, कुछ लेना नहीं और देना नहीं।

आत्मा के लिए, मान-अपमान?

यानी यह सब *पुद्‌गल* की भीख है। मान और अपमान, ये सब *पुद्‌गल* की भीख हैं। हमें तो कोई थप्पड़ मारे तो भी आपत्ति नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह मान-अपमान की जो बात हुई, यह मान-अपमान का पता किसे चलता है? वह देह को नहीं चलता, वह तो आत्मा को ही चलता है न?

दादाश्री : आत्मा के लिए मान-अपमान है ही नहीं। वह भिखारी नहीं है कि उसे मान-अपमान की पड़ी हो। वह तो पूरे ब्रह्मांड का राजा कहलाता है, ब्रह्मांड का भगवान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंदर जो पहुँचता है, उससे तो आत्मा को चोट लगती है न?

दादाश्री : नहीं। आत्मा को नहीं लगता। आत्मा को छूता भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : देह तो अनात्मा है। देह पर क्या असर होगा मान-अपमान का?

दादाश्री : इस बर्फ पर धधकती अग्नि (अंगारा) रख दें तो क्या होगा? अग्नि रख देंगे तो बर्फ जलेगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : जलेगा नहीं, लेकिन बर्फ पिघल जाएगा।

दादाश्री : वह तो उसका खुद का स्वभाव ठंडा है, इसलिए बल्कि अंगारे को ठंडा कर देता है। इसी प्रकार आत्मा को दु:ख स्पर्श नहीं करता। इस देह को भी दु:ख महसूस नहीं होता और आत्मा को भी महसूस नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : तो किसे होता है?

दादाश्री : यह भोगता कौन है ? अहंकार। अहंकार भोगता है और अहंकार को ही होता है। यह अहंकार इसे भोगता है, और उसी को महसूस होता है। आत्मा को कुछ स्पर्श नहीं करता। आत्मा तो अपनी खुद की चीज़ के अलावा किसी और चीज़ को स्वीकार ही नहीं करता। दूसरी चीज़ों को स्वीकार ही नहीं करता।

जिसका अपमान, वह 'खुद' नहीं है

अगर 'चंदूभाई' का कोई अपमान करे तो क्या होगा? रात को नींद नहीं आएगी न? झटके लगेंगे! यों तो क्षत्रिय प्रजा है न, इसलिए झटके लगते हैं। वह अपमान करनेवाला तो सो जाता है, लेकिन यह झटकेवाला नहीं सोता! कोई अपमान करे और हमें नींद नहीं आए, वह किस काम का? ऐसी निर्बलता किस काम की? कोई अपमान करे तो हम क्यों नहीं सोएँ? और अपमान किसी और का होता है, आपका होता ही नहीं। 'आपका' अपमान करे तो सहन करना ही नहीं चाहिए, लेकिन वह 'आपका' अपमान नहीं कर रहा है, तो किसलिए ऐसे हाय-हाय कर रहे हो? यह तो, अपमान किसी और का हो रहा है और 'आप' सिर पर ले लेते हो। 'मेरा किया' ऐसा तो नहीं होना चाहिए न? हाँ, 'आपका' अपमान नहीं करना चाहिए किसी को लेकिन 'आपका' अपमान कोई करता ही नहीं। 'आपको' पहचानेगा ही कैसे? 'आपको' तो कोई पहचानता ही नहीं है न! कोई पहचाने तो 'चंदूभाई' को पहचानता है। वह 'आपको' तो पहचानता ही नहीं न!

अब वह अपमान करनेवाला जब उपकारी माना जाएगा, तब आपका मान खत्म हो जाएगा। अपमान किसका होगा? 'अंबालाल मूलजी भाई का।' तुझे जितना अपमान करना हो उतना कर न! मुझे कहाँ उनके साथ लेना-देना है? वे मेरे पड़ोसी हैं। वे यदि रोएँगे तो मैं उन्हें चुप करवाऊँगा।

लेकिन 'मेरा अपमान हो गया' मानता है इसलिए बेचारे को नींद नहीं आती। वर्ना कितनी ग़ज़ब की शक्ति है एक-एक 'इन्डियन' में! सिर्फ उसे खोलनेवाला नहीं है। फिर भी देखो न अभी, दीन हो गए हैं

लोग! देखो तो सही, जहाँ-तहाँ 'क्यू' में खड़े रहते हैं बेचारे, इतने अधिक दीन हो गए हैं। वर्ना यह प्रजा तो कैसी थी? थोड़ा सा बात करने में, बुलाने में या 'इन्विटेशन' देने में ज़रा अपमान जैसा लगे तो भोजन के लिए नहीं जाते थे, ऐसी यह प्रजा! लेकिन अभी तो देखो न धक्के खाते हैं, 'क्यू' में खड़े रहकर! हम कहे, 'क्यों साहब, क्यू में खड़े हैं?' तब कहेगा, 'बस में जाना है।' 'अरे, रोज़-रोज़ बस में क्यों जाना है? स्वतंत्र रास्ता निकालना नहीं आता तुझे?' तब कहेगा, 'क्या रास्ता निकालूँ? नौकरी करता हूँ न!' यानी यह तो जीवन सारा 'फ्रेक्चर' हो गया है। वर्ना थोड़ा भी अपमान जैसा लगे न, तो भोजन के लिए नहीं जाते थे। वे लोग तो अपमान की बहुत बड़ी कीमत लगाते थे।

अत: इन लोगों को हम ऐसा ज्ञान देना चाहते हैं कि पूरे वर्ल्ड में सभी देशों में घूमे, लेकिन किसी से 'डिप्रेस' न हो सके। 'डिप्रेस' नहीं हों, ऐसा होना चाहिए और जो व्यक्ति किसी को 'डिप्रेशन' देता है, वह खुद 'डिप्रेस' हुए बगैर नहीं रहता। चाहे कितना भी बड़ा व्यक्ति हो, पूरा 'वर्ल्ड' हो, लेकिन वह हमें कैसे डिगा सकता है?

अब अपमान का भय चला जाए तो लोग व्यवहार में ढीठ हो जाएँगे। अपमान का भय है इसलिए ये शर्म में रहते हैं। वर्ना शर्म में रहेंगे क्या ये लोग? और अगर निश्चय में अपमान का भय चला जाए तो मनुष्य स्वतंत्र हो जाए। अपने यहाँ अपमान का भय चला जाता है, तो स्वतंत्र हो जाते हैं।

लिपटी है वंशावली, कषायों की

मान और अपमान की ही पड़ी है न सभी तरफ?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, क्या पहले से ही ऐसा चलता आया होगा?

दादाश्री : अनादिकाल से सारा यही का यही माल। मनुष्य योनि में आया तभी से मान और अपमान। वर्ना दूसरी वंशावली में कुछ भी नहीं है। दूसरी योनियों में नहीं है, यहाँ पर बहुत है और देवलोक में बहुत है।

प्रश्नकर्ता : दूसरी योनि में जाने के बाद यह मान-अपमान भूल जाते होंगे?

दादाश्री : भूल जाते हैं। जब यहाँ से जाता है, तभी से भूल जाता है सबकुछ। याद नहीं रहता। आपने चार दिन पहले क्या खाया था, वह आपको याद है?

प्रश्नकर्ता : नहीं। लेकिन बैर, मान-अपमान, ये सब जीव को याद रहता है तो यह सब क्यों भूल जाता है?

दादाश्री : नहीं, वह भी याद नहीं रहता। सिर्फ ये क्रोध-मान-माया-लोभ ही याद रहते हैं और वे चार संज्ञाएँ तो हमेशा रहती ही हैं। बाकी, बैर-कड़वाहट तो बाद में होती है। वह याद नहीं आता। अपमान होते ही शोर-शराबा मचा देता है। उन गोलियों को क्या कहते हैं? ये बच्चे खाते हैं वे?

प्रश्नकर्ता : पिपरमिन्ट।

दादाश्री : अब पिपरमिन्ट यहाँ पर पड़ी हो तो इस बच्ची को और बच्चे को, दोनों को लेना हो, उसमें से जो लोभी होता है वह ज़्यादा ले लेता है। हमें पता चलता है कि यह लोभी है! लोभी पहचाना जा सकता है। लोभी हर किसी चीज़ में आगे रहता है।

प्रश्नकर्ता : इंसान को इन सभी मुसीबतों का शांति से सामना करना चाहिए, वह हो नहीं पाता है, उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : कैसे कर पाएगा? ये क्रोध-मान-माया-लोभ की कमज़ोरियाँ हैं, तो मुसीबतों का सामना कैसे हो सकेगा? क्रोध यों ही नहीं बैठा रहता। वह तो, जब तक मान नाम का शत्रु बैठा रहे, तभी तक क्रोध बैठा रह सकता है। क्रोध तो मान का रक्षण करने के लिए है। अत: जब तक मान है, तब तक गुरखा रहेगा ही।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा है कि अपमान सहन करना सीख जाना चाहिए?

दादाश्री : जब मान चला जाएगा, तब अपमान सहन करने की शक्ति आ जाएगी। वह तो गुरखा है। 'मान ने' गुरखा रखा है कि यदि कोई अपमान करने आए तो उससे कहता है कि, 'तेल निकाल देना।' और दूसरा है लोभ। उसने भी एक गुरखा रखा है। उसने कपट को रखा है। उसी को माया कहा गया है। अगर लोभ चला जाए तो माया भी चली जाएगी। क्रोध मान का गुरखा है। 'मूर्ख हो, बेअक़्ल हो' किसी ने अगर ऐसा कह दिया तब हमें कहना चाहिए, 'भाई, मैं आज से नहीं, पहले से ऐसा ही हूँ।' ऐसा कहना।

लोग क्रोध को मारते हैं न? कोई लोभ को मार-मारकर कम करता है, तब माया क्या कहती है? माया कहती है कि, ''मेरे छः पुत्र हैं, क्रोध-मान-माया-लोभ, राग और द्वेष। ये मेरे छः बेटे और मैं सातवीं, हमें कोई निर्वंश नहीं कर सका है। हाँ, सिर्फ एक 'ज्ञानीपुरुष' ही हमें निर्वंश कर सकते हैं। बाकी, कोई हमें निर्वंश नहीं कर सकता। तू चाहे जितना मेरे क्रोध को मारेगा, तू लोभ को मारेगा, लेकिन जब तक मेरा मान नाम का बेटा जीवित है, तब तक सब जीवित हो जाएँगे।''

'ज्ञानीपुरुष' मान नाम के बेटे को मारें, वह भी मारते नहीं हैं, गद्दी पर से उठाते भी नहीं है। जगह 'चेन्ज' कर देते हैं। यदि मारें, तब तो ऐसा कहा जाएगा कि हिंसा की। 'मार' शब्द आया तो हिंसा की कहा जाएगा। हिंसा नहीं है। अहंकार को वे मारते नहीं है।

'करने वाले' की जगह 'चेन्ज'

प्रश्नकर्ता : ये काम-क्रोध-मोह-लोभ और मद, इनमें से खराब चीज़ कौन सी?

दादाश्री : मद।

प्रश्नकर्ता : मद सब से अधिक खराब क्यों? लोभ खराब नहीं है?

दादाश्री : किसके आधार पर टिके हुए हैं, वह देखना चाहिए

न? मद के आधार पर ही टिके हुए हैं। मद! अगर वह आधार नहीं होगा तो कोई टिक पाए, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ये सब चीज़ें, 'कंट्रोल' में आ सकती हैं। लेकिन लोभ 'कंट्रोल' में नहीं आ सकता न?

दादाश्री : लेकिन लोभ करनेवाला 'कंट्रोल' में आ जाए तो समझो सबकुछ 'कंट्रोल' में आ गया न! मैंने थोड़े ही किसी को भी लोभ निकालने के लिए कहा था? मैंने क्या लोभ निकालने को कहा है? लोभ करने वाले को पकड़ा, और एकदम से गद्दी पर से उठा दिया, कि सबकुछ गायब हो गया, एकदम से! राजा मरा कि पूरी सेना में भगदड़! सेना में बात तो चलेगी न, कि राजा मर गए! उसके बाद कोई खड़ा नहीं रहता। यानी राजा पकड़ा जाना चाहिए, बस! अर्थात् मद होगा तो लोभ करेगा न! नहीं तो लोभ नहीं करेगा न! मद यदि चला जाए तो लोभ बिल्कुल भी नहीं रहेगा। इन गरीबों को बेचारों को कोई लोभ ही नहीं है न! क्योंकि मद नहीं तो लोभ कैसा?

मान, वह हिंसक भाव ही

ऐसा है, क्रोध-मान-माया-लोभ वगैरह सब हिंसक भाव ही हैं। ये क्रोध-मान-माया-लोभ सब हिंसा ही माने जाते हैं। कपट बहुत बड़ी हिंसा मानी जाती है। माया अर्थात् कपट। क्रोध तो खुली हिंसा, ओपन हिंसा है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है न, कषाय में हिंसक भाव होते हैं, तो मान का हिंसक भाव कैसा होता है? वह समझाइए।

दादाश्री : मान खुद ही हिंसक भाव है। मानी इंसान दूसरों की हिंसा करता है। वह तो उसके सामने यदि कोई ज़रूरतमंद हो, कोई स्वार्थी हो, मतलबी हो, तो वह चला लेता है लेकिन और किसी को तो मानी इंसान कैसा लगता है? अब मान में क्रोध भरा हुआ है ही। तिरस्कार रहता ही है। मान का मतलब ही है तिरस्कार! 'मैं कुछ हूँ' समझे कि तिरस्कार करता है लोगों का। मान का मतलब ही है तिरस्कार और अभिमानी तो बहुत तिरस्कार करता है।

मानी अलग, अभिमानी अलग। अहंकारी अलग, तुंडमिज़ाजी अलग, *घेमराजी* (खुद के सामने दूसरों को तुच्छ समझना) अलग!

मान के पर्याय अनेक

मान के सभी शब्द तो बहुत पर्यायों में हैं, इतने सारे पयार्य हैं।

प्रश्नकर्ता : तुंडमिज़ाज, घमंड, ये सभी कहलाते हैं?

दादाश्री : हाँ, वे तो तरह-तरह के ऐसे सब शब्द हैं। लोग तो गर्व और *गारवता* (संसारिक सुख की ठंडक में पड़े रहना), वगैरह सब खुद की ही भाषा से समझते हैं न? अभिमान को गर्व कहते हैं ऐसे हैं लोग। अहंकार किसे कहना है, अभिमान किसे कहना है, मान किसे कहना है, गर्व किसे कहना है, तुमाखीवाला किसे कहना है?

प्रश्नकर्ता : खुमारीवाला किसे कहना है?

दादाश्री : खुमारीवाला, वे सब तरह-तरह के अभिमान हैं न! फिर कौन सा शब्द? घमंडी! घमंड तो उसमें कुछ भी क़ाबिलियत नहीं हो और कहेगा, 'अरे, वकील के बाप को हरा दूँ।' इसलिए फिर हम समझ जाते हैं कि घमंडी है यह। तरह-तरह के लोग हैं सभी, माल सभी तरह का! फिर मच्छराल है, ऐसा कहते हैं कि और इनमें *घेमराजी* बहुत है, ऐसा भी कहते हैं। तो इन सब में 'डिफरेन्स' है, उसी वजह से अलग-अलग नाम रखे हैं। मच्छराल तो ज़रा मच्छर जैसा ही होता है। काट खाए वह तो जलन होती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ये सब अभिमान, घमंड, वे सब तो मनुष्य में कुछ उम्र हो जाने पर ही आते हैं न? बच्चों में ज़्यादातर ऐसा कुछ नहीं होता।

दादाश्री : बच्चों में बिल्कुल ही नहीं होता। जैसे-जैसे बुद्धि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे यह सारा तूफान बढ़ता जाता है।

यानी इन सब शब्दों के पर्याय बहुत बड़े हैं। पर्याय समझना बहुत मुश्किल चीज़ है। वे तो 'ज्ञानीपुरुष' से जानने को मिलते हैं।

प्रश्नकर्ता : इन सब को अलग-अलग स्पष्ट रूप से समझाइए न!

दादाश्री : यदि कोई मज़दूर जा रहा हो, तो हम कहें, 'अरे, तेरा नाम क्या है?' तब वह कहता है, 'ललवा।' अब वह अपने आपको लल्लू भाई नहीं कहता, तो हम समझ जाते हैं कि यह सिर्फ अहंकारी ही है।

और हम किसी से पूछे कि, 'क्या नाम?' तब वह कहता है कि, 'लल्लू भाई।' तब हम समझ जाते हैं कि साथ ही यह मानी भी है।

और दूसरा कोई जा रहा हो और हम पूछे, 'कौन हो आप?' तब वह कहता है, 'मैं लल्लू भाई वकील, नहीं पहचाना मुझे?' यानी अभिमानी भी कहा जाएगा।

अर्थात् ये सब हैं इनके लक्षण!

फिर जब अहंकार ममता सहित हो, तब अभिमान खड़ा होता है। कोई भी ममता, चाहे किसी भी प्रकार की! यानी किसी भी प्रकार की ममता सहित है तो वह अभिमान हुआ। जब सिर्फ अहंकार हो, ममता रहित हो, तो वह अहंकार कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : फिर तुंडमिज़ाजी है न? उसकी 'डेफिनेशन' क्या है?

दादाश्री : तुंडमिज़ाज! नाम मात्र की समझ नहीं, ना ही लक्ष्मी का ठिकाना, तब भी बेहद मिजाज़। शादी करने को नहीं मिल रही हो फिर भी मिज़ाज! अरे, शादी करने को नहीं मिल रही फिर भी किस चीज़ का मिज़ाज करता रहता है वह? वह तुंडमिज़ाज कहलाता है न, फिर।

और फिर तुमाखीवाला। वह आज से पचहत्तर साल पहले कलेक्टर, पुलिस, डी.एस.पी.ओ, उन सभी को तुमाखी थी, जैसे भगवान ही हो इतनी तुमाखी रखते थे। बड़े-बड़े सेठों को मारते-पीटते, सेठों को हंटर से मारते थे। इतनी तुमाखी, तुमाखी! अभी कुछ ही समय पहले देखा है मैंने यह सब। हमारा काम कॉन्ट्रैक्ट का है न, इसलिए

सभी ऑफिसरों के पास जाना पड़ता था, इसलिए तुमाखीवालों को देखा था वहाँ पर। ट्रेन में कलेक्टर के सामने फर्स्ट क्लास में नहीं बैठ सकते थे। यों ईमानदार थे। अनुशासन से बाहर नहीं चलते थे लेकिन फिर तुमाखी बेहद थी। कैसी तुमाखी! लोगों को दुतकार-दुतकार कर रख देते थे। हमारे काम पर एक्ज़िक्यूटिव इन्जीनियर आते थे न, तो हंगामा मचा देते थे और जैसा चाहें उस अनुसार कर देते थे। क्योंकि पावर है न, उनके पास।

हमने देखी थी यह सारी तुमाखी। तो मुझे अभी हँसना आता है, इन बड़े-बड़े कलेक्टरों को देखकर। पहले कैसी तुमाखी रखते थे, जैसे भगवान आ गए हों, वैसी और अभी तो कलेक्टर चप्पल पहनकर निकले और उसके पैर पर अपना बूट पड़े तो 'प्लीज़, प्लीज़' करता है। पहले तो यदि ऐसा हो जाता न, तो हंटर से मारते थे। वह भी वहीं स्टेशन पर ही मारते। जबकि अब तो 'प्लीज़, प्लीज़' करते हैं। ये मार खा-खाकर ऐसे सीधे हो गए हैं! तुमाखी सारी उतर गई न! गाड़ी में बड़ा कलेक्टर होता था, तब भी कुछ बोल नहीं सकते थे न! और गवर्नर हो तब भी नहीं बोल सकते थे। लेकिन देखो मार खा-खाकर सीधे हो गए! और अब तो कहते हैं, 'हाँ, चलेगा।' पत्नी से भी क्या कहते हैं? 'हाँ, हाँ, चलेगा, चलेगा।' पहले तो ऐसा नहीं कहते थे कि 'चलेगा,' और अब?

ये सब देखो न एकदम ठंडा हो गया! और अभी तो अगर लोग बड़े आदमियों की भी बुराई करें, तब भी कुछ नहीं। देखो बिल्कुल शांत हो गए न! सीधे हो गए या नहीं हो गए? सीधे हो गए हैं न और बाकी के मार खा-खाकर अभी और भी सीधे हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : फिर आगे, *घेमराजी* कैसा होता है?

दादाश्री : उस *घेमराजी* शब्द का क्या अर्थ होता है?

प्रश्नकर्ता : *घेमराजी* अर्थात् घमंड?

दादाश्री : नहीं। वह घमंडी भी अलग है, *घेमराजी* भी अलग है।

ये लोग तो बहुत पक्के लोग हैं। यहाँ तक घमंड और इससे अधिक करे तो *घेमराजी*। तीव्रता में बदलाव होते ही तुरंत अलग नाम दे देते हैं। ये तो बहुत पक्के लोग हैं।

घेमराजी यानी यहाँ से तीन मील दूर तक भी न जा पाए, ऐसा शरीर हो, और फिर कहेगा 'पूरी दुनिया घूम आऊँ।' लोग *घेमराजी* रखकर घूमते रहते हैं बेकार ही। 'दिमाग़ में *घेमराजी* रखकर घूमता रहता है, बस इतना ही है।' कहते हैं न? यानी वह *घेमराजी* रखता है। फिर लोग भी कहते हैं, इज़्ज़त उतार देते हैं कि 'बिना बात की *घेमराजी* रखता है, देखो तो सही!' लोग छोड़ेंगे क्या? कोई घमंड रखे, तो उसे छोड़ते नहीं हैं। *घेमराजी* रखे तो छोड़ते नहीं है। जो ऐसा सब रखता है, उसे छोड़ते नहीं हैं, कह देते हैं। कहेंगे, 'घमंड रखता है यह।' 'अभिमान करता है, मानी है।' सबकुछ कह देते हैं लोग तो।

घेमराजी यानी क्या? 'हट, हट, हट। तू जा घर, हट हट।' सभी को 'हट, हट' करते रहते हैं। अरे, सीधा रह न! मुझे बैठने तो दे लेकिन तब कहता है, 'हट, हट।' यानी वह दूसरे लोगों को कुछ समझता ही नहीं, उसे सभी जानवर जैसे लगते हैं। इंसान भी जानवर जैसे लगते हैं। बोलो अब, यह *घेमराजी!* यह कौन सी भाषा का शब्द लगता है आपको? पर्शियन भाषा का शब्द है?

प्रश्नकर्ता : यह देशी शैली में, चरोतरिया भाषा का है।

दादाश्री : हाँ, चरोतरी भाषा! कहेंगे, *घेमराजी* बहुत है। पास में कुछ है नहीं और *घेमराजी* बहुत है। *घेमराजी* शब्द भी अपनी गुजराती में है न! अब यह शब्द कहाँ से उत्पन्न हुआ, उसका 'रूट कॉज़,' मैंने ढूँढा लेकिन मिला ही नहीं कुछ! अभिमान वगैरह सब का 'रूट कॉज़' मिलता है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि शब्द जितने सीधे दिखाई देते हैं उतने होते नहीं हैं, अंदर बहुत रहस्य होता है।

दादाश्री : हाँ, निरे अर्थ से ही भरे हुए हैं ये शब्द सारे। उसका

ऊपरी अर्थ नहीं करना है। उसमें परमार्थ है अंदर लेकिन कितने ही आवरण जाएँ, तब जाकर परमार्थ प्राप्त होता है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है, 'अहंकार बहुत ही था।' तो उस वजह से अहंकार के ये सभी 'फेज़िज़' अनुभव में आ गए न?

दादाश्री : हाँ, सभी तरफ का अनुभव! उसके 'परस्पेक्टिव व्यू' भी देख लिए हैं। 'परस्पेक्टिव' अहंकार कैसा दिखाई देता है, वह ऐसे पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : वह कैसा दिखाई देता है?

दादाश्री : अरे, पहचानता हूँ न, लेकिन! 'फ्रन्ट एलिवेशन,' 'बैक एलिवेशन' और 'परस्पेक्टिव व्यू,' सभी प्रकार से पहचानता हूँ। 'दादा' 'बैक एलिवेशन' में कैसे दिखते हैं, वह पता चलता है मुझे। 'फ्रन्ट एलिवेशन' का पता चलता है, 'परस्पेक्टिव' का पता चलता है। नाक वगैरह कैसा दिखता है, वह सब पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : नाक तो देह का भाग हुआ, लेकिन अहंकार के 'फेज़िज़' किस तरह के दिखाई देते हैं?

दादाश्री : अहंकार का भी फिर दिखाई देता है न! पहले इस देह का दिखाई देता है, तो बाद में उस अहंकार का भी दिखाई देता है। अहंकार तो विलय होता है लेकिन वह इस देह के अनुरूप होता है, वह अलग नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उसके अनुरूप अर्थात्?

दादाश्री : नाक छोटा तो अहंकार छोटा। नाक लंबा तो अहंकार लंबा। यानी जैसा इस शरीर का है न, वैसा ही अहंकार का होता है।

'हम' बाधक है मोक्ष में जाते हुए

प्रश्नकर्ता : ये 'इगो' और 'अहंकार' के बीच में क्या भेद है?

दादाश्री : वे एक ही चीज़ हैं।

प्रश्नकर्ता : यह, 'हम' कहते हैं, वह भी अहंकार ही कहलाता है न?

दादाश्री : 'हम' अलग है और अहंकार अलग चीज़ है।

ऐसा है न, लोगों ने तो इसे मुख्य माना कि मोक्ष में जाते हुए बीवी-बच्चे ही बाधक हैं। अरे, क्या सिर्फ ये ही बाधक हैं? और भी कितनी सारी चीज़ें बाधक हैं। ये बीवी-बच्चे बेचारे क्या बाधक होते होंगे? वे खुद के बिस्तर में सो जाते हैं, उसमें हमें क्या बाधक हुआ? कोई अपने पेट में घुसकर सो जाते हैं? अपने पेट में घुसकर सो जाएँ, तो बाधक कहा जाएगा। हर कोई अपने-अपने बिस्तर में सो जाते हैं, उसमें अपना क्या गया?

वहाँ वे तो अपने पेट में घुसकर परेशान करते हैं, कि 'हम, हम, हमको कैसा?' यह 'हम' नहीं जाता, जहाँ जाओगे वहाँ 'हम' साथ में ही होता है। देखा है आपने 'हम'? लेकिन वह दिखता नहीं है। फिर भी लक्षण पर से पता चलता है कि यह 'हम' आया, आँखों में दिखाई देता है।

ये बाकी सबकुछ छूट गया और 'हम' बचा, वह 'हम' तो बहुत गलत है। उसके बजाय दो पत्नियाँ लेकर घूमे तो अच्छा, तब 'हम' चला जाएगा। गालियाँ खाए तो 'हम' चला ही जाएगा न! और यह अकेला साँड जैसा, उसे कौन गाली दे? पत्नी नहीं है, किसी के हत्थे नहीं चढ़ता, तब फिर 'हम' बढ़ जाता है और *अटकण* तो बहुत सारी होती है। मनुष्यों में बहुत *अटकण* होती है।

और अहंकार तो उत्पन्न की हुई चीज़ नहीं है। वह तो ग्रहित हो गया है। वह खुद ही पकड़ में आ गया है, संयोगों के आधार पर! यानी वह अहंकार तो छूट जाएगा। अहंकार तो 'रोंग बिलीफ' ही है सिर्फ, और कुछ नहीं। जबकि 'हम', उसकी तो बात ही अलग है। वे 'हम' मैंने देखे हैं सारे। 'हम, हम' गाते रहते हैं। मैं समझ गया कि तुम्हारा क्या होगा फिर? 'रिज़र्वेशन' कहाँ मिलेगा, वह हम तुरंत समझ ही जाते

हैं न! इस 'हम' को गाड़ी में कहाँ 'रिज़र्वेशन' मिलेगा, क्या वह नहीं समझता मैं?

प्रश्नकर्ता : तो यह जो 'हम' है, उसे गाढ़ अहंकार कहते हैं?

दादाश्री : नहीं, 'हम' अहंकार को स्पर्श नहीं करता। अहंकार चला जाता है, लेकिन 'हम' नहीं जाता।

'हम' तो चाहे सो करे। इस पुलिस वाले बेचारे को ऐसा 'हम' नहीं होता। अब अहंकार तो, अगर उसे समझाएँ-पटाएँ तो निकल जाता है लेकिन 'हम' तो बहुत अलग चीज़ है। इन संसारियों में जो 'हम' बन गया है न, वह तो मार खाकर फिर निकल जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह 'हम' जो है, वह अध्यास (भ्रांत ज्ञान) से मिलता जुलता है क्या?

दादाश्री : अध्यास? नहीं। अध्यास तो, यह सब अध्यास ही कहलाता है और 'हम' तो ऐसा है कि अध्यास पर भी चढ़ बैठे। देह का अध्यास अलग चीज़ है लेकिन 'हम' के अध्यास की तो बराबरी नहीं की जा सकती। शरीर तो बेचारा भोला है। ये क्रोध-मान-माया-लोभ भी भोले हैं लेकिन इस 'हम' जैसी तो दुनिया में अन्य कोई चीज़ नहीं है। क्योंकि जब कुछ भी नहीं होता तब उसका जन्म होता है। स्वयं जात! हम!

'हम' वाले का पता चल जाता है मुझे! उसकी आवाज़ में खनक होती है। खनक, कलदार रुपया खनकता है न, वैसे खनकता है! आपने देखा है न!

प्रश्नकर्ता : अपने आसपास कहीं से 'हम' वाले का पता चलता है कि 'हम, मैं कुछ हूँ।'

दादाश्री : नहीं, वह 'मैं कुछ हूँ' वह अलग है। ऐसा है न, ये सभी 'मैं कुछ हूँ' वाले जो हैं, वैसे संसारिक लोग आपको देखने को मिलते हैं। जो संसारिक हैं, उनका 'हम' तो कभी न कभी उतर जाएगा।

इनका 'हम' तो, मार खाने से उतर जाता है। जबकि उन लोगों का 'हम' उतारनेवाला कौन? तो 'हम' को फिर सोहम् में ले जाता है।

प्रश्नकर्ता : 'हम' खड़ा होने के लिए उसके पास कुछ होता है? कुछ सामान होता है किसी प्रकार का?

दादाश्री : कोई भी सामान, जब कोई चीज़ नहीं होती, तब 'हम' खड़ा होता है। क्योंकि जीए किस आधार पर? इसलिए 'हम'...! पहले चीज़ों के आधार पर जीता था। वह अब इस 'हम' के आधार पर जीवित रहता है कि 'हम, हम।' और खाने-पीने को तो अकेला हो तो भी मिल जाता है। पूर्व का पुण्य तो होता है न? खाने-पीने का सब मिल जाता है, और फिर 'हम' तो बढ़ता ही जाता है। 'कैसा हमें, हमें सबकुछ मिलता है, कोई चीज़ न मिले, ऐसा नहीं है!' अरे, मिलती है, लेकिन वह कहाँ से मिली, उसका तुझे क्या पता चलेगा? लेकिन फिर 'हम' बड़ा हो जाता है, उसे कौन निकालेगा?

प्रश्नकर्ता : तो 'हम' किस तरह से जा सकता है?

दादाश्री : 'हम' तो कहीं जाता होगा भला? 'हम' तो अपने आप ही खड़ा किया हुआ है। जाता होगा? अहंकार चला जाता है, लेकिन 'हम' नहीं जाता। अहंकार अर्थात् जहाँ पर खुद नहीं है वहाँ *पोतापणुं* का आरोप करना, वह है अहंकार। वह अहंकार चला जाता है। खुद करता नहीं है और 'मैं करता हूँ' कहता है, वही अहंकार। बाकी, 'हम' तो उसका खुद का खड़ा किया हुआ बच्चा है। क्या वह जाएगा? 'हम, हम' चलता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : वह 'हम' निकल सकता है? उसका कोई उपाय है क्या?

दादाश्री : उसका उपाय नहीं है। वह तो अधोगति में जाकर और वहाँ पर मार खाता रहे तब, वहाँ पर 'हम' कुचल जाता है।

'हम' किस आधार पर उत्पन्न होता है? जब उसके पास सभी

कुछ खत्म हो जाए, तब। तो किस आधार पर जीए? वह 'हम' कि 'हमारे दादा जी ऐसे थे और वैसे थे।' शुरू हो जाता है फिर 'हम'।

जब कहीं कोई भी चीज़ नहीं रहे, तब 'हम' का जन्म होता है! और अहंकार तो कौन सी परिस्थिति में खड़ा हुआ, वह परिस्थिति भी होती है। अब अहंकार कब कम होता है? कोई लुटेरा रास्ते में कपड़े निकालकर, अच्छी तरह से मारे तो सारा अहंकार कम हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह बात अज्ञानी के लिए है?

दादाश्री : वह तो अज्ञानी की बात है! ज्ञान में तो अहंकार होता ही नहीं है न! अहंकारी में वह अहंकार कम नहीं हो पाता। उसे ऐसे ही साधन मिल आते हैं जिनसे अहंकार बढ़े लेकिन कम होने के साधनों में तो, ऐसे कोई लुटेरे मिल जाएँ और अच्छे से मार पड़े न, तब अहंकार उतर जाता है। या फिर दस लाख रुपये की जायदाद हो और पंद्रह लाख रुपये का नुकसान हो जाए तो अहंकार उतर जाता है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह दूसरे कोने में घुस जाता है न, वापस?

दादाश्री : नहीं, कम हो जाता है, बढ़ता नहीं। अहंकार और ममता, वह तो सहज रूप से प्राप्त हो चुकी चीज़ें हैं, वे उत्पन्न की हुई चीज़ नहीं है। जबकि 'हम' तो खड़ी की गई चीज़ है।

अहंकार, मान, अभिमान.... एक नहीं हैं

प्रश्नकर्ता : अहंकार, मान और अभिमान, इनमें क्या फर्क है?

दादाश्री : अहंकार के विस्तृत स्वरूप को मान कहते हैं और जो ममता सहित होता है, उसे अभिमान कहते हैं। कुछ भी, किंचित् मात्र ममता जैसे कि, 'यह मेरी मोटर है' ऐसा कहे तो इसे दिखाने के पीछे क्या होता है? अभिमान। उसके बच्चे ज़रा गोरे हों तो हमें दिखाता है, 'देखो, मेरे चारों बच्चे दिखाता हूँ।' वह है ममता और अभिमान! यानी जहाँ अभिमान होता है, वहाँ हमें ऐसा सब बताता रहता है जबकि मान का अर्थ है अहंकार का विस्तृत स्वरूप, जो बहुवचन हो चुका है।

प्रश्नकर्ता : फिर मान में से ही अभिमान जन्म लेता होगा न?

दादाश्री : नहीं। अभिमान कब जन्म लेता है? ममता हो, तब अभिमान जन्म लेता है।

अहंकार अलग दशा है और अभिमान अलग दशा है। लोगों को कुछ भान तो है ही नहीं, वास्तव में भान नहीं है। कुछ भी बोलते रहते हैं! मन में जो आए वैसा कहते हैं कि 'यह अभिमानी आदमी है, यह अहंकारी आदमी है।' अहंकारी तो हर एक मनुष्य है। कोई व्यक्ति अहंकारी नहीं हो, ऐसा नहीं है। सिर्फ 'ज्ञानी' ही अहंकारी नहीं हैं और 'ज्ञानी' के 'फॉलोअर्स' भी अहंकारी नहीं हैं। बाकी, दूसरे सभी लोग अहंकारी।

अहंकार अर्थात् क्या? जो स्वयं नहीं है, उसका आरोपण करना। जो स्वयं है उसे जानता नहीं और जो नहीं है उसका आरोपण करता है, वह अहंकार है। वह किस-किस को होता है? वह पद किस-किस पर लागू होता है? सभी पर लागू होता है। सभी अहंकारी कहलाते हैं। अहंकार अर्थात् वस्तु के आधार पर नहीं। उसकी मान्यता में क्या बरतता है? 'जो नहीं है ऐसा।' 'मैं' 'चंदूभाई' नहीं हूँ लेकिन मानता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ' यही अहंकार! यानी 'स्वयं' यदि 'शुद्धात्मा' है तो अहंकार नहीं है और अगर 'चंदूभाई' हो तो अहंकार है। फिर, 'इस स्त्री का पति हूँ' वह दूसरा अहंकार। बड़े आए पति! पत्नी झिड़कती है और फिर भी पति बन बैठता है। पत्नी झिड़के तब भी क्या उसे पति कहेंगे? फिर, 'मैं बच्चों का बाप हूँ,' वह तीसरा अहंकार। सारे, अहंकार के कितने प्रकार? फिर वे घर का अभिमान या ऐसा कुछ नहीं रखते फिर भी लोग कहेंगे कि यह अहंकार है इनका।

अहंकार का कोई गुनाह नहीं है। अहंकार अर्थात् जहाँ स्वयं नहीं है वहाँ आरोप करता है। इतना ही गुनाह है। अहंकार का और कोई गुनाह नहीं है।

अब मान अर्थात् क्या कि यहाँ पर फर्स्ट क्लास कपड़े पहनकर

और तीन हज़ार की घड़ी डालकर, यों ज़रा बाँहें ऊपर रखता है ताकि लोगों को दिखाई दे। फिर कोई पूछे, 'कैसे हो सेठ?' तो यह मान दिखता है हमें, खुल्लमखुल्ला। क्योंकि 'इगो विथ रिच मटीरियल्स,' उसे मान कहते हैं। वह अच्छी-अच्छी आकर्षक चीज़ें पहने रहता है, उसे मान कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : अहंकारी और मानी के बीच क्या फर्क है?

दादाश्री : अहंकारी को अपमान का भय नहीं लगता। मानी को अपमान का भय रहता है। जो मानी होता है, उसे अपमान का भय लगा रहता है। जबकि अहंकारी को अपमान का भय नहीं लगता। मान हो तो अपमान लगेगा न! जहाँ मान ही नहीं हो, वहाँ पर?

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब अहंकार का खंडन होता है, तब उसे अपमान महसूस होगा न?

दादाश्री : नहीं। इसे तो अहंकार भग्न होना कहते हैं लेकिन यदि वह मानी होगा तभी अपमान लगेगा।

जबकि अभिमान किसे कहते हैं? खुद के पास कोई साधन हो, तो लोगों को वे सब बताता है। उसे अभिमान कहते हैं। वह तो हर एक व्यक्ति कह देता है। हर एक व्यक्ति के पास जो कुछ भी होता है, उसे बताए बगैर रहता नहीं है। यानी अभिमान कब कहलाता है? कि अहंकार तो है ही, लेकिन दुकान पर जाए तब रास्ते में जाते वक्त वह व्यक्ति हमसे कहेगा कि, 'रुकिए।' 'भाई, क्या है जो रुकें? जल्दी है न!' तब वह कहेगा, 'यह हमारा मकान है। ये चार बिल्डिंगें, ये दो और वे दो हमारी।' वह सारा अभिमान कहलाता है। 'भाई, अभी मुझे जाना है, तू क्यों बातें कर रहा है? तू अपनी तरफ से क्यों माथापच्ची कर रहा है?' लेकिन वह अपना अभिमान बता रहा है। हम नहीं पूछते फिर भी बताता है कि कितना सुंदर है! उसका क्या कारण है? उसे अभिमान है। पूछने पर जवाब दे तो वह अलग चीज़ है और बगैर पूछे जवाब दे, वह अभिमान! उसके मन में होता रहता है कि 'कब कह दूँ।' वह है अभिमान।

प्रश्नकर्ता : उस अभिमान की वजह से 'हमारा अधिक ऊँचा और उनका नीचा' ऐसा बताता है न?

दादाश्री : हाँ, अभिमान अर्थात् 'ऊँचा और नीचा।' उसका प्रमाण देता है कि 'यह मेरी जायदाद, वह मेरी जायदाद, यह मेरी गाड़ी।' यानी इसके आधार पर 'ऊँचा-नीचा' कहना चाहता है लेकिन ठीक से 'डायरेक्ट' 'ऊँचा-नीचा है' ऐसा नहीं कहता। अभिमान अर्थात् खुद के पास ज़रूरत से ज़्यादा चीज़ें हैं और उन्हें दिखाता है, वह अभिमान। उसके मन में ऐसा होता है कि 'देखो मैं कितना सुखी हूँ!' सामने वाले को नीचा दिखाने का प्रयत्न करना, उसे अभिमान कहते हैं।

यानी अभिमान तो यही सब बताता है, यह दिखाता है, वह दिखाता है। अरे, अच्छे डेढ़ सौ रुपये के चश्मे ले आए तो वे भी दिखाता है। 'देखे चश्मे?' कहेगा। 'अरे, मुझे तेरे चश्मे का क्या करना है भला, जो मुझे दिखा रहा है?' लेकिन अभिमान को पोषण देने के लिए कहता रहता है। अरे, साड़े तीन सौ रुपये की धोती ले आए न, उसे भी दिखाता रहता है। डेढ़ सौ के जूते ले आए तो वे भी दिखाता रहता है। वह अभिमान!

अरे, इस हद तक कि यदि जमाई देखने में बहुत सुंदर हो और बहुत पढ़ा-लिखा हो न, तो कहेगा, 'आप मेरे जमाई को तो देखो, चलो। मेरे जमाई को देखो।' अरे, तेरे जमाई में क्या देखने जैसा है? सभी के होते हैं, वैसे ही तेरे जमाई। उसमें है क्या? तब वह कहता है, 'नहीं, मेरा जमाई देख लो।' फिर जब हम उससे कहें कि, 'ओहोहो कितने अच्छे दिखते हैं, बहुत अच्छे जमाई मिल गए।' तब फिर उसे संतोष होता है। तो फिर हमें खाना खिलाने भी ले जाता है, हं! कहेगा, 'आज तो यहीं पर खाना है। खाना खाए बगैर वापस मत जाना।' यों खाना खिलाने भी ले जाता है।

अभिमान अर्थात् सब जगह मान का प्रदर्शन करना, जहाँ-तहाँ। उसके भाई का मकान छोटा हो तो वह भी दिखाता है कि 'यह मेरे भाई का मकान, यह मेरे चाचा का मकान, वह मेरा मकान।' बड़ा है, उस

तरह से दिखाता है। वहाँ पर अंदर अभिमान बरतता है। मान की खातिर खुद की चीज़ें सामने वाले को दिखाना अभिमान कहलाता है। क्यों दिखाता है? मान की खातिर। फिर मान से भी आगे जाता है, वह अभिमान में भी सीधा नहीं रहता। फिर कुदरत उसे मार-मारकर रास्ते पर ला देती है। इसलिए अगर खुद के पास दो-चार गाड़ियाँ हों, फिर भी उसका अहंकार नहीं करना चाहिए। उसका अभिमान नहीं करना चाहिए। अभिमान किया की जाने की तैयारी हुई। नम्रता रखनी चाहिए। जैसे-जैसे हमारे पास विशेष सांसारिक साधन आते जाएँ न, वैसे-वैसे नम्रता आनी चाहिए।

फिर कहेगा, 'ये मेरे चार बेटे, यह मेरा बेटा सी.ए है और मुझे ऐसा है वगैरह, वगैरह।' वह सब अभिमान। 'मैं गोरा हूँ, मैं मोटा हूँ' ऐसे जो कुछ कहता है, वह सब अभिमान कहलाता है। ये सब साँवले हैं और खुद गोरा हो तो उस गोरेपन का उसे अभिमान है। रूप का मद होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : खुद की पत्नी बहुत सुंदर हो, तो खुद को उसका मद रहता है कि 'मेरी पत्नी जैसी तो किसी की पत्नी नहीं है।' ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : अब यह रूप तो रहनेवाला है नहीं। इस रूप को कुरूप होने में देर नहीं लगती। अगर 'चेचक' हो जाए तो घड़ीभर में ही कैसा रूप निकल आएगा उसका? 'चेचक' हो जाए तो रूप रहेगा? चाहे कितना भी सुंदर हो, फिर भी? क्या अपने हाथ में है यह सारी सत्ता? इसलिए उसका अहंकार नहीं करना चाहिए। 'मेरे जैसा सुंदर कोई नहीं है' यह अभिमान में गया। इसलिए 'मैं गोरा हूँ' ऐसा जो बोलते हैं, वह अहंकार नहीं है। लोग तो अहंकार को समझते ही नहीं जबकि अभिमानी तो तुरंत पहचाना जाता है।

प्रश्नकर्ता : जब ग्रुप फोटो खिंचवाना होता है, तब अभिमान तुरंत ही दिख जाता है।

दादाश्री : हाँ। अरे, फोटोग्राफर ही समझ जाता है कि यह अभिमान में आया है, और वह फोटोग्राफर मुझे देखते ही तुरंत स्विच दबा देता है। वह जानता है कि ये बिल्कुल अभिमान रहित दिख रहे हैं और अभिमानी तो यों सतर्क हो जाता है उस क्षण। अरे, सतर्क किसलिए हो जाता है? जबकि हममें साहजिकता होती है।

प्रश्नकर्ता : अभिमान अहंकार जैसा ही है न?

दादाश्री : नहीं। अहंकार तो अच्छा है। अहंकार तो निकाला जा सकता है जबकि अभिमान तो महादु:खदाई है। कुदरत का धंधा क्या है? अभिमान को उतारने का ही धंधा है। अभिमान बढ़ा कि गिर ही जाता है। लगाती है झापट ऊपर से! अहंकार में हर्ज नहीं है।

अभिमान और अहंकार में क्या फर्क है? 'मैं चंदूभाई,' वह अहंकार है। जहाँ आप नहीं हो वहाँ आरोपण करते हो कि यह मैं हूँ, वह अहंकार है और यह मेरा बंगला, यह मेरी मोटर, ऐसा दिखाए, वह अभिमान! तो फिर सफेद बाल क्यों नहीं दिखाते? 'देखो, मेरे सफेद बाल आ गए, देखो!' लेकिन अभी तो लोग काले कर लाते हैं वापस, हं! रंग लेते हैं! अर्थात् अहंकार तो नासमझी से हुआ है और अभिमान तो समझदारी से। खुद गर्वरस लेता है कि 'देखो, यह देखो, यह मेरा बाग देखो, यह देखो, वह देखो।' तब हम जान जाते हैं कि अभिमान चढ़ा है इसे।

अब कोई व्यक्ति भजन गाए, और हम खुश हो जाएँ तो वह और दो-तीन भजन गा लेता है। तो वह भी अभिमान!

अभिमान आपको समझ में आया न? कि पौद्‌गलिक 'वेट' को खुद का 'वेट' मानना। 'मैं बड़ा हूँ' ऐसा मानना, और सोने के आभूषण, घड़ी, घर वगैरह सबकुछ पौद्‌गलिक 'वेट' है और इन्हें खुद का 'वेट' मानना, वह अभिमान! इस बंगले के 'वेट' को वह खुद का 'वेट' मानता है। लोग तो, 'ये मेरे बंगले देखो और यह देखो, वह देखो, यह मेरा

बंगला कितना सुंदर है,' ऐसा बोले तो कोई कहेगा कि 'अहंकार बोल रहा है।' कोई कहेगा, 'यह अहंकारी है।' नहीं, वह अभिमानी कहलाएगा। चीज़ें तो उसके पास हैं, लेकिन उनका आरोपण करके, गर्वरस चखने के लिए खुद प्रदर्शन करना, वह अभिमान कहलाता है। अभिमान में तो, वह रस भी बहुत मीठा होता है। 'ये मेरे बंगले' ऐसा कहते ही तुरंत मिठास बरतती है। तब फिर उसे 'हेवमोर' (आइसक्रीम की ब्रान्ड) की जैसी आदत पड़ जाती है।

प्रश्नकर्ता : आपने एक बार कहा था कि पूरा जगत् 'हेवमोर' में फँसा हुआ है।

दादाश्री : 'हेवमोर' में! मुझे 'हेवमोर' की ज़रूरत नहीं है, इसलिए मैं नहीं फँसा न! फिर भी, अगर आइसक्रीम आए तो मैं खाता हूँ। लोगों का वह ध्येय है, और मेरे लिए वह ध्येय रहित बात है। मेरा ध्येय अलग है।

लोगों को फिर 'हेवमोर' की आदत पड़ जाती है। उसका कारण यह है कि अजागृति है। यह तो हिताहित का भान ही नहीं है, इसलिए वैसी आदत पड़ जाती है। 'हेबिच्युएटेड' कब होता है? हिताहित का भान नहीं हो तब 'हेबिच्युएटेड' हो जाता है। हमें रोज़ 'हेवमोर' की आइसक्रीम खिलाए तो फिर हमें अगले दिन वह याद नहीं आएगी। एक-एक महीने तक रोज़ खिलाए और फिर बंद कर दे, तब भी हमें याद नहीं आएगी। यों तारीफ ज़रूर करते हैं कि 'बहुत अच्छी है आइसक्रीम!' यों सब बातें करता हूँ, लेकिन सब 'सुपरफ्लुअस'! खाने के बाद फिर स्वाद दे तब तो हम समझें कि अच्छी चीज़ है। खा लेने के बाद, फिर हम कितना भी कहें कि 'स्वाद वापस निकालो' तब भी वापस स्वाद नहीं देती। नहीं? तो फिर ऐसे स्वाद का क्या करना है? अर्थात् कुछ लोग तो स्वाद के लिए अंदर घुस जाते हैं। अब और ज़्यादा तो है नहीं इसलिए मैं उसे मुँह में घुमाता रहता हूँ। अंतिम निवाला हो तब क्या करता हूँ? हाँ, लेकिन गले में उतर जाने के बाद फिर स्वाद नहीं आता।

अब आपको अभिमान समझ में आ गया? और अहंकार की बात समझ में आ गई?

प्रश्नकर्ता : और संयम आए तो संयम के साथ अभिमान भी होता रहता है न!

दादाश्री : जहाँ अभिमान है, वहाँ पर संयम है ही नहीं। जहाँ पर अभिमान है, वहाँ पर संयम नहीं है। अभिमान अंधा है और जहाँ पर संयम हो वहाँ पर अभिमान तो नहीं, लेकिन अहंकार भी नहीं होना चाहिए।

देहाभिमान पहुँचा शून्यता तक

अभिमान करने जैसा तो हमें है कि पूरे ब्रह्मांड के *ऊपरी* कहलाते हैं, फिर भी हमें तो छोटे बच्चे से भी कम अभिमान है। हममें तो अहंकार है ही नहीं न! अहंकार होगा तो यह सब मिलेगा ही नहीं न! जो इस देह का मालिक नहीं बनता, वह ब्रह्मांड का मालिक बन सकता है। जिन्हें देह का मालिकीपन, मन का मालिकीपन, और वाणी का मालिकीपन नहीं हो, वे ब्रह्मांड के मालिक बन जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन कई लोग कहते हैं कि कई बार ज्ञानीपुरुष में अभिमान दिखाई देता है। लेकिन ऐसा कैसे हो सकता है?

दादाश्री : जहाँ अभिमान है, वह ज्ञान नहीं है और जहाँ ज्ञान है, वहाँ पर अभिमान नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान और अभिमान दोनों साथ में नहीं रह सकते, इसका मतलब यह हुआ न?

दादाश्री : ज्ञान और अभिमान दोनों कभी भी साथ में नहीं रह सकते। या तो अभिमान रहता है या ज्ञान! फिर भी अगर आप मुझे दो धौल लगाओ और मुझे अभिमान आए तो वह अज्ञान है मेरा और साफ दिखाई देगा कि ये ज्ञानी नहीं है।

हाँ, जब तक हमें 'ज्ञान' नहीं हुआ था, तब तक देहाभिमान नहीं

गया था। बल्कि पाव सेर था न, वह सवा सेर हुआ था। जन्म हुआ तब पाव सेर था, फिर जैसे-जैसे बड़ा हुआ वैसे-वैसे सवा सेर होता गया। पाव सेर था, वह भी काटता था तो क्या सवा सेर नहीं काटता होगा?! अब अभिमान उसे कहते हैं जो काटता रहे। अहंकार वह है जिसमें अंतरदाह होता रहे। सिर्फ अंतरदाह ही होता रहे तो वह अहंकार कहलाता है जबकि यह अभिमान तो काटता रहता है।

तो हम अहंकार में नहीं लेकिन अभिमान में आ गए थे। अरे, तुंडमिज़ाजी भी हो गए थे। फिर कुछ लोग ऐसा भी कहते थे कि 'बहुत *घेमराजी* है' क्योंकि हमें ज्ञान नहीं हुआ था तब भी पूर्व (जन्मों) का सामान सारा इतना ऊँचा मिला था, इसलिए मुझे ऐसा ज़रूर था कि 'अपने पास कुछ है।' इतना ज़रूर पता था और उसकी ज़रा *घेमराजी* रहा करती थी।

यानी अहंकार कहाँ होना चाहिए, अभिमान कहाँ होना चाहिए, यह सब कहाँ होना चाहिए, वह सब मेरे लक्ष्य में है। अब आज अहंकारी पुरुष तो एक भी नहीं मिलता है। विकृत तो हो ही चुका है, अभिमान तक तो पहुँच ही चुका होता है।

अहंकारी पुरुष, वह तो साहजिक कहलाता है। वह सहज अहंकार है और वैसे अहंकारी होते ही नहीं हैं न इस काल में! कहाँ से लाएँ अहंकारी? आजकल तो अभिमानी होते हैं। अहंकार तो क्या है? कि 'मैं चंदूभाई हूँ' वही अहंकार है। लेकिन वह तो साहजिक चीज़ है। उसमें उसका गुनाह नहीं है और अभिमान क्या है? कि 'यह जो कारखाना है, वह हमारा है। यह अस्पताल भी अपना है,' यों अगर दिखाता ही रहता है तो हमें समझ जाना चाहिए कि यह कौन बोल रहा है? उनका अभिमान बोल रहा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें आपने जो कहा कि देहाभिमान, पाव सेर से सवा सेर हो गया, तो फिर उसमें से शून्य किस तरह से हुआ?

दादाश्री : अचानक ही! मैंने तो इसमें कुछ भी नहीं किया। 'दिज़

इज़ बट नैचुरल' हो गया। इसीलिए मैं लोगों से कहता हूँ कि नकल करने जैसा नहीं है यह। 'नैचुरल' है, फिर इसमें तू क्या करेगा? अब मेरे पास आ, मैं तुझे रास्ता दिखाऊँगा। मुझे रास्ता मिल गया है। बाकी, मैं जिस रास्ते से गया हूँ, उस रास्ते से तू करने गया तो मारा जाएगा क्योंकि मेरा तो पाव सेर के बदले सवा सेर हुआ तो मुझसे सहन नहीं हो रहा था। वे दिन कैसे निकाले वह तो मैं ही जानता हूँ।

प्रश्नकर्ता : वह कहा है न, 'देहाभिमान था पाव सेर, विद्या पढ़ने से बढ़ा सेर और गुरु बना तब मन (चालीस किलो) में गया।' अब उसमें से शून्य पर किस तरह आया जाए, वही महत्वपूर्ण है।

दादाश्री : अब इस 'ज्ञान' के बाद आपका पुरुषार्थ दिन-रात किस तरफ जा रहा है?। शून्य की ओर जा रहा है। पहले क्या होता था? कि मन से दो मन होता था, उस तरफ जाता था। अब शून्य की ओर जा रहे हो। उसके लिए अगर हम ऐसा कहें कि 'अब क्या उपाय है?' फिर भी उससे कुछ नहीं होगा। यानी अभी जो है, वह पद्धतिपूर्वक ही है। शून्य की ओर जा रहा है और वह हो ही जाएगा!

स्वरूप ज्ञान के बाद...

इस 'ज्ञान' के बाद आपमें अब अहंकार है ही नहीं क्योंकि अहंकार किसे कहते हैं? 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा तय करना, वह है अहंकार! और आपको 'मैं चंदूभाई हूँ' उस ज्ञान पर शंका हुई। 'मैं चंदूभाई नहीं हूँ' और 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ,' इसलिए अब आपमें अहंकार है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : अहंकार अर्थात् 'मैं चंदूभाई हूँ' उस भाग को ही कह रहे हैं न?

दादाश्री : हाँ, वही अहंकार कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : वह अहंकार भाग तो निकल गया है लेकिन क्या अब हमारा अभिमान रह गया है?

दादाश्री : हाँ, अभिमान में हर्ज नहीं है। अभिमान निकाली चीज़

है। आपमें अहंकार रहा ही नहीं न! अभिमान में हर्ज नहीं है। मान और अभिमान, वे निकाली चीज़ हैं। फिर उससे आगे गर्व और बाकी सब सामान रहा हुआ है न! मूल अहंकार गया लेकिन अहंकार के जो परिणाम थे, वे तो रहे ही हैं न! मूल रूट कॉज़ गया लेकिन ऊपर की जो डालियाँ वगैरह बची हैं, वे सूख जाएँगी।

प्रश्नकर्ता : यानी अभिमान है, वह पुराने अहंकार का ही परिणाम है?

दादाश्री : हाँ। अभिमान, अहंकार का ही परिणाम है। वह परिणाम रह गए और 'रूट कॉज़' चला गया। अहंकार गया! और जब अहंकार के सभी परिणाम चले जाते हैं, तब केवलज्ञान होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर अहंकार का परिणाम अभिमान है, तो अभिमान जाने पर तो केवलज्ञान हो जाता है न?

दादाश्री : नहीं। परिणाम में सिर्फ अभिमान नहीं है। अहंकार के परिणाम में तो और भी बहुत कुछ है। वे सभी चले जाते हैं, तब केवलज्ञान होता है!

प्रश्नकर्ता : तो अहंकार के परिणाम कौन-कौन से हैं?

दादाश्री : बहुत! कई तरह के परिणाम हैं।

प्रश्नकर्ता : हमारे इस अभिमान से किसी को तकलीफ नहीं हो, और संताप नहीं हो, इसके बजाय सामने वाले को सुख हो उसके लिए हमें क्या करना चाहिए?

दादाश्री : सिर्फ इतना भाव ही करना है। और कुछ नहीं करना है। 'अपने अभिमान से किसी को दु:ख न हो और सुख ही हो,' ऐसा भाव करना है। फिर दु:ख हो जाए तो प्रतिक्रमण करने हैं और आगे बढ़ते जाना है। तब और क्या करें फिर?! हमें क्या पूरी रात वहीं बैठे रहना है? फिर ऐसा नहीं है कि बैठे रह सकें। हमें बैठे रहना हो फिर भी बैठा पाएँ, तो क्या करना चाहिए?

फिर भी, हमें उस तरह से कदम उठाने चाहिए कि लोगों को दु:ख न हो।

प्रश्नकर्ता : उस हिसाब से तो पूरा संसार अहंकार का ही परिणाम है, 'मैं चंदूभाई हूँ' पूरा संसार उसी का परिणाम है न?

दादाश्री : लेकिन अब इस 'ज्ञान' के बाद आपका यह अहंकार गया। यदि वापस अहंकार रहता तो परिणाम उत्पन्न होते रहते न! इस 'ज्ञान' के बाद तो नए परिणाम उत्पन्न ही नहीं होते न! और पुराने परिणाम खत्म ही होते जाते हैं, सिर्फ पुराने ही खत्म हो जाएँगे। तब फिर हल आ गया। यह टंकी नई नहीं भरती है। किसी की टंकी पचास गेलन की होती है और किसी की पच्चीस लाख गेलन की होती है। बड़ी टंकी हो तो देर लगती है लेकिन जिसकी खाली होने लगी है, उसे क्या!

प्रश्नकर्ता : लेकिन टंकी खाली होते-होते तो फिर वह बाढ़ की तरह किसी को लुढ़का देता है, किसी से टकरा जाता है और किसी को मार देता है न!

दादाश्री : हाँ, वह सब तो, जो मारता है न, वह तो उसके परिणाम हैं न! उससे हमें क्या लेना-देना? लेकिन किसी को दु:ख हो जाए तो उसका प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए।

स्वमान अर्थात्...

प्रश्नकर्ता : मान और स्वमान के बीच में क्या भेद है?

दादाश्री : मान अर्थात् 'इगो विथ रिच मटीरियल्स।' और स्वमान अर्थात् खुद की जो 'क्वॉलिटी' है न, उतना ही मान! खुद की जो 'क्वॉलिटी' 'फिक्स' है उतना ही मान कि 'भई, मैं ग्रेज्युएट हुआ हूँ।' तो 'ग्रेज्युएट' जितना ही मान। वह स्वमान खुद का, खुद जो है उतनी ही माँग करता है। उससे अधिक नहीं माँगता। स्वमान भंग होता है तब उसे लगता है कि 'मैं ग्रेज्युएट हूँ फिर भी ये क्या कह रहे हैं?!' यानी

'ग्रेज्युएट' है उतना ही। उसकी उतनी योग्यता है, इसलिए उसे छेड़ना नहीं चाहिए। स्वमान भंग नहीं करना चाहिए किसी का।

और मान क्या है? कि उसके पास 'डिग्री' या 'क्वॉलिटी' नहीं है, वह नहीं देखना है, और गुण की बात तो कहाँ गई लेकिन 'इगो विथ रिच मटीरियल्स,' वह मान है। तीन हज़ार की घड़ी है, चश्मा सोने की फ्रेमवाला है, अच्छा लोंग कोट पहना है, यह सारा मान!

प्रश्नकर्ता : 'इगो' का घायल होना और स्वमान घायल होना, उन दोनों में फर्क है क्या?

दादाश्री : बहुत ही! स्वमान घायल होगा तब तो सामनेवाला व्यक्ति बदला लेगा।

प्रश्नकर्ता : और 'इगो' घायल हुआ तो बदला नहीं लेता?

दादाश्री : नहीं, कुछ भी नहीं। 'इगो' में हर्ज नहीं है। लेकिन धनवान लोगों में 'इगो' होता ही नहीं है न! 'इगो' हमेशा सिर्फ गरीबों में ही होता है। हम कहें न, 'चल नालायक' तब भी कुछ असर नहीं होता, वह कहलाता है 'इगो।' फिर भी सिर्फ ऐसा ही नहीं है। 'इगो' पर असर हो भी सकता है और नहीं भी। इगो रिएक्ट कर भी सकता है, उस समय काट भी सकता है और शायद असर न भी हो। इन धनवानों में सिर्फ 'इगो' अकेला ही नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : तो धनवानों में क्या होता है?

दादाश्री : धनवानों में मान होता है, अभिमान होता है, स्वमान होता है, ऐसा सब तरह-तरह का होता है। उनमें 'इगो' विथ (के साथ) बहुत कुछ होता है जबकि इन गरीबों में 'इगो' विथ (के साथ) कुछ भी नहीं होता बेचारों के पास।

प्रश्नकर्ता : किसी व्यक्ति ने कोई अच्छा कार्य किया हो और उसका अभिमान करे और किसी व्यक्ति को नीचे गिराने का अभिमान करे तो?

दादाश्री : वह सब अभिमान नहीं माना जाता।

प्रश्नकर्ता : तो इन दोनों के बीच में क्या फर्क है?

दादाश्री : मान और अभिमान, वे 'विथ रिच मटीरियल्स'!

प्रश्नकर्ता : यानी मान और अभिमान, वे साधन-संपत्ति से जुड़े हैं?

दादाश्री : हाँ। बाकी कुछ नहीं।

अज्ञान दशा का श्रेष्ठ सद्‌गुण

प्रश्नकर्ता : स्वमान और अभिमान इन दोनों के बीच में क्या भेद है?

दादाश्री : स्वमान किस तरह का मान है? 'मुझे कोई ज़रा भी तंग न करे, उस तरह का मान और मेरी स्थिरता को कोई डिगाए नहीं।' स्वमान तो व्यक्ति उतने तक ही रखता है कि कोई उसे परेशान न करे और अभिमानी का मतलब तो, कोई अगर अभिमानी है न, तो वह क्या कहेगा कि, 'यहाँ से अपना बंगला शुरू हुआ, तो वहाँ तक बंगला है, उसमें उसके पीछे तो आपने देखा ही नहीं।' फिर उसकी बेटी के लिए ज़ेवर बनवाए हों, तो वे सब हमें दिखाता है। उसका अभिमान पुसाए इसलिए हमें दिखाते हैं। फिर, उसकी ज़मीन हो तो वह सब दिखाते हैं कि 'यह दो सौ बीघा ज़मीन मेरी है।' और अभिमानी हो न, वह तो पूरे दिन शीशे में देखता रहता है कि 'मैं कितना सुंदर हूँ!' और लोग कहते हैं न, 'हमारे बाप-दादा ऐसे थे और कुलीन वगैरह,' वे सभी अभिमानी। उसे स्वमानी नहीं कहते।

स्वमानी तो, उसमें व्यवहार से, लेन-देन होता है। स्वमान अर्थात् सामने वाले का स्वमान रखना और उसके बदले में खुद का स्वमान प्राप्त करना, वह स्वमान कहलाता है। अत: संसार व्यवहार में स्वमान, वह तो व्यवहार है। स्वमान भंग नहीं हो तब तक चला लेना पड़ता है। हालाँकि हमें तो यह मोक्षमार्ग मिल गया है इसलिए हमारे लिए स्वमान की तो बात ही नहीं रहती लेकिन संसार व्यवहार को स्वमान तक संभाल लेना

चाहिए, नहीं तो ढीठ कहलाएँगे। स्वमानशील तो होना ही चाहिए न! अज्ञानी में भी इतना तो होना ही चाहिए। इतनी 'बाउन्ड्री' तो चाहिए ही न! 'बाउन्ड्री' से बाहर तो कैसे चलेगा?! स्वमान अर्थात् अपमान नहीं हो, उसके लिए रक्षण करना।

स्वमान, तो बहुत बड़ी चीज़ है, अज्ञान दशा में सद्गुण की 'लिमिट' है! स्वमान की तो हमने बहुत प्रशंसा की है इस वजह से कि यह अज्ञान दशा में सद्गुण की 'लिमिट' है! अज्ञान दशा में सद्गुण होते हैं न? उनकी 'लिमिट' है यह!

प्रश्नकर्ता : स्वमान क्षम्य है या नहीं?

दादाश्री : यह 'ज्ञान' लिया हो न, तो स्वमान क्षम्य है। नहीं तो स्वमान रखना ही चाहिए। अज्ञान दशा में भी स्वमान तो रखना ही चाहिए न! स्वमान नहीं होगा तो बेशर्म हो जाएगा फिर। बेशर्म हो जाएगा तो 'बाउन्ड्री' चूक जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन स्वमान में अहम् का अंश है या नहीं?

दादाश्री : हाँ, वह अहम् तो है ही लेकिन फिर भी बेशर्म नहीं हो जाता। स्वमान के कारण 'बाउन्ड्री' में रहेगा, 'बाउन्ड्री' नहीं चूकेगा वह कभी भी इसलिए अज्ञान दशा में भी स्वमान की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : अब हर एक का खुद का स्वमान तो होता है। अतः हमें अपना स्वमान तो रखना चाहिए न?

दादाश्री : यह 'ज्ञान' लिया, अब स्वमान किसलिए रखना है? अब स्वमान वगैरह कुछ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कभी परिस्थितिवश कुछ ऐसी घटना हो जाए, तब हमें अपना स्वमान रखना चाहिए न?

दादाश्री : लेकिन स्वमान और हमारा लेना-देना नहीं है। मान और स्वमान सभी गया। ऐसा है, जिसका 'स्व' बदला हुआ नहीं हो, उसे स्वमान रखना है। यह तो, 'स्व' ही बदल गया, फिर वहाँ पर क्या

है! जहाँ 'स्व' बदल गया, वहाँ स्वमान रहेगा क्या? समझ में नहीं आया आपको?

प्रश्नकर्ता : लेकिन ड्रामेटिक स्वमान तो रखना चाहिए न?

दादाश्री : वह तो रहता ही है। जितना रहे, उतना सही। बाकी, स्वमान रखने की ज़रूरत नहीं है। हम फिर से कहाँ वह नया धंधा शुरू करें, नया व्यापार?!

स्वमान अर्थात्, मैं 'चंदूभाई' हूँ और खुद के उस मान को संभालना। लेकिन जब तक आप 'चंदूभाई' हो तभी तक और आप शुद्धात्मा हो गए, तो वह बात ही कहाँ रही?! इस 'ज्ञान' के बाद 'खुद' 'आत्मा' हो गया, फिर स्वमान रहा ही कहाँ?! स्वमान तो, देहाध्यास का मान, उसे स्वमान कहते हैं। लेकिन 'हम' 'आत्मा' हो गए फिर स्वमान रहा ही कहाँ? फिर भी *निकाली* स्वमान रहता है। *निकाली* बाबत से हमें लेना-देना नहीं है न!

अभिमानी : मिथ्याभिमानी

प्रश्नकर्ता : अभिमान और मिथ्याभिमान में क्या फर्क है?

दादाश्री : अभिमान तो, घर उसके खुद के हों और रूबरू दिखाए वह अभिमान कहलाता है और मिथ्याभिमानी को तो, भाई का खाने का भी ठिकाना नहीं हो और बाहर लोगों से कहेगा, 'हमारे यहाँ तो इतना ठाठ-बाट है' वगैरह ऐसी सब गप्प लगाता है। ऐसे लोग नहीं देखे? लोग भी कहते हैं कि यह मिथ्याभिमानी है। मिथ्या यानी कि कुछ है नहीं और अभिमान करता है, डींग हाँकता है। जबकि अभिमानी तो, लोग उसे जानते हैं कि, 'नहीं, भाई जायदादवाला है, इसलिए अभिमान करता है। अभिमान करने योग्य है लेकिन उसे अभिमान नहीं करना चाहिए, उसे कहना नहीं चाहिए।' अभिमानी यानी कि हम उसे ज़रूरत से ज़्यादा मान देते ही हैं क्योंकि वह धनवान है न! लेकिन उसने कहा तो फिर हमें कड़वा लगता है कि 'तू खुद क्यों बोला? हम वाह वाह कर रहे हैं, तुझे वही सुननी है।'

वह है मिथ्याभिमान

प्रश्नकर्ता : मिथ्याभिमान के लिए कोई उदाहरण दीजिए न!

दादाश्री : मिथ्याभिमान अर्थात् क्या? घर भी नहीं हो और फिर कहता है, 'मेरी बहुत सारी जायदाद है।'

एक पटेल गाड़ी में बैठे थे। वे हमारे गाँव के ही थे। साथ में कोई गाँव का आदमी होगा। वह अच्छा आदमी था। उसने पूछा, 'चाचा, कहाँ जा रहे हो?' तब उसने कहा, 'भादरण जा रहा हूँ।' 'वहाँ कितने दिन रहोगे?' उस आदमी ने पूछा। तब पटेल ने कहा, 'भाई, रहना तो दस-बारह दिन ही है लेकिन दो दिन तो मुझे घर साफ करने में लगेंगे।' 'घर साफ करने में एक-दो घंटे लगते हैं।' उस भाई ने कहा, तब पटेल ने कहा, 'भाई, नीचे का कमरा साफ करने में ही दो-चार घंटे लग जाते हैं, फिर दूसरी मंज़िल, तीसरी मंज़िल। सभी जगह सफाई करनी है और फिर बाथरूम धोने हैं, फलाना धोना है। सौ-डेढ़ सौ गद्दे होंगे, फिर वे सारे साफ करने हैं।' उसने तो यों बड़ी-बड़ी बातें की और वह आदमी भी सुनता रहा। कैसा चित्रण किया! डेढ़ सौ गद्दे!

फिर उनकी वाइफ, आकर मुझसे कह रही थी, 'देखो न, ये तो ऐसा कह रहे थे।' तब उसके पति ने मुझसे क्या कहा? 'मैं उस आदमी से यह सब कह रहा था, तो इसने वहाँ मेरी इज़्ज़त बिगाड़ दी। इसने कह दिया कि 'ऐसा कुछ नहीं है। आप मानना मत।' मैं इज़्ज़त बना रहा था, मैं इज़्ज़त बढ़ा रहा था, जबकि इसने मेरी इज़्ज़त खत्म कर दी।' अरे, इसमें क्या इज़्ज़त बढ़नी थी? किसकी इज़्ज़त बढ़नी थी? यह क्या तूफान! यह मिथ्याभिमान है। किराए के घर में रहना और बड़ी-बड़ी बातें करनी!

अरे, कपड़े भी किराए पर ले आते हैं न, फिर? 'हमारे दो बंगले हैं और खेत तो बड़ा है, वो बगीचा है अंदर।' कोट इस्त्रीवाला होता है, लेकिन वह किराए का। अपना कोट धोबी के वहाँ पर हो और धोबी उसे किराए पर दे दे। फिर किसी का पहना हुआ कोट वापस हमें पहनना

पड़ता है। तो देख, यह दुनिया तो देख! और हम कहते हैं कि 'मैं किसी का पहना हुआ नहीं पहनता।' ऐसी दुनिया चलती है अंदर। मैंने देख लिया सभी कुछ। आप पहचान भी जाते हो, तब आपको मन में होता भी है कि 'यह व्यक्ति जो कोट पहनकर घूम रहा था।' 'यह कोट मेरे जैसा है और यहाँ पर दाग़ था, वही का वही दाग़ भी है यह।' लेकिन उस व्यक्ति से क्या कह सकते हैं हम? ऐसी यह दुनिया है।

राई भरी दिमाग़ में

लोग क्या कहते हैं? 'तेरे दिमाग़ में आलू भरे हैं।' हाँ, किसी के दिमाग़ में राई भरी होती है, किसी के दिमाग़ में आलू भरे होते हैं!

प्रश्नकर्ता : दादा, राई क्यों कहा होगा?

दादाश्री : वह ऐसे बोलता है कि आग जैसा लगता है। ऐसे बोलता है कि हमारा सिर दु:ख जाए, हेडेक हो जाए।

प्रश्नकर्ता : ऐसी राई तो सभी के दिमाग़ में भरी ही होती है।

दादाश्री : ऐसा?! सच कह रहे हो। गुजरात में राई सस्ती है न! इसलिए लोग खाते हैं न! अब राई उतर गई या नहीं उतर गई?

प्रश्नकर्ता : हाँ, निकल गई।

दादाश्री : निकल गई, बस। यानी निबेड़ा आ गया।

प्रश्नकर्ता : राई भरी है यानी अभिमान अधिक होता है, उसी को कहते हैं न कि राई भरी हुई है?

दादाश्री : अभिमानी अलग और राई वाले अलग! राई वाले के पास कुछ भी जायदाद नहीं होती। अभिमान करने जैसा नहीं होता तब भी राई बहुत होती है, दिमाग़ में राई भरी होती है जबकि अभिमान तो कौन कर सकता है? यहाँ पर जिनके पाँच-दस बड़े-बड़े मकान हों, वह अभिमान कर सकता है। उसके पास ऐसी कुछ सहूलियत होती है, एक छोटे गाँव की एस्टेट वगैरह कुछ होता है, वह अभिमान करता है। यह

तो कोई भी एक फ्लेट हो पाँच-पच्चीस लाख का, और राई चढ़ाए उसका क्या अर्थ है फिर?! सरकार चाहे कितना भी परेशान करे, फिर भी जिसके वैभव में अन्य कोई नुकसान नहीं होता, अगर वह व्यक्ति कभी अभिमान करे तो चल सकता है।

दूसरे लोगों को मान रखने का अधिकार है कि भाई देखो, मेरा घर का फ्लेट है, घर की गाड़ी है। ऐसा मान रखने का अधिकार ज़रूर है। बाकी, अभिमान रखने का कोई कारण नहीं है। अभिमान तो, स्टेट हो, तो अभिमान से क्या फायदा निकाला? स्टेट चली गई न, बल्कि?! और ऐसा अभिमान रखने से बड़ा ताज कैसा होता है? कँटीला ताज होता है। कब कोई सेना आ जाएगी और कब चढ़ाई कर लेगी वह कहा नहीं जा सकता। इसके बजाय तो बगैर ताज के अच्छा। यह तो, अभी इसे फ्लेट कहते हैं, वर्ना तो *माला* कहते थे। चिड़ीयाँ का *माला* (घोंसला) होता है न? या कबूतर का *माला,* कोई चिड़ीयाँ का *माला,* तोते का *माला*! डबल रूम हो, फिर भी दीवानखाना कहते हैं।

मान नापने का थर्मामीटर

प्रश्नकर्ता : बाहर के 'मटीरियल्स' के मान के अलावा भी मान होता है न? इन साधु, संन्यासियों के पास कोई मटीरियल्स नहीं होते, फिर भी उनमें मान तो ज़बरदस्त होता है। वह कौन सा मान?

दादाश्री : उनमें जो मान है वह, 'कोई पुस्तक-शास्त्र जानता हूँ,' उसका होता है। यह भी एक प्रकार की जायदाद ही कहलाती है न? 'मैं शास्त्र वगैरह जानता हूँ,' वह जायदाद ही कहलाती है न?! वे सभी 'मटीरियल्स' ही कहलाते हैं। वह सब मान ही होता है।

प्रश्नकर्ता : और ऐसा भी होता है कि कोई कुछ भी नहीं जानता, फिर भी उसे बहुत मान रहता है।

दादाश्री : हाँ, ऐसा होता है। क्योंकि, वह मान बैठा है न! कोई भी व्यक्ति मान दे तो वह उसे स्वीकार नहीं करे, मन से स्वीकार नहीं करे तो फिर उसका पारा नहीं चढ़ता। यानी वह अपने आप मान बैठा

है कि 'अब मुझमें मान नहीं रहा।' क्योंकि जब दूसरे लोग मान दें तो उस पर बहुत असर नहीं होता, अंदर खुद उसे स्वीकार नहीं करता और वह वर्तन ऐसा रखता है कि दूसरे लोगों को बुरा नहीं लगता। मन ही मन में वह जानता है कि मेरा पारा नहीं चढ़ता, इसलिए अब मान नहीं रहा। नहीं तो पारा चढ़ ही जाता है न? लोगों ने 'ऐसा' किया और खुद ने स्वीकार किया, तो फिर पारा चढ़ ही गया न!

अब वह स्वीकार नहीं करता इसलिए पारा नहीं चढ़ता। लेकिन फिर मैंने कहा, 'आपमें मान नहीं रहा न? तो अब थर्मामीटर रखो कि भई, बुखार चढ़ा या उतरा?' तब वह कहता है, 'वह थर्मामीटर क्या?' मैंने कहा, ''अभी पंद्रह-बीस रिश्तेदार बैठे हों और कोई आपसे कहे कि 'आपमें बिल्कुल भी अक्ल नहीं है,' तो असर हो जाएगा न!'' अरे, कहाँ गया? तेरा मान नहीं था न? अपमान जैसा कोई मान नहीं है। उस मान की तो कीमत ही नहीं है। लेकिन अपमान जैसा कोई मान नहीं है। जिससे अपमान सहन नहीं होता, वही बड़ा मानी है। लोगों का दिया हुआ मान तो सहन हो सकता है, जबकि अपमान सहन नहीं होता। वह सब से बड़ा मान है। वह बड़ा मानी कहलाता है। मेरे पास सभी तरह के थर्मामीटर हैं। कोई भी आया न, तो मैं थर्मामीटर रख देता हूँ। थर्मामीटर ऐसी चीज़ है कि तुरंत पता चल जाता है।

यानी इतना ही है कि यों ही मन में मान बैठा है, शेखचिल्ली की तरह है कि ऐसे शादी करूँगा वगैरह, वगैरह। एक घड़े की वजह से इतना संसार खड़ा किया न?! कि 'ऐसे बकरी लाऊँगा, और फलाना लाऊँगा और शादी करूँगा और बच्चा होगा और फिर कहने आएगा कि, 'चलो पापा खाने के लिए।'' तो मैं उसका घड़ा ही गिरा देता हूँ ताकि उसका सब खत्म हो जाए! घड़ा गिर गया तो फिर कुछ भी नहीं रहा। तो मैं घड़ा गिरा देता हूँ एकदम से इसलिए फिर शादी करना रह गया, बच्चे रह गए और बकरी भी रह गई, सभी कुछ रह गया! लेकिन क्या करे वह?! उसमें उसका दोष नहीं है।

सभी ऐसा मान बैठे हैं। संत भी बिना बात के मान बैठे हैं। कहीं

सभी संत बुरे होते हैं, ऐसा नहीं है। कई संत अच्छे भी होते हैं। अच्छे यानी कि जिन्हें 'बाप जी, बाप जी' करो तो खुश! बाकी पैसों की नहीं पड़ी होती, विषय की नहीं पड़ी होती। 'बाप जी' कहो तो खुश! लेकिन वे मन में मान बैठते हैं कि 'अब हममें कोई द्वंद्व नहीं रहा।' द्वंद्वातीत बन बैठे हैं न?! अभी इस एक बात से तो पानी-पानी हो जाओगे, एक ही अक्षर में। तो फिर जब दूसरे अक्षर आएँगे तब क्या होगा?! एक अक्षर में तो फट जाते हो। सौ मन दूध हो न, वह पाँच सेर-दस सेर नमक तो यों ही खा जाता है, तब भी नहीं फटता। जबकि यह तो एक ही अक्षर में फट जाता है।

निर्मानी : निर्‌अहंकारी : निर्मोही

अरे, आजकल तो कई साधु निर्मानी होकर घूमते हैं। वह नहीं चलेगा। निर्मानी देखे हैं क्या आपने? निर्मानी अर्थात् जो निर्‌अहंकारी कहलाते हैं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, निर्‌अहंकारी।

दादाश्री : अरे, ऐसा बोलना मत! निर्मानी में निर्मानी अहंकार होता है, 'मैं निर्मानी हूँ' ऐसा अहंकार होता है और मानी लोगों में मानी अहंकार होता है। मानी का अहंकार अच्छा है लेकिन निर्मानी का अहंकार तो कौन से जन्म में धोओगे? निर्मानीपना तो सूक्ष्म अहंकार है, एकबार घुसने के बाद फिर वह निकलता नहीं है कभी भी। 'मैं निर्मानी हूँ, मैं निर्मानी हूँ। हम निर्मानी हैं' कहेंगे। यों निर्मानी बन बैठा है। उसके पीछे सूक्ष्म अहंकार है। इसके बजाय तो स्थूल अच्छा कि लोग कह देते हैं कि 'अरे, आपका इतना पावर है, इसलिए यह छाती फुलाकर घूम रहे हो क्या?' ऐसा कहते हैं या नहीं? जबकि इसे तो कोई कहनेवाला ही नहीं मिलता न। कोई डाँटनेवाला ही नहीं मिलता न! वह फिर बढ़ता ही जाता है दिनोंदिन इसलिए मुझे मुँह पर कहना पड़ता है कि 'ज़रा समझो, नहीं तो भटक मरोगे। निर्‌अहंकारी बनना पड़ेगा। निर्मानीपना नहीं चलेगा।' आप समझ गए न, कि निर्मानी क्या है?

आपको 'ज्ञान' देते हैं, तब निर्अहंकारी बन जाते हो। निर्मानी(पना) तो बहुत बड़ा अहंकार है। वह बला बहुत बड़ी है। यह मान की बला तो अच्छी। यह बला भोली है। कोई कह भी देगा कि, 'अरे, छाती क्यों फुला रहे हो इतनी?' कहता है या नहीं कहता? अरे, आप ही उसे कहो न कि, 'मैं काम करता हूँ फिर भी यों बगैर छाती फुलाए घूमता हूँ तो आप क्यों छाती फुला रहे हो?' लेकिन निर्मानी को तो कोई कहनेवाला ही नहीं न! मान-वान कुछ भी नहीं। निर्मानीपना तो सूक्ष्म अहंकार है, यानी क्या कि ऊपर के सींग काट दिए लेकिन अंदर के सींग बाकी बच गए। अंदर के सींग भी नहीं चलेंगे और ऊपर के सींग भी नहीं चलेंगे! अंदर के सींग अंदर की चुभन उत्पन्न करते हैं और बाहर तो चुभन नहीं होती है न, उन्हें। उन सब को साफ-सूफ कर देते हैं, नौकर-चाकर होते हैं, वे मक्खी-मच्छर निकाल देते हैं। उससे फिर बाहर काटता नहीं है कुछ भी लेकिन अंदर की चुभन कैसे छोड़ेगी आपको? अंदर की चुभन ही तो वास्तव में चुभन है। आपने देखी है या नहीं देखी अंदर की चुभन?

प्रश्नकर्ता : देखी है, अनुभव की है।

दादाश्री : अतः निर्अहंकार बनना पड़ेगा, निर्मानीपना नहीं चलेगा।

प्रश्नकर्ता : वह तो दादा, एक दूसरा शब्द है, पर्याय की तरह, निर्मोही।

दादाश्री : निर्मोही शब्द 'फुल' है ही नहीं। निर्मोही यानी संपूर्ण मोह रहित, ऐसा नहीं है। निर्मोही, वह संपूर्ण मोह रहित व्यक्ति के लिए नहीं कहा जा सकता। जिसका मोह क्षय हो गया है, उसे निर्मोही नहीं कह सकते। यानी कि निर्मोही, वह मोह-क्षय दशा नहीं है। सिर्फ अनासक्त शब्द ही चलाया जा सकता है, निर्मोही नहीं। निर्मोही कब तक? अहंकार करके जिसने मोह दूर किया है, उसे निर्मोही कहते हैं। अहंकार करके जिसने मान दूर किया, उसे निर्मानी कहते हैं। यानी अहंकार तो खुद है ही, और बाकी का सब कम किया। किसी ने गाली दी तो कहेगा 'मुझे क्या लेना-देना?'। लेकिन वही का वही अहंकार तो खड़ा ही रहा।

निर्मोहीपने का अहंकार रहा, निर्मानीपने का अहंकार रहा। वह अहंकार भी अंत में निकालना तो पड़ेगा न!

मानी के अहंकार को तो 'ज्ञानी' खत्म कर देते हैं लेकिन निर्मानी का अहंकार तो भगवान से भी खत्म नहीं हो सकता, ऐसा सूक्ष्म अहंकार है। वह सूक्ष्म अहंकार उत्पन्न हो गया तो मारे जाओगे इसलिए किसी से पूछकर करना।

इसलिए कृपालुदेव ने लिखा है कि इस जगत् में मोक्ष किस वजह से नहीं हो पाता? तब कहते हैं कि लोभ वगैरह का कोई झंझट नहीं है लेकिन यदि मान नहीं होता तो यहीं पर मोक्ष हो जाता!

यह तो लोगों को उत्तेजित करने के लिए लिखा है, 'व्यू पोइन्ट' दिखाया है, बात करेक्ट है। अज्ञानी लोगों को दिखाया है कि बाकी कुछ भी होगा न, तो देख लेंगे लेकिन मान पर ही लक्ष्य रखना। मान ही इस संसार का मुख्य कारण है।

सत् पुरुष वही हैं जिन्हें...

कृपालुदेव ने तो क्या कहा है कि सत् पुरुष वही हैं जिन्हें निश दिन आत्मा का उपयोग है। यानी निरंतर कभी भी उपयोग नहीं चूकते, एक सेकन्ड के लिए भी नहीं चूकते, उन्हें सत् पुरुष कहते हैं। फिर, जो शास्त्र में नहीं है, सुना नहीं गया है, फिर भी अनुभव में आए, ऐसी जिनकी वाणी है। जिनकी वाणी, ऐसी होती है जिससे कि नए शास्त्र लिखे जाएँ। जिन्हें निश दिन आत्मा का उपयोग है। उनका एक ही शब्द यदि सुनने में आ जाए तो मोक्ष में चला जाए, क्योंकि वचनबल सहित है। अंतरंग स्पृहा नहीं, ऐसा जिनका गुप्त आचरण है। ऐसे तो बाकी कई अनंत गुण हैं! वहाँ सत् पुरुष हैं।

कृपालुदेव ने यहाँ तक लिखा है कि,

'*संसार केवल अशाता मय* (दु:ख-परिणाममय) *है*..... एक अंश *शाता* (सुख-परिणाम) से लेकर उसके पूर्णकामता होने तक की सर्व

समाधि का कारण सत् पुरुष ही हैं। इतना सामर्थ्य होने पर भी जिन्हें कोई भी स्पृहा नहीं है, उन्मत्तता नहीं है, *पोतापणुं* (मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण, मेरापन, खुदपना) नहीं है, गर्व नहीं है, *गारवता* नहीं है, ऐसे आश्चर्य की प्रतिमा रूप सत् पुरुष को हम बार-बार नाम रूप से स्मरण करते हैं।'

...स्पृहा नहीं

प्रश्नकर्ता : वह जो 'स्पृहा नहीं है' कहा, तो किस प्रकार की?

दादाश्री : श्रीमद् राजचंद्र ने 'स्पृहा नहीं है' कहा है तो ऐसे निस्पृही तो बहुत हैं अपने हिन्दुस्तान में तो क्या वैसे लोग काम आएँगे? नहीं। निस्पृही काम के नहीं हैं। जिनमें स्पृहा नहीं है, ऐसे लोग यहाँ पर बहुत सारे हैं, निस्पृही।

ये जो साधु बाबा हैं, वे सभी निस्पृह हैं, बिल्कुल भी स्पृहा नहीं। 'हमकु क्या? हमकु क्या? कुछ नहीं चाहिए।' तो कोई दूध ले आए न, तब वह क्या मानता है कि, 'बाप जी राज़ी हो जाएँगे, चलो न। कभी काम आएँगे। मेरे बेटे के यहाँ बेटा नहीं है।' तब बाप जी क्या कहेंगे, 'हमको कुछ नहीं चाहिए, चले जाओ इधर से। क्यों आया?' और इतनी-इतनी गालियाँ भी देता है। लेकिन लोग लालची हैं, इसलिए इन लोगों की गाड़ी चलती रहती है और 'व्यवस्थित' का नियम है। किसी भी तरह से उसे खाने-पीने का, वह गालियाँ दे, फिर भी भक्त उसे दे जाते हैं। वह जीवित तो रहता है न! 'व्यवस्थित' का नियम है, खाने का पहुँचाए बगैर नहीं रहता। अरे, अंत में ऐसा भी कहता है, 'बाबा जी का दिमाग़ ऐसा है, लेकिन दो उसे।' गालियाँ खाकर भी दे आता है। अब यह जो कहते हैं, 'हमकु कुछ नहीं चाहिए।' यह भी स्पृहा ही कहलाती है। यह भी एक तरह का अहंकार है, निस्पृही! ऐसे निस्पृही देखे हैं कोई? मैंने देखे हैं ऐसे भी।

एक निस्पृही आया था, वह ताला दिखा रहा था। छेद करके ताला लगाया था! और फिर कपड़े निकालकर मुझसे कहने लगा, 'देखिए।'

अरे भाई, इन्द्रिय को क्यों ताला लगाया? बेचारी इन्द्रिय ने क्या गुनाह किया कि इसे ताला लगाया?! यह तो उन दिनों ज्ञान नहीं था इसलिए इस तरफ का पक्ष ज़रा सख्त हो जाता था। मैंने कहा, 'आप क्यों यहाँ पर पधारे हो? क्यों आप ऐसा कर रहे हो और यों दर्शन करवा रहे हो?' तब उसने कहा, 'ताला लगाया है, नहीं देखता?' मैंने कहा, 'देखा भाई, एक जगह पर क्यों लगाया? इधर पीछे भी लगा दो।' तब उसने कहा, 'हमारे साथ ऐसा बोलता है?' मैंने कहा, 'आपको क्या चाहिए, वह बताओ।' तब उसने कहा, 'पाँच रुपये अभी के अभी दे दो।' मैंने कहा, 'भाई, धमकाने के रुपये मेरे पास नहीं है, मेरे पास विनती के रुपये हैं। आप माँगो उतने रुपये हैं मेरे पास। लेकिन अगर आप धमकाओगे तो, उसके रुपये मेरे पास नहीं है। मेरे गुरु ने कहा है कि जो माँगे उसे देना, और जो धमकाए उसे मत देना।' तब उसने कहा, 'ऐसा करेगा? ऐसा करेगा?' मैंने कहा, 'आप तो बड़े लोग हो, ऐसा कुछ भी कर सकते हो। हमारे पास तो कुछ नहीं है। हम क्या करेंगे और जो पैसा है, वह माँगने वाले के लिए है।' 'हमारे लिए कुछ भी नहीं?' तब मैंने कहा, 'एक रुपया ले जाओ।' मैं ठीक तरह से नहीं बोला न, इसलिए वह फाटक से बाहर निकल गए, फिर मैंने कहा, 'आइए, पधारिए।' फिर चाय रखवाई और पिलाई, और पाँच रुपये दिए। एक रुपया पहले दिया था और पाँच रुपये ऊपर से दिए। इसलिए फिर उसके बाद नहीं बोला।

जो निस्पृह हो गए हैं, वे 'हमकु क्या, हमकु क्या' करते रहते हैं। तो वे भी भटक मरे और सभी को भटका मारा और 'ज्ञानीपुरुष' कैसे होते हैं? आपके आत्मा प्रति स्पृहा वाले होते हैं, और बाहर आपका जो भौतिक में है उसके निस्पृही। भौतिक में किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं होती, और उनके आत्मा का किस तरह कल्याण हो उतनी ही स्पृहा होती है। हाँ, संपूर्ण निस्पृह नहीं होते। यानी हम 'ज्ञानीपुरुष' निस्पृह-सस्पृह हैं। इसका क्या मतलब है? यह किनारा भी हमारा नहीं है और वह किनारा भी हमारा नहीं है। हम तेरे *पुद्गल* में निस्पृह हैं और तेरे आत्मा के लिए सस्पृह हैं। तू अगर हमें गालियाँ देगा फिर भी हम तेरे प्रति स्पृहा रखेंगे। उसका क्या कारण है? कि तेरे आत्मा के लिए सस्पृह हैं। वह

यदि टेढ़ा करे न, वह अपमान करे न, फिर भी हम उस बेचारे का रक्षण करेंगे। आपकी समझ में आया न?

...उन्मत्तता नहीं

फिर दूसरा कौन सा गुण?

प्रश्नकर्ता : उन्मत्तता नहीं।

दादाश्री : हाँ। उन्मत्तता यानी क्या? आपको समझ में आता है? मैं आपको आपकी भाषा में बता दूँ।

लोग तो कैसा अहंकार करते हैं? यहाँ से ऐसे जा रहा हो न, तब सीधा 'स्ट्रेट फॉरवर्ड' जा रहा हो, ऐसे साहजिक तरह से तरीके से चलता है, और जब वापस आता है, उस घड़ी हमें लगता है कि इसमें क्यों बदलाव हो गया लगता है? 'फेस' बदला हुआ लगता है हमें। लौटते हुए रौब से आता है। तब हम जान जाते हैं कि यह कुछ बदलाव हुआ है, इसे 'इफेक्ट' है कोई।

तब हम उसे कहें कि, 'आओ-आओ, ज़रा चाय पीकर जाओ।' तो हम उसका पता लगाने के लिए चाय पिलाते हैं, उसके रौब के कारण नहीं पिलाते। जबकि वह मानता है कि उसके रौब के कारण चाय पिला रहे हैं। हम चाय पिलाकर फिर पूछें कि, 'किस तरफ गए थे?' तब वह कहता है, 'वे पाँच हज़ार रुपये लेने थे न, वह ले आया।'

जेब में पाँच हज़ार आए, तो वापस यह चढ़ा! उन्मत्त हो जाता है। उसमें रोग घुसा है यह, उन्मत्तता का रोग! यानी कि बैंगन हो गया फिर से 'टाइट'! वर्ना 'ऐसा' हो जाता है बैंगन।

बोलो अब, वह पाँच हज़ार यदि इंसान को 'टाइट' कर देता है, इंसान उन्मत्त हो जाता है, तो हमें तो, 'ज्ञानीपुरुष' को तो संपूर्ण भगवान ही वश में हो चुके हैं! बोलो, हममें कितना 'टाइट' रहना चाहिए?! लेकिन फिर भी उन्मत्तता नहीं है ज़रा भी। यह आश्चर्य ही है न! पाँच हज़ार यदि इतना 'टाइट' करे, तो भगवान-पूरा तीन लोक के नाथ, जिनके

वश में रहते हों, वे कैसे 'टाइट' होंगे?! लेकिन नहीं, वास्तव में लघुता वहीं पर होती है! हम तो छोटे बालक जैसे हैं।

...पोतापणां नहीं

फिर तीसरा कौन सा वाक्य लिखते हैं?

प्रश्नकर्ता : *पोतापणुं* नहीं।

दादाश्री : *पोतापणुं* यानी 'मैं हूँ और यह मेरा है!' *पोतापणुं* नहीं है इसलिए यह शरीर खुद का है ही नहीं। यह शरीर ही मेरा नहीं है इसलिए शरीर से संबंधित कोई भी चीज़ मेरी है ही नहीं। यह मन मेरा नहीं है, यह वाणी मेरी नहीं है। यह जो बोल रहे हैं न, वह भी मेरी वाणी नहीं है। यह ऑरिजिनल टेपरिकॉर्डर बोल रहा है। वह वक्ता है, आप श्रोता हो और मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। यह हम तीनों का व्यवहार हैं। वाणी के हम मालिक नहीं हैं। इस शरीर के हम मालिक नहीं हैं। इस मन के हम मालिक नहीं हैं।

गर्व मिठास से खड़ा है संसार

प्रश्नकर्ता : गर्व क्या है? गर्व और अभिमान में कोई फर्क है?

दादाश्री : अभिमान और गर्व दोनों आमने-सामने तराजू में रखें तो कितना होगा? एक तरफ तराजू में गर्व रखें और एक तरफ अभिमान रखें तो क्या होगा? क्या एक समान वज़न होगा? अभिमान एक पाउन्ड होगा और गर्व चालीस पाउन्ड होगा।

प्रश्नकर्ता : किस तरह से, वह समझाइए।

दादाश्री : ऐसा है, लोग तो अभिमान को नहीं समझते, गर्व को नहीं समझते। गर्व का मतलब अभिमान नहीं है। अभिमान शब्द अलग है, गर्व अलग, अहंकार भी अलग।

प्रश्नकर्ता : तो गर्व अर्थात् मैं पद?

दादाश्री : नहीं। मैं पद का मतलब अहंकार है। 'मैं चंदूभाई हूँ'

वह अहंकार है। शायद आपमें अभिमान नहीं भी हो, गर्व भी नहीं हो, जहाँ खुद नहीं है वहाँ 'मैं हूँ' ऐसा मानना, वह है मैं पद। जो स्व-पद को चूक गए हैं, वे मैं पद में होते हैं, लेकिन गर्व क्या है? गर्वरस तो बहुत गाढ़ होता है। अभिमान तो भोला रस है बेचारा, पाव एक पाउन्ड! जबकि गर्वरस तो है चालीस पाउन्ड!

प्रश्नकर्ता : ज़रा गर्व रस का उदाहरण देकर समझाइए।

दादाश्री : अभिमान में वह ऐसा नहीं जानता कि 'इन सब का कर्ता मैं हूँ' और गर्वरस तो 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मानता है। यानी कि एक का कर्ता अर्थात् पूरे ब्रह्मांड का कर्ता भी मैं हूँ ऐसा मानता है। अत: गर्व रस तो बहुत आगे तक पहुँचता है। गर्व करता होगा कोई? अरे, सभी बातों में गर्व होता है। 'मैं करता हूँ' इसका भान, वह सब गर्वरस कहलाता है।

जब कृपालुदेव का यह भान चला गया कि 'मैं करता हूँ,' तब यथार्थ समकित हुआ, तब उन्होंने क्या कहा कि '*मट्यो उदयकर्म नो गर्व रे!*' (मिटा उदय कर्म का गर्व रे!) पूरा जगत् उदय कर्म में गर्व रखता है। उसमें कोई भी अपवाद नहीं है। क्योंकि, जब तक खुद 'स्व रूप' नहीं हो जाता तब तक दूसरी जगह पर है और दूसरी जगह पर है इसलिए गर्व हुए बिना नहीं रहता।

'इगोइज़म' किसलिए घुसा है? अज्ञानता के कारण। किसकी अज्ञानता? यह सब कौन करता है, उसकी अज्ञानता है। इसलिए नरसिंह मेहता क्या कहते हैं?

''हूँ करूँ, हूँ करूँ ए ज अज्ञानता, शकटनो भार ज्यम श्वान ताणे, सृष्टि मंडाण छे सर्व ऐणी पेरे, जोगी जोगेश्वरा कोक जाणे।''

क्या गलत कह रहे हैं यह नरसिंह मेहता? जबकि कई लोग कहते हैं कि, 'मैंने यह किया, मैंने स्वाध्याय किया, मैंने तप किया, मैंने जप किया' तो कौन सी बात सही है? इसलिए 'मैं करता हूँ, मैं करता हूँ' यह अज्ञानता है। कैसे प्राप्ति करेगा मनुष्य? और गर्व क्या है? कि जहाँ खुद नहीं करता है वहाँ पर कहता है, 'मैंने किया'। वह

गर्व है। खुद करता नहीं है, 'इट हेपन्स' है। इसके बजाय क्या कहते हैं लोग?

प्रश्नकर्ता : मैंने किया।

दादाश्री : वह गर्व कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते हैं कि ज्ञान का भी गर्व आ जाता है।

दादाश्री : ज्ञान का गर्व तो हम चला भी लेते हैं कि अच्छी बात का गर्व है लेकिन यह तो, अज्ञानता का भी गर्व है।

प्रश्नकर्ता : और गर्व का उपयोग अच्छे अर्थ में भी होता है न कि यह गर्व करने जैसी बात है।

दादाश्री : उसका फिर अच्छे अर्थ में भी उपयोग होता है लेकिन जगत् में मूल गर्व यहाँ पर है। वे फिर उसे अच्छे अर्थ में ले गए।

गर्व अर्थात् 'जहाँ खुद नहीं करता है' वहाँ पर ऐसा मानना कि 'करता है'। उस समय रस उत्पन्न होता है अंदर, गर्वरस उत्पन्न होता है। वह बहुत मीठा लगता है, इसलिए उसे मज़ा आता है कि 'मैंने किया'!

प्रश्नकर्ता : और वातावरण भी ऐसा है कि निमित्त को पकड़ लेता है। हार पहनाकर सम्मान करते हैं, मानपत्र देते हैं कि 'आपने ही किया।'

दादाश्री : हाँ, 'आपने ही किया, आपने ही किया' करके चिपट पड़ते हैं।

किसी का अच्छा किया न, उसका गर्व लेता है। फिर खराब किया, उसका भी गर्व लेता है। यानी कि अच्छे-अच्छों को मार डाला है, उसका गर्व लेता है। अच्छे-अच्छों को मैंने धनवान बना दिया है, पैसेवाला बना दिया है, ऐसा गर्व लेता है। वह स्वमान नहीं कहलाता। अभिमान नहीं कहलाता।

किसी जगह पर पान नहीं मिलता और कोई पान ले आए तो

दो-तीन बार गा उठता है, 'किसी जगह पर नहीं मिल रहा था, हं!' यह गर्वरस। 'मैं था तो ले आया, नहीं तो ठिकाना ही नहीं पड़ता' कहेगा। ऐसे गर्वरस चखता है। बहुत मज़ा आता है।

प्रश्नकर्ता : गर्व लेना तो गलत ही कहलाता है न!

दादाश्री : गर्व से संसार खड़ा है। संसार का बीज गर्व ही है, अहंकार नहीं।

प्रश्नकर्ता : गर्व, वह बीज है। वह किस तरह से?

दादाश्री : अहंकार में स्वाद नहीं होता। यानी कि अहंकार बेस्वाद है और यह गर्वरस स्वादिष्ट है, बहुत ही स्वादिष्ट! मान-अभिमान भी स्वादिष्ट है, लेकिन गर्व जितना नहीं। गर्व जितनी स्वादिष्ट तो कोई भी चीज़ नहीं है।

'विज्ञान' ही छुड़वाए गर्वरस

यानी हम लोग वास्तव में कर्ता नहीं है। कर्ता दूसरी ही चीज़ है। हम आरोप करते हैं, आरोपित भाव करते हैं कि 'मैं कर रहा हूँ यह।' उसका गर्वरस चखने को मिलता है। ऐसा गर्वरस तो बहुत मीठा लगता है वापस और उसी से कर्म बंधते हैं। गर्वरस चखा, आरोपित भाव किया कि कर्म बंधा।

अब जैसा है वैसा जान ले कि भाई, यह कर्ता हम नहीं हैं और यह तो 'व्यवस्थित' कर रहा है, तभी से हम मुक्त हो जाते हैं। ऐसा विज्ञान होना चाहिए अपने पास। फिर राग-द्वेष होंगे ही नहीं न! विज्ञान से ऐसा जान जाते हैं कि हम अब 'यह' हैं ही नहीं। मैं यह जो कह रहा हूँ, वह मेरा विज्ञान नहीं है। यह वीतराग विज्ञान हैं! चौबीस तीर्थंकरों का विज्ञान है! और वीतराग विज्ञान के बिना मनुष्य बात को प्राप्त कैसे करेगा?!

प्रश्नकर्ता : आपकी 'थ्योरी' के अनुसार तो 'व्यवस्थित' चला रहा है, फिर भी गर्वरस होता ही रहता है न, उसमें?

दादाश्री : नहीं। गर्व होगा ही नहीं न! गर्व तो, 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा 'डिसाइड' होने तक ही गर्व है। जब तक 'रोंग बिलीफ' है, तब तक गर्व है और 'रोंग बिलीफ' गई तो गर्व रहता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : 'रोंग बिलीफ' तो जाती नहीं है न, जल्दी?

दादाश्री : 'रोंग बिलीफ' चली ही जाती है न! हम वह निकाल देते हैं। कितने ही लोगों की 'रोंग बिलीफ' चली गई है न! और वह 'रोंग बिलीफ' एक नहीं है। मैं इसका भाई हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ, ऐसी कितनी ही सारी 'रोंग बिलीफें' बैठी हैं?!

प्रश्नकर्ता : जब तक आप स्वरूप का भान नहीं करवाते, तब तक 'रोंग बिलीफ' जाती नहीं है न?

दादाश्री : नहीं जाती। उसका भान होना चाहिए। 'मैं चंदूभाई नहीं हूँ, चंदूभाई तो सिर्फ ड्रामेटिक है' ऐसा भान होना चाहिए। फिर अंदर संयम बरतता रहेगा और अंदर का आंतरिक संयम बरतने लगे तो फिर गर्वरस नहीं चखता। संयम से इतना सुख उपजता है कि उसे गर्वरस चखने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। यह तो उसे सुख नहीं है, इसीलिए गर्वरस चखता है। किसी भी प्रकार का सुख नहीं है तब, ऐसा यह सुख तो है ही न!

'ज्ञानी' को गर्व नहीं

इस गर्वरस को चखने से ही कैफ (नशा) बढ़ता जाता है। फिर बहुत कैफी हो जाता है। तो कैफ किस तरह उतरेगा अब? मोह का जो कैफ चढ़ गया है वह किस तरह उतरेगा?! नुकसान होता है, वह भी अटल है और नफा होता है वह भी अटल है। लेकिन जब नफा होता है तब कहता है, 'मैंने कमाया,' और नुकसान हो जाए तब कहेगा, 'भगवान ने किया।' 'माइ स्टार्स आर नॉट फेवरेबल।'

यानी गर्वरस चखना है। यह रस एक प्रकार का ऐसा मीठा रस है, यह गर्वरस चखना है और गर्वरस की वजह से यह संसार है। दारू

की वजह से, बीड़ियों की वजह से या चाय की वजह से यह संसार नहीं है, लेकिन इस गर्वरस से खड़ा है। सिर्फ यही रस ऐसा है कि जिसे छोड़ना किसी को भी अच्छा नहीं लगता।

गर्व क्या है? आपको समझाता हूँ। कोई आपसे कहेगा, 'मैंने चार सामायिक कीं।' उस घड़ी उसके मुँह पर यों बहुत आनंद दिखाई देता है और जब हम पूछें, 'इसने कितनी सामायिक की?' तब वह कहता है, 'इससे नहीं होती। एक ही की है इसने।' फिर हम पूछें, 'साहब, चार सामायिक आपने की है!' तब वह कहता है, 'और कौन है करनेवाला? मैं ही हूँ न करनेवाला!' तब हम समझ जाते हैं न कि इसे कितना कैफ है?! मन में खुद को न जाने क्या ही मान बैठता है। लेकिन दूसरे दिन हम पूछें, 'क्यों, आज कितनी सामायिक की?' तब वह कहेगा, 'आज तो पैर दुःख रहे हैं। नहीं की।' वर्ना कहेगा, 'मेरा सिर दुःख रहा है।' तो कल सामायिक पैर ने की थी या आपने की थी? किसने की थी? यदि आपने की थी तो पैर का बहाना मत बनाओ। यह तो पैर ठीक है, सिर ठीक है, पेट में नहीं दुःख रहा है इसलिए सामायिक हुई। सबकुछ 'रेग्युलर' हो, सभी संयोग सीधे हों तब हो पाती है। उसमें से आप अकेले ही क्यों सिर पर ले लेते हो?! यानी कि यह परसत्ता ने किया, उसमें आपका क्या? ऐसा सिर पर लेता है या नहीं लेता? लेकिन यह तो 'इगोइज़म' करता रहता है सिर्फ। यह सबकुछ कर रहा है 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' लेकिन 'खुद' कहता है, 'मैं कर रहा हूँ'। वह है गर्वरस! और जब तक गर्वरस चखने की आदत है न, तब तक यह संसार खड़ा रहता है। बात तो समझनी पड़ेगी न? यों ही गप्प चलती है क्या?

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह सब तो जन्म से ही लेकर आए हैं न?

दादाश्री : हाँ, जन्म से ही लेकर आए हैं, लेकिन इसका भान नहीं रहता न! और गर्वरस चखता ही रहता है। गर्वरस चखना 'उसे' बहुत अच्छा लगता है। 'मैंने चार सामायिक की' कहते ही यों 'टाइट' हो जाता है और जिसने सिर्फ एक सामायिक की हो, उस पर दया खाता

है। कहता है, 'इस बेचारे से हो नहीं पाता।' पहले दया आती है और फिर तिरस्कार। यानी यह सब गर्वरस से है। वह अपनी ही भूल है न?! उसमें भगवान क्या करें?! इसलिए कृपालुदेव ने कहा है,

'दस वर्षे रे धारा उल्लसी, मट्यो उदयकर्मनो गर्व रे!'
(दस वर्ष की उम्र में धारा उल्लसित हुई, मिटा उदयकर्म का गर्व रे!)

उदयकर्म का गर्व क्या है, यह समझता है क्या एक भी इंसान?! हिन्दुस्तान में कौन समझ सकता है इसे! यह तो जब हम समझाएँ तब समझ में आता है।

'उदयकर्म अर्थात् यह सामायिक उदयकर्म कर रहा है, मैं नहीं कर रहा हूँ' तो उसे गर्व नहीं है लेकिन लोग तो गर्वरस चखे बगैर रहते नहीं न! चखते हैं या नहीं चखते? 'मैंने चार सामायिक की।' तो चार क्यों कहते हो? तब यह कहता है, 'इसकी एक ही हुई है।' मैं समझ गया, मोक्ष की तैयारी की! तूने यह!

गर्व लेने से क्या हुआ? कि गरदन फँसी। मोक्ष का तो कहाँ गया, लेकिन मोक्ष के लिए तो लाख जन्मों के तूने अंतराय डाल दिए। सामायिक का गर्व किया! संसार का गर्व होता है। कहेगा, 'हम फलानी जगह पर गए।' ओहोहो, वहाँ जाने में भी गर्व लिया?! जैसे न जाने क्या कमा लिया!? जैसे चिंता खत्म न हो गई हो! इसे गर्व कहते हैं।

अब, इसलिए इन लोगों ने कहा है कि ''यही गले में फांसी।'' यह सामायिक की, प्रतिक्रमण किया, यह मैंने त्याग दिया, ऐसा बोले, वह आपके गले में फांसी है, तूने गर्वरस चखा!

अब, सत् पुरुष को गर्व नहीं होता, इसका मतलब क्या है? वे खुद अपने हाथों से चाहे कितनी भी शांति दें, फिर भी उन्हें ऐसा गर्व नहीं होता कि 'मैं दे रहा हूँ, मैं यह शांति दे रहा हूँ' ऐसा नहीं रहता। वह ऐसा जानते हैं कि 'मैं तो निमित्त हूँ और उसके घर की (उसकी खुद की) शांति उसके लिए अनावृत कर देता हूँ।'

अर्थात् गर्व नहीं होता किसी चीज़ का क्योंकि अहंकार ही नहीं होता तो गर्व कहाँ से होगा? जहाँ अहंकार होता है, वहाँ गर्व रहता ही है। अत: उनमें गर्व नहीं होता।

अब वह गर्व हमारे पास नहीं है। 'कोई क्रिया मैंने की है,' ऐसा हमें रहता ही नहीं। अब, इसके कर्ता का रस चखता है, इसलिए जी पाते हैं ये लोग। अभी भी शास्त्र पढ़ने वाले बड़े-बड़े लोग होते हैं लेकिन 'मैंने किया' उसी आधार पर जीते हैं, उसी की मस्ती में!

इस गर्वरस के सामने उन्हें कुछ अच्छा ही नहीं लगता। गर्वरस बहुत पसंद है उसे। कहेगा, 'मैंने त्याग किया, स्त्री का त्याग किया, करोड़ों रुपये छोड़कर आया हूँ, तो मोक्ष के लिए ही आया होगा न!' तब मैंने कहा, 'किसलिए, वह तो आप समझो। आपको अभी तक कौन सा रस चखना पसंद है, उसका क्या पता?! रुपये का रस अच्छा नहीं लगा लेकिन दूसरे तो तरह-तरह के रस होते हैं न और तरह-तरह की कीर्ति होती है न।' जब तक गर्वरस चखते हैं, तब तक किसी को मोक्ष की बात नहीं करनी चाहिए।

शराबी को तो, हम पानी छिड़कें न तो कैफ उतर जाता है या नहीं उतर जाता, पाँच-सात बालटी पानी डालें तो? फिर क्या कहता है बेचारा कि, 'साहब, मेरे जैसा मूर्ख कोई है ही नहीं, मैं कुछ भी नहीं समझता हूँ। मैं मूर्ख हूँ और साहब, मुझे मारना हो तो मारो लेकिन मुझे कुछ दे दो!' तो मैं सब से पहले उसे मोक्ष दूँगा क्योंकि मोक्ष प्राप्ति के लायक हो गया, ऐसा कहा जाएगा। मोक्ष के लिए इतनी ही योग्यता चाहिए!

गर्वरस चढ़ाए कैफ

शास्त्रज्ञान तो बहुत जन्मों से पढ़ते आए हैं लेकिन कुछ हुआ नहीं। इसलिए कृपालुदेव ने कहा है न, शास्त्रज्ञान से निबेड़ा नहीं है, अनुभवज्ञान से निबेड़ा है इसलिए ज्ञानी के पास जा। पुस्तकों में क्यों सिर फोड़ रहा है और आँखें बिगाड़ रहा है?! और बेकार ही बिना बात के गा रहा है! फिर मन में कैफ बढ़ता जाता है, 'मैं जानता हूँ' उसका कैफ बढ़ता है।

वह तो बहुत बड़ा कैफ है। शराबी पर तो एक बालटी पानी डाल दी जाए न, तो तुरंत कैफ उतर जाता है लेकिन इनका कैफ नहीं उतरता। ऊपर से भगवान आएँ तो भी कैफ नहीं उतरता। भगवान के बारे में भी कल्पना करेगा! क्योंकि, 'मैं जानता हूँ' का कैफ चढ़ा है न! ऐसे लोगों का बेड़ा कब पार होगा?!

और साथ-साथ उसके पीछे फिर मान की भावना! गर्वरस चखने की आदत तो है ही न या गर्वरस चखना छोड़ देते होंगे?! गर्वरस छोड़ते नहीं है न! वह तो बहुत मीठा होता है। 'मैंने ऐसा किया और वैसा किया' कहकर गर्वरस चढ़ता ही जाता है। खुद का किया हुआ किसी को कहकर बताता है, उस घड़ी उसे कितना आनंद होता है। बहुत आनंद होता है। नहीं?

अहम् रखना 'जानता नहीं' का

किसी भी चीज़ का धर्म कब प्राप्त होता है? कि महान पुरुषों के वचनों का आराधन किया जाए और उसमें भी अगर 'मैं कुछ भी नहीं जानता,' ऐसे भाव से किया जाए तो पुण्य बंधता है। 'मैं जानता हूँ' इस भाव से किया जाए तो पाप ही बंधता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'मैं जानता हूँ' उस भाव से ही हो रहा था।

दादाश्री : नहीं तो फिर भी, मेरा कहना है कि यह सब विरुद्ध कहलाता है। यह तो लोग सिर्फ मानते हैं कि हम पुण्य कर रहे हैं। उतना अच्छा है, रमी खेलने जाएँ, उसके बजाय अच्छा है यह!

प्रश्नकर्ता : लेकिन पाप किस तरह से होता है? पाप तो होता ही नहीं न? उसका ऐसा आशय ही नहीं है। किसी को दु:ख भी नहीं होता।

दादाश्री : दु:ख नहीं देना है, गर्वरस चखना है इसमें। सब से बड़ा गर्वरस चखता है, 'मैं जानता हूँ, मैं समझता हूँ!' उसके बाद जो-जो किया जाता है, उस सारी बात में माल नहीं है। कहने जैसा नहीं है।

बहुत नहीं खोलना है। मैं थोड़ा बहुत खोल रहा हूँ, वह बुरा दिखेगा फिर। जहाँ चेहरे पर ऐसा भाव है कि 'मैं जानता हूँ,' वहाँ कभी भी फ्रेश नहीं दिखता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अहम् के बिना प्राप्ति कैसे हो सकती है?

दादाश्री : अहम् तो कैसा रखना है? 'मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ' ऐसा अहम् रखना है। 'मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ' ऐसा अहम् रखकर यदि कार्य किया जाए तो वह अहम् फल देगा। नहीं तो फल ही नहीं देगा न! वर्ना 'पोइज़न' चढ़ता रहेगा, ज़हर चढ़ता ही रहेगा। वर्ल्ड में अगर कोई पूरे चार वेद के ज्ञाता हों, वे यहाँ पर आएँ, और मुझसे कहें कि, 'मैं जानता हूँ।' तब मैं उन्हें एक ही शब्द में कहूँगा कि, 'एक चुल्लूभर भी नहीं जाना है तूने! जानना तो उसे कहते हैं कि कहना ही नहीं पड़े।'

प्रश्नकर्ता : उसे तामस अहम् कहते हैं। वह सात्विक अहम् नहीं कहलाता न? सात्विक अहम् हो तो प्राप्ति होती है या नहीं होती?

दादाश्री : सात्विक अहम् रहना मुश्किल है न! उसकी परिभाषा देना बहुत मुश्किल है। सात्विक अहम् कैसा होता है कि 'मैं कुछ भी नहीं जानता।'

प्रश्नकर्ता : जो सहज भाव से ही होता है।

दादाश्री : नहीं। ऐसा अहम् ही है कि, 'मैं कुछ भी नहीं जानता।' ये सभी लोग बेकार ही प्रयत्न कर रहे हैं, पूरी दुनिया बेकार ही प्रयत्न कर रही है। एक अक्षर भी मिल पाए, ऐसी चीज़ नहीं है। यह सत्य ढूँढा जा सके ऐसा नहीं है। जो सत्य इन लोगों को मिला है, वह विनाशी सत्य है।

आत्मा जाने बिना कुछ भी नहीं हो सकता, भटकते ही रहो क्योंकि पुस्तक में आत्मा नहीं होता। कहाँ से जानकर लाएगा? 'ज्ञानी' से ही आत्मा प्राप्त होगा लेकिन 'ज्ञानी' होते ही नहीं है न! कभी-कभार ही होते हैं। इसलिए कृपालुदेव ने कहा है न, 'दुर्लभ, दुर्लभ, दुर्लभ, दुर्लभ हैं!' ज्ञानी होते ही नहीं! कहाँ से लाए?

गर्व, स्व-प्रशंसा के समय... 'जागृति'

प्रश्नकर्ता : स्व-प्रशंसा और गर्वरस किसे कहते हैं? और उसे चखने की आदत का कारण क्या है? उसे टालने का उपाय क्या है?

दादाश्री : स्व-प्रशंसा अर्थात् कोई कहे कि, 'तू बहुत समझदार है, और तू बहुत लायक इंसान है, और तेरे जैसा इंसान कहाँ से मिलेगा!' वह स्व-प्रशंसा! ऐसा कहने पर फिर बाकी सबकुछ भूल जाता है। आपको पूरा दिन काम करवाना हो तो वह करता भी है।

और गर्वरस अर्थात् 'मैंने कितना अच्छा किया, कैसे यह किया।' जो भी काम किया हो न, वह 'कितना अच्छा है' यों उसका रस चखता है, वह गर्वरस!

गर्वरस चखने की आदत का कारण क्या है? बस, उसके पीछे अहंकार है, 'इगोइज़म' है कि 'मैं कुछ हूँ।'

उसे टालने का उपाय क्या है? वह तो, आपमें इस 'ज्ञान' के बाद उसे तो टाल ही दिया है। अब जो 'डिस्चार्ज' रूप में बचा है, वही बचा है न! 'उससे' 'हमें' दूर रहना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, उस 'डिस्चार्ज' में भी यों जागृत कैसे रहना है?

दादाश्री : यह 'चंदूभाई' जो करते हैं, वह 'हमें' देखते रहना है। 'चंदूभाई' गर्वरस चखते हैं, उसे भी देखते रहना है और स्व-प्रशंसा सुनते हुए खुश होते हैं, वह भी देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : और खुद ने कुछ अच्छा कार्य किया हो तो खुद औरों से कहता भी है, दस लोगों को कह आता है कि, 'मैंने ऐसा किया, ऐसा किया।' ऐसे कह दे तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, लेकिन कहेगा तभी उसे गर्वरस होगा न! गर्वरस उसे कहते हैं कि जब औरों से कहने पर गर्वरस उत्पन्न होता है। तब उसे मज़ा आता है और कोई सो गया हो न, तो थोड़ी देर बाद उसे उठाकर कहता है, तभी छोड़ता है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा होने से तो पुष्टि मिलती ही रहेगी न फिर?

दादाश्री : पुष्टि तो मिलती ही है न! उससे बढ़ता भी क्या है? कहीं आत्मा थोड़ा ही बढ़नेवाला है? यह तो अहंकार बढ़ता है।

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे अहंकार को पुष्टि मिलती जाती है, यों आत्मा की तरफ नुकसान होता है न, उतना ही?

दादाश्री : वह तो होता ही है न!

प्रश्नकर्ता : अब जब यह 'डिस्चार्ज' के रूप में होता है, तब उसे सतत देखता रहता है। तो वह 'देखना' किस तरह से होता है?

दादाश्री : 'फिल्म' की शूटिंग की हो न, उसे हम देखते रहते हैं न, उसमें किसका उपयोग होता है? स्थूल आँख का उपयोग होता है और अंदर की आँख का उपयोग होता है, दोनों का उपयोग होता है। ज़रूरत हो तो यह ऊपर का भाग, स्थूल चीज़ के लिए इन आँखों का उपयोग होता है। जबकि सूक्ष्म के लिए तो भीतर की आँखों से समझ में आता है। उसे देखते रहना है कि यह क्या कर रहा है, इतना ही! क्या कर रहा है, उतना ही जानना है।

इसमें बहुत गर्वरस चखता है वह सभी हमें देखते रहना है और फिर ज़रा कहना भी है, 'चंदूभाई किसलिए यों अभी तक यह चखते हो?! थोड़ा सीधे चलो न!' ऐसा कहना, बस।

प्रश्नकर्ता : वैसा कई बार मैं कहता हूँ कि, 'बैठ न, चुपचाप, बड़ा आया अक्ल का बोरा!'

दादाश्री : हाँ। अक्ल का बोरा कहने से राह पर आ जाएगा। 'बेचा जाए तो चार पैसे भी नहीं मिलेंगे,' ऐसा कह देना। पहले कहते थे कि अक्ल के बारदान आए हैं!

अब यह गर्वरस मीठा आता होगा या कड़वा होगा?

प्रश्नकर्ता : मिठास लगती है लेकिन वह गर्वरस नहीं लेने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : करना कुछ भी नहीं है। अपना ज्ञान जानना है। गर्वरस को चखने वाले 'हम' नहीं हैं! 'हम' कौन हैं, उसका लक्ष्य रखना पड़ता है। उसमें कुछ करना नहीं होता न!

अपना 'ज्ञान' है ही ऐसा कि गर्वरस चख ही नहीं पाता और चख ले तो तुरंत प्रतिक्रमण कर लेता है। अगर कुछ चिपट जाए, पहले के अभ्यास से वृत्तियाँ उस तरफ मुड़ जाएँ, तो तुरंत उखाड़ देता है। अर्थात् अपने 'ज्ञान' लिए हुए 'महात्मा' गर्वरस नहीं चखते। बाकी सभी लोग गर्वरस चखते हैं क्योंकि रास्ता नहीं मिला है न!

'ज्ञानी,' गारवता में नहीं हैं

प्रश्नकर्ता : अब *गारवता,* इस *गारवता* शब्द को ज़रा और अच्छी तरह समझाइए न!

दादाश्री : आप *गारवता* किसे कहते हो? *गारवता* का अर्थ क्या है? *गारवता,* वह अलग चीज़ है। *गारवता* तो गाय में भी होती है, भैंस में भी होती है और इंसान में भी होती है। *गारवता* हर एक इंसान में होती है और अपने इन महात्माओं में भी होती है। अभी तक तो लोग निरी *गारवता* में ही पड़े हैं।

अब *गारवता* का अर्थ क्या है? *गारवता* प्रत्यक्ष देखनी हो तो- मिलें होती हैं न, वहाँ पर गड्ढे होते हैं, तालाब जैसे, बिल्कुल बदबूदार होते हैं, वे। मिल का पानी जाने से वे गड्ढे पानी से भरे रहते हैं लेकिन पानी मिल का है इसलिए क्षारवाला है न, इसलिए उस क्षार के पानी से गड्ढे के अंदर की मिट्टी नरम पड़ जाती है। उससे अंदर कीचड़ बन जाता है। अंदर की मिट्टी सड़ जाती है, बिगड़ जाती है। वहाँ सड़न हो जाती है। इसलिए ऊपर इतना थोड़ा सा ही पानी होता है लेकिन अंदर बहुत सारा कीचड़ होता है, दो-दो फुट का! और काला, अंधेरे जैसा पानी होता है! अब भैंसें हैं न, वे गर्मियों में सख्त गर्मी में ठंडक का रास्ता

ढूँढती हैं, फ्रिज ढूँढती हैं! वे पेड़ ढूँढती हैं, दूसरा कुछ ढूँढती हैं। गायों के मुकाबले भैंसें बहुत गरम होती हैं, इसलिए उनसे ताप सहन नहीं होता। गाय-बकरियाँ सब सहन कर लेते हैं, लेकिन भैंस से सहन नहीं होता। इसलिए फ्रिज ढूँढती हैं। अतः गर्मियों के दिनों में भैंस खोजती है कि 'कौन सी जगह पर ठंडक है?' लोग नहीं ढूँढते? बहुत गर्मी लगने पर कहेंगे, 'चलो, कोई एयर कंडीशनर रूम में घुस जाएँ।' इसी तरह भैंस को भी पता चलता है। इसलिए जहाँ पानी देखे, वहीं घुस जाती है। और यदि घुसने पर कीचड़ देखे, तो बस वहीं अपना स्थान बना लेती है।

अतः भैंस अंदर कीचड़ में जाकर बैठ जाती है। गड्ढे में पानी होता है। गर्मियों के दिन होते हैं इसलिए पानी का ऊपरी भाग गरम हो जाता है लेकिन जो कीचड़ है, वह अंदर से ठंडकवाला होता है। भैंस उसमें घुस जाती है, और बैठ जाती है चैन से। यहाँ तक कीचड़ होता है, लेकिन अंदर बैठने से कीचड़ ऊपर आ जाता है। ऊपर आ जाने पर जैसे पूरा कोट पहन लिया हो न, वैसे चारों तरफ कीचड़ फैल जाता है। ऐसा लगता है जैसे पूरा शरीर फ्रिज में रखा हो। ऐसी ठंडक लगती है जैसे फ्रिज में बैठी हो न, वैसा लगता है उसे। कीचड़ यहाँ पूरे शरीर में यहाँ गले तक आ जाता है, और सिर्फ गरदन ही बाहर रखती है और यों देखा करती है बाहर सभी ओर। अंदर बैठ जाती है इसलिए वह जो कीचड़ था न, उस कीचड़ का कवर, वह फ्रिज! क्योंकि कीचड़ की बहुत ठंडक होती है, इसलिए वह एकदम बर्फ जैसा लगता है। उसे ऐसा लगता रहता है जैसे खुद बर्फ में बैठी हो। भैंस इस एयर कंडिशनर में बैठती है और ये लोग इंसानों के एयर कंडिशनर में बैठते हैं। समझ में आया न? उसे ऐसा लगता रहता है कि जैसे वह एयर कंडिशनर में बैठी है।

बोलो अब, फ्रिज में बैठी हुई भैंस, भले ही उसे कितना भी सोना दें तो भी वह निकलेगी नहीं। अब मालिक हमेशा तीन बजे दुहता था, दूध निकालता था। उस दिन तो मिली नहीं इसलिए मालिक ढूँढते-ढूँढते

वहाँ तक पहुँच गया। गड्ढ़े में देखा इसलिए मालिक जान गया कि अब तो यह कैसे निकलेगी? फिर मालिक घास के हरे गट्ठर लाकर आवाज़ देता है। किनारे पर रहकर वह कहता है, 'ले, ले!' भैंस ऐसे कान लगाती है और ऐसे देखती भी है लेकिन फिर मुँह फिर देती है, उठती नहीं है। रोज़ हरी घास के लिए भागती थी लेकिन अभी वह ध्यान ही नहीं दे रही? तो 'अंदर तुझे क्या स्वाद आ गया? फ्रिज की ठंडक!' और यहाँ से उठने का नाम भी नहीं। फ्रिज में बैठी हुई है, तो उठेगी? ऐसी गर्मी में एयर कंडिशनर में से निकलेगी क्या? *गारवता* कहलाती है यह। फिर मालिक जान जाता है कि हरा गट्ठर डाल रहा हूँ फिर भी आकर्षित नहीं हो रही, तो और वह अधिक सुख देने से उठेगी। मालिक समझ गया कि अभी उसे मस्ती है, किसी और लालच के बिना निकलेगी नहीं इसलिए फिर बिनौले ले आता है और गुड़ दिखाता है। जो चीज़ें कभी-कभार ही खिलाता है न, वे दिखाता है। तब वह भैंस भी समझ जाती है कि 'हं, वह है। फिर भी इसके जैसा तो नहीं ही है न!' बहुत दिखलाए, ऐसी अच्छी चीज़ें दिखलाए कि जिन्हें देखते ही इच्छा हो जाए, भैंस वह समझ भी जाती है कि गुड़ है लेकिन *गारवता* में से उठे तब न? अत: उस पर भी ध्यान नहीं देती, किसी भी चीज़ पर ध्यान नहीं देती क्योंकि वहाँ जो सुख मिलता है, वैसा किसी और चीज़ में नहीं है इसलिए कीचड़ में से नहीं उठती है। यों देख लेती है, लेकिन बिल्कुल भी हिलती-डुलती नहीं। यों ध्यान ही नहीं देती, बिल्कुल भी ध्यान नहीं देती। कहेगी, 'ऐसा सुख छोड़कर कौन जाए अब?!' वही *गारवता!*

गारवता का सुख इसे कहते हैं। इसी तरह यह दुनिया *गारवता* में ही सुख मान बैठी है, वे *गारवता* में से हिलते ही नहीं न! ये स्त्री-पुरुष उठते ही नहीं हैं न! राम तेरी माया! *गारवता* में पड़े हैं। कैसे इस *गारवता* में से उठे? इसी को फ्रिज मान लिया है। आपको यह समझ में आया न, *गारवता* किसे कहते हैं? जब 'ज्ञानीपुरुष' समझाएँ तब *गारवता* समझ में आती है इसलिए इसका 'एक्ज़ेक्ट' अर्थ समझ लेना हं! कृपालुदेव क्या कहना चाहते हैं, वह। जो ठंडक मिल गई है उस ठंडक के साथ तुलना की है। लोग संसार में *गारवता* में जो बैठे हैं, तो कितने ही सत्

पुरुष और ज्ञानी बार-बार कहते रहते हैं लेकिन कान हिलाकर वापस फ्रिज में बैठ जाते हैं!

सत् पुरुष ऐसी *गारवता* में नहीं रहते। वे किसी जगह पर फ्रिज की तरह नहीं बैठे रहते। आप फ्रिज में बिठाओ तब भी बाहर निकल जाते हैं और गर्मी में बिठाओ तब भी वे बाहर निकल जाते हैं। उनमें ऐसी *गारवता* नहीं होती जबकि जगत् के लोगों को तो, वे यदि संसार में घुस जाएँ न, तब जो *गारवता* महसूस होती है न, तो वे व्याख्यान सुनने भी नहीं जाते और पूरा दिन *गारवता* में ही रहते हैं। उसी ठंडक में और ठंडक में, वह *गारवता* कहलाती हैं। संसारी लोग इस *गारवता* में पड़े हैं और भैंस उस *गारवता* में पड़ी रहती है। पाँच इन्द्रियों के सुख, वही लोगों की *गारवता!* बस, मस्ती में! यानी पूरा जगत् *गारवता* में ही फँसा है।

उस भैंस को पता नहीं है कि सूर्यनारायण अस्त हुए बिना रहेंगे नहीं और रात को फिर दो बजे घर जाना पड़ेगा। तो इसके बजाय सीधी तरह से उठ जा न! यह खाना रख रहा है तो उठ न, तो तेरी इज़्ज़त रहेगी और मालिक की भी इज़्ज़त रहेगी लेकिन फिर भी नहीं उठती। रात को दस बजे तो जाना ही पड़ेगा न, फिर? तब फिर जब वह ठंडा लगने लगता है, तब वापस ठंड लगने लगती है। तब फिर गड्ढे में से बाहर निकल जाती है। जब तक वह अंदर से नहीं हिले तब तक, उस टाइम को *गारवतापद* कहा है। अभी गर्मी के ताप में ज़रा बैचेनी हो और दो-तीन डिश आइस्क्रीम खाई, वह *गारवता।*

देखो *गारवता!* भैंस की *गारवता* कीचड़ वाली है और इंसानों की *गारवता* यह है। भैंस को तो कुछ जगह पर ही *गारवता* होती है लेकिन इंसानों को तो स्त्री की *गारवता,* एयर कंडिशनर की *गारवता!* और बेटे का बाप, तो मन में मुस्कुराता रहता है कि, 'तीन बेटे हैं, तो तीन बहुएँ आएँगी। तीन बेटों के लिए तीन मकान बनवाने हैं।' ऐसी सब *गारवता* खड़ी होती है। जिस तरह बदबूदार गड्ढे में भैंस बैठी रहती है, उसी तरह पूरी दुनिया *गारवता* में ही पड़ी हुई है। गंध में, निरे विषयों की गंध

में! विषय की गंध के लिए कलह भुगतता है। यानी इस दुनिया के लोग रूप *गारवता,* विषय *गारवता,* रस गरवता, मोह-लोभ की *गारवता* में ही रचे-बसे हैं और इसलिए उन्हें बाहर निकलना अच्छा नहीं लगता।

प्रश्नकर्ता : दादा, हमारे लिए ऐसा कहा जा सकता है कि लक्ष्मी, प्रतिष्ठा, मान-तान, वह जो कुछ मिला है उसमें भैंस जैसे बनकर ही बैठे हैं?

दादाश्री : हाँ, भैंस जैसे बनकर बैठे हैं।

प्रश्नकर्ता : उस *गारवता* में से निकालनेवाला कोई चाहिए न?

दादाश्री : उस *गारवता* में से निकालनेवाला चाहिए न! ऐसे कौन लुभाता है? ऐसा क्या-क्या रखें कि फिर वह ललचाए? बिनौले और गुड़ की ओर ध्यान नहीं दिया, तो अब किस तरह ध्यान देगी वह?! फिर क्या भैंस बाहर निकलेगी? उसे रस *गारवता* कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : इस *गारवता* का स्वाद लेनेवाला अंत:करण में कौन होता है?

दादाश्री : लेनेवाला कौन होगा भला? वह अहंकार ही, और कोई नहीं। बुद्धि समझा देती है कि 'यह *गारवता* है, बहुत मज़ा आएगा।'

प्रश्नकर्ता : उसमें मुख्य रूप से चित्तवृत्ति का भी होता है न?

दादाश्री : चित्तवृत्ति तो वहीं के वहीं भटकती है।

प्रश्नकर्ता : *गारवता* के स्थानों में?

दादाश्री : हाँ, वहीं पर घूमती रहती है। जैसे मक्खी भिनभिनाती है, वैसे।

ऐसा है, यह अभिप्राय से मन बना है और मन को बहुत बड़ी चीज़ माना गया है। अब अभिप्राय क्यों खड़ा हुआ? विशेष भाव से अहंकार खड़ा हुआ, और अहंकार से अभिप्राय बना। अब अभिप्राय से मन बना, और मन बनने से चित्त की अशुद्धि होने लगी और जैसे-जैसे

चित्त की अशुद्धि होती गई वैसे-वैसे कीचड़ में घुसने लगा, संसार के कीचड़ में से अब कौन निकाले उसे?! और फिर *गारवता!* रस *गारवता,* रिद्धि *गारवता* और सिद्धि *गारवता!* तीन प्रकार की *गारवता* में फँसा है, फिर कौन निकाले इसे?!

यह सब भी गारवता

प्रश्नकर्ता : इस रस *गारवता* को ज़रा समझाइए न?

दादाश्री : आम का रस, दूसरा रस, यह खीर वगैरह सभी।

प्रश्नकर्ता : यानी सारे भोजन के स्वाद?

दादाश्री : हाँ, स्वाद। वह सब रस *गारवता* कहलाती है। किसी इंसान को कुछ चीज़ें बहुत ही भाती है और अगर वह चीज़ उस दिन बननी हो न, तो सुबह से उसका चित्त उसी चीज़ में रहता है और दोपहर को एक बजे बन जाए, तब तक उसका चित्त उसी में रहता है। भोजन के बाद भी और उसके बाद भी उसका चित्त उसी में रहता है, वह रस *गारवता।*

भैंस कीचड़ में पड़ी रहती है, वह रस *गारवता।* इन मनुष्यों की *गारवता* इन पाँच इन्द्रियों के रसों में है। वहाँ से फिर हिलता नहीं है। वह रस *गारवता,* इन्द्रियों की रस *गारवता* कहलाती है।

फिर रिद्धि *गारवता!* 'मेरी दो मिलें हैं और ऐसा है और पाँच बेटे हैं, दो बेटियाँ हैं, बंगला है।' वह रिद्धि *गारवता!* रिद्धि अर्थात् पैसों से संबंधित, यह सारा ही भौतिक रिद्धि कहलाता है और दूसरी सिद्धि कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : सिद्धि में क्या होता है?

दादाश्री : सिद्धि आध्यात्मिक होती है।

प्रश्नकर्ता : सिद्धि का उदाहरण दीजिए न!

दादाश्री : कोई बहुत अहिंसक इंसान हो, वहाँ पर बकरी, बाघ वगैरह इकट्ठे हो जाएँ तब भी कोई परेशानी नहीं होती। या कोई दौड़ता

हुआ यहाँ पर आया और मुझे देखा कि सबकुछ भूल जाता है। स्वभाव को भुलवा देती है!

सिद्धि *गारवता,* इन साधु-संन्यासियों व आचार्यों को होती है। उन्हें कोई कहे, 'बाप जी, मुझे यह दु:ख है।' तो वे सिद्धि का उपयोग करते हैं। फिर *गारवता* में रहते हैं। लोग 'बाप जी, बाप जी' कहें तो खुश हो जाता है। लोग भी कुछ न कुछ रख जाते हैं, लड्डू वगैरह सब। वह खाता-पीता है और मज़े करता है। ऐसी सब *गारवता* में रहता है। सिद्धि मिले तो सिद्धि की *गारवता* में ही रहा करता है, बस। और कुछ 'एडवान्स' बनने का विचार ही नहीं करता।

प्रश्नकर्ता : यानी *गारवता* 'एडवान्स' बनने से रोक देती है?!

दादाश्री : हाँ, उस *गारवता* में सभी लोग 'बाप जी, बाप जी' करते रहते हैं, तो वह भी खुश-खुश!

कितनी ही सिद्धि *गारवता* होती हैं, कितनी ही रिद्धि *गारवता* होती हैं, कितनी ही रस *गारवता* होती हैं। ऐसी अनेक प्रकार की *गारवता* होती है। इन शास्त्रों की भी *गारवता* ही है सिर्फ!

प्रश्नकर्ता : शास्त्रों की भी *गारवता?*

दादाश्री : बस, जहाँ पर बैठे रहना हो और हिलने का मन नहीं हो, वह सब *गारवता।* वर्ना, रोज़-रोज़ प्रगति करनी है।

प्रश्नकर्ता : यानी अंतिम स्टेशन तक पहुँचते हुए भले ही कितने भी ऐसे स्थल आएँ, लेकिन वहाँ रुकना नहीं है।

दादाश्री : वहाँ पर रुक नहीं जाना है। वहाँ पर जो सुख महसूस होगा, उस सुख में रुक नहीं जाना। यों तो, शास्त्र पढ़ने से भी सुख तो बरतता है क्योंकि 'ज्ञानीपुरुष' की बात है इसलिए अंदर ठंडक होती है, शांति होती है। राज्य मिल जाए और राज्य में तन्मयाकार होकर पड़े रहना, वह सभी *गारवता* (संसारी सुख की ठंडक में पड़े रहने की इच्छा) कहलाती है।

बाकी, *गारवता* को लोग समझते ही नहीं, कि *गारवता* क्या है?

प्रश्नकर्ता : यह तो, वह भैंस का उदाहरण दिया न, उससे एकदम स्पष्ट समझ में आ जाता है।

दादाश्री : तो यह उदाहरण दिया न, तो लोग रास्ते में भैंस को कीचड़ में बैठी हुई देखते हैं, गड्ढे में, तो कहते हैं, 'एय वह *गारवता* आई। दादा, देखो *गारवता*।' मैं कहता हूँ, 'हाँ, तुझे याद रह गया!'

गारवता का अर्थ किसी ने किया ही नहीं है। *गारवता* का अर्थ किसी जगह पर पुस्तक में नहीं दिया गया है इसलिए मैंने यह *गारवता* का अर्थविशद खुलासा किया है।

गारवता में से छूटा कैसे जाए?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् यह सुख की भ्रांति, वह पूरा *गारवता* का स्वरूप ही है न?

दादाश्री : सब *गारवता* ही है।

प्रश्नकर्ता : उस *गारवता* के जो संयोग मिलते हैं अभी, यह हिसाब तो वह पहले से ही लेकर आया है न?

दादाश्री : सब 'डिसाइडेड' लेकर ही आया है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी अभी उसे फिर से चिपट पड़ते हैं?

दादाश्री : अज्ञानी हो तो चिपट पड़ते हैं लेकिन यदि 'ज्ञान' और 'आज्ञा' पालन करे तो नहीं चिपटेंगे।

प्रश्नकर्ता : तब भी उसमें से छूट नहीं सकता? उसे भुगतना तो पड़ेगा ही न, उतना?

दादाश्री : हस्ताक्षर किए हुए हैं न!

प्रश्नकर्ता : अभी उस *गारवता* में फिर से स्वाद ले तो नए हस्ताक्षर हो गए क्या?

दादाश्री : नहीं। अपना 'ज्ञान' लिया हुआ हो तो नहीं होंगे।

प्रश्नकर्ता : इस *गारवता* में, अभी तक की 'लाइफ' में यों चित्तवृत्ति तो ऐसी बिखरी हुई ही रहती है न?

दादाश्री : पूरी बिखरी हुई ही रहती है इसलिए एकाग्र होता ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : तो यह जो *गारवता* है, उसे प्रमाद की पराकाष्ठा नहीं कह सकते?

दादाश्री : प्रमाद, वह अलग चीज़ है, और यह *गारवता,* वह अलग चीज़ है। *गारवता* अर्थात् उसे उठने का विचार भी नहीं आता। प्रमादी के मन में तो ऐसा होता है कि, 'अरे, मैं प्रमादी हूँ।' जबकि *गारवता* वाले को तो 'मैं *गारवता* में हूँ' ऐसा भान ही नहीं होता! *गारवता* में ही है न, जगत्। अभी तक सब *गारवता* ही कहलाती है। वह भैंस खड़ी ही नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : सूर्यनारायण तो अस्त हुए बगैर रहेंगे नहीं और ठंड पड़ेगी तब उठना पड़ेगा उसे। लेकिन क्या इन इंसानों के ऐसे कोई संयोग नहीं बदलते, इस *गारवता* में से निकलने के लिए?

दादाश्री : नहीं, यह पसंद है। कोई अच्छी-अच्छी चीज़ें खिलाए तब भी कहेगा, 'इसके साथ नहीं।' लेकिन उसे बहुत ही भूख लगे न, तब यह सुख उसे सुख महसूस ही नहीं होता। उसे वेदना होती है। तब वह उठता है। बहुत ही भूख लगे तो उठता है। या फिर बाहर का वातावरण ठंडा हो जाए तो उठता है। हाँ, तब उसे अंदर मज़ा नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन *गारवता* में से छूटने की कोई चाबी होगी न?

दादाश्री : वह तो, अपने आप जब बाहर ठंडा हो जाए तब उठ जाती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इन इंसानों की लाइफ में ऐसा कोई वातावरण आता है?

दादाश्री : नहीं, नहीं। अभी ये सभी *गारवता* में है। क्या पेडर रोड से उठकर वहाँ सांताक्रुज़ में जाएँगे? दिवालिया निकल जाए तब जाएँगे। पैसे नहीं हो, कुछ भी नहीं हो, तब फिर कोई धकेलकर निकाले तब जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो क्या लोग *गारवता* में से छूट ही नहीं सकते?

दादाश्री : *गारवता!* ओहोहो, क्या *गारवता* में से छूटने के लिए लोग तैयार हैं? नहीं, *गारवता* में तो लोग खुश होकर यों पड़े रहते हैं हमेशा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वहाँ सच्चा आनंद तो नहीं है न?

दादाश्री : नहीं है, नहीं? फिर भी पूरा जगत् *गारवता* में पड़ा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह *गारवता* इन इंसानों में से जाएगी कैसे?

दादाश्री : दूसरा सुख देख ले तब जाएगी।

प्रश्नकर्ता : दूसरा कोई अच्छा सुख मिले तो छूट जाएगी?

दादाश्री : हाँ, तब छूट जाएगी। दूसरा सुख प्रतीति में बैठ जाए उसे, कभी देखा नहीं हो और प्रतीति बैठ जाए कि 'ये दादा कहते हैं वैसा ही है' तब वह जाती है।

प्रश्नकर्ता : अपने महात्माओं में यह *गारवता* है न?

दादाश्री : हाँ है, लेकिन *गारवता* को वे समझते हैं कि हमें *गारवता* का भूत है, फिर भी अच्छी लगती है *गारवता!*

प्रश्नकर्ता : हम इस *गारवता* में न रहें और निकल जाएँ ऐसा कौन सा 'सॉल्यूशन' है?

दादाश्री : 'सॉल्यूशन' तो, मन में तय करना चाहिए कि यह हो या वह हो, दोनों को एक समान कर दे न, तो 'सॉल्यूशन' निकलेगा। समान! खुद की नज़र में समान!

प्रश्नकर्ता : यानी इस *गारवता* के जो सुख मिलते हैं वे...

दादाश्री : उनकी कीमत और इसकी कीमत दोनों एक समान मान ले, दोनों की कीमत ही एक जैसी कर दे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन किस-किसकी कीमत?

दादाश्री : इस *गारवता* की और दूसरी चीज़ें देते हैं न, खाने-पीने का मिल रहा हो, वह। कीमत एक सरीखी कर दे तो वह खत्म हो जाती है। इसमें भी कहाँ सुख है और इसमें भी कहाँ सुख है, जो ऐसा सब जानता है, वह उसे खत्म कर देता है।

गारवता को तो लोग समझते ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिसने 'ज्ञान' लिया है, क्या उसके लिए *गारवता* में से छूटने का इसके अलावा और कोई रास्ता है?

दादाश्री : लेकिन 'चंदूभाई' पर असर रहता है या 'शुद्धात्मा' पर असर रहता है? *गारवता* का असर रहता है तो 'चंदूभाई' कहलाएगा। और *गारवता* का असर नहीं रहता तो 'शुद्धात्मा' हो गए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हम यहाँ आए हैं, दादा के दर्शन करने हैं, दादा के साथ बैठना है, उसमें भी वह जो रुचि रहती है, वह भी *गारवता* ही कहलाएगी न?

दादाश्री : नहीं। वह *गारवता* नहीं है। उसे *गारवता* कैसे कहेंगे?! यह तो मुख्य चीज़ है। यह तो अमृत जैसी बात है। हममें *गारवता* बिल्कुल भी नहीं है। रस *गारवता* नहीं है, रिद्धि *गारवता* नहीं है, सिद्धि *गारवता* नहीं है! किसी भी प्रकार की *गारवता* नहीं है। पूरा जगत् *गारवता* में ही सड़ता रहता है। 'ज्ञानी' *गारवता* में नहीं रहते।

मुक्ति पाना 'ज्ञानी' के आश्रय में

भगवान तो मेरे वश हो चुके हैं। भगवान जिनके वश में हो चुके हैं ऐसे 'ज्ञानीपुरुष,' में कौन-कौन से गुण नहीं होंगे? उनमें गर्व

नहीं होता, *गारवता* नहीं होती, अंतरंग स्पृहा नहीं होती, उन्मत्तता नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : वह तो, जब बहुत आगे बढ़ जाएँगे तब ये सब जाएँगे।

दादाश्री : नहीं। लेकिन वे चले जाएँ, उसके बाद ही ज्ञानी कहलाते हैं। इनके चले जाने के बाद ही हम ऐसा कह सकते हैं कि 'टेपरिकॉर्डर' बोल रहा है। वर्ना ऐसा इस दुनिया में कोई नहीं कह सकता कि 'टेपरिकॉर्डर बोल रहा है'। खुद की वाणी अच्छी हो न, तो 'मैं कितना अच्छा बोला, कितना अच्छा बोला' कहता रहता है। जबकि इसे हम 'टेपरिकॉर्ड' कहते हैं। क्योंकि मालिकी रहित बात है यह सारी। यानी गर्व *गारवता* कुछ भी नहीं रहा न! कुछ है ही नहीं, झंझट ही नहीं न! बंधन सिर्फ कितना है? इतना ही, कि पूर्वजन्म में ऐसी कुछ भावना की होगी कि 'यह जो सुख मैंने प्राप्त किया है, वह सभी लोग प्राप्त करें।' उसी के लिए यह क्रिया है। उस भावना का फल है यह।

अर्थात् यह अलौकिक कहलाता है। यह लौकिक नहीं कहलाता। यहाँ तो हमारी वाणी, वर्तन और विनय, ये तीनों चीज़ें मनोहर हैं, मन का हरण करें, ऐसे हैं और कभी न कभी ऐसा होना चाहिए, ऐसा बनना पड़ेगा। वह तो, जो वैसे बन चुके हैं उनके पीछे पड़ेंगे तो वैसा बना जा सकेगा या नहीं बना जा सकेगा?

प्रश्नकर्ता : बना जा सकेगा।

दादाश्री : बस, और कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है हमें। उनके पीछे पड़ना है। अनंत जन्मों का नुकसान एक जन्म में खत्म करना है। इसलिए हृदयपूर्वक संभाल तो रखनी पड़ेगी न? कितने जन्मों का नुकसान है? अनंत जन्मों का नुकसान!

[६]

लघुतम : गुरुतम

'लघुतम' 'गुरुतम' पद में 'ज्ञानी'

हमारी यही भावना है कि भले एक अवतार देर हो जाए तो हर्ज नहीं लेकिन यह 'विज्ञान' फैलना चाहिए और 'विज्ञान' से लोगों को लाभ होना चाहिए। इसलिए मैं खुलासा करने आया हूँ। मेरे पास अवकाश है। मुझे कोई काम नहीं है। सब से ज़्यादा फुरसतवाला इंसान मैं हूँ और बिल्कुल बुद्धि रहित सिर्फ मैं ही हूँ, इसलिए मुझे कोई झंझट नहीं है। आपको तो झंझट रहता है। वर्ना, मैं कहीं आपसे बड़ा नहीं हूँ, आपको क्या ऐसा लगता है? यह तो व्यवहार की खातिर ऐसे उच्च पद पर बैठे हैं।

और फिर मेरी 'हाइट' कितनी है, वह आप जानते हो? लघुतम! लघुतम यानी क्या? इस दुनिया में जितने भी जीव हैं, उनमें सब से छोटा मैं हूँ। वह मेरी 'हाइट' है। फिर क्या इससे आपको कोई परेशानी हो, ऐसा है कुछ? यानी इस भौतिक में, इस नाम-रूप में, पैसा-मान-तान, इन सभी बातों में लघुतम और दूसरी हाइट यानी सेल्फ को लेकर गुरुतम हैं हम। यानी 'होम डिपार्टमेन्ट' में हम गुरुतम और 'फॉरेन डिपार्टमेन्ट' में लघुतम! आप 'फॉरेन' में गुरुतम बनने जाते हो इसलिए अंदर 'होम डिपार्टमेन्ट' में लघुतम हो जाते हो।

तो फिर लघुतम कितना बड़ा कहलाएगा?

प्रश्नकर्ता : लघुतम यानी सब से छोटा, लेकिन क्या वह सर्वोत्तम कहा जा सकता है?

दादाश्री : नहीं, उत्तम नहीं। लघुतम! ऐसा उत्तम इसमें नहीं है।

लघु, वह छोटा कहलाता है। लघुतर यानी और अधिक छोटा, और लघुतम यानी सब से छोटा, कोई भी जीव उससे छोटा नहीं है। बस! वही लघुतम।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में कहते हैं न, दासानुदास हूँ, दास का भी दास और उसका भी मैं दास हूँ, वह?

दादाश्री : नहीं। अपने यहाँ दासानुदास तक पहुँचे हैं लेकिन लघुतम तक कोई नहीं पहुँचा है। जबकि हमारा यह लघुतम स्वरूप है इसलिए लोगों का कल्याण कर देगा। व्यवहार से लघुतम में हूँ और निश्चय से गुरुतम में हूँ। मैं किसी का गुरु नहीं बना हूँ। पूरे जगत् को गुरु मानता हूँ। आप सभी आए हो, आपको गुरु मानता हूँ। तब कोई कहेगा, 'आप यहाँ क्यों बैठे हैं?' अब मैं यहाँ नीचे बैठूँ, तो ये लोग बैठने नहीं देते। ये लोग मुझे उठाकर ऊपर बिठा देते हैं। बाकी, मुझे तो नीचे बैठना बहुत अच्छा रहता है। अत: गुरुपद में नहीं हूँ, लघुतम में हूँ।

भाव में तो लघुतम ही

यानी मैं कोई आपका *ऊपरी* नहीं हूँ। आप मेरे *ऊपरी* हो। मैंने खुद को कभी भी *ऊपरी* नहीं माना है। तो फिर क्या आपको परेशानी है? घबराहट नहीं, परेशानी नहीं। अगर आपसे बड़े होते तो आप घबरा जाते कि, 'बड़े आदमी हैं, न जाने क्या कह देंगे!' आप मुझे डाँट सकते हो, लेकिन मैं आपको नहीं डाँट सकता। अगर मैं डाँट दूँ तो वह मेरी लापरवाही कही जाएगी और अगर आप डाँटोगे तो, आपकी नासमझी के कारण डाँटोगे, कमी है इसलिए डाँट दोगे न? बाकी, पूरा जगत् हमारा *ऊ परी* है क्योंकि मैं लघुतम हूँ। आपके कितने *ऊपरी* हैं? क्यों नहीं बोल रहे हो!

प्रश्नकर्ता : लेकिन मैं लघुतम नहीं मान पाया हूँ।

दादाश्री : क्यों? क्या ऐसा नहीं हो सकता? ऐसा है न, गुरुतम अर्थात् ऊपर चढ़ना। यह पावागढ़ है, तो ऊपर चढ़ना हो तो ज़ोर लगेगा या नीचे उतरना हो, तब?

प्रश्नकर्ता : ऊपर चढ़ना हो तो ज़ोर लगता है।

दादाश्री : तो लघुतम अर्थात् नीचे उतरना। वह तो, खेल-खेल में नीचे उतरा जा सकता है। नहीं उतर सकते खेल-खेल में? हम तो आराम से खेलते-खेलते उतर गए थे। यानि भाव लघुतम का ही रखना चाहिए। जितना लघुतम का भाव रखोगे, उतना ही गुरुतम में आगे बढ़ोगे और लघुतम बनने से गुरुतम पद मिलता है।

तब भगवान वश बरतेंगे

यानी मैं इस व्यवहार में लघुतम हूँ और निश्चय में वास्तव में तो गुरुतम हूँ। मेरा *ऊपरी* कोई नहीं है। भगवान भी मेरे वश में हो चुके हैं। तब फिर और क्या बचा?

लोग मुझसे कहते हैं, 'आप दादा भगवान कहलवाते हो?' मैंने कहा, 'नहीं, मैं किसलिए कहलवाऊँ? जहाँ भगवान खुद ही मेरे वश में हो गए हैं, फिर वैसा कहलवाने की क्या ज़रूरत है? भगवान, चौदह लोक का नाथ मेरे वश में हो चुका है और यदि आप मेरी कही हुई बात को अपनाओगे तो आपका नाथ भी आपके वश हो जाएगा।' जो वश हो चुका है, वह काम का, लेकिन भगवान बनकर क्या करना है? जो हैं उन्हीं को भगवान रहने दो न! चौदह लोक के नाथ मेरे वश में हो चुके हैं और आपके भी वश में हो जाएँ, ऐसा रास्ता बताता हूँ।

भगवान बनना बहुत बड़ा जोखिम है इसलिए यदि मैं खुद को भगवान कहूँ तो मेरे सिर पर जोखिमदारी आएगी। आपका तो क्या जाएगा? और मैं किसलिए इसमें घुसूँ लेकिन? मुझे घुसकर क्या करना है? भगवान मेरे वश हो चुके हैं। वे क्या बुरे हैं?

तो भगवान बनना अच्छा या वश हो चुके हैं वह अच्छा? कौन सा पद ऊँचा है?

प्रश्नकर्ता : वश हो चुके हैं, वह।

दादाश्री : लो, अब ऐसा ऊँच पद छोड़कर कौन नीचे पद में

जाएगा? और भगवान वश हो चुके हैं उसकी 'गारन्टी' देता हूँ। उनसे कहता भी हूँ कि, 'आप यहाँ से खाली कीजिए न!' तब वे कहते हैं, 'कहाँ जाऊँ? कोई जगह होगी तो मैं कहूँगा।' मैंने कहा, 'किसी के वहाँ चले जाएँ तो मुझे हर्ज नहीं है। अब बहुत दिन रह चुके आप यहाँ पर।' लेकिन ऐसी जगह होनी चाहिए न?! उसके लिए तो ममता रहित होना पड़ता है, अहंकार रहित होना पड़ता है, तब उस कमरे में भगवान आते हैं। ऐसा कमरा चाहिए। अच्छा कमरा नहीं चाहिए?

भगवान सभी के वश में हो सकते हैं। जिसमें अहंकार कम हो तो उसमें हर्ज नहीं, लेकिन जिनकी ममता जा चुकी है उन्हें भगवान वश हुए बगैर रहते ही नहीं। जिनकी संपूर्ण ममता चली गई है, भगवान उनके वश हुए बगैर नहीं रहते।

'जूनियर' के भी 'जूनियर'

पूरी दुनिया में सिर्फ मैं ही 'जूनियर' हूँ। 'जूनियर' का 'जूनियर' बन जाए तो पूरे ब्रह्मांड का 'सीनियर' बन जाएगा। सिर्फ मैं ही 'जूनियर' हूँ। मुझे 'सीनियर' रखना है क्या आपको अब? मुझे भी 'सीनियर' रखना है? तो 'जूनियर' हो सके ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : हम तो अभी आपकी तुलना में छोटे बालक जैसे हैं।

दादाश्री : वह अलग तरह से है और मैं जो कहना चाहता हूँ वह अलग प्रकार से है क्योंकि लोगों को ऐसा लगता है कि ये गुरु हैं लेकिन नहीं, मैं गुरु नहीं हूँ। मैं लघुतम हूँ। लघुतम अर्थात् 'जूनियर।' ये सभी मुझसे 'सीनियर' हैं। पेड़-पौधे, सभी मुझसे 'सीनियर,' तो अब आपको 'जूनियर' रहना पसंद है या 'सीनियर' रहना?

प्रश्नकर्ता : यों तो 'जूनियर' के भी 'जूनियर' रहना पसंद है।

दादाश्री : हाँ, हाँ। उसमें लाभ है, तब फिर 'सीनियर' के 'सीनियर' बन सकेंगे। जिसे 'जूनियर' का 'जूनियर' रहना है, वह 'सीनियर' का 'सीनियर' बन सकता है।

लघुतम पढ़ते हुए मिले भगवान

बचपन में गुजराती स्कूल में एक मास्टर जी ने मुझसे कहा, 'आप यह लघुतम सीखो।' तब मैंने कहा, 'लघुतम यानी आप क्या कहना चाहते हैं? लघुतम कैसे हुआ जा सकता है?' तब उन्होंने कहा, 'ये सभी संख्याएँ जो दी हैं, उनमें से सब से छोटी संख्या, अविभाज्य संख्या, जिसमें फिर से भाग नहीं लगाया जा सके ऐसी रकम, वह ढूँढ निकालनी है।' तब मैं उस समय में छोटी उम्र में भी लोगों को क्या कहकर बुलाता था? ये 'संख्याएँ' अच्छी नहीं हैं। ऐसा शब्द बोलता था तो यह बात मुझे माफिक आ गई इसलिए मुझे ऐसा लगा कि इन 'संख्याओं' के अंदर फिर ऐसा ही है न?! अर्थात् भगवान सभी में अविभाज्य रूप से रहे हुए हैं।

इसलिए तभी से मेरा स्वभाव लघुतम की तरफ झुकता गया। वह लघुतम हुआ नहीं, लेकिन झुका ज़रूर और आखिर में लघुतम बनकर खड़ा रहा। अभी 'बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट आइ एम कम्प्लीट लघुतम' और 'बाइ रियल व्यू पोइन्ट आइ एम कम्प्लीट गुरुतम।' अतः इन संसारी बातों में, जब तक संसारी वेश है, उस बारे में मैं लघुतम हूँ। यानी यह लघुतम की 'थ्योरी' पहले से 'एडोप्ट' हो गई थी।

महत्व, लघुतम पद का ही

प्रश्नकर्ता : तो दादा, इसमें आप लघुतम पद को क्यों बहुत महत्व देते हैं?

दादाश्री : लेकिन लघुतम, तो हमेशा 'सेफसाइड'! जो लघुतम है वह तो हमेशा 'सेफसाइड' है, गुरुतम को भय रहता है। 'लघुतम' कहा तो फिर हमें गिरने का क्या भय? जो ऊँचाई पर बैठे हों, उन्हें गिरने का भय होता है। जगत् में लघुतम भाव में कोई है ही नहीं न! जगत् गुरुतम भाव में रहता है। जो गुरुतम बना है, वह गिरता है। इसलिए हम तो लघुतम बनकर बैठे हैं। हमें जगत् के प्रति जो भाव है, वह लघुतम भाव है इसलिए हमें गिरने का कोई भय नहीं है, कुछ स्पर्श नहीं करता और न ही कुछ बाधा डालता है।

अतः 'रिलेटिव' में हम लघुतम बनकर बैठे हैं। हम कहें कि, 'भाई, तुझसे तो हम छोटे हैं, तू गाली देता है, मैं तो उससे भी छोटा हूँ। बहुत हुआ तो वह गधा कहेगा।' तो हम तो गधे से भी बहुत छोटे हैं। गधा तो 'हेवी लोड' है न! और हममें तो 'लोड' है ही नहीं इसलिए यदि गाली देनी हो तो मैं लघुतम हूँ। लघुतम तो आकाश जैसा होता है। आकाश परमाणु जैसा होता है। लघुतम को मार स्पर्श नहीं करती, गालियाँ स्पर्श नहीं करतीं, उसे कुछ भी स्पर्श नहीं करता।

खास तौर पर कहने का भावार्थ इतना है कि यदि तुझे कोई रौब रखना है तो मैं लघुतम हूँ और तुझे मेरा रौब रखना हो तो मैं गुरुतम हूँ।

लघुता ही ले जाती है, गुरुता की ओर

हमें कोई नालायक कहे तो फिर नालायक को झगड़ा करने को रहा ही नहीं न? नालायक अर्थात् लघुतम ही रहे न! यानी यह जगत् क्या एक ही तरह की वंशावली है? सभी पहले से ही चली आई हैं और कोई नालायक हैं ही नहीं लेकिन यह तो, लायक इन्हें नालायक कहते हैं जबकि वे नालायक इन लायकों को ही नालायक कहते हैं। उसकी फिर मैंने जाँच की है। यह तो, आमने-सामने नालायक कहते हैं। अतः जल्दी से इसका पूरा न्याय हो सके, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लघुतम ही न्याय है।

दादाश्री : हाँ, लघुतम ही न्याय है, बस। लघुतम में आए कि वे सभी सीधे। फिर परेशानी ही नहीं न! और जो-जो लायक हैं, उन्हें तो आप लघुतम करने जाओगे, तब भी वे आपको गुरुतम की ओर ले जाएँगे।

लाचार होने के बजाय...

तो कभी न कभी ऐसा लघुतम भाव करना पड़ेगा न? वर्ना आखिर में तो इंसान जब स्वास्थ्य से बहुत परेशान हो जाता है और उसे बहुत दुःख पड़ता है, तब इंसान डॉक्टर के सामने लाचारी दिखाता है या नहीं दिखाता?

प्रश्नकर्ता : दिखाता ही है न!

दादाश्री : लाचार होने के बजाय लघुतम होना अच्छा लेकिन लाचार नहीं होना चाहिए। किसी भी कारण से लाचार नहीं हो जाना चाहिए।

ये सब जो बड़े लोग हैं न, उन्हें जब पेट में दुःखता है न, तब 'ओ माँ-बाप! आप कहोगे वह करूँगा' कहते हैं। उस घड़ी लाचार हो जाते हैं। जब अंदर दुःख होता है, तब, कहता है 'डॉक्टर, मुझे बचाना।' ऐसी लाचारी दिखाते हैं। ये लोग बहुत नाज़ुक होते हैं इसलिए दुःख सहन नहीं होता। जो गुरुतम बनने गए न, उनका शरीर दिनोंदिन बहुत नाज़ुक होता जाता है। जबकि लघुतम होने के लिए तो मज़बूत शरीर की आवश्यकता है। कहेंगे, 'तुझे जो करना है वह कर!' लेकिन लाचारी नहीं रहती उन्हें।

हमने पूरी ज़िंदगी में किसी भी जगह पर लाचारी नहीं दिखाई है। काट डालें तब भी लाचारी नहीं। लाचार बनना तो हिंसा कहलाती है, आत्मा की ज़बरदस्त हिंसा कहलाती है! जब तक शरीर है तब तक दुःख हुए बगैर रहेगा नहीं, लेकिन लाचारी तो होनी ही नहीं चाहिए। लघुतम रहना चाहिए।

खुद आत्मा, अनंत शक्ति का मालिक! और वहाँ पर अगर हम कहें कि 'मैं लाचार हूँ,' तो वह कितना हीन पद कहलाएगा? अरे, क्या लाचारी रहनी चाहिए? जिसके पास आत्मा है वह लाचार कैसे हो सकता है? जहाँ आत्मा हैं वहाँ पर लाचारी नहीं हो सकती। उसके बजाय लघुतम बन न!

गुरुतम बनने गए, तो...

आपको लघुतम बनने की इच्छा है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : बहुत अच्छा कहलाएगा।

प्रश्नकर्ता : 'प्रभुता से प्रभु दूर' कहते हैं न!

दादाश्री : हाँ, इसलिए हमने कहा है कि हम अपने मोक्ष में रहते हैं और लघुतम रहते हैं। फिर भी वैभव हम गुरुतम का भोगते हैं। हमारी बाह्याकृति, वर्तन वगैरह सारा लघुतमवाला है। जगत् के लिए तो मैं सब से छोटा हूँ, लघुतम पुरुष हूँ और जिसे यह 'ज्ञान' जानना है, उसके लिए तो मैं उच्चतम हूँ, गुरुतम हूँ। अत: अगर तुम्हें मोक्ष चाहिए तो मैं गुरुतम हूँ। हमसे बड़ा कोई नहीं है और अगर तुम्हें संसार में बड़ा बनना है तो मैं लघुतम हूँ। अब जिसे मोक्ष में जाना है, उसे अगर मैं ऐसा नहीं कहूँगा कि 'गुरुतम हूँ' तो फिर उसकी गाड़ी आगे चलेगी ही नहीं न! और जगत् में लोगों को क्या बनना है?

प्रश्नकर्ता : गुरुतम होना है।

दादाश्री : ऐसा आपने कहाँ देखा है?

प्रश्नकर्ता : खुद में देखा है न!

दादाश्री : लेकिन बाहर के लोगों में तो ऐसा नहीं करते होंगे न? बाहर कोई व्यक्ति होगा गुरुतम भाववाला?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ऐसा? सभी उसी में हैं न? वे तो यही जानते हैं कि यही आत्मा है इसलिए इसी को गुरुतम बना दूँ। हर एक को गुरुतम में ही बैठने की इच्छा है। सभी इसी में! गुरुतम चाहिए सभी को। 'बाप जी' कहा कि खुश। उससे फिर गुरुतम बढ़ता है। अब जाना है उन्हें मोक्ष में, और बनते हैं गुरुतम। वह विरोध है या अविरोध? तो क्या तेज़ी से मोक्ष में जा सकेंगे? वह तो भटकने की निशानी ही कहलाएगी न! क्योंकि जो व्यवहार में गुरुतम बनने गए, वे सभी गिर गए। व्यवहार में जितने भी लोग गुरुतम बनने गए, वे सभी फँस गए। बोलो, फँस गए या नहीं फँसे? और जो लघुतम बने वे ही पार निकले। बाकी, गुरुतम बनना हो तो यह रास्ता है ही नहीं। यह तो मार खाई और आखिर में

बुद्धू बन गए! बल्कि मोक्ष के अंतराय डाले। आपको समझ में आया अंतराय?

प्रश्नकर्ता : उस अंतराय को दूर कैसे करें?

दादाश्री : उसे दूर करने के लिए लघुतम भाव करते जाना चाहिए, तो सभी अंतराय खत्म हो जाएँगे। 'प्लस-माइनस' करेंगे न, तो सभी अंतराय खत्म हो जाएँगे। अतः ये जो सभी अंतराय हैं, वे गुरुतम भाव से खड़े हुए हैं, और अगर लघुतम भाव करेंगे न, तो फिर सभी अंतराय खत्म हो जाएँगे।

हमें गुरुतम का क्या करना है? फायदा क्या है उसमें? जितना ऊँचा चढ़ेगा, उतना ही नीचे गिरेगा। उसके बजाय नीचे बैठे रहना क्या बुरा है? कुछ झंझट ही नहीं न! और अपना सुख अपने पास हो और जब मोक्ष में जाना होगा तब धर्मास्तिकाय खुद ही ले जाएगा, आपको कहीं जाने की ज़रूरत नहीं है इसलिए लघुतम में आ जाओ न! तो सारा हल आ जाएगा। लघुतम में आ जाना, वही है अपना पूर्ण पद! यह हमारा लघुतम स्वरूप है, तभी तो गुरुतम स्वरूप रह सकता है। हाँ, लघुतम हुए बिना कोई गुरुतम नहीं हुआ है।

और जहाँ मैं लघुतम हो गया हूँ, वहाँ लोग गुरुतम बनने जाते हैं। उन्हें 'रिलेटिव' में गुरु बन बैठना है, वे 'रिलेटिव' में ही गुरु बनना चाहते हैं। गुरु यानी जिन्हें ऐसी भावना है कि 'मैं कुछ बड़ा बनूँ'। 'रिलेटिव' में तो जो लघुतम बनने जाते हैं, वे ऊर्ध्वगति में जाते हैं लेकिन 'रिलेटिव' में कोई ऐसा बताता ही नहीं है न कि लघुतम होना है! और 'रिलेटिव' में जो कोई गुरुतम बनने जाता है, फिर उनके दो पैर बढ़ जाते हैं। उसमें किसी का क्या दोष?! हाँ, जहाँ लघु बनना है, वहाँ गुरु बनने चला इसलिए उसके फल स्वरूप दो पैरों में से चार पैर हो जाते हैं और ऊपर से एक पूँछ। क्योंकि गुरुतम द्वारा ऐसे कार्य हो जाएँगे कि दो पैरों में से चार पैर हो जाएँगे। जबकि लघुतम मान्यता से कार्य बहुत सुंदर होंगे। लेकिन पूरा जगत् गुरुता ढूँढता है न!

प्रश्नकर्ता : इसीलिए लघु बन जाता है।

दादाश्री : नहीं, नहीं, लघु नहीं, चार पैरोंवाला बनता है क्योंकि रिलेटिव में गुरुतम होने जाता है इसलिए वापस गुरुतम घुस जाता है। उस गुरुतम को निकालने के लिए उपाय चाहिए न वापस?! तो ये दो पैर थे, तो दूसरे दो पैर बढ़ गए ताकि गिर न जाए न! वर्ना ये गधे कहाँ से लाएँगे? ये गाय-भैंसें कहाँ से खरीदकर लाएँगे?! ये लोग तो बेचारे अच्छे हैं, कोमल हैं। वे गाय-भैंस बनकर ऋण चुका रहे हैं! क्योंकि 'रिलेटिव' में गुरुतम बने थे। और लोगों का खा गए थे न मलीदा, इसलिए। मलीदा खा जाते हैं न? खा जाते हैं या नहीं खा जाते?!

उसमें भी वापस दो तरह के काम करते हैं लोग। 'रिलेटिव' में गुरुता, दो प्रकार से काम करती है। एक तो 'सुपर ह्युमन' की तरह काम करते हैं और एक पाशवी काम करते हैं। 'सुपर ह्युमन' के काम किए हों, उच्च कार्य किए हों तो देवगति में जाते हैं, नहीं तो जानवर में जा आते हैं, और वहाँ पर सारी उलझनें निकल जाने के बाद यहाँ मनुष्य में आता है। ऐसा न्याय मैं खुद देखकर आया हूँ। उन्हें पता नहीं है कि क्या न्याय होनेवाला है। दो पैर हैं उसमें से चार पैर हो जाएँगे और ऊपर से पूँछ अतिरिक्त! लेकिन हम उन्हें ऐसा नहीं कह सकते। अभी तो वे मस्ती में मस्त हैं। वे क्या कहते हैं? 'जब आएगा तब देखा जाएगा, सिर पर आ पड़ा तब देख लेंगे।' अभी तो रौब मारने दो न!

लघुतम को ही प्राप्ति गुरुतम की

पूरा जगत् 'रिलेटिव' में गुरुतमता ढूँढता है इसलिए पहले गुरु बनने की इच्छा होती है, फिर गुरुता करते हैं। गुरुता आने के बाद गुरुतम होने जाते हैं लेकिन इसमें कोई गुरुतम नहीं बना है। अपना 'विज्ञान' क्या कहता है? 'रिलेटिव' में लघुतम और 'रियल' में गुरुतम! अतः यह अपनी मूल चीज़ है।

हर एक धर्म वाले क्या कहते हैं? कि 'हमारे धर्म से मोक्ष है।' कोई क्या ऐसा कहता है कि 'मेरे धर्म से मोक्ष नहीं है?' सभी ऐसा

कहेंगे, 'हमारा धर्म सब से बड़ा।' 'सब से नीचा है,' ऐसा सिर्फ कौन कह सकता है? जिसे वीतराग मार्ग मिला है, वह कहेगा, 'हमारा धर्म नीचा है लेकिन आपका धर्म ऊँचा है।' क्योंकि बच्चे हमेशा नीचे को बड़ा कहते हैं। बड़ी उम्र के लोग खुद अपने आपको छोटा कहकर बालक को बड़ा कहते हैं! उन्हें खुद को संतोष है।

और हम थोड़े ही किसी के *ऊपरी* है? बल्कि हमें खुद ही उनके (अन्डर में) हाथ नीचे रहना है, तभी तो वे सीधे चलेंगे। नहीं तो सीधे नहीं चलेंगे। हम *ऊपरी* बनने जाएँगे तो वे उल्टे चलेंगे। हम कहें कि, 'हम आपके शिष्य हैं,' तब वे सीधे चलेंगे। नहीं तो चलेंगे ही नहीं न सीधे। सभी को गुरु बनने में बहुत मज़ा आता है। पूरा जगत् 'रिलेटिव' में ही गुरुता दिखाने जाता है। एक-दूसरे से स्पर्धाएँ भी चलती हैं। एक कहता है, 'मेरे एक सौ आठ शिष्य हैं।' तब दूसरा कहता है, 'मेरे एक सौ बीस शिष्य हैं।' यह सब गुरुता कहलाती है। 'रिलेटिव' में तो लघुतम की ज़रूरत है तो गिर नहीं जाएँगे, कोई परेशानी नहीं, दु:ख स्पर्श नहीं करेगा।

नहीं तो फिर यहाँ से भैंस और भैंसा बनना पड़ता है। यहाँ से मरकर, जैसे क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं न, वे उसे वैसी ही जगह पर ले जाते हैं। अत: इन लोगों का मतभेद ऐसा नहीं है कि यों ही चला जाए। वह तो योनि बदल जाने पर अपने आप चला जाता है। वर्ना नहीं जाता। इतने सरल इंसान हैं नहीं न! कहेंगे, 'मैं कुछ हूँ।' अरे, क्या है तू?

अब 'रिलेटिव' में कौन लघुतम ढूँढता है? ढूँढता है क्या कोई? अगर गाड़ी में, ट्रेन में, सभी जगह ढूँढने जाएँ तो क्या एक भी मिलेगा? तब क्या इन साधु-संन्यासियों में कोई मिलेगा? सभी 'हम-हम' करते रहते हैं। 'हम इतना शास्त्र जानता है, इतना जानता है, यह जानता है' कहेंगे।

लेकिन 'रिलेटिव' में जितना लघुतम बनेंगे, 'रियल' में उतना ही गुरुतम (पद) प्राप्त होगा इसलिए हम लघुतम बनकर बैठे हैं, तो सामने

इस गुरुतम पद की प्राप्ति की। रास्ता मुश्किल नहीं है, इसे समझना मुश्किल है।

इस लघुतम का योग किया जाए न, तो भगवान उनके पास आते ही हैं। जगत् में सभी लोग गुरुतम योग में पड़े हैं। 'मैं इससे बड़ा और मैं उससे बड़ा।' अरे, छोटा बनता जा न! यों व्यवहार में छोटा होता जाएगा तो वहाँ निश्चय में बड़ा और जो व्यवहार में बड़े बनने गए, वे निश्चय में छोटे रहे। यानि अगर लघुतम योग पकड़ेगा न, तो जब लघुतम बन जाएगा तब उस ओर गुरुतम बन जाएगा! जो व्यवहार में लघुतम बना, वह निश्चय में गुरुतम अर्थात् भगवान का *ऊपरी* बनता है क्योंकि भगवान उसके वश हो जाते हैं। भगवान का कोई *ऊपरी* नहीं होता लेकिन भगवान उसके वश में हो जाते हैं। इसलिए लघुतम बनना अब।

लघुतम योग है ज़रा मुश्किल। पहले ज़रा मुश्किल लगता है, फिर आसान हो जाएगा। जिसे छोटा बनना है उसे भय रहेगा क्या? इसलिए हम पहले लघुतम हो गए, उसके बाद हमें गुरुतम की दशा प्राप्त हुई। हम गुरु होने के लिए नहीं हैं। जो गुरु हुए न, वे तो सभी यहाँ पर इस चार गति के चक्कर में अभी तक भटक ही रहे हैं। पहले थोड़ा पुण्य बंधता है, तो देवगति में जाता है और देवगति से वापस यहाँ आता है और पाप बंधते हैं तब जानवर में जाता है वापस!

यों गुरुतम योग करते हैं। उस तरह के योग तो बहुत दिनों तक किए हैं। अनंत जन्मों से निरे योग ही किए हैं न! फिर लोग ज़रा 'बाप जी, बाप जी' करते हैं तो था ही चुटकीभर, वह भी लुट जाता है। थोड़ा बहुत 'बाप जी' कहते हैं, तब कहता है, 'यह नहीं, यह ले आना, यह ले आना, यह ले आना।' इसलिए लुट जाते हैं वापस। जबकि लघुतम योग तो अच्छा है। उसमें तो कोई आता ही नहीं न, दर्शन करने ही नहीं आता है न!

साधो योग लघुतम का

यानि हमारा योग लघुतम है! दुनिया में किसी के पास ऐसा योग नहीं है।

प्रश्नकर्ता : उस योग में क्या करना होता है?

दादाश्री : दिनोंदिन हल्के होते जाना है। गुरु नहीं होना है, लघु बनना है, हल्के होते जाना है। सभी के शिष्य बनते-बनते पूरे जगत् का शिष्य बन जाएगा। गधे-कुत्ते वगैरह के, सभी पेड़-पौधें के, तो लघुतम बन जाते हैं। सभी को गुरुतम बनाएँ तब लघुतम बनते हैं। पसंद आया आपको यह योग? या नहीं पसंद आया?

प्रश्नकर्ता : पसंद आया।

दादाश्री : योग का अर्थ यही है। या तो गुरुतम का योग पकड़ा होता है या फिर लघुतम का योग पकड़ा होता है, दोनों में से कोई भी एक योग पकड़ता है, वह।

जब गुरुतम का योग होता है, तब यहाँ भारी हो जाता है, गुरुतम बनता है। गुरु का अर्थ ही है भारी और भारी है इसलिए डूब जाता है और डूबता है मतलब वह तो डूबता ही है लेकिन उसके साथ बैठने वाले भी डूब जाते हैं। हाँ, लेकिन गुरु कब नहीं डूबते? जब उनके पास गुरुकिल्ली होती है तब वे नहीं डूबते। लघु अर्थात् हल्का और गुरु अर्थात् भारी। इन लोगों को बड़ा बनना है न, इसलिए गुरुतम योग ही पकड़ा है सभी ने। सभी को बड़ा बनना है, वे मार खा-खाकर मर गए लेकिन पहला नंबर किसी का नहीं लगा। क्योंकि क्या 'रेस-कोर्स' में नंबर लगता है? कितने घोड़ों को इनाम मिलता है? पाँच करोड़ घोड़े दौड़ रहे हों, तो उनमें से कितने घोड़ों को पहला इनाम मिलता है? पहला इनाम तो पहले घोड़े को ही मिलता हैं न?! इस तरह सभी हाँफ-हाँफकर मर जाते हैं इसलिए लघुतम योग पकड़ना।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन उसकी विधि क्या है?

दादाश्री : उसकी विधि तो, इस जगत् में सभी के शिष्य बनना है। कोई नालायक कहे तो हमें उसका शिष्य बन जाना है कि, 'भाई, तू मेरा गुरु। आज तूने मुझे सिखा दिया कि मैं नालायक हूँ!'

जगद्गुरु? नहीं, जगत् को माना गुरु

लोग मुझसे कहते हैं कि, 'आपको हमारे गुरुपद पर स्थापित करना

है।' मैंने कहा, 'भाई, नहीं। यहाँ मुझे गुरु मत बनाना। बाहर बहुत गुरु हैं। मैं तो पूरे जगत् की गुरु के रूप में स्थापना करके बैठा हूँ। आप सभी को मैंने गुरु कहा है। मुझे क्यों गुरु बनाते हो?'

मैं तो किसी का गुरु नहीं हूँ। मैं तो लघुतम पुरुष हूँ। अतः हम कुछ कच्ची माया नहीं है कि हम गुरु बनें। मैं किसी का गुरु नहीं बना। मैं पूरे जगत् के शिष्य के रूप में रहता हूँ और सभी से मैं क्या कहता हूँ कि, 'भाई, आप लघुतम बनो।' जिसे गुरु बनना हो उसे बनने दो पर वे गुरु खुद कैसे पार उतरेंगे और औरों को पार उतारेंगे? उन गुरु को साथ में गुरुकिल्ली रखनी पड़ेगी, तभी खुद पार उतरेंगे और दूसरों को पार उतार सकेंगे। ज्ञानी उसे गुरुकिल्ली देते हैं, लघुतम बनने की गुरुकिल्ली देते हैं, उसके बाद गुरु बना जा सकता है। नहीं तो इस काल में गुरु बनना तो अधोगति में जाने की निशानी है। गुरु तो द्वापर-त्रेता में थे जबकि अब? अभी तो इस गुरु के पास गुरुकिल्ली ही नहीं होती हैं। अतः गुरुओं से मैं क्या कहता हूँ कि, 'गुरु मत बन बैठना। वर्ना डूब जाएगा और दूसरों को भी डूबोएगा। मेरे पास से गुरुकिल्ली ले जाना।' गुरुकिल्ली रखनी पड़ती है। जब हम 'ज्ञानीपुरुष' गुरुकिल्ली देते हैं, तब उसका काम बनता है। गुरु 'सर्टिफाइड' होना चाहिए और साथ-साथ उसके पास गुरुकिल्ली होनी चाहिए।

गुरुकिल्ली अर्थात्?

प्रश्नकर्ता : गुरुकिल्ली अर्थात् क्या?

दादाश्री : गुरु को इतना समझना चाहिए कि 'मैं जो इन लोगों का गुरु बन बैठा हूँ, तो मुझे कौन सा रास्ता अपनाना चाहिए ताकि मुझे नुकसान न हो और इन लोगों को फायदा हो?' इसके लिए उनके गुरु उन्हें सिखाते हैं कि 'तू लघुतम रहना।' लघुतम रहकर गुरुपना करना। हाँ, यानी यही गुरुकिल्ली है वर्ना अगर गुरुपने में गुरुतम बन जाएगा तो मारा जाएगा। यदि लघुतम रहे न, और फिर गुरुपना या कुछ भी करे, तो वास्तव में उसके फलस्वरूप उसे गुरुतम मिलता है लेकिन यों अभी वह कर रहा है लघुतम!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस गुरु को लघुतम बनने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा लघुतम भाव ही रखना है। कोई 'गुरु' कहकर संबोधित करे तो, व्यवहार में दूसरा शब्द तो कहाँ से लाएगा, इसलिए 'गुरु' कहे तो कहना है कि, 'भाई, हाँ, मैं इनका गुरु हूँ।' लेकिन अंदर वे जानते हैं कि मैं तो लघु ही हूँ।

यानी हर एक व्यक्ति को 'रिलेटिव' में लघु से लेकर लघुतम होने तक (ऐसा) रखना चाहिए। वहाँ पर गुरु (भाव) नहीं रखना चाहिए।

लघुतम से 'एक्ज़ेक्टनेस'

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि मैं लघु से लघु आत्मा हूँ, मेरा कोई *ऊपरी* नहीं है, मैं संपूर्ण स्वतंत्र हूँ। इस प्रकार दूसरे लोग खुद स्वतंत्र क्यों नहीं रह सकते? गुरु की आज्ञा में रहने की ज़रूरत क्यों है?

दादाश्री : सभी स्वतंत्र ही हैं न! गुरु की आज्ञा में रहने की क्या ज़रूरत है?! 'भीतर' वाले की आज्ञा में रहना है लेकिन यह तो उसे भीतर क्रोध-मान-माया-लोभ मारते ही रहते हैं। तो फिर कौन स्वतंत्र हो सकता है? जिसके क्रोध-मान-माया-लोभ चले जाएँ वह स्वतंत्र हो जाता है। नहीं तो यों ही स्वतंत्र नहीं हुआ जा सकता न!

गुरु की आज्ञा तो, यदि शिष्य का सामर्थ्य हो तो पाले और न हो तो न पाले। ये आज्ञाएँ कहीं मेरी नहीं हैं। ये तो उनकी खुद की आज्ञाएँ हैं। मैं तो डाँटता ही नहीं किसी को। किसी को आज तक मैंने डाँटा ही नहीं। इन सभी से कह दिया है कि 'मैं आपका शिष्य हूँ। बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट मैं सभी का शिष्य हूँ, लघुतम हूँ। बाइ रियल व्यू पोइन्ट मैं गुरुतम हूँ। यानी व्यवहारिक दृष्टि से मुझसे छोटा कोई नहीं है, मुझसे सभी बड़े हैं और वास्तविक दृष्टि से, भगवान की दृष्टि से मुझसे बड़ा कोई नहीं है,' मैं तो ऐसा कहता हूँ। आपको समझ में आया न? बात समझ में आई आपको? यानी ये सभी मेरे *ऊपरी* ही कहलाएँगे न? और इन सभी का मैं शिष्य हूँ।

प्रश्नकर्ता : यहाँ आपके पास प्राप्ति के लिए आते हैं। जो गुरु होंगे वे प्राप्ति के लिए कैसे आ पाएँगे?

दादाश्री : हम तो लघुतम हो चुके हैं। वे सभी अभी तक लघुतम नहीं हुए हैं न!

लघुतम बन जाएँगे तो मेरे जैसे बन जाएँगे। बाकी, ज्ञान सारा दिया है। चिंता नहीं होती, 'वरीज़' नहीं होती, काम-धंधा करते हुए भी राग-द्वेष नहीं होते, इस प्रकार का 'ज्ञान' दिया है लेकिन जब तक लघुतम नहीं बनेगा तब तक हमारे जैसा पद नहीं मिल पाएगा।

प्रश्नकर्ता : सभी को आपने गुरु कहा, वे सभी फिर शिष्य कब बनेंगे? और किस तरह बनेंगे?

दादाश्री : इन्होंने अब धीरे-धीरे यही प्रयत्न शुरू किए हैं कि 'हमें 'दादा' जैसे ही बन जाना है।' मेरी शर्त मात्र यही है कि मुझे किसी को डाँटना नहीं है। देखो और बनो, बस! लघुतम बन जाओ तभी सही तरह से 'एक्ज़ेक्टनेस' आ जाएगी। यानी उतना काम बाकी है।

वर्ल्ड का शिष्य ही, वर्ल्ड का ऊपरी

अपने 'विज्ञान' में तो 'दादा' आपके शिष्य बनते हैं। इतने सारे लोगों को 'ज्ञान' दिया है, उन सभी का मैं शिष्य हूँ। मैं तो पूरे 'वर्ल्ड' का शिष्य हूँ। पूरे वर्ल्ड का *ऊपरी* कौन बन सकता है? जो पूरे 'वर्ल्ड' का शिष्य नहीं बना है, वह पूरे 'वर्ल्ड' का *ऊपरी* नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दत्तात्रेय भगवान को जहाँ-जहाँ से सद्‌गुण मिले, उस हर एक व्यक्ति में से सद्‌गुण लिए और कहा जाता है कि चौबीस गुरु उनके जीवन में आए थे। जबकि शास्त्र तो ऐसा कहते हैं कि गुरु तो एक ही होने चाहिए तो इस पर आप कुछ प्रकाश डालिए।

दादाश्री : गुरु तो, पूरे जगत् को बनाने जैसा है। जहाँ कहीं से हमें कुछ ज्ञान मिले, वह प्राप्त कर लेना है। बाकी ऐसा है न, 'गुरु एक होने चाहिए,' इसका अर्थ क्या है? कि किंडर गार्टन, फर्स्ट स्टेन्डर्ड,

सेकन्ड स्टेन्डर्ड, उन सभी के लिए एक गुरु की ज़रूरत है। जो कॉलेज में जाता है न, उसे चौबीस गुरु चाहिए और जो 'अपर कॉलेज' में जाता है न, तो उसे पूरे जगत् के लोगों का शिष्य बनना पड़ता है। अतः हम पूरे जगत् के शिष्य बनकर बैठे हैं। वह 'अपर कॉलेज' में जाए तब लेकिन पहले एक गुरु कब तक रखने हैं? किंडर गार्टन, फर्स्ट स्टेन्डर्ड, सेकन्ड स्टेन्डर्ड, तब तक एक गुरु! क्योंकि यह नीचे के स्टेन्डर्ड के लोगों को सिखाया हुआ है, जो अभी तक बाल्यवस्था में हैं कि 'भाई, तू यहाँ पर इतना ही करना। दूसरी जगह झाँकने मत जाना। नहीं तो फिर बिगड़ जाएगा, बेढंगा हो जाएगा?।' इस तरह उसके लिए सीमा बना देते हैं लेकिन फिर जब आगे का स्टेन्डर्ड आए तब पूरे जगत् को गुरु बनाने जैसा है, और नीचे के स्टेन्डर्ड वाले को एक ही गुरु बनाने हैं! कोई कहेगा कि, 'साहब, मैंने एक गुरु बनाए हुए हैं,' तो मैं समझ जाता हूँ कि यह सेकन्ड स्टेन्डर्ड का है। तब मैं कहता हूँ, 'ठीक है तेरी बात।' आपको खुलासा हुआ?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हुआ।

दादाश्री : वर्ना, अंतिम गुरु तो, इस जगत् में जीवमात्र को गुरु बनाने जैसा है। क्योंकि महावीर भगवान ने क्या किया था? कि खुद ने जीवमात्र की गुरु के रूप में स्थापना की थी और स्वयं शिष्य की तरह रहे। पूरे जगत् के जीवमात्र को जिन्होंने गुरु बनाया है! क्योंकि सब से कुछ जानने लायक होता है।

'ज्ञान,' दिया या प्राप्त किया?

यह मेरा अक्रम विज्ञान मैंने आप सभी के पास से जाना है और आप लोग मुझे ऐसा कहते हो कि, 'आप हमें ज्ञान देते हैं।' लेकिन यह अक्रम विज्ञान मैंने आप सभी के माध्यम से जाना है। अंदर पुस्तकों में तो है नहीं यह अक्रम विज्ञान। तो कहाँ से आया? इन सब के माध्यम से। उनका खुद का ज्ञान वे देते गए और दूसरा ज्ञान लेते गए। उन्हें जो नहीं पचता था, वह ज्ञान मुझे देते गए और दूसरा ज्ञान जो उन्हें पच

सकता था वह लेते गए। अतः उन्हें जो नहीं पच रहा था, वह ज्ञान मेरे पास इकट्ठा हुआ, वह अक्रम के रूप में प्रकट हुआ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम सभी के रद्दी माल में से ऐसा अक्रम विज्ञान निकला?

दादाश्री : नहीं, रद्दी नहीं। आपको जो ज्ञान नहीं पच सका था और आपको जो अजीर्ण हो चुका था और पड़ा रहा था, वह यहाँ मेरे पास आ गया सारा और आपको जीर्ण हो जाए ऐसा आप यहाँ से ले गए। इस तरह फुल ज्ञान मेरे पास आ गया। फुल ज्ञान, पूर्ण विराम ज्ञान!

अब इन लोगों को यह बात कैसे समझ में आएगी? इसे तो पढ़े-लिखे लोग समझ सकते हैं। दूसरे लोगों का काम नहीं है न, बेचारों का। यह तो 'साइन्टिफिक' विज्ञान है। विज्ञान अर्थात् फॉरेन के साइन्टिस्ट बैठकर यह सुनें तो उन सभी को 'एक्सेप्ट' करना पड़ेगा!

पहचानना, पद 'ज्ञानी' का

इनमें से कोई भी व्यक्ति मेरे पैर तो छूता ही नहीं है, और लोगों को ऐसा लगता है कि ये सभी मेरे पैर छू रहे हैं लेकिन मैं तो इस शरीर में एक मिनट भी नहीं रहता, पच्चीस सालों में एक मिनट भी नहीं रहा हूँ। और लोग तो निरंतर उसी रूप रहते हैं कि 'मैं ही हूँ यह, हाथ भी मैं हूँ और पैर भी मैं हूँ और सिर भी मैं हूँ और यह सब मैं ही हूँ!'

इन मन-वचन-काया से मैं बिल्कुल अलग रहता हूँ। अतः इसे कोई गालियाँ दे-मारे, तब भी मुझे कोई परेशानी नहीं होती न! लोग मुझे पहचानते ही नहीं! मुझे कैसे गाली दे सकते हैं? और जो मुझे पहचानते हैं वे तो परमात्मा के रूप में पहचानते हैं इसलिए वे सब लोग मुझे गाली देते भी नहीं और उस प्रकार का ऐसा-वैसा व्यवहार भी नहीं होता न! लोग तो 'ए.एम.पेटल' की तरह पहचानते हैं या फिर गुरु की तरह पहचानते हैं लेकिन मैं किसी का गुरु बना ही नहीं हूँ। मैं तो लघुतम पुरुष हूँ। ज्ञानी के रूप में, जो ज्ञानी कहलाते हैं, उस प्रकार से मैं लघुतम हूँ बिल्कुल।

हमें किसी भी प्रकार की भीख नहीं है, इसलिए हमें यह पद मिला है। जो सर्वश्रेष्ठ पद है, जो पूरे ब्रह्मांड में सब से बड़ा पद है, वह प्राप्त हुआ है। किसी भी प्रकार की भीख नहीं रही इसलिए! क्योंकि जो लक्ष्मी की भीख होती है न, वह हमें नहीं है। हमारे लिए सोने के ढेर बिछा दें तब भी हमारे काम नहीं आएगा। विषय का विचार नहीं आता, ऊपर से देवियाँ आ जाएँ तो भी हमें विचार नहीं आएगा। हमें मान की भीख नहीं है, कीर्ति की भीख नहीं है, शिष्यों की भीख नहीं है, मंदिर बनवाने की भीख नहीं है।

अब मेरा स्वरूप, ज्ञानी के रूप में समझोगे तो आप भी ज्ञानी बनोगे। आप मेरा आचार्य स्वरूप समझोगे तो आप आचार्य स्वरूप बनोगे। आप यदि मेरा स्वरूप आचार्य समझोगे तो मुझे परेशानी नहीं है लेकिन आप आचार्य स्वरूप बनोगे। आपको जो ज़रूरत हो हमारा वही स्वरूप जानना, वैसे ही आप बन जाओगे। मुझे कुछ भी नहीं बनना है। मैं तो बनकर बैठा हुआ हूँ। चार डिग्री से अनुत्तिर्ण हो चुका व्यक्ति! मैं तो अनुत्तिर्ण होकर लघुतम बनकर बैठा हूँ। यानी हमारा पद जिसे जो समझना हो, उतना ही वह उस रूप हो जाएगा। यह बात समझ में आ जाए तो काम निकल जाए।

बरतना 'खुद' लघुतम भाव से

लघुतम पद के अलावा इस जगत् में कोई भी पद छोटा नहीं है। अब अगर ऐसा आपको भाव हो जाए तो फिर आपको कोई भय रहा क्या? बाकी, बड़े होने की भावना से बड़े नहीं बना जा सकता। आप लघुतम पद में रहो तभी उसका फल गुरुतम आता है। यदि व्यवहार में लघुतम पद में रहो, यह 'चंदूभाई' लघुतम पद में हो तो गुरुतम पद अपने आप ही प्राप्त होगा, वर्ना गुरुतम पद प्राप्त नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : आपने जो 'ज्ञान' दिया है, क्या वह लघुतम पद की प्राप्ति नहीं करवाता?

दादाश्री : हाँ, वह लघुतम पद देता है लेकिन अभी तक गुरुतम

भाव गया नहीं है न! व्यवहार में गुरुतम गया नहीं है न! यह गुरुतम भाव छूटा नहीं है। 'मैं कुछ हूँ' ऐसा रहता है, उसे निकाल देना है। बात को यदि समझे तब हल आएगा। वर्ना नहीं समझे तो इसका हल नहीं आएगा, ऐसा है।

पूर्ण होने के लिए लघुतम भाव जैसा और कोई भाव है ही नहीं और दुनिया में मुश्किल से मुश्किल भाव हो तो लघुतम भाव है। इस लघुतम भाव को जगत् किस तरह प्राप्त कर सकेगा? वर्ल्ड के एक भी व्यक्ति को लघुतम भाव की प्राप्ति नहीं हो सकती। जो लघुतम भाव आपको प्राप्त हुआ है, वैसा 'वर्ल्ड' में कोई भी मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता। वह आसान चीज़ नहीं है, बहुत मुश्किल चीज़ है यह। लोग कहते हैं, 'भाई, कैसे हो?' तब हमें कहना है, 'हार गए भाई, हार गए।' अब हम हार गए कहेंगे तो 'रियल' में गुरुतम हो गए अपने आप ही, कुदरती। यानी लघुतम बनने का भाव रहना चाहिए। वर्ना बड़ा हुआ कि भटका। बड़ा हुआ और बड़ा माना कि भटका। पूर्ण पुरुष बड़े बनने जाते ही नहीं। ये तो सारे अधूरे घड़े ही बड़े बनने जाते हैं। पूर्ण पुरुष निःशब्द होते हैं।

कोई ऐसा है कि जिसे गुरुतम नहीं बनना हो? व्यवहार में बड़े लोग हैं, वे भी ऐसे दिखाई देते हैं कि जैसे लघुतम बनना चाहते हैं, बाहर दिखने में लघुतम दिखाई देते हैं लेकिन अंदर भाव गुरुतम का होता है कि 'मैं कुछ हूँ' सब की तुलना में! बाहर बहुत से इस तरह के लोग हैं व्यवहारिक रूप से, लेकिन वे 'वस्तु' (आत्मा) कभी भी प्राप्त नहीं कर पाते। यह तो जब 'रियल' और 'रिलेटिव' की डिमार्केशन लाइन रखेगा तभी प्राप्त कर सकेगा। वर्ना इस संसार के झगड़े कम नहीं होंगे।

'लाइन ऑफ डिमार्केशन'

'द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ,' 'इटसेल्फ' 'पज़ल' हुआ है यह। 'गॉड हेज़ नॉट पज़ल्ड दिस वर्ल्ड एट ऑल।' यह खुद 'इटसेल्फ' 'पज़ल' हुआ है। पहेली, गहन पहेली बन गई है यह। 'देयर आर टू व्यू पोइन्ट्स टु सॉल्व दिस पज़ल। वन रिलेटिव व्यू पोइन्ट, वन रियल व्यू पोइन्ट।'

इस 'रिलेटिव' और 'रियल,' इसकी 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' यदि कोई 'ज्ञानीपुरुष' डाल दें तो 'पज़ल' 'सॉल्व' हो जाए।

अब 'रिलेटिव' और 'रियल' की 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' तीर्थंकर भगवान के अलावा और किसी के पास नहीं थी। चौबीस तीर्थंकरों ने यह 'लाइन' 'करेक्ट' तरीके से डाली थी और अन्य भी कई ज्ञानी हो चुके है, उन्होंने 'करेक्ट' डाली थी और फिर हमने यह 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' 'एक्ज़ेक्ट' डाली है। क्योंकि ज्ञानी किसे कहते हैं? तीर्थंकर जैसे ज्ञानी होने चाहिए। हाँ, कि जो थोड़े ही फर्क वाले हों। जो 'रिलेटिव' और 'रियल' में 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डाल दें कि 'दिस इज़ रियल और दिस इज़ रिलेटिव।'

जगत् में तो क्या हुआ है? 'रिलेटिव' को ही 'रियल' माना गया है। रिलेटिव को रियल मानकर ही लोग चले हैं। वे कभी भी रियल हुए ही नहीं और दिन बदले नहीं। वे अनंत जन्मों से भटक, भटक, भटकते ही जा रहे हैं। कितनी ही योनियों में भटक रहे हैं। सच्ची 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' नहीं डली इसीलिए तो पूरा जगत् उलझन में है और इसीलिए 'रिलेटिव' को ही 'रियल' माना है, और उसी को गुरुतम बनाना चाहते हैं। जिसे लघुतम करना था, उसी को गुरुतम बनाते हैं, उसी को कहते हैं भ्रांति! और वापस कहते क्या हैं? 'हम भ्रांति हटा रहे हैं।' अरे, यह भ्रांति तो बढ़ रही है। आपको ऐसा नहीं लगता?

कोई प्रयोग हो, और कोई साइन्सवाला वह प्रयोग करे और मैं प्रयोग करने बैठूँ। अब अगर मैं नहीं जानता हूँ तो क्या होगा इसमें?

प्रश्नकर्ता : विस्फोट होगा।

दादाश्री : हाँ, वह सामान ही बेकार जाएगा, मेहनत बेकार जाएगी, और उँगली जलेगी, वह अलग! क्योंकि वापस उँगली डालकर देखूँ, तो क्या होगा?! और अगर साइन्टिस्ट उँगली डालकर देखे तब भी वह जलेगा नहीं। आपको समझ में आया न? अत: इस प्रयोग का जानकार

होना चाहिए। यह तो मैंने आपको 'रिलेटिव-रियल' की 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डाल दी है, इसलिए आपको परेशानी नहीं है।

'रिलेटिव' में लघुतम भाव

अब हम क्या कहते हैं? कि भाई, आपमें यह 'एक्ज़ेक्ट' 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' पड़ चुकी है कि इतना 'रिलेटिव' और इतना 'रियल'। और 'रियल' में ऐसा है, 'रियल' में शुद्धात्मा और 'रिलेटिव' में आपको वे पाँच वाक्य दिए हैं। बाकी सब तो *निकाली* है।

प्रश्नकर्ता : उसका *निकाल* होता जा रहा है?

दादाश्री : हाँ, अपने आप ही *निकाल* होता ही रहता है। संडास के लिए राह नहीं देखनी पड़ती। जो राह देखे वह मूर्ख कहलाता है। यानी बाकी सब निकाली है। तो अब क्या बनना है?

प्रश्नकर्ता : लघुतम!

दादाश्री : लघुतम! बस, इतना ही भाव और 'दादा' की आज्ञा लघुतम भाव में है। इसलिए अब आपको 'रिलेटिव' में सिर्फ लघुतम होने की ज़रूरत है। यानी 'रियल' और 'रिलेटिव' के बीच 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' आए और 'रिलेटिव' में खुद लघुतम बन जाए तो इस संसार के दुःख में भी समाधि रहे, और वही सच्ची समाधि!

आप कितने लघुतम हो गए?

प्रश्नकर्ता : 'दादा' को पता है। मुझे उसके थर्मामिटर का ठीक से पता नहीं चलता।

दादाश्री : लेकिन थोड़े बहु लघुतम हो रहे हो? कितने? दो आने? चार आने?

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा किस तरह से नापा जा सकता है?

दादाश्री : वह तो किसी के साथ लड़ रहे हो तो पता चल जाएगा कि आप पूरी तरह से लघुतम हो चुके हो या नहीं। अभी तो आप दे

देते हो अच्छी तरह से, कि 'तेरी क्या बिसात?' अत: अब हमें लघुतम ढूँढना है। आपको गुरुतम बनना है या लघुतम?

प्रश्नकर्ता : लघुतम।

दादाश्री : यों कोई दो हाथ जोड़ते हैं तो अच्छा लगता है और कहते हो 'मुझे लघुतम बनना है।' वे सब ऐसे हाथ जोड़ते हैं न, तो खुश और फिर कहेगा, 'मुझे अब लघुतम बनना है।' भरा हुआ माल इतना जटिल है, गुरुतम का ही माल भरा है न सारा। तब भी हमें दृष्टि कौन सी रखनी हैं?

प्रश्नकर्ता : लघुतम बनने की।

दादाश्री : तो अंदर आत्मा गुरुतम होता जाएगा। 'हम' लघुतम बनकर बैठे हैं। हमारा 'आत्मा' गुरुतम हैं। आपको भी उस दृष्टि का सेवन करना है। और क्या है? इसमें बहुत मुश्किल नहीं है कुछ भी।

फिर अपना 'साइन्स' क्या कहता है? 'अक्रम विज्ञान' क्या कहता है? 'रिलेटिव' में आप जितने लघुतम बनोगे, 'रियल' में आप उतने ही गुरुतम बनोगे, संपूर्ण बनोगे। अब क्या यह गलत कहते हैं? बाकी, 'रिलेटिव' में तो पूरा जगत् गुरुतम बनने जाता है इसीलिए तो ये भैंसें वगैरह सब हैं। यह किस वजह से है? इतनी भूल की वजह से ही। तो क्या यह भूल खत्म नहीं करनी चाहिए, मनुष्य में आकर? खत्म करनी चाहिए ऐसा लगता है न?

पूर्ण लघुतम, वहाँ पूर्णत्व

जो 'रिलेटिव' में 'डिवैल्यू' हो गया वह 'रियल' में परमात्मा बन गया। इसलिए 'रिलेटिव' में 'डिवैल्यू' होने की ज़रूरत है। खाओ-पीओ, घूमो-फिरो और 'डिवैल्यू' करना है। अन्य कुछ भी नहीं। अपने यहाँ रुपयों का 'डिवैल्यूएशन' होता रहता है, उससे क्या पब्लिक पर असर हो जाता है? चलता ही रहता है। उसका तो 'डिवैल्यूएशन हो जाता है। पल में 'एलिवेशन' होता है, बढ़ता है-घटता है! पब्लिक को इससे क्या

लेना-देना? उसी तरह यह 'रिलेटिव' का 'डिवैल्यूएशन' करने में कोई नुकसान नहीं है। बल्कि निरा फायदा है। अरे, आनंद से रहते हैं और हम तो 'डिवैल्यूएशन' करके बैठे हैं इसलिए देखो कैसा मज़ा आता है!

अब मैं क्या कहता हूँ? 'रिलेटिव' में आप जितना 'डिवैल्यू' होओगे, उतना ही 'रियल' में परमात्मा पद खिलेगा। एकदम आसान रास्ता है न? है कुछ इसमें मुश्किल? इसमें और कुछ नहीं समझना है। लघुतम आपको चिंता नहीं करवाता। जहाँ 'डिवैल्यूएशन' में उतरे, देखो न अब पैसों का 'डिवैल्यूएशन' कर दिया, तो है कोई चिंता पैसों की? पहले 'वैल्यूएशन' था, तो कितनी चिंता थी! रुपये बैंक में ले जाते थे, तब ऐसे घबराते थे कि 'जेब काट डालेंगे'। अभी तो कोई काटनेवाला नहीं और कुछ भी नहीं। कोई झंझट ही नहीं। 'डिवैल्यूएशन' हो जाए तो है कोई झंझट?

हाँ, पाँच अरब रुपये अपने पास हो, लेकिन अगर नीचे बैठना आया, इस तरफ से लघुतम होता गया कि उस और गुरुतम बन गया।

'रिलेटिव' में जो लघुतम बनने का प्रयत्न करता है, वह आसानी से 'रियल' में गुरुतम हो जाता है, परमात्मा पद मिलता है। गुरुतम बनने के लिए कुछ करना नहीं होता। यानी व्यवहार में बात करनी हो तो 'कोई जीव मुझसे छोटा नहीं है और सभी से लघुतम मैं हूँ' ऐसा भान रहे तो बहुत हो गया। अब आप लघुतम बनोगे तभी आपको मूल पद प्राप्त होगा और तभी आपको भगवान पद प्राप्त होगा। अर्थात् जितना लघुतम, 'कम्प्लीट' लघुतम वह भगवान पद! यानी कि अगर आप 'रिलेटिव' में लघुतम बनने का प्रयत्न करोगे तो कुदरती रूप से 'रियल' में गुरुतम होते जाओगे और पूर्णत्व प्राप्त होगा। आत्मा की जो पूर्णत्व दशा है, वह कुदरती रूप से ही हो जाती है, 'एक्ज़ेक्ट' अपने आप ही हो जाती है।

ध्येय, लघुतम पद का

आपने लघुतम पुरुष देखे हैं इस दुनिया में?

प्रश्नकर्ता : दादा खुद ही लघुतम है न!

दादाश्री : हाँ, तो बस, इन लघुतम पुरुष को देखना है और वैसा ही आपको बनना है, और क्या! यहाँ और कुछ नहीं सीखना है।

अपने महात्मा समझ गए हैं कि 'दादा' ने लघुतम सिखाया! अब दादा ही लघुतम हो गए हैं, तो फिर दूसरों को भी लघुतम हुए बिना चारा नहीं है न! और ऐसा ही ध्येय रखने जैसा है। जगत् में और कुछ भी करने जैसा नहीं है, यदि सच्चा सुख चाहिए तो। हम इस 'रिलेटिव' में लघुतम की जगह पर बैठे हुए हैं, आप सभी को यही कहते हैं कि 'ऐसे बन जाओ।' और कुछ कहते ही नहीं न! मुझे लगता है कि आपको एकाध साल लग जाएगा लघुतम बनने में?!

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा लघुतम बनना, वह तो बहुत बड़ी चीज़ है।

दादाश्री : नहीं, इतनी बड़ी चीज़ नहीं है। 'आपने' तय किया न, कि 'मुझे लघुतम बनना है' तो मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार ये सभी उसी तरफ जाने लगेंगे! अर्थात् जो ध्येय तय किया उसी तरफ जाएँगे। 'आप' कहो कि मुझे अभी सान्ताक्रुज़ जाना है, तो वह उसी तरफ जाएगा इसलिए ध्येय निश्चित करो।

वर्ना, दुनिया में कोई ऐसा तय ही नहीं करता कि 'लघुतम बनना है'। अपने 'ज्ञान' लिए हुए महात्मा ही ऐसा तय करते हैं कि, 'लघुतम बनना है।' क्योंकि सच्चा ज्ञान प्राप्त किया है, जबकि उन लोगों को तो भ्राँति है।

लघुतम भाव की खुमारी

यानी इस 'ज्ञान' के बाद 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' दी, 'रिलेटिव-रियल' का 'एडजस्टमेन्ट' हुआ। अब लघुतम पद में खुमारी रहनी चाहिए हमें। खुमारी किस चीज़ की? पूरा जगत् गुरुतम की खुमारी रखता है तो हम किसकी खुमारी रखें? लघुतम की। इसमें कुछ बहुत गहन है ही नहीं।

लोग कहते हैं कि 'दादा' की क्या खुमारी है! अब खुमारी तो अज्ञानता में रहती है लेकिन यह भी एक खुमारी है न! कि जो खुमारी बदलती ही नहीं कभी भी, एक सेकन्ड भी नहीं बदलती। वैसे के वैसे, जब देखो तब वैसे के वैसे ही! सारे संयोग बदलते हैं, लेकिन 'दादा' नहीं बदलते न! और आपको भी अंत में इनके जैसा ही बनना है। आपका ध्येय यही होना चाहिए।

तो यह मैंने 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डाल दी है। अब आप लघुतम की खुमारी में रहो। अब व्यापार करते हो, तो वह तो 'व्यवस्थित' के ताबे में है। आपको तो सिर्फ इनसे कहना है, चंदूभाई से कहना है कि, 'भाई, काम करते रहो। चाय पीनी हो तो चाय पीओ, लेकिन काम करो।' इतना ही कहना है। यानी आपको तो लघुतम की खुमारी रहनी चाहिए। गुरुतम की खुमारी तो सभी लोगों ने रखी है लेकिन हमें तो किसकी खुमारी रहनी चाहिए?

प्रश्नकर्ता : लघुतम की।

दादाश्री : हाँ, बैंक में रुपये हैं उसकी खुमारी नहीं रखनी है। लघुतम की खुमारी रखनी है। आपको रास आएगी यह बात?

प्रश्नकर्ता : हाँ, आएगी।

दादाश्री : और इस विज्ञान में तो बेटे-बेटियों की शादी करवाई जा सकती है। पगड़ियाँ पहनकर शादी करवाई जा सकती है। कुछ भी बाधक नहीं है क्योंकि वह सब 'रिलेटिव' है और आप लघुतम पद पर बैठने के बाद भले ही दो पगड़ियाँ पहनी हों, मुझे कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि आपकी खुमारी किसमें है? लघुतम पद में! जिसे गुरुतम पद की खुमारी हो उसे परेशानी है लेकिन लघुतम पद की खुमारी तो रहेगी ही न!

'स्व'-भाव प्राप्त करना वही गुरुतम

'खुद' लघुतम बन जाए तो आत्मा गुरुतम है। यानी आत्मा को

गुरुतम बनाने की ज़रूरत नहीं है। हमें सिर्फ लघुतम बनने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : हम लघुतम बन जाएँ तो आत्मा गुरुतम बन जाता है लेकिन आत्मा तो अगुरु-लघु स्वभाव का है।

दादाश्री : वह अगुरु-लघु स्वभाव का है, उसकी यह बात इस तरह से नहीं है। गुरुतम का अर्थ क्या है? अगुरु-लघु स्वभाव तक पहुँचना, उसे गुरुतम कहा जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'रियल' में तो अगुरु-लघु स्वभाव नहीं है न?

दादाश्री : वह फिर अलग है। यह अगुरु-लघु वह मूल स्वभाव है और यह व्यवहारिक जहाँ है वहाँ वह लघुतम बन गया तो 'रियल' में गुरुतम हो जाएगा। मैं आराम से लघुतम रहता हूँ तो मेरा आत्मा गुरुतम रहता है, आखिर तक।

उसका 'टेस्ट इग्ज़ामिनेशन'

प्रश्नकर्ता : आप 'रिलेटिव' में लघुतम हो चुके हैं, उसका उदाहरण दीजिए।

दादाश्री : उदाहरण में तो हम यह खुल्ला, बोलता हुआ उपनिषद ही हैं न! बोलता हुआ पुराण हैं न!

'रिलेटिव' में लघुतम होने का मतलब आपको समझाऊँ। यहाँ से आपको गाड़ी में ले जा रहे हों और दूसरे परिचित आ जाएँ तो फिर आपको कहेंगे, 'अब उतर जाओ।' तब बगैर किसी भी 'इफेक्ट' के उतर जाना। फिर वापस थोड़ी देर बाद कहेंगे, 'नहीं, नहीं। आप आइए।' फिर वापस आपको बिठाया तो आप बैठ जाते हो। वापस दूसरे कोई परिचित मिलें तब वे आपसे कहें, 'उतर जाओ।' तो बगैर किसी भी 'इफेक्ट' उतर जाना। और किसी भी 'इफेक्ट' बिना चढ़ जाना। ऐसा आठ-दस बार हो तो क्या होगा? लोगों को क्या होगा? फट जाएँगे। जैसे दूध फट जाता है वैसे फट जाएँगे!

प्रश्नकर्ता : एक ही बार में फट जाएँगे।

दादाश्री : और मुझे सताइस बार करें तब भी ऐसे का ऐसा! और वापस जाकर वापस आ भी जाऊँगा। वे कहेंगे, 'नहीं, नहीं। आप वापस आइए।' तो वापस आ भी जाऊँगा क्योंकि हम लघुतम हो चुके हैं।

'फाउन्डेशन' अक्रम विज्ञान के

लघुतम तो अपना केन्द्र ही है। इस केन्द्र में बैठे-बैठे गुरुतम प्राप्त होगा। अपनी तो नई 'थ्योरीज़' है सारी, बिल्कुल नई!

लघुतम भाव में रहना और अभेद दृष्टि रखनी, वह इस अक्रम विज्ञान का 'फाउन्डेशन' है। 'इस' विज्ञान का 'फाउन्डेशन' क्या है? लघुतम भाव में रहना और अभेद दृष्टि रखनी। जीवमात्र के प्रति, पूरे ब्रह्मांड के जीवों के प्रति अभेद दृष्टि रखनी, यही इस विज्ञान का 'फाउन्डेशन' है। यह विज्ञान कोई यों ही बगैर 'फाउन्डेशन' का नहीं है।

बाकी, सभी क्रियाएँ अपने आप होती ही रहती है, 'मिकेनिकली' होती ही रहती है। 'दृष्टि' और 'मिकेनिकल,' उन दोनों में बहुत 'डिफरेन्स' है। दृष्टि ही मुख्य चीज़ है और 'मिकेनिकल', वह अलग चीज़ है।

जिसने जगत् के शिष्य बनने की दृष्टि नहीं वेदी (रखी) है, वह जगत् में 'महावीर' नहीं बन सकता। छोटा बच्चा हो, बालक हो, मूर्ख हो या, उन सभी का शिष्य बनने की दृष्टि!

लघुतम अहंकार से मोक्ष की ओर

प्रश्नकर्ता : इस लघुतम का अर्थ कैसे निकाला? अपना जो अहंकार है, वह अहंकार ज़ीरो डिग्री पर आ जाए तो वह लघुतम है?

दादाश्री : नहीं। अहंकार तो वैसे का वैसा ही रहता है लेकिन अहंकार की मान्यता ऐसी हो जाए कि, 'मैं सब से छोटा हूँ और वह भी एक प्रकार का अहंकार ही है।' ऐसा है, इस लघु का अर्थ 'छोटा हूँ' हुआ। फिर लघुतर अर्थात् छोटे से भी छोटा हूँ और लघुतम अर्थात्

सभी मुझसे बड़े हैं, ऐसा अहंकार। यानी वह भी एक प्रकार का अहंकार है!

अब जो गुरुतम अहंकार है, यानी कि बड़े होने की भावनाएँ, 'मैं इन सभी से बड़ा हूँ', ऐसी जो मान्यताएँ हैं, उनसे यह संसार खड़ा हो गया है। जबकि लघुतम अहंकार से मोक्ष की तरफ जा सकते हैं। लघुतम अहंकार अर्थात् 'मैं तो इन सब से छोटा हूँ' ऐसा करके सारा व्यवहार चलाना। उससे मोक्ष की तरफ चला जाता है। 'मैं बड़ा हूँ' ऐसा मानता है, इसलिए यह संसार 'रेस-कोर्स' में उतरता है और वे सभी भान भूलकर उल्टे रास्ते पर जा रहे हैं। यदि लघुतम का अहंकार हो न, तो वह लघु होते-होते जब एकदम लघुतम हो जाता है, तब वह परमात्मा बन जाता है!

इसमें 'रेस-कोर्स' है ही नहीं

अभी तक तो गुरुतम बनने का प्रयत्न किया था न? हाँ, मैं इनसे बड़ा बनूँ, मैं इनसे बड़ा बनूँ! देखो न, 'रेस-कोर्स' चला है। उसमें इनाम किसे? सिर्फ पहले घोड़े को ही और बाकी सभी को? दौड़ते हैं उतना ही। उतना ही दौड़ते हैं, फिर भी उन्हें इनाम नहीं।

प्रश्नकर्ता : दादा, लघुतम पद में 'रेस-कोर्स' है क्या?

दादाश्री : नहीं, 'रेस-कोर्स' नहीं होता। जहाँ लघुतम आया, वहाँ पर 'रेस-कोर्स' नहीं होता। 'रेस-कोर्स' तो गुरुतम में होता है सारा। मुझमें तो लघुतम पद और बुद्धि नहीं है, इसलिए मुझे किसी से लेना भी नहीं है और देना भी नहीं है! बुद्धि का छींटा ही नहीं है न!

दौड़ते हैं सभी, इनाम एक को

प्रश्नकर्ता : हर एक की ऐसी इच्छा होती है न कि 'मैं कुछ बनूँ' और यहाँ आपके पास ऐसी इच्छा होती है कि 'मैं कुछ भी नहीं बनूँ, विशेषता बिल्कुल भी नहीं चाहिए।' व्यवहार में ऐसा रहता है कि मैं कुछ हूँ और मुझे कुछ बनना है।

दादाश्री : क्योंकि वहाँ 'रेस-कोर्स' में पड़ जाते है न! इतने सारे घोड़े दौड़ते हैं, उनके साथ वह भी दौड़ता है। 'अरे, तू बीमार है, बैठा रह न चुपचाप!' जबकि वे तो 'स्ट्रोंग' घोड़े हैं। और उसमें भी इन सब घोड़ों में पहले नंबर वाले को ही इनाम मिलेगा और बाकी सब तो हाँफ-हाँफकर मर जाएँगे।

अत: इस स्पर्धा में तो कोई मूर्ख भी नहीं पड़ता। हाँ, दो सौ-पाँच सौ घोड़ों को इनाम दे रहे हों तो अपना भी नंबर लग जाएगा ऐसा मान सकते हैं लेकिन अरे, पहला नंबर तो लगनेवाला है नहीं। तो फिर किसलिए बेकार यों ही इस 'रेस-कोर्स' में पड़ा है? सो जा न, घर जाकर। इस 'रेस-कोर्स' में कौन उतरे? इनके 'रेस-कोर्स' में कहाँ उतरें? कोई घोड़ा कितना ज़ोरदार होता है! कोई चने खाता है, कोई घास खाता है!

मैं इस संसार के 'रेस-कोर्स' में पड़ा ही नहीं, इसलिए मुझे 'भगवान' मिल गए!

और इनाम तो पहले नंबर वाले को ही! बाकी सब तो भटक मरते हैं। हाँफ-हाँफकर मर जाएँ, तब भी कुछ नहीं। क्या ऐसे न्याय वाले जगत् में 'रेस-कोर्स' में पड़ना चाहिए? आपको कैसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : और इंसान का स्वभाव स्पर्धावाला ही होता है। लोगों में स्पर्धा रहती है न?

प्रश्नकर्ता : रहती है न! वे तो उत्तेजित करते हैं।

दादाश्री : हर एक क्षेत्र में स्पर्धा रहती ही है। अरे, घर में भी यदि तीसरा व्यक्ति आ जाए, और वह दलीलबाजी करे ऐसा हो तो पति-पत्नी में भी स्पर्धा चलती है फिर। पत्नी ऐसा बोले, तब ये भाई कहेंगे, 'बैठ, तू तो ऐसा करती है लेकिन मैं तो ऐसा कर डालूँ, वैसा हूँ।' अरे, दोनों घोड़े दौड़े! कौन इनाम देगा तुम्हें? इसलिए हम तो कह देते हैं कि 'हीरा बा को जैसा आता है, वैसा हमें नहीं आता।' यानी कि

हम दौड़ने देते हैं। 'खूब दौड़ो, दौड़ो, दौड़ो!' फिर हीरा बा भी कहते हैं कि, 'आप भोले हैं।' मैंने कहा, 'हाँ, ठीक है।'

ये लोग स्पर्धा करते हैं न, इसलिए दुःख आते हैं। ये तो 'रेस-कोर्स' में उतरते हैं। यह जो 'रेस-कोर्स' चल रहा है उसे देखता रह, कि कौन सा घोड़ा पहले नंबर पर आता है?! उसे देखता रहे तो देखने वाले को कोई दुःख नहीं होता। जो 'रेस-कोर्स' में उतरते हैं उन्हें दुःख होता है। इसलिए 'रेस-कोर्स' में उतरने जैसा नहीं है।

टीका-टिप्पणी, खुद का ही बिगाड़ती है

और दूसरा, किसी की भी टीका-टिप्पणी (टीका) करने जैसा नहीं है। टीका करने वाले का खुद का ही बिगड़ता है। कोई भी व्यक्ति कुछ करे, उसमें टीका करनेवाला पहले तो खुद के ही कपड़े बिगाड़ता है। और अगर उससे भी अधिक गहरे उतरे तो शरीर बिगाड़ता है। और अगर उससे भी अधिक गहरा उतरे तो हृदय बिगाड़ता है। इसलिए टीका तो खुद का बिगाड़ने का साधन है। उसमें नहीं उतरना चाहिए। उसे जानने के लिए जानना। बाकी, इसमें उतरना नहीं चाहिए। यह जीवन टीका-टिप्पणी करने के लिए नहीं मिला है और कोई अपनी टीका करे तो *नोंध* लेने जैसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : टीका करने वाले जीव को अपने काम में कुछ रुचि होगी तभी टीका करेगा।

दादाश्री : टीका-टिप्पणी करना तो अहंकार का मूल गुण है। वह स्पर्धा का गुण है, इसलिए टीका तो रहेगी ही। और स्पर्धा के बिना संसार में रहा नहीं जा सकता। स्पर्धा जाए तो छुटकारा हो जाए। उपवास करते हैं, वह सब भी स्पर्धा के गुण से शुरू होते हैं। 'उसने पंद्रह किए तो मैं तीस करूँगा।' इसके बावजूद भी यह टीका, करने जैसी चीज़ नहीं है।

टीका करने से पहले तो अपने कपड़े बिगड़ते हैं, और दूसरी टीका से देह बिगड़ती है और तीसरी टीका से हृदय बिगड़ता है। बस, इतना ही! इसलिए किसी की भी बात में गहरे मत उतरो क्योंकि वह तो खुद,

खुद का मालिक है न?! उसकी मालिकी के 'टाइटल' उसके खुद के हैं। हम उसकी टीका कैसे कर सकते हैं? नहीं तो फिर हम 'ट्रेसपासर' (किसी की संपत्ति में अनाधिकृत प्रवेश करनेवाला) कहलाएँगे!

यों घुड़दौड़ में से निकल सकते हैं

अब यह सब तो चलता ही रहेगा। उसमें खुद चलाता ही नहीं है। यह तो ज़रा गर्वरस चखने की आदत पड़ी हुई है न! इसलिए दूसरे की आठ सौ की तनख़्वाह देखे न, तो मन में ऐसा होता है कि, 'हमें तो अठारह सौ मिलते हैं तो हमें कोई परेशानी नहीं है। इसे तो आठ सौ ही मिलते हैं!' यों शुरू हो जाता है! जैसे अठारह सौ के ऊपर कोई *ऊपरी* ही नहीं होगा न, ऐसा! जहाँ *ऊपरी* होता है न, वहाँ स्पर्धा रहती ही है! वहाँ खड़े रहने का कारण ही क्या है हमारे पास? यह क्या 'रेस-कोर्स' में आए हैं?! हम क्या 'रेस-कोर्स' के घोड़े हैं?! उसके बजाय तो वहाँ कह दे न, 'मैं बिल्कुल मूर्ख हूँ।' हम तो कह देते हैं न, कि 'भाई, हममें अक्ल नहीं है, हममें इस सारे व्यवहार की समझ नहीं है न!' और साफ-साफ ऐसी बात ही कर देते हैं न!

और ऐसा है, हमें तो दाढ़ी बनाना भी नहीं आता। तभी तो ब्लेड से छिल जाता है न! और हमने ऐसा इंसान देखा ही नहीं है जिसे दाढ़ी बनानी आती हो! ये तो मन में न जाने क्या 'इगोइज़म' लेकर घूमते रहते हैं! ऐसा तो मेरे जैसा ही कोई कहेगा न? बाकी, सामने तो सारी दुनिया है। थोड़े-बहुत लोग हों तो 'वोट' मिलेंगे, लेकिन यहाँ तो 'वोटिंग' में मैं अकेला ही हूँ इसलिए फिर मैं शोर नहीं मचाता। चुप रहता हूँ। क्योंकि 'वोटिंग' में सिर्फ मैं ही आता हूँ। बाकी, ऐसी चेतावनी कौन देगा? और मैं कहाँ चेतावनी देने बैठूँ? यानी कि कैसी दुनिया में आ फँसे हैं।

ये बातें सुनना आपको अच्छा लगता है? बोरियत नहीं होती? और इस बात को छानना मत। छानने मत बैठना। यों ही अंदर डाल देना। नहीं तो आपकी जोखिमदारी आएगी। यहाँ पर तो यह 'प्योर' वस्तु है। उसे बुद्धि से क्या छानना?

यानी कि हम साफ ही कह देते हैं न कि, 'भाई, हमें व्यवहार में ऐसा समझ में नहीं आता।' तभी तो वे हमें छोड़ेंगे न! ऐसा कहेंगे तभी दुःख मुक्त हो पाएँगे न!

इसे कुशलता कैसे कहेंगे?

बाकी, समझदार तो यहाँ पर बहुत मिल आएँगे न! ऐसे होते हैं न, तो वे कहेंगे, 'साहब, आपका केस मैं जितवा दूँगा। बस, तीन सौ रुपये दे देना।' ऐसा कहते हैं न? घर का खाता-पीता है, पत्नी की गालियाँ खाता है और अपने लिए काम करता है! अब तो महंगाई बढ़ गई है न? तो ज़्यादा रुपये लेते होंगे न?!

और ये सभी हिन्दुस्तान के लोग हैं न, वे भी अपनी समझ से करते हैं। किसी से सारा पूछकर नहीं सीखे हैं कि, "इस 'मशीनरी' का यह बटन दबाने से क्या होगा? वह बटन दबाने से क्या होगा? वह बटन दबाने से क्या होगा?" कोई उसके 'टेकनिशिन' से पूछकर तैयार नहीं होता। यह तो सारा अंधाधुंध चला है। हिन्दुस्तान के लोगों को तो यह भी नहीं आता कि 'रेज़र' कैसे चलाना चाहिए। यह भी नहीं जानते कि उस्तरे के फल को धार कितनी चाहिए-कितनी नहीं। ऐसे घिसने से हो जाएगा क्या?! और शायद बहुत कंजूस हो तो पत्थर पर घिसता रहता है, तो बल्कि जो धार होती है वह भी खत्म हो जाती है। और फॉरेनर तो कैसे हैं? विकल्पी नहीं होते न! ऊपर लेबल लिखा होता है कि इस ब्लेड का किस तरह से उपयोग करना है। इस 'रेज़र' पर नंबर क्यों लिखे हैं एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात? वह सब उसके 'टेकनिशियन' से पूछते हैं और उसकी सलाह के अनुसार करते रहते हैं जबकि अपने यहाँ तो विकल्पी, ज़रूरत से ज़्यादा अक्लमंद! पत्नी कहेगी कि, 'मैं अभी मंदिर जाकर आती हूँ।' तब यह कहेगा कि, 'मैं कढ़ी बनाकर रखूँगा।' और बनाता भी है लेकिन वह न जाने किस चीज़ का छौंक लगाता है कि अपना मुँह बिगड़ जाता है।

कोई यहाँ रेडियो बजा रहा हो और आप सब यहाँ से उठ जाओ तो छोटे बच्चे मुझसे कहेंगे कि, 'इस रेडियो को ज़रा घुमाओ न!' तब

मैं कह देता हूँ कि मुझे नहीं आता क्योंकि मैं तो पहले पूछता हूँ और पूछकर फिर सीखता हूँ। मैं अपने आप यों ही अंधाधुंध नहीं करता।

इस 'रेज़र' के लिए भी मैं पूछता हूँ लेकिन उसमें उसे ही कोई 'टेकनिशियन' नहीं मिला होगा न! कि मुझे सिखाए कि यह ऐसे घुमाना है और वैसे घुमाना है। 'आ गया मुझे, सब पहुँच गया मेरे अंदर!' तू भी बेवकूफ और मैं भी बेवकूफ! और 'टेकनिशियन' के अलावा मैं किससे पूछूँ? यह तो खुद दाल बनाकर बिगाड़ देता है। नाई नहीं मिले तब लोग तो कहते हैं, 'उसमें क्या है?' तो खुद ही बाल काटने बैठ जाते हैं, ऐसे हैं ये लोग! 'अरे, ऐसे-ऐसे किया कि हो गया?' ऐसा होता तो यह कारीगरी कहलाती ही नहीं न! कला ही नहीं कहलाती न! ये सभी लोग जो कुछ भी सीखे हैं, वह कैसा है? या अंधाधुंध ही!

इन फॉरेनवालों ने मशीनरी बनाई है, वे जानते थे कि हिन्दुसतान के लोग विकल्पी हैं, बिगड़ नहीं जाना चाहिए इस तरह से बनाते हैं। वे लोग 'फैक्टर ऑफ सेफ्टी' रखते हैं! ये विकल्पी लोग हैं न! विकल्पी लोग नहीं होते न, तो 'फैक्टर ऑफ सेफ्टी' की इतनी ज़रूरत नहीं पड़ती। लेकिन ये तो न जाने क्या ही दबा देते हैं। इन मकानों के काम में स्लेब भरने होते हैं, वहाँ भी 'फैक्टर ऑफ सेफ्टी' इतनी बढ़कार रखते हैं, नहीं तो लोग घर में अंधाधुंध भरेंगे और वह गिर जाएगा तो क्या होगा?! अरे, अंधाधुंध भरने पर भी मकान पचास सालों तक चले, उतनी तो 'फैक्टर ऑफ सेफ्टी' रखी होती है।

जो बहुत कंजूस होते हैं, वे ऐसा समझते हैं कि हमें 'रेज़र' बहुत अच्छी तरह से चलाना आता है! तो वे पत्थर पर ब्लेड घिसते रहते हैं। अरे, नहीं है यह पत्थर पर घिसने जैसी चीज़! पत्थर का और इसका कोई लेना-देना नहीं है। इसका उपयोग करना आए तो बहुत ग़ज़ब की चीज़ है। मैंने एक बार कहा कि 'मुझे इस ब्लेड का उपयोग करना नहीं आता, आपको भी नहीं आता। तो अब हम यह किससे पूछने जाएँ? आप तो ब्लेड स्टेनलेस स्टील की लाते हो लेकिन मुझे उपयोग करना

नहीं आए, उसमें स्टेनलेस स्टील क्या करे बेचारा? बेकार आदमी के हाथ में जाकर वह भी बेवकूफ हो जाता है!'

यानी यह सब विकल्पी हैं। यह सारा (सांसारिक) ज्ञान ऐसा है कि कभी भी मोक्ष में न जाने दे।

वहाँ हो गया अहंकार शून्य

मुझे तो भाषण देना भी नहीं आता। यह 'ज्ञान' है इतना ही आता है, दूसरा कुछ नहीं आता इस जगत् में। दूसरा कुछ नहीं आया इसलिए तो यह आया! और कहीं पर भी सीखने भी नहीं गया। नहीं तो जिसे देखो वह गुरु बनकर बैठेंगे। उसके बजाय इसमें 'एक्सपर्ट' तो हो जाएँ, निर्लेप तो हो जाएँ!

मुझे तो संसार के मामले में कुछ भी नहीं आता है और स्कूल में भी कुछ नहीं आता था। बस इतना ही आता था कि *ऊपरी* नहीं चाहिए। वह इतना बड़ा झंझट लगा था। सिर पर कोई नहीं चाहिए! फिर चाहे कुछ भी खाने-पीने का हो, उसमें हर्ज नहीं है लेकिन सिर पर कोई *ऊपरी* नहीं चाहिए। यह जो शरीर है, वह शरीर अपनी 'एडजस्टमेन्ट' लेकर ही आया है।

अब यह 'ज्ञान' ऐसा है न कि यह सभी काम कर देता है। बाकी, हमें संसार का कुछ भी काम नहीं आता लेकिन फिर भी काम अच्छा चलता है, सभी से अच्छा चलता है। सभी लोगों को तो डाँटना व चिल्लाना पड़ता है। मुझे तो चिल्लाना भी नहीं पड़ता। फिर भी उनकी जितनी निपुणता है, उससे भी ज़्यादा अच्छा काम होता है। अब जिन्हें चप्पल सिलनी आती है, उसे चप्पल सिलते रहने हैं! कपड़े सीना आए, उसे कपड़े सीते रहने हैं! और जिसे कुछ नहीं आए, उन्हें फालतू बैठे रहना है। कुछ आए नहीं, तो क्या करे फिर?!

भगवान ने कहा है कि जिसे कुछ भी आता है, वह ज्ञान अहंकार के आधार पर टिका है। जिसे नहीं आता है उसे अहंकार ही नहीं है न! अहंकार हो तो आए बगैर रहेगा नहीं न! मुझे तो सिर्फ यही आता है,

फिर भी लोगों के मन में भ्रम है कि 'दादा सब जानते हैं!' लेकिन क्या जानते हैं ये? कुछ भी नहीं जानते। 'मैं' तो 'आत्मा' की बात जानता हूँ, ''आत्मा' ज्ञाता-दृष्टा है,'' वह जानता हूँ। 'आत्मा' जो-जो देख सकता है वह 'मैं' देख सकता हूँ लेकिन और कुछ नहीं आता। अहंकार होगा तब आएगा न! अहंकार बिल्कुल ही निर्मूल हो गया है। उसकी जड़ तक भी नहीं बची है कि इस जगह पर था! और उस जगह पर से उसकी कोई सुगंधी तक भी नहीं आती। इतनी हद तक जड़ें निकल चुकी हैं। उसके बाद का वह पद कितना मज़ेदार होगा!

यह तो हमारी कितने ही जन्मों की साधना होगी कि एकदम से फल हाज़िर हो गया! बाकी, इस जन्म में तो कुछ भी नहीं आता था। निपुणता तो मैंने किसी इंसान में देखी ही नहीं है।

यह जो मोची होते हैं, उसे कम आता है, वह जूते बनाता है लेकिन बारह महीनों नुकसान ही नुकसान करता है। उसी तरह इस काल के जीव भी नुकसान ही करते हैं। ज़रा से निपुण होते हैं तो वे फायदे की बजाय नुकसान ज़्यादा करते हैं। सारा चमड़ा बिगाड़ देते हैं। जूते भी सिलता है और पाँच सौ जूतों का चमड़ा बिगाड़ देता है! वहाँ क्या नफा हुआ? मेहनत की और बेकार ही नुकसान हुआ। यानी मुख्य व्यापार में नुकसान होता है। वह तो पुण्य के अधीन है। उसमें ये लोग क्या कमाने वाले थे? यह तो पुण्य की कमाई है! जबकि यह अक्कल के बोरे जूते ही घिसते रहते हैं! इसलिए हम तो शून्य ही हैं। कुछ आता ही नहीं था ऐसा समझकर चलो न! सब कैन्सल करके नीचे नये सिरे से रकम लिखनी है। कौन सी रकम? हमारी शुद्धात्मा की रकम पक्की! निर्लेप भाव, असंग भाव सहित! यह तो यहाँ पर संपूर्ण रकम दी हुई है। 'दादा' ने शुद्धात्मा दिया तब शुद्धात्मा हुए। नहीं तो कुछ था ही नहीं, पैसे भर का भी सामान नहीं था!

जगत् जीता जा सकता है, हारकर

इस 'ज्ञान' के बाद आपको निरंतर शुद्धात्मा का ध्यान रहता

है इसलिए रोज़ शाम को हमें पूछना चाहिए कि, 'चंदूभाई हो या शुद्धात्मा?' तो कहेगा कि, 'शुद्धात्मा!' तो पूरा दिन शुद्धात्मा का ध्यान रहा कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हम ऐसा कहेंगे तो लोग हमें पागल कहेंगे।

दादाश्री : पागल कहेंगे तो 'चंदूभाई' को पागल कहेंगे। आपको तो कोई कहेगा ही नहीं। आपको तो पहचानते ही नहीं है न! 'चंदूभाई' को कहेंगे तो 'आप' कहना कि, 'चंदूभाई, आप होंगे तभी कह रहे होंगे और अगर आप नहीं हो फिर भी अगर कहेंगे तो उनकी जोखिमदारी। वह फिर आपकी जोखिमदारी नहीं है।' 'आपको' ऐसा कहना है।

प्रश्नकर्ता : हमें कोई कुछ कहे, पागल कहे, बेअक्ल कहे, तो अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : ऐसा है न, आपको हँसना हो तो आटा नहीं फाँकना चाहिए और आटा फाँकना हो तो हँस नहीं सकते। दोनों में से एक रखो। आपको मोक्ष में जाना है, तो लोग पागल भी कहेंगे और मारेंगे भी सही, सभी कुछ करेंगे लेकिन आपको अपनी बात छोड़ देनी पड़ेगी। आप कह देना, 'भाई, मैं तो हारकर बैठा हूँ।' हमारे पास एक सज्जन आए थे। मैंने उनसे कहा कि, ''आपको हारकर जाना पड़ेगा। इसके बजाय मैं हारकर बैठा हूँ। तू आराम से खाकर-ओढ़कर सो जा न! तुझे जिसकी ज़रूरत थी, वह तुझे मिल गया। 'दादा' को हराने की इच्छा है न? तो मैं खुद ही कबूल करता हूँ कि मैं हार गया।''

अर्थात् इनकी बराबरी कैसे कर पाएँगे? यह सारी तो माथापच्ची कहलाती है। इस देह को मार पड़े तो अच्छा, लेकिन यहाँ तो दिमाग़ को मार पड़ती है। वह तो बहुत परेशानी है।

जगत् की मिठास चाहिए और यह भी चाहिए, दोनों नहीं होगा। जगत् में तो अगर कोई हराने आएँ न, तो हारकर बैठना चाहिए चैन से। लोग तो उनकी भाषा में जवाब देंगे। 'बड़े शुद्धात्मा हो गए हो?' ऐसी सब गालियाँ भी देंगे क्योंकि लोगों का स्वभाव ही ऐसा है। खुद को

मोक्ष में जाने का मार्ग नहीं मिला है इसलिए दूसरों को भी नहीं जाने देते, ऐसा है लोगों का स्वभाव। यह जगत् मोक्ष में जाने दे ऐसा है ही नहीं, इसलिए इन्हें समझा-बुझाकर, आखिर में हारकर भी कहना कि, 'हम तो हार चुके हैं।' तब वे आपको छोड़ देंगे।

ये लोग तो किसी की भी नहीं सुनते थे न! इसलिए हमें समझ जाना चाहिए कि हराने आए हैं, तभी से कहना चाहिए कि 'भाई, मैं तो हारकर बैठा हूँ। आप जीत गए, मैं तो आपसे हार गया।' ऐसा कहेंगे तो उसे नींद आएगी कि 'मैंने चंदूभाई को हरा दिया।' इससे उन्हें संतोष होगा!

वर्ना प्रगति रुंध जाती है

हम अपनी 'प्रोग्रेस' नहीं छोड़ते। हम एक बार विनती करके देख लेते हैं। वर्ना, हम तो बात छोड़कर आगे चल पड़ते हैं। हम कहाँ तक बैठे रहें?! हम आपको समझाते हैं। यदि आप अपनी बात पकड़कर रखो, तो हम तुरंत छोड़ देते हैं। हम समझ जाते हैं कि इन्हें दिखाई नहीं दे रहा, तो हम कहाँ तक बैठे रहें? बैठे नहीं रहना चाहिए न? हमें अपनी राह पकड़ लेनी चाहिए न! क्योंकि उन्हें आगे दिखाई ही नहीं देता न!

यहाँ से तीन सौ फुट दूर कोई एक सफेद घोड़ा लेकर खड़ा हो और हम किसी से पूछें कि, 'भाई, वहाँ क्या खड़ा है?' तब वह कहेगा कि, 'गाय खड़ी है।' तो क्या हमें उसे मारना चाहिए? क्यों नहीं मारना चाहिए? वह उस घोड़े को गाय कह रहा है न? तो उसे मारना ही चाहिए न? नहीं! उसे ऐसी 'लोंग साइट' नहीं हो तो, उसमें उस बेचारे का क्या दोष? वह तो अच्छा है न, कि गधा नहीं कह रहा! वर्ना वह गधा कहे तब भी हमें 'एक्सेप्ट' करना पड़ेगा। उसे जैसा दिख रहा है, वैसा ही वह कह रहा है। ऐसा है यह जगत्! हर किसी को, जिसे जैसा दिखाई दिया, वैसा ही वह बोल रहा है।

इस घोड़े के उदाहरण पर से आप बात को समझ गए न? जैसा

दिखाई देता है वैसा ही बोलते हैं न, लोग? उसमें उनका क्या दोष है? आपको समझ लेना है कि उस बेचारे को दिखाई ही ऐसा देता है, इसलिए यह ऐसा बोल रहा है। तो आपको कहना है कि, 'हाँ भाई, तेरी दृष्टि से यह ठीक है।' तब आपको ऐसा भी नहीं कहना चाहिए कि, 'नहीं, हमारी दृष्टि से हमारा ठीक है।' इतना ही कहना कि, 'तेरी दृष्टि से यह ठीक है।' नहीं तो वापस कहेगा कि, 'रुको, रुको, आपकी दृष्टि से क्या है वह मुझे बताओ।' यों बल्कि वह वापस बिठाकर रखेगा। इसके बजाय तेरी दृष्टि से ठीक है, कहकर आपको चलने ही लगना है!

यों हम दिखाई देते हैं भोले लेकिन हैं बहुत पक्के। बालक जैसे दिखाई देते हैं, लेकिन पक्के हैं। किसी के साथ हम बैठे नहीं रहते, चलने ही लगते हैं। हम हमारी 'प्रोग्रेस' कहाँ छोड़े?

'ज्ञानीपुरुष' के पास हित की बात होती है। उनसे दो शब्द समझ लें न, तो बहुत हो गया! दो शब्द समझ में आएँ, और उनमें से एक ही शब्द यदि हृदय में उतर जाए तो वह शब्द मोक्ष में पहुँचने तक उसे छोड़ेगा नहीं। इतना वचनबलवाला होता है, इतनी वचनसिद्धि होती है उस शब्द के पीछे!

छूटने के लिए ग़ज़ब की खोज

इसलिए हमने यह कहा है न कि 'भाई, आप सब का सही है लेकिन हमारा यह स्पर्धावाला नहीं है। यह बेजोड़ चीज़ है। तुझे हल्का कहना हो तो हल्का कह, भारी कहना हो तो भारी कह लेकिन यह है बेजोड़! इसकी स्पर्धा में कोई नहीं है।'

हम किसी के साथ स्पर्धा में नहीं हैं। हमें कोई पूछे कि, 'भाई, इन फलाँ लोगों का कैसा है?' तो हम तुरंत ऐसा कह देते हैं कि, 'हमें उनकी तरफ कोई राग-द्वेष नहीं है।' जैसा है वैसा कह देते हैं। हममें स्पर्धा नहीं है। लेना-देना ही नहीं है न! और इस स्पर्धा में हमें नंबर नहीं लाना है। मुझे क्या करना है नंबर का? मुझे तो काम से काम है।

हमारे पास भी जब टेढ़ा बोलने वाले आते हैं तब मैं कहता हूँ

कि, 'यह तो हम ऐसा जानते ही नहीं थे। आपने कहा तब हमें पता चला और आप तो सबकुछ पता लगाकर बैठे हुए हो।' ऐसा कहकर उसे वापस निकाल देते हैं। हाँ, वर्ना अगर उसे हरा देंगे तो उसे नींद नहीं आएगी और हमें दोष लगेगा। तो उसके बजाय तो, कई लोगों से हम ऐसा कहते हैं 'सो जा न! तू हमसे जीत गया तो घर जाकर रेशमी चादर बिछाकर सो जा।' उसके मन में ऐसा होता है कि 'चलो न थोड़ा जीत जाऊँ।' इसलिए हम कहते हैं कि 'तू जीत गया, ले!' और यदि उसे हरा देंगे न, तो उसे नींद नहीं आएगी और मुझे तो हारकर भी नींद आएगी। जितना हारता हूँ, उतनी ज़्यादा नींद आती है।

हारना ढूँढ निकालो! यह नई खोज है हमारी, 'जीता हुआ इंसान कभी भी हार सकता है, लेकिन जो हारकर बैठा है न, वह कभी भी नहीं हार सकता।' जीतने के लिए निकला न, तभी से फेल कहा जाता है। ये लड़ाईयाँ नहीं हैं। शास्त्र में जीतने निकला या किसी में भी जीतने निकला, लेकिन जीतने निकला इसलिए तू फेल!

यह ज्ञान स्पर्धा रहित ज्ञान है। यह ज्ञान स्पर्धावाला नहीं है इसीलिए तो दुर्लभ, दुर्लभ, दुर्लभ कहा है न! 'ज्ञानीपुरुष' मिलने दुर्लभ हैं!

एक में एक्सपर्ट, लेकिन और सभी में...

हम तो 'अबुध' हैं ऐसा पुस्तक में छपा भी है। मैं लोगों से कहता हूँ कि 'हम तो अबुध हैं!' तब लोग कहते हैं, 'ऐसा मत कहिए, मत कहिए!' अरे भाई, तू भी बोल। तू भी अबुध बन, नहीं तो मारा जाएगा! लोग तो तेरे पैर तोड़ डालेंगे!

इसलिए हमें अक्लमंद बनने की बात ही नहीं करनी है इसीलिए तो हमने अबुध का कारखाना ढूँढ निकाला न! देखो न, कैसा ढूँढ निकाला! अरे, हमें जब व्यवहार में समझ नहीं आएगा तो वकील को ढूँढ निकालेंगे कि, 'ले रुपए, और कुछ करके दे। यह झगड़ा कर रहा है उसका हल ला दे।' कहेंगे, और फिर भला हम कहाँ अक्ल का उपयोग करें! ऐसे अक्लमंद लोग तो मिलते हैं न! कोई पच्चीस रुपये में मिलते हैं, कोई

पचास रुपये में मिलते हैं, कोई सौ रुपये में मिलते हैं। आखिर में एक दिन के पाँच सौ रुपये में भी मिलते हैं न! तैयार ही मिलते हैं, तो फिर अक्ल का उपयोग क्यों करें?! आपको समझ में आया न?

ये तो बहुत पुण्यशाली लोग हैं तो लोग ऐसा कह देते हैं कि 'अक्ल नहीं है'। यह बहुत अच्छा है। इसे तो इनाम कहते हैं। यह तो लोगों ने ही कीचड़ में गहरे नहीं उतरने दिया। 'एय रुक जा! भीतर मत उतरना, तू डूब जाएगा! कीचड़ में पैर फँस जाएँगे!' तब कहा, 'अच्छा!' इस किनारे पर खड़े रहे इसीलिए तो यह 'ज्ञान' पाया! वर्ना तो जो डूब चुके हैं, उनके चेहरे तो देखो, सभी के! जैसे एरंडी का तेल पीया हो वैसे हो गए हैं, वे सयाने बनने, नाम कमाने गए थे तो!

प्रश्नकर्ता : लेकिन बाहर वाले हर बात में मूर्ख ठहरा देते हैं, वहाँ क्या करें?

दादाश्री : हाँ, तो हमें वही बनने की ज़रूरत हैं। हमारे बहुत पुण्य जागे हैं! और वहाँ पर उन लोगों में हमें एकदम हँसी-खुशी से नहीं रहना है, लेकिन दिखावा तो ऐसा ही करना है कि हमें तेरे साथ घुड़दौड़ में आना है, सिर्फ दिखावा ही! बल्कि अंदर से तो, अगर वहाँ चले जाएँ न, तो भी हार जाना चाहिए! तब फिर उन्हें मन में ऐसा लगेगा कि 'हम जीत गए हैं'। हमने तो सामने से कितने ही लोगों को ऐसा कह दिया था कि, 'भाई, हममें बरकत नहीं है।' वह सब से अच्छा रास्ता है। बाकी तो यह सब घुड़दौड़ है! 'रेस-कोर्स' है! वहाँ हम किसके साथ दौड़ें? 'नहीं है हममें कोई बरकत, नहीं है चलने की शक्ति,' वहाँ किसके साथ दौड़ेंगे? तब भी लोग कहेंगे, 'आपकी कहाँ अभी बहुत उम्र हुई है?' तब मैंने कहा 'लेकिन, अधिक उम्र वाले के साथ भी मुझसे नहीं दौड़ा जाता। हमें दूसरा कुछ तो आता नहीं है।' इस बेवकूफ की अक्ल का क्या करना है? जो अक्ल, किराए पर मिलती है!

देखो न, 'एक्सपर्ट' तो, जहाँ से ज़रूरत हो, वहाँ से किराए पर मिल जाते हैं। कहाँ के 'एक्सपर्ट'? तब कहते हैं, 'इन्कम टैक्स' के। वे

भी किराए पर, दूसरा भी किराए पर, तीसरा भी किराए पर, डॉक्टर भी किराए पर, वकील भी किराए पर, सबकुछ किराए पर!

कोई भी इंसान, अपनी-अपनी लाइन में होशियार होता है और बाकी लाइनों में सभी बेवकूफ होते हैं। उससे तो अपना अच्छा है, एक लाइन में बड़ा 'एक्सपर्ट' कहलाने से सब में बेवकूफ! अरे... बड़े दादाचांद जी होते हैं, लेकिन कोई खास बात आए तो कहते हैं, 'इसके लिए तो उसके पास जाना पड़ेगा।' हमारे पास मकान बनवाने आते हैं। यों तो बड़े डॉक्टर होते हैं, लेकिन वे बेचारे विनय में रहते हैं क्योंकि उन्हें इस तरफ का कुछ भी पता नहीं है न! ऐसा है यह जगत्। बाकी बातों में बेवकूफ ही होता है। हर एक बात में तो कोई तैयार हो ही नहीं सकता न! यानी कहीं न कहीं तो बेवकूफ कहलाएगा न? उससे तो सभी में बेवकूफ बन जाओ न! आपको समझ में नहीं आया? एक सूँठ की गाँठ के लिए पंसारी कहलाना, इससे तो 'हम पंसारी हैं ही नहीं, पंसारी तो आप।' हमारी खोज अच्छी है न?

एक स्त्री से पूछा कि, 'अब आपका पति का देहांत हो गया है, तो कारखाना कैसे चलाएँगी?' तो मुझसे कहने लगीं, 'वह तो मैनेजर रख लूँगी।' तो फिर, यों किराए पर मिलता है ऐसा सब?! तो फिर पति मर गया तो रो क्यों रही है? यदि सब किराए पर मिलता है, अक्ल भी किराए पर मिलती है और सबकुछ किराए पर मिलता है तो किराए पर से ले आओ न! जबकि 'इसे' (ज्ञान) किराए पर थोड़े ही लेना है? 'यह' तो असल धन है! लोग किराए पर मिलते हैं या नहीं मिलते? दादाचांद जी किराए पर मिलते हैं या नहीं मिलते? उन्हें पाँच हज़ार रुपये मिल रहे हों और हम कहें, दस हज़ार दूँगा। तो तुरंत दादा चंद जी आ जाएँगे न! किराए पर मिलते हैं और 'हमें' तो किसी के यहाँ किराए पर नहीं जाना है, और क्या हमें कोई किराए पर ले सकता है? हमारा किराया भी नहीं दे सकते न! अमूल्य का किराया कैसे दे सकेंगे? यह बिल्कुल ठीक सरल रास्ता है न?

इसमें क्या अक्ल रखनी है? तो तभी से हमने बात छोड़ दी न, लगाम ही छोड़ दी न! और कह दिया, 'हमें समझ में नहीं आता।' तो

हम मुक्त! और मैं तो ऐसा भी कहता हूँ, 'अब आप ढूँढने जाओगे तो मुझमें कोई बरकत नहीं रही!' तब वे लोग कहेंगे, 'ऐसा मत कहिए।'

अब अपने हाथ में पतंग आ गई। लोगों की पतंग को गोता खाना होगा तो खाएगी, लेकिन अपनी पतंग की डोर तो हाथ में आ गई! हम इन लोगों की दौड़धाम में कहाँ पड़े?! 'सब-सबकी संभालो, मैं मेरी फोड़ लेता हूँ।'

इस अक्ल का करना क्या है? आप यदि इसमें गहरे उतरे होते न, तो कितने गहरे उतर चुके होते लेकिन आप हमारी तरह दूर ही रहे, वह अच्छा हुआ!

हमें तो लोग सामने से कहते हैं कि, 'आप तो यों बहुत तरह-तरह का अच्छा दिखाते हो।' तब मैंने कहा, 'नहीं।' अंत में ऐसा भी कह देता हूँ कि, 'मैं सब भूल गया हूँ, अब तो भान ही नहीं रहता।'

'मुझमें तो कोई बरकत नहीं रही अब,' जब ऐसा कहते हैं, तो लोगों को बहुत अच्छा लगता है। वर्ना बरकतवाले लोग तो यहाँ पर सौदा करने आ जाएँगे। अरे! यहाँ पर यह क्या सौदा करने की चीज़ है? (हम) सब से ऊपर हैं! सौदा तो तेरी काबिलीयत का कर! हम तो *ऊपरी* के भी *ऊपरी* हैं और फिर बगैर बरकत वाले हैं! इसलिए कह देते हैं, 'बगैर बरकत वाले में क्या ढूँढ रहे हो?' चोर-लुटेरे मिलेंगे न, तब भी कह देंगे, 'हमारे जैसे बगैर बरकत वाले से क्या लेना है? तुझे जो चाहिए वह ले ले जेब में से! हमें देना नहीं आता। हम बगैर बरकत वाले हैं।'

लोग तो बचपन से ही डाँटते थे कि 'तुझमें कोई बरकत नहीं है।' कोई और कहे उससे तो फिर हम ही कह दें न! किसी को शायद कहना पड़े, कोई 'सर्टिफिकेट' दे, उसके बजाय हम ही 'सर्टिफाइड कॉपी' बन जाएँ न, तो झंझट ही मिट जाएगी न! लोगों को कहना पड़े कि, 'तुझमें बरकत नहीं है, तुझमें कुछ भी बरकत नहीं है!' और हम वह बरकत लाना चाहें तो इसका हिसाब कब मिलेगा? इससे हम ही 'सर्टिफाइड' बिना बरकत वाले हो जाएँ न! तो हल आ जाए न!

रेस-कोर्स के परिणाम स्वरूप

हमारा कंपनियों में पहले नंबर आने लगा न, तब मन में पावर घुस गया कि यह तो दिमाग़ बहुत अच्छा काम कर रहा है। लेकिन तब तो, अक्ल नहीं थी, कमअक्ल था, परेशानी मोल लेने का संग्रहस्थान था। परेशानी कम करे, उसे अक्ल कहते हैं! हाँ, आने वाली परेशानी अपने पास न आए, बीच में कोई और ही वह ताज पहन ले तो वह परेशानी उसके पास चली जाएगी।

लोगों का तो तरीका ही गलत है, रिवाज़ ही पूरा गलत है! तो इन लोगों के रीत-रिवाज़ के अनुसार हम दौड़कर पहला नंबर लाए। उसके बाद भी वापस आखरी नंबर आया, तो फिर मैं समझ गया कि यह दगा है! मैं तो वहाँ भी दौड़ा हूँ, खूब दौड़ा हूँ, लेकिन उसमें पहला नंबर लाने के बाद फिर आखिरी नंबर आया था। तब हुआ कि, 'यह कैसा चक्कर है? यह तो फँसने की जगह है!' इसमें तो कोई हल्का आदमी जब चाहे तब अपने को मटियामेट कर सकता है। ऐसा कर देगा या नहीं कर देगा? पहला नंबर आने के बाद दूसरे दिन ही थका देता है! तब हम समझ गए कि इसमें पहला नंबर आने के बाद फिर आखरी नंबर आता है, इसलिए घुड़दौड़ में उतरना ही नहीं है।

हम तो सिर्फ चैन से ही रहे हैं। पहले तो रास्ते ऐसे टेढ़े-मेढ़े थे न, तो अंदर हिसाब चलता था कि यह रास्ता ऐसे मुड़कर वापस उस तरफ जा रहा है! तो पूरा वर्तुल हो, तो एक का तीन गुना हो जाएगा, तो यह आधा वर्तुल डेढ़ गुना होता है तो डेढ़ गुना रास्ता चलने के बजाय सीधा ही चला था। शुरू से ही में लोगों के रास्ते पर चला ही नहीं, मेरा आम रास्ता है ही नहीं। आम रास्ते से व्यापार भी नहीं। अलग ही व्यापार! रीत भी अलग और रस्म भी अलग। सभी कुछ लोगों से अलग और घर पर कभी रंग नहीं करवाया। दीवारों को रंगना हो तो अपने आप ही रंग जाएँ!

इसलिए हम तो यही एक शब्द कहते हैं कि, 'हममें अब बरकत

नहीं रही।' बरकत तो हमने देख ली! बहुत दौड़े, खूब दौड़े! यह तो मैं हिसाब निकालकर अनुभव से कह रहा हूँ। अनंत जन्मों से दौड़ा था, वह तो सब बेकार गया। 'टॉप' पर रहे, उस तरह से दौड़ा हूँ, लेकिन सभी जगह मार खाई है। इसके बजाय तो भागो न, यहाँ से! अपनी असल जगह ढूँढ निकालो, वाह....जायजेन्टिक!

इसलिए अगर ऊपर से देवता भी आकर कहें, 'आपको इस घुड़दौड़ में पहला नंबर दे रहे हैं।' तब भी कहेंगे, 'नहीं, ये दादा उस जगह पर जाकर आएँ हैं, वे उस जगह की बातें बताते हैं और वह हमें सच लगा। हमें घुड़दौड़ चाहिए ही नहीं।'

हमारे संबंधी के साथ पैसे से संबंधित बात निकली न, तब मुझे कहते हैं, 'आपने तो बहुत अच्छा कमा लिया है।' मैंने कहा, 'मेरे पास ऐसा कुछ है ही नहीं। और कमाई में तो, आपने कमाया है। वाह... मिलें वगैरह सब रखी हैं। कहाँ आप और कहाँ मैं!? आप न जाने क्या सीख गए कि इतना सारा धन इकट्ठा हो गया। मुझे इस बारे में कुछ नहीं आता। मुझे तो उसी बारे में आया।' ऐसा कहा इसलिए फिर हमारा उनसे कोई लेना-देना ही नहीं रहा न! 'रेस-कोर्स' ही नहीं रहा न! हाँ, कुछ लेना-देना ही नहीं। क्या उनके साथ स्पर्धा में उतरना था?

लोग हमेशा ही ऐसी स्पर्धा में रहते हैं, लेकिन मैं कहाँ उनके साथ दौड़ूँ? उन्हें इनाम लेने दो न! हमें देखते रहना है। अब, अगर स्पर्धा में दौड़ेंगे तो क्या दशा होगी? घुटने वगैरह छिल जाएँगे। इसलिए अपना तो काम ही नहीं है।

इनाम 'पहले' को, हाँफना सभी को

हमें किसी परिचित के यहाँ विवाह में जाना होता, तब अगर उन्होंने मुझे बीच में बिठाया हो और अगर कोई जयचंद आ जाएँ तो कहते, 'ज़रा खिसकना, फलाँ आएँ है तो खिसकना।' कोई डॉक्टर आ जाए, तो 'खिसकना।' मोहन भाई आ जाएँ कि तो 'खिसकना।' यों खिसक-खिसककर तेल निकल जाता था। यों खिसक-खिसकर नौवें

नंबर तक पर चला जाऊँ इसलिए फिर मैं बैठता ही नहीं था! मैंने कहा, 'हमें यह नहीं पुसाएगा, हमें इस रेस-कोर्स में नहीं उतरना है। पहले नंबर के घोड़े को ही इनाम देते हैं, दूसरेवाले को देते ही नहीं है फिर।' तो फिर वे मुझसे कहते हैं, 'आप चाचा हैं इसलिए विवाह में आपको बीच में बिठा रहे हैं, तो क्यों नहीं बैठ रहे हैं? और आप इधर-उधर हो जाते हैं और फिर दूर खड़े रहते हैं या कहीं भी बैठ जाते हैं। व्यवहार में हमारा बुरा दिखता है न!' मैंने कहा, 'नहीं, कुछ बुरा नहीं दिखता। लोग समझ गए हैं मुझे कि ये भक्त हैं और इन्हें इस चीज़ की कोई समझ नहीं है।' तब भी कहते हैं, 'नहीं, लेकिन हमारा बुरा दिखता है।' तब मैंने उन्हें समझाया। मैंने कहा, 'भाई, मैं कभी भी कहता नहीं हूँ लेकिन ऐसा पूछ रहे हो इसलिए सच ही बता देता हूँ। मैं वहाँ बीच में बैठता हूँ और फिर जब जौहरी लक्ष्मीचंदवाले आएँगे तब मुझे हटना पड़ेगा। फिर ये मगन भाई, शंकर भाई आएँगे तो मुझे हटना पड़ेगा। यानी कि मुझे जगह बदलनी पड़ेगी। और इस तरह अपमान उठाने से तो यहाँ सम्मान से बैठने में क्या बुराई है? मैं स्पर्धा में नहीं पड़ता, इस रेस-कोर्स में नहीं पड़ता।' इसलिए मैंने कहा, 'मुझे बीच में बैठने के बाद नौवें नंबर पर जाना पड़े, ऐसी नाक कटवाने के बजाय हम दूर ही अच्छे।' लेकिन मैंने ऐसा मुँह पर नहीं कहा बल्कि ऐसा हिसाब लगा कर मैं खिसक गया कि इस 'रेस-कोर्स' में पहले घोड़े को इनाम मिलेगा, बाकी तो किसी को इनाम नहीं मिलनेवाला न! ऐसी घुड़दौड़ मुझे पसंद नहीं है। जो प्रथम आए उसे इनाम और जो दूसरे नंबर पर आए वह इतना हाँफ जाता है लेकिन उसे इनाम कुछ भी नहीं। तब कहे, 'बहुत लुच्चे हैं आप।' मैंने कहा, 'अब इसे जो मानो, वह है। यह हमारी कला है! और आप इसे लुच्चाई मानो या कुछ भी मानो वह ठीक है।' तब कहा, 'यह तो छूट जाने की असल कला है, लुच्चाई ढूँढ निकाली!'

लेकिन यह हमारी कला है! भोजन वगैरह करते हैं, आइस्क्रीम खाते हैं। मैं तो चाय पीते-पीते देखता रहता हूँ कि कौन सा घोड़ा प्रथम आता है। हाँ, हमें चाय पीते-पीते देखना है कि वह घोड़ा प्रथम आया। हमें उसमें दौड़ना नहीं है। हमें ज्ञाता-दृष्टा रहना है। इस घौड़े के साथ

कहाँ दौड़ें? फिर भी हम एक बार नाल लगाने गए थे (एक बार हमारे (दादा के) बूट की कील बाहर निकल आई तो तपस्वी की तरह तप करने गए), तो पैर में अभी तक घट्ठे पड़े हुए हैं!

तो 'पर्सनालिटी' पड़ेगी

जहाँ देखो वहाँ रेस-कोर्स क्योंकि सभी लोग रेस-कोर्स में उतरे हुए हैं। घर में वाइफ के साथ भी रेस-कोर्स खड़ा हो जाता है। दो बैल साथ में चल रहे हों और एक ज़रा आगे बढ़ने लगे न, तो दूसरा साथवाला भी ज़ोर लगाता है फिर।

प्रश्नकर्ता : ऐसा किसलिए?

दादाश्री : रेस-कोर्स में उतरे हैं इसलिए। साथवाला आगे बढ़ रहा हो तो इसे ईर्ष्या होती है कि वह क्यों पीछे रह जाए।

इस घुड़दौड़ में किसी का नंबर नहीं लगा है। मैं इस घुड़दौड़ में नहीं उतरता। इस घुड़दौड़ में हाँफ-हाँफकर मर जाएँ तब भी किसी का नंबर नहीं लगा है। यों होता तो है अक्ल का बोरा! और अंत में हाँफकर मर जाए तब कहता है 'वह मुझे धोखा दे गया और वह मुझे धोखा दे गया'। अस्सी वर्ष की उम्र में भी तुझे धोखा दे गया! अनंत जन्मों तक इस रेस-कोर्स में दौड़ता रहेगा फिर भी अंतिम दिन तू धोखा खाएगा, ऐसा है यह जगत्। सब बेकार जाएगा। ऊपर से बेहिसाब मार खाएगा। इसके बजाय तो भागो यहाँ से, अपनी असल जगह ढूँढ निकालो, जो अपना मूल स्वरूप है।

इस जगत् को कोई जीत ही नहीं पाया है। इसलिए यह हमारी बहुत गहन खोज है कि जो हमें इस जगत् से जितवा दे। 'हम तो हारकर बैठे हैं, तुम्हें जीतना हो तो आना' कहना। यह हमारी खोज बहुत गहन है। पूरा 'वर्ल्ड' आश्चर्यचकित हो जाए ऐसी खोज हैं, और हमने जीत लिया है इस जगत् को! वर्ना, इस जगत् को कोई जीत ही नहीं पाया है। हमारी एक-एक खोज ऐसी हैं कि जो जितवा दे। ऐसी खोज हैं। हाँ, एक-एक खोज! यह 'अक्रम विज्ञान' है! विज्ञान ही पूरा अक्रम है। क्रम

में तो ऐसा होता नहीं न! क्रमिक में तो ऐसा नहीं कह सकते कि मुझमें बरकत नहीं है।

यह 'अक्रम विज्ञान' है। आप 'रेस-कोर्स' में से निकल गए कि तुरंत 'पर्सनालिटी' पड़ेगी। 'रेस-कोर्स' में 'पर्सनालिटी' नहीं पड़ती, किसी की भी नहीं पड़ती है।

जितवाकर जाने दो

अनंत जन्मों तक यही किया है नहीं तो और क्या किया है? दूसरा क्या धंधा किया है? लेकिन अब यह 'ज्ञान' है तो पलट सकेगा। नहीं तो पलट नहीं सकता न! यह 'ज्ञान' खुद के दोष दिखा सकता है हमें! और फिर हमें स्वीकार भी होता है कि 'नहीं, वास्तव में अपना ही दोष है।' वर्ना तो किसी से पूछने जाना पड़ता है। तो क्या वह बरकतवाला है, कि हमें हमारा (दोष) दिखा सके? हमें खुद को ही लगना चाहिए कि अपना दोष है यह। यानी जीतने की कोई ज़रूरत नहीं है। हमने हमेशा ऐसा रखा। जीतने का तो 'प्रिन्सिपल' कभी रखा ही नहीं। उसे जितवाकर भेज देता हूँ और फिर मैं उसे भूल ही जाता हूँ और वह भी दूसरे काम में लग जाता है लेकिन अगर मैं हराकर भेज दूँ तो फिर तंत (द्वेष सहित याद) रखेगा। तंत रखेगा तो फिर वह छोड़ेगा ही नहीं। इसलिए पहले से ही हमें जितवाकर भेज देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कि मैं हारा और तू जीता, भाई।

दादाश्री : ऐसा मुँह पर नहीं कहना है। नहीं तो उसके मन में ऐसा होगा कि 'ओहोहो! ठंडे पड़ गए। ठीक है!'

प्रश्नकर्ता : मुँह पर कहेंगे तो क्या होगा?

दादाश्री : मुँह पर कहेंगे तब तो फिर तंत रखता है, कि 'मुझे ऐसे नहीं जीतना है।' मुझे किसी ने कहा भी था न! मैंने ऐसा कहा था कि, 'भई, मैं तो हारकर बैठा हूँ। आप जीत गए, अब चैन से घर जाकर सो जाओ आराम से।' तब उसने कहा, 'मुझे ऐसा नहीं चाहिए।' तब

मैंने सोचा, 'स्वाद मत निकालो।' यानी तंत रखता है! ऐसा कहें तो ऐसा और ऐसा कहें तो ऐसा! आपत्ति और बुरा मानने वाला जगत्! उसे तो आपत्ति उठानी ही है, बुरा लगना ही है, जबकि हमें तो, बल्कि अगर रुकावटें आएँ या बुरा लगे ऐसा हो तब भी उसे हटा देते हैं।

अब हमें 'दादा' के ज्ञान को तो रौशन करने का प्रयत्न करना है और फिर भी रौशन नहीं हुआ, तो ठीक है। उसका कोई तंत थोड़े ही पकड़ना है? हमारे प्रयत्न पॉज़िटिव होने चाहिए। संयोग नेगेटिव करे, तो हम क्या कर सकते हैं? कहीं ऐसी पकड़ पकड़नी चाहिए? लेकिन नहीं, बस तंत ही रहता है कि हराना ही है! हार-जीत के खेल! हम तो, किसी को हराने को भयंकर जोखिम मानते हैं। बाद में फिर वह हमें हराने की तैयारी करेगा, इससे उसे जितवाकर भेज दो! तो परेशानी नहीं। सामने वाले को जितवाकर भेज दे तो फिर है कोई झंझट? हमारी ओर से कोई बात ही नहीं रहेगी न! फिर वह और कोई व्यापार शुरू कर देगा। उसे हराएँगे तो हमारी तरफ से सारी झंझट खड़ी रहेगी न? जितवाकर भिजवा देंगे तो दूसरा व्यापार शुरू कर देगा वह!

इसलिए यह 'अक्रम विज्ञान' बहुत अच्छा है न! इन 'दादा' के कहे अनुसार चलेंगे न, तो इस पूरी भट्ठी से छूट जाएँगे, भीतर से नाटकीय रहना है हमें और फिर इन लोगों के साथ व्यवहार का हल आएगा। पूरे व्यवहार का समाधान नहीं करेंगे तो ये लाल झंडी दिखाएँगे। यहाँ तो कोई लाल झंडी दिखाता ही नहीं है न! रास्ता ही क्लिअर है, यह 'विज्ञान' ही अलग प्रकार का है। हमें किसी से कुछ भी लेने का कोई कपट नहीं है, यह निर्विवाद बात है और किसी से हमें ऐसा कुछ है नहीं कि, 'यह हमारा और यह पराया' यह भी निर्विवाद बात है तो फिर हमें क्या परेशानी?

कोर्स, 'अक्रम विज्ञान' का

और यहाँ, यह तो 'अक्रम विज्ञान' है, अलग ही प्रकार का, अलग ही तरह का विज्ञान है। कैसा लाभकारी है न?

प्रश्नकर्ता : कोई सीखे और करे तो?

दादाश्री : हाँ, हमारा शब्द जो सीख गया और उस अनुसार चला फिर तो समझो काम ही हो गया। 'ज्ञानीपुरुष' का एक ही अक्षर यदि समझ में आ गया तो कल्याण ही हो जाएगा! बाकी, थर्ड में से फोर्थ में कब जाएँगे? उससे ये 'दादा' मैट्रिक से बाहर 'फर्स्ट इयर' में बिठा देते हैं! वे लोग तो 'फिफ्थ', 'सिक्स्थ' में है, और खुद से तो थर्ड में भी पास नहीं हुआ जा सकता। उसके बजाय 'दादा' कहते हैं उस अनुसार चलो न, तो हल आ जाएगा। वर्ना लोग तो कर्म बंधवाने के लिए आते हैं कि, 'आप ऐसा कर दीजिए, वैसा कर दीजिए।' हमारे पास तो चीड़िया तक भी नहीं फटकती न! आता भी नहीं है और जाता भी नहीं है! अड़ोसी भी नहीं आता और पड़ोसी भी नहीं आता! और कोई 'खराब है' ऐसा भी नहीं कहता, 'बहुत अच्छे इंसान हैं' ऐसा कहते हैं।

यानी रास्ता हमारा बहुत अच्छा है, कलावाला रास्ता और 'सेफसाइड'वाला। वर्ना तो थर्ड में से फोर्थ में भी जाना मुश्किल है। यदि लोगों की लाइन के अनुसार चलने गए न, तो 'थर्ड' में से 'फोर्थ' में जाना बहुत मुश्किल है और इस काल में उतनी 'कपैसिटी' भी नहीं होती। उसके बजाय अब आप 'फर्स्ट इयर इन कॉलेज' ग्रेज्युएट में, दादाई कॉलेज में बैठ गए हैं तो अब पकौड़े वगैरह खाना चैन से। लोग भोक्ता नहीं हैं और हम भोक्ता! लोगों को भोगना तो है ही नहीं न! दौड़ते ही रहना है! इनाम लाना है न?!

एडमिशन लेने जाए और ले ले इतना ही नहीं है यह और एडमिशन लेकर फिर नहीं आए उतना भी नहीं है यह। यह तो पूरा कर लेने जैसा है। यह एक कोर्स पूरा कर लेने जैसा है। अनंत जन्मों से यह कोर्स पूरा नहीं किया है, और किया होता तो निर्भयता! उसकी तो बात ही अलग है न!

[७]

खेंच : कपट : पोइन्ट मैन

अक्रम विज्ञान, सुलझाए सभी उलझनें

ये सारी 'एक्सपिरियन्स' वाली, अनुभव सहित बातें ही बता रहा हूँ। यदि खुद ने नहीं किया है न, तो मेरे ज्ञान में देखे गए उपाय हैं। इंसान को समाधान तो चाहिए न! वर्ना समाधान के बिना इंसान उलझन में रहता है। लोगों को समाधान नहीं मिलता, इसीलिए उलझन में पड़ जाते हैं, सभी उलझन में रहते हैं। तब फिर उलझन आ जाए तब क्या करना चाहिए? और यह दुनिया तो उलझन का ही कारखाना है! 'द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ।' यानी 'इटसेल्फ पज़ल' हो गया है यह!

इसीलिए तो मैं कहता हूँ न, कि यह 'अक्रम विज्ञान' है! ऐसे लोगों को विज्ञान दिया है, जो अभी इसके लिए तैयार नहीं हुए हैं यानी कि उन्हें, जो इसकी 'बाउन्ड्री' में भी नहीं आए हैं! लेकिन वह भी, अगर उनके पुण्य होंगे तभी प्राप्ति हुई है न? इसलिए हमने कहा है कि व्यवहार में, इस तरह कार्य करवाओ कि किसी को भी दुःख न हो, और अपनी भावना, अपना रवैया भी वैसा ही होना चाहिए।

जीवन, खेंच रहित

प्रश्नकर्ता : दादा का 'ज्ञान' मिलने के बाद साधारण तौर पर जीवन किस तरह का होना चाहिए?

दादाश्री : जीवन *खेंच* रहित होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : *खेंच* किस तरह होती है?

दादाश्री : आप मेरे साथ बात कर रहे हों तो मैं आपको उसका जवाब देता हूँ और अगर आप अपनी बात को सही ठहराने के लिए फिर से बात करते हो, उसे *खेंच* कहते हैं। बार-बार ऐसी *खेंच* रखते हैं। यदि 'ज्ञान' लिया हो तो *खेंच* ही नहीं रहती न! अगर *खेंच* हो तो निकाल देनी चाहिए क्योंकि वह भूल है। और निकालने के बाद भी नहीं निकले तो हर्ज नहीं है। अगर *खेंच* है तो *खेंच* को भी 'आपको' देखना है, तो 'आप' छूट जाओगे! *खेंच* को भी आप देखोगे तो छूट जाओगे। आप हमारे नियम में हो!

यह *खेंच,* वह अलग चीज़ है। *खेंच* यानी, मैं कहूँ कि, 'भाई, नहीं, ऐसा है।' तब फिर उसकी खुद की बात सही ठहराने के लिए बार-बार दलील करता रहता है। उसे *खेंच* कहते हैं। *खेंच* वाले के पास, जहाँ पर *खेंच* है वहाँ पर किसी प्रकार का सत्य नहीं होता। *खेंच* ही सब से बड़ा दूषण है। *खेंच* नहीं है का मतलब क्या है कि अगर आप कहो कि 'पसंद नहीं है' तब वह कहेगा, 'नहीं करेंगे, लो!' और कोई झंझट ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : खुद का सही ठहराने के लिए कोई व्यक्ति बहुत दलीलें करे और खुद की बात सही ठहराने का प्रयत्न करे, तब समझना कि 'बेस' गलत है।

दादाश्री : और वह भी, दलीलें भी खुद की जागृतिपूर्वक नहीं की जातीं। अजागृति रहे तभी दलील करता है न! इंसान अजागृत हो तभी दलील करता है। जागृति वाले क्या कभी दलील करते हैं?

प्रश्नकर्ता : दलील करना गलत है या अच्छा है?

दादाश्री : वह संसार में अच्छा है। संसार में यदि आपको कुछ करना हो तो अच्छा है, लेकिन मोक्ष में जाना हो तो गलत है। संसार में यदि आप दलील नहीं करोगे तो लोग आपका ले जाएँगे। और यहाँ सत्संग में दलील करना ही गलत है। 'ज्ञानीपुरुष' ने जो कहा वहाँ पर बोलना नहीं चाहिए। ये जो सत्संग की बातें हैं, इनमें नहीं बोलना चाहिए।

व्यवहार में बोल सकते हैं। व्यवहार में आप ऐसा कहना कि, 'दादाजी, इस गाड़ी में मत जाइए, इसमें जाइए।' लेकिन यहाँ सत्संग में?! क्या अक्लमंद, ज़रूरत से ज़्यादा अक्लमंद! 'ओवर वाइज़' कहना पड़ता है हमें!

यह तो 'साइन्टिफिक' विज्ञान है। कुछ लोग तो मुझसे कहते हैं, 'नियम बनाइए, ऐसा कीजिए, वैसा कीजिए।' अरे, किस तरह के इंसान हो? आपको ऐसा विज्ञान मिला फिर भी अक्ल नहीं आई? कैसा विज्ञान! बिल्कुल भी टकराव नहीं हो, ऐसा।

प्रश्नकर्ता : अभी तक नियम बनाकर ही लोगों को सीधा करने का रास्ता था।

दादाश्री : हाँ, लोगों के लिए ठीक है लेकिन हमें तो मोक्षमार्ग पर जाना है। लोगों को तो संसार में भटकना है, उन्हें नियम की ज़रूरत है। बाकी, नियम से तो टकराव होता है और टकराव से वापस संसार खड़ा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : क्या मोक्षमार्ग पर जाने के भी नियम बताए गए हैं?

दादाश्री : मोक्षमार्ग पर जाने के नियम नहीं होते। यहाँ तो नियम वगैरह कुछ भी नहीं है, सहज रूप से! सहज रूप से जो हुआ वही ठीक है।

प्रश्नकर्ता : आपने बताया न, कि 'जहाँ मोक्ष है वहाँ नियम नहीं, जहाँ नियम है वहाँ मोक्ष नहीं है, परम विनय से मोक्ष है।' तो फिर क्या परम विनय में सब आ गया?

दादाश्री : हाँ, परम विनय में सब आ गया। नियम बनाने जाएगा तो फिर, तुलसी लगाई, तो चूहा तुलसी को कुतर गया, इसलिए बिल्ली को रखता है। बिल्ली ने दूध बिगाड़ दिया तो कुत्ते को रखो। क्या इसका अंत आएगा? यानी यह 'नो लॉ लॉ' का नियम है और यह तो 'विज्ञान' दिया है। इसमें आगे-पीछे करने गया, दखल करने गया, तो वही उसकी बेवकूफी है। यह तो 'ओवर वाइज़'पन है!

हम तो सब कह देते हैं, जैसा है वैसा। फिर अगर हठ पकड़े तो हम समझ जाते हैं कि बहुत भयंकर अज्ञानता है, वह खुद का अहित ही कर रहा है। फिर हम बोलते ही नहीं हैं। हम मौन रहते हैं। हठ करने लगे, तब उसे समझ में ही नहीं आएगी न मेरी बात? समझ में आ जाएगी तो क्या हठ करेगा?

यानी यहाँ पर तो कैसा है? बहुत समझदारी से रहना है। परम विनय शब्द कहा है, उसका अर्थ इतना समझ जाना है कि बिना बात के कुछ भी नहीं कहना है। काम का हो तो कहना। खुद का सयानापन या खुद की अक्ल यहाँ पर नहीं दिखानी है। आपकी सारी अक्ल नकल की हुई है, दरअसल नहीं है। यानी कि लोगों का देखकर सीखे हैं, किताबों से सीखे हैं! और फिर वाद-विवाद करने लगें तो रुकते भी नहीं है। अरे, जब बहस करने लगे, तब आपको पता नहीं चलता कि बहस करने लगा है? बहस करना यानी खुद का स्थान छोड़कर नीचे गिरना!

प्रश्नकर्ता : पहले तो आप तुरंत टोक देते थे कि ये गिरा, गिरा, गिरा!

दादाश्री : वह तो अभी भी कहता हूँ न लेकिन वह भी किसे कह सकते हैं? कुछ ही लोगों को 'गिरा, गिरा' कह सकते हैं। बाकी का तो हमें चला लेना पड़ता है। अभी तक उनमें शक्ति ही नहीं आई है। कुछ कहेंगे तो बेचारा वापस चला जाएगा। जिसने 'मेरा हित-अहित' जान लिया हो, उसे ऐसा कह सकते हैं। यानी मज़बूत हो जाने के बाद कहते हैं। सभी से ऐसा नहीं कह सकते। वर्ना तुरंत चले जाएँगे वे तो! 'ये चले। हमारे घर में पत्नी है, माँ है, सभी हैं। क्या कुँआरे हैं?' ऐसा कहेंगे। 'नहीं भाई, तू विवाहित है, तू हर तरह से ठीक है लेकिन यदि यहाँ से भटक गया तो यह स्टेशन फिर से नहीं मिलेगा, लाखों जन्म बीत जाने पर भी।' इसलिए बच्चे की तरह समझाकर बिठाना पड़ता है। वह भी टॉफी दे-देकर। मैंने सब से कहा है न कि किसने यह ज्ञान समझकर लिया है? इन सब को समझा फुसलाकर 'आओ, आओ, यह तो ऐसा है, वैसा है!' फुसलाकर ज्ञान दिया है।

उसकी पकड़ ही नहीं होती

अब बाहर दूसरा कोई बात कर रहा हो, तो 'हमारा सही है, यह हमने जो पकड़ा है, वह सही है' ऐसा इंसान को रहता है। यह 'ज्ञान' मिलने के बाद भी अगर ऐसा रहे तो उसे भगवान ने अहंकार कहा है। इस अहंकार को निकालना पड़ेगा।

बाहर का कोई व्यक्ति यदि अपमान करे, नीचा दिखाने जाए, तो उस बात को पकड़ लेता है, और अगर हठ करवाए तो हठ भी कर लेता है। यदि हठ किया, हठ पर चढ़ गया तो मिथ्यात्व घेर लेता है। फिर उपयोग खत्म हो जाता है। वह सारा मिथ्यात्व फैलाता है। भयंकर रोग कहलाता है यह तो!

इस दुनिया में सत्य चीज़ होती ही नहीं है। सत् अविनाशी है। अन्य कोई सत् है ही नहीं। बाकी का सारा सापेक्ष भाव है और उसकी पकड़ पकड़ते हैं। देखो न!

भगवान के वहाँ सत्य और असत्य, कुछ है ही नहीं। यह सब तो समाज के अधीन है। समाज में सभी तरह के लोग होते हैं। अतः समाज के अधीन है, यह सारा ही लेकिन भगवान के वहाँ द्वंद्व है ही नहीं न! फायदा-नुकसान भी नहीं है। भगवान के वहाँ संबंध-वंबंध कुछ है ही नहीं और फिर ऐसा बगैर संबंधवाला मुझे दिखाई भी देता है। मैं देख सकता हूँ, किस तरह से संबंध नहीं है वह सब दिखाई भी देता है मुझे। बिल्कुल भी संबंध नहीं है, नाम मात्र को भी संबंध नहीं है। यह तो, एक पेड़ पर पंद्रह-बीस पक्षी आएँ, तो कुछ इधर से आते हैं, कुछ उधर से आते हैं, और रात को मुकाम किया, सब इकट्ठे हो गए। तब फिर सब ऐसा कहते हैं कि अपने बीच कोई संबंध है! तो संबंध के नाम से चला है यह लेकिन सवेरे तो सब उड़ जाते हैं वापस। अतः संबंध जैसा कुछ है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : इससे ट्रेन का उदाहरण अच्छा रहेगा। लंबी यात्रा में इकट्ठे होते हैं न?

दादाश्री : गाड़ी में तो इतना भी सोचता है कि, 'ऐसा सब दुःख है इंसान को, तो हेल्प करूँ।' संबंध नहीं मानता न! और फिर स्टेशन आए, तो खुद उतर पड़ता है।

अब, सही बात पकड़कर रखना, वह झूठ है। सत्य की पूँछ पकड़ना असत्य ही है और असत्य को भी छोड़ दे, वह सत्य है। पकड़कर रखा कि सब बिगड़ गया। इन लोगों ने सत्य की पूँछ पकड़ रखी है और मार खाते रहते हैं। जैसे गधे की पूँछ पकड़कर रखते हैं न? वे लात खाते रहते हैं, लेकिन कहते हैं 'नहीं छोड़ूँगा मैं!'

जबकि हमें थोड़ा भी ग्रह या आग्रह नहीं है। किसी भी बारे में ज़रा सा भी ग्रह या आग्रह नहीं है कि 'ऐसा ही है!' एक सेकन्ड के लिए भी नहीं रहता न! 'यह सही है, यह सत्य है,' हमारा ऐसा आग्रह भी नहीं रहता। यह ज्ञान हुआ है, उसका भी आग्रह नहीं है। आप कहो कि, 'वह गलत है' तब भी आग्रह नहीं रहता। आपकी दृष्टि से जो आया, वही ठीक है।

हमारा किसी भी जगह पर मतभेद नहीं है तो निश्चित रूप से यह बात मान लेनी चाहिए कि हम 'करेक्ट रास्ते पर हैं।' और जहाँ मतभेद पड़े, वहाँ पर जानना कि यह रास्ता अभी तक 'क्लिअर' नहीं हुआ है। अभी आगे पहाड तोड़ने हैं, बड़े-बड़े पत्थर आएँगे वे निकालने हैं। वर्ना रोड पर अगर पत्थर होंगे तो टकराएँगे ही न?!

सरल बनकर समाधान लाओ

सरल यानी जहाँ सही बात है तुरंत वहाँ मुड़ जाए। अपना आत्मा कबूल करे ऐसी बात हो, वहाँ पर भी तुरंत पलट जाए, वहाँ पर पकड़कर नहीं रखे। जो पकड़कर रखता है, उसे सरल नहीं कहा है।

यानी पकड़ भी नहीं रखनी चाहिए न! पकड़ रखना बहुत बड़ा गुनाह है, और भी ज़्यादा गुनहगार है।

प्रश्नकर्ता : दो लोगों में गलतफ़हमी हो जाए, तो वाद-विवाद हुए बगैर रहता ही नहीं।

दादाश्री : तो फिर वहाँ बंद कर देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यानी किसी भी 'पोइन्ट' पर गलतफ़हमी हो जाए, और सामनेवाला व्यक्ति कहे, 'आप करेक्ट नहीं हो,' तो उस बात को छोड़ ही देना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, छोड़ देना चाहिए। हर्ज क्या है? नहीं छोड़ेंगे तो सामने वाले के मन में चलता रहेगा न कि 'इन्होंने ऐसा क्यों कहा?' तब मैंने कहा, ''वह जो कहेगा, क्या वह 'व्यवस्थित' नहीं है? उसने जो पूछा, क्या वह 'व्यवस्थित' नहीं है?'' हमारे पास समाधान होता है। नहीं तो इसका कब अंत आए? लेकिन हम समाधान ला देते हैं।

'यह सही है और यह भूलवाला है' ऐसा कहना, वही भूल है अपनी। हमें तो तुरंत ही ऐसा मान लेना चाहिए कि, 'भई, उनका सही है और हमारा गलत।' ऐसा करके चलने लगो तो उन्हें भी कोई परेशानी नहीं रहेगी न! किसी का 'क्लेम' नहीं रहेगा, फिर। किसी का 'क्लेम' रखकर हम छूट सकें, ऐसा होगा नहीं न!

भरे हुए माल का पक्ष नहीं लेना चाहिए

जहाँ पर अंदर अभी तक अहंकार भरा हुआ है, तो वह चढ़ेगा तो सही न। फिर भी वह निकाली अहंकार है, वह वास्तविक अहंकार नहीं है। फिर भी 'खुद' 'उसका' पक्ष लेता है। सच्चा-झूठा ठहराने निकले! ऐसा नहीं होना चाहिए।

हठ करता है न, तो आत्मा पर और भी अधिक आवरण चढ़ता है। हालाँकि इस 'ज्ञान' के बाद तो यह सारा अब सिर्फ व्यवहार रहा है। निश्चय से हठ भी गई, द्वेष भी गया, राग भी गया, और सबकुछ गया। अब व्यवहार सचेतन नहीं है, वह अचेतन है। अचेतन अर्थात् हम उसके साथ फिर से छेड़छाड़ करेंगे तो काम होगा। वर्ना इसी तरह फूट-फूटकर फिर गिर जाएगा। उल्टा होता है तो ऐसे कूदेगा! अनार (आतिशबाज़ी) फूटता है और फूटकर उसके लक्षण दिखाकर चला जाता है, इसके अलावा कुछ नहीं। आपको समझ में आया न? उसके लक्षण दिखाता है

कि यह अनार था या क्या था? फुलझड़ी थी या तारामंडल था, ऐसा सब हमें लक्षण पर से पता चल जाता है! क्या फूट रहा है? अनार फूट रहा है या रॉकेट फूट रहा है या बम?

लेकिन अपने अक्रम ज्ञान के आधार पर यह मृतप्राय: अहंकार है इसलिए कभी न कभी निकल ही जाएगा। क्रमिक में तो जीवित अहंकार होता है और यहाँ अक्रम में मृतप्राय: अहंकार, वगैरह जो बचा है, वह ड्रामेटिक है। क्रोध-मान-माया-लोभ जो बचा है वह पूरा ड्रामेटिक है। वे कषाय बचे हैं, उनका अब *निकाल* लाना है।

कपट-चतुराई, बाधक मोक्षमार्ग में

किसी ने गाली दे दी हो तो उसमें भी उस समय उसे कषाय घेर लेते हैं।

प्रश्नकर्ता : कषाय कैसे घेर लेते हैं?

दादाश्री : बेसुध (मूर्च्छित) कर देते हैं। बेसुध कर देते हैं इंसान को, भान में ही नहीं रहता!

प्रश्नकर्ता : कषाय जाग्रत हुए हैं, ऐसा कैसे पता चलेगा? कौन से लक्षण से?

दादाश्री : क्यों? अहंकार आहत हो जाए तो पता नहीं चलेगा? कपट मूल गुण है उसमें। कपट यानी घोर अंधकार! कषायों में थोड़ा-बहुत उजाला होता है।

प्रश्नकर्ता : इन सब को विस्तार से समझाइए। ये कपट, कषाय, अहंकार.......

दादाश्री : ये सभी रास्ते में रोकने वाली चीज़ें हैं।

प्रश्नकर्ता : इसमें कपट किस तरह से परेशान करता है?

दादाश्री : कपट सभी कुछ मीठा लगवाता है, हर कहीं भटकाता है।

प्रश्नकर्ता : इसमें फिर कपट किस तरह आया?

दादाश्री : क्रोध-मान-माया-लोभ को तो कम कर लेता है। कपट बहुत करता है। कपट अर्थात् संसारी दशा भी नहीं, संसारी से भी हीन दशा! जो कपट रहित लोग होते हैं, वे सरल होते हैं। कपट वाली प्रकृति बहुत मुश्किलें खड़ी करती है।

प्रश्नकर्ता : एक आदमी ने गाली दी तो उसमें कपट कहाँ आया?

दादाश्री : उसमें कपट नहीं होता। कपट तो, जब खुद का लाभ उठाता है, तब जो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, उनमें से माया अर्थात् कपट। एकदम थोकबंध हो चुका है कपट। लेकिन हिसाब तो बंध गया है कपट से। सभी जगह पर कपट हिसाब ही बंधवाता है। वर्ना तो कोई नाम ही न ले।

यह 'ज्ञान' दिया है, इसलिए कषाय होते ही नहीं हैं। यह तो पहले की आदत है न, चखने की, इसलिए उस तरफ जाता है। मना करता हूँ तो भी खा आता है। यह 'ज्ञान' ही ऐसा है कि कपट रहता ही नहीं, किसी भी इंसान में।

प्रश्नकर्ता : यह कपट जागृति नहीं रहने देता?

दादाश्री : जागृति तो क्रोध-मान-माया-लोभ भी नहीं रहने देते। कपट तो मूर्च्छित कर देता है। खुद को भी पता नहीं चलता कि क्या कपट हुआ है। खुद को पता नहीं चलने देता कि मैं कपट कर रहा हूँ! क्रोध-मान-माय-लोभ के समय तो भान आ भी जाता है लेकिन कपट तो बहुत गूढ़ होता है। इसमें करने वाले को भी पता नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : इसमें करने वाले को पता नहीं चलता तो वह पहचानेगा कैसे? कपटी को खुद को ही पता नहीं चलता तो वह दोष को निकालेगा किस तरह?

दादाश्री : उसे खुद को नहीं, सभी को! कपट हो गया, ऐसा पता ही नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : वह कपटवाला दोष निकालेगा कैसे?

दादाश्री : मुश्किल है।

प्रश्नकर्ता : उस कपट के स्वरूप को कैसे पहचानेंगे?

दादाश्री : कपट का स्वरूप तो खुद के सांसारिक लाभ उठाने के लिए अपने अभिप्राय से दूसरों को खींचना, दूसरों को खुद के अभिप्राय में लेना, विश्वास में लेना! ऐसा करने वाले को भी पता नहीं चलता कि यह मैं गलत कर रहा हूँ। ऐसा पता ही नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : सांसारिक लाभ में क्या-क्या आता है? मुख्य रूप से, मोक्ष के ध्येय के अलावा जो कुछ भी है, वही माना जाता है न?

दादाश्री : इस 'ज्ञान' के बाद मोक्ष का ध्येय तो रहता ही है लेकिन यह पड़ी हुई लत, पड़ी हुई आदत जाती नहीं है। खुद को पता ही नहीं चलता न! खुद को पता ही नहीं होता। लोभ का भी पता नहीं चलता। किसी लोभी को ऐसा पता नहीं चलता कि 'खुद लोभी है।' सिर्फ मान और क्रोध, दोनों भोले हैं इसलिए पता चल जाता है। माया के बारे में कुछ पता नहीं चलता, लोभ का पता नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : यानी ज़्यादातर तो कपट इस संसारी लाभ के लिए...

दादाश्री : कपट तो बहुत दुसाध्य है?। सब से बड़ी अगर कोई परेशानी है तो यह कपट है। अब यों ही वह कब छूटेगा? कि अगर संसारी लाभ उठाना छूट जाए न, तब। तब तो फिर उसका मोक्ष ही है न!

प्रश्नकर्ता : जागृति उसी को कहा है न?

दादाश्री : जागृति नहीं, यह उपाय बताया है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा रहे कि यह सांसारिक हित है और यह आत्मिक हित है, उसी को जागृति कहा है न?

दादाश्री : वह तो जागृति कहलाती है लेकिन जागृति ही नहीं

रहती, बिल्कुल भी जागृति नहीं रहती न! जागृति नहीं रहे तभी कपट घेर लेता है न! वर्ना फिर भी वह लत तो छूटनी चाहिए न! लत! सांसारिक सुख भोगने की जो लत पड़ी है न!

प्रश्नकर्ता : लत पूरी बदलनी पड़ेगी न? वह लत वापस पलटेगी कैसे?

दादाश्री : लत पड़ी हुई ही है। अभी निबेड़ा लाना है।

प्रश्नकर्ता : किस तरह से?

दादाश्री : वह लत तो, मुझे 'कुछ भी नहीं चाहिए, मुझे सुख मिल रहा है' कहा कि लत तुरंत छूटने लगेगी। जब से तय करे न, कि 'कुछ भी नहीं चाहिए' तभी से लत जाने लगेगी।

प्रश्नकर्ता : सांसारिक लाभ में क्या-क्या चीज़ें आती है?

दादाश्री : सभी चीज़ें! वह गाड़ी में बैठे तब भी दखल करता है, बस में बैठेगा वहाँ भी दखल, जहाँ देखो वहाँ दखल करता है।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञान' लेने के बाद महात्माओं को इनमें से कौन-कौन सी बातों में ऐसा होता है?

दादाश्री : सभी बातों में...! उन्हीं में से तो आया है। जो सारा जम चुका है, वह अभी फल दे रहा है। तो अगर जागृति में रहकर वह इस फल को नहीं चखें और चख लें, तब भी जुदा रहें तो परिणाम मिलेगा। वे फल मीठे होते हैं न! इसलिए जुदा नहीं रख पाता न, इंसान। चखता ही है न! कपट में से निकलना मुश्किल है। सिर्फ कपट ही जोखिमी है। क्रोध-मान-माया-लोभ तो निकल जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : तो यह सांसारिक लाभ, मिठास व कपट तो हमेशा साथ में ही रहते हैं तो फिर निकलना मुश्किल ही रहा।

दादाश्री : जागृति 'हेल्प' करेगी। जागृति और ऐसा तय करे, ऐसा निश्चय करे कि 'यह सब नहीं चाहिए!'

प्रश्नकर्ता : अर्थात् ऐसा निश्चय करे न कि 'मोक्ष के अलावा कुछ भी नहीं चाहिए?'

दादाश्री : हाँ, कुछ भी नहीं चाहिए। चाहे कुछ भी आए फिर भी 'कुछ चाहिए ही नहीं' ऐसा निश्चय होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मुख्य बात, मोक्ष का 'डिसीज़न' हो जाए तो फिर गाड़ी पटरी पर चढ़ेगी।

दादाश्री : 'डिसीज़न' तो हो चुका है मोक्ष का लेकिन 'यह नहीं चाहिए' ऐसा 'डिसीज़न' हो जाए, तब न!

इसलिए हम सभी से कहते हैं न, कि 'इस दुनिया की कोई भी चीज़ मुझे नहीं चाहिए' ऐसा सुबह पाँच बार बोलना, उठते ही। तो उसका वैसा असर रहेगा।

प्रश्नकर्ता : हर बात में 'क्या चाहिए अभी? ऐसा कहाँ बरतता है?' उसका पृथक करे तो छूटता जाएगा न, जल्दी?

दादाश्री : हाँ, लेकिन पृथक्करण करने से कपट कैसे जाएगा? चतुराई है न, अंदर!

प्रश्नकर्ता : वह किस प्रकार की। चतुराई को ज़रा स्पष्ट कीजिए।

दादाश्री : कपट में चतुराई रहती है। जिसके साथ कपट करना है न, तो चतुराई से उसे वश कर लेता है। चतुराई से लोगों को वश में कर लेता है। सिर्फ 'ज्ञानी' को ही वश में नहीं कर सकता, लोगों को तो वश में कर लेता है। सभी के साथ चतुराई करता है, ऐसा सब उसे आता ही है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे लोग जो चतुराई करते हैं, उन्हें अगर छूटना हो तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : खुद को किस तरह पता चलेगा? खुद को पता ही नहीं चलता न! चतुराई से खुद छूट ही नहीं सकता। हमें उस चतुराई में नहीं आना है।

प्रश्नकर्ता : चतुराई प्रकृति करती है, ऐसा हुआ?

दादाश्री : सामने वाले की प्रकृति चतुराई करती है कपट के कारण, उसके कपट के खेल को खेलने के लिए, तो हमें उसमें नहीं फँसना हो तो हमें सावधान रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : किस तरह?

दादाश्री : एक तो खुद को ऐसा सुनना आना चाहिए कि 'मेरे हित में है या अहित में है।' यह तो मीठा बोलता है और अहितकारी हो तो उसे चला लेता है और कड़वा बोले, लेकिन हितकारी हो तो उसे नहीं चलाता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह मुझे हित के लिए कह रहा है या अहित के लिए....

दादाश्री : ऐसा समझ ले तो बहुत हो गया! इतना 'लेवल' आ गया तो बहुत हो गया!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह हिताहित तो संसार का ही है न? आत्मिक है या सांसारिक ऐसा स्पष्टरूप से पता चलना चाहिए न?

दादाश्री : वह सांसारिक ही होता है। आत्मिक तो होता ही नहीं न! *पुद्‌गल* का ही होता है। यह निकल जाएगा तो आत्मा प्राप्त होगा।

प्रश्नकर्ता : वह हमारे हित के लिए है या अहित के लिए वह समझ ले तो उसकी चतुराई में नहीं फँसेंगे।

दादाश्री : हित और अहित को तो खुद समझता है लेकिन वह 'चतुराई है या क्या है?' ऐसा समझ में नहीं आता क्योंकि एक तो मीठा खाने की आदत है उसे। 'आइए, पधारिए' कहा कि भान गया। आप कितना भी 'पधारिए' कहो, लेकिन हम उसमें नहीं फँसते।

प्रश्नकर्ता : मोक्ष का निश्चय हो तो फिर क्या है? फिर हमें उसके शब्द स्पर्श नहीं करेंगे न!

दादाश्री : निश्चय तो मोक्ष का है ही, लेकिन बीच में दखलें हैं न! '*केवळ निज स्वभावनुं अखंड वर्ते ज्ञान*।' निश्चय तो है ही, लेकिन वह निरंतर होना चाहिए न? मोक्ष तो बरतता है, लेकिन अखंड रहना चाहिए न? खंडित नहीं चलेगा न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह हित या अहित, वे दोनों 'आफ्टर ऑल' सांसारिक 'डिपार्टमेन्ट' का हुआ न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन उस सांसारिक को ही छोड़ना है। मोक्षमार्ग में तो ऐसा है ही नहीं न! और क्या? सांसारिक अहित को तो छोड़ देना है।

इंसान यदि समझने बैठे न और मिठाई खाने की आदत न हो, तो यह समझ में आ सके ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : अब वह खुद चतुराई करता है, खुद की वह चतुराई खुद छोड़े कैसे?

दादाश्री : ऐसा उसे खुद को पता नहीं चलता। हम कहें कि, 'आप चतुराई कर रहे हो' तब भी वह नहीं मानता।

प्रश्नकर्ता : मोक्षमार्ग पर चलना और इन दोषों से मुक्त होना बहुत मुश्किल हो जाता है।

दादाश्री : मुश्किल नहीं है। इस तरह भावना करते-करते पहुँच पाएँगे। जिन्हें ये दोष निकालने हैं उन्हें देर नहीं लगेगी। मुश्किल तो है ही नहीं न! हर एक इंसान में ऐसा कपट होता है। इस कलियुग में कपट कहाँ नहीं होगा?

प्रश्नकर्ता : यह तो सामने वाले व्यक्ति के साथ व्यवहार में कपट आया, लेकिन अब खुद की प्रकृति और आत्मा, वहाँ भी कपट काम करता रहता है न?

दादाश्री : नहीं, उसमें नहीं।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला व्यक्ति तो चतुराई करता है लेकिन उसमें खुद को मिठास लगती है तो वहाँ कपट आया या नहीं?

दादाश्री : नहीं। वह कपट नहीं कहलाता। वह तो भ्रमित हो जाता है बेचारा। मिठास खाने की आदत है, इसलिए भ्रमित हो जाता है!

प्रश्नकर्ता : जागृति नहीं रहती है न तब?

दादाश्री : उस समय जागृति नहीं रहती। आपको 'आइए, आइए चंदूभाई' कहते हैं। अब शब्द नाद ऐसा होता है! 'चंदूभाई आप में अक्ल नहीं है,' तो उन शब्दों का क्या असर होता है?

प्रश्नकर्ता : यह 'अक्रम विज्ञान' ऐसा है कि उसे एक बार तो अंदर छूने ही नहीं देता 'खुद को'। 'बेअक्ल' किसे कह रहा है, पहले वह जागृति आ जाती है!

दादाश्री : हाँ। पहले जागृति आ जाती है। ऐसी जागृति हो तो फिर उसे स्पर्श नहीं करेगा। जिसे ऐसी जागृति रहे कि 'ये जो आइए-आइए कह रहे हैं तो वह किसे कह रहे हैं?' तो उसे कुछ स्पर्श नहीं करेगा। आपको ऐसा सब सूक्ष्मता से समझ लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह बहुत ज़रूरी है। जागृति की यह जो निरंतरता खंडित होती है न, तब ऐसे सब दोष बीच में काम कर जाते हैं?

दादाश्री : ये जो दोष हैं, वे बीच में उसे 'ब्रेकडाउन' कर देते हैं। इसलिए भगवान ने कहा है न कि '*केवळ निज स्वभाव नुं अखंड वर्ते ज्ञान*' लेकिन वह खंडित हो जाता है इसलिए मिठास की आदत छोड़ दो और 'कड़वा' तो लगभग कोई कहता नहीं है। व्यवहार ऐसा है कि कोई कुछ कड़वा नहीं कहता। फिर भी अगर कड़वा कहे तो जानना कि यह तो आपका 'व्यवस्थित' है। भुगते उसी की भूल!

प्रश्नकर्ता : कड़वाहट में तो अधिक जागृति रहती है।

दादाश्री : मिठास में ही भ्रमित हो जाता है!

अब यदि किसी भी प्रकार की बाधा या आपत्ति नहीं हो, तब अखंड ज्ञान बरतता है। यह तो अखंड जागृति का मार्ग है।

'पोइन्ट मैन,' मोक्षमार्ग में...

यहाँ तो ऐसा है न, पोइन्ट मैन बहुत होते हैं तो हमें गाड़ी दिल्ली ले जानी हो तो न जाने कौन से गाँव चली जाए! इसलिए अपने 'पोइन्ट' से ही बात करते रहना। यहाँ तो कितने सारे पोइन्ट मैन हैं!

गाड़ी 'मेन लाइन' पर जाए तो नहीं लुटती। पटरी बदली कि लुट जाती है। लुट जाएगी और फिर न जाने कौन से गाँव ले जाएगी उसका कोई ठिकाना नहीं। इसलिए पोइन्ट मैन पर बिल्कुल भी विश्वास नहीं करना चाहिए। उसके साथ चाय-पानी शुरू करेंगे तो फिर गाड़ी ऐसे पटरी बदल देगी न!

प्रश्नकर्ता : इस मोक्षमार्ग में पोइन्ट मैन किसे कहते हैं?

दादाश्री : जो आपको पसंद हो वैसा कहे, वह पोइन्ट मैन। आपसे कहे और आप पर असर हो जाए तो समझना कि यह पोइन्ट मैन आया! मनचाहा बोले तो फिर मन भ्रमित हो जाता है अर्थात् पोइन्ट मैन गाड़ी दूसरी पटरी पर चढ़ा देता है, उतनी ही 'स्पीड' से! फिर भी दूसरी पटरी पर चला जाता है, उसका पता भी नहीं चलता कि मैं दूसरी पटरी पर हूँ। फिर अगर कोई कहेगा कि, ''अरे, यह 'रोंग वे' पर कहाँ आ गए?'' तब कहेगा, ''हमारा 'रोंग वे' नहीं हो सकता कभी भी!'' ऐसा कहता है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए निरंतर ज्ञानी का आसरा रखने को कहा है न?

दादाश्री : नहीं तो क्या! इसीलिए तो कहा है न, नहीं तो बात-बात में पोइन्ट मैन मिल जाएँगे और गाड़ी की पटरी बदल देंगे, एकदम से! तभी फिर ये वापस क्या कहते हैं? 'हमारी तो राजधानी एक्सप्रेस है!' अरे, लेकिन पटरी बदल गई! राजधानी, तुझे कौन मना कर रहा है?

'मेन लाइन' पर हो तो राजधानी एक्सप्रेस, पटरी बदल ले तो कौन से गाँव चली जाएगी? दिल्ली आएगा ही नहीं फिर।

अपनी 'मेन लाइन' बदल नहीं जाए उसका ध्यान रखना। ये सारी पिछली आदते हैं न? सिर्फ इतना ही है कि उन आदतों को नहीं निकाला है। आपकी समझ में आना चाहिए कि ये आदतें पहले की हैं।

प्रश्नकर्ता : निश्चय में यदि बलवान हो, स्थिर हो, तो व्यवहार सुंदर हो ही जाएगा न?

दादाश्री : व्यवहार सुंदर होना चाहिए और अगर नहीं होगा तो निश्चय कच्चा पड़ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : उसका दिशा निर्देष यंत्र क्या है? 'उल्टी पटरी, सीधी पटरी' का प्रमाण क्या है?

दादाश्री : एक तो अहंकार से मिठास आती है और उल्टी पटरी चढ़ने से मिठास आती है और 'इमोशनल' होता जाता है। जबकि अगर 'मेन लाइन' पर होगा तो निराकुलता रहेगी ही। जबकि उसमें तो निराकुलता चली जाती है, चेहरा व्याकुल दिखता है। ये सारे विचार, वगैरह सब व्याकुल लगता है। उल्टी पटरी पर चलता है, इसलिए खुद का सुख खो देता है।

प्रश्नकर्ता : वह भूल मिट गई, ऐसा कब कहा जा सकता है?

दादाश्री : आप स्पष्ट समझ जाओगे तो वह भूल मिट गई कही जाएगी कि 'कैसे हुआ? शुरुआत कहाँ हुई? क्या हुआ और क्यों दूसरी पटरी पर चढ़ गया?' ये सभी आधार ढूँढ निकालो तो जानना कि भूल मिट गई। शुरुआत से ही या पहले दिन से ही पता चलेगा कि "क्या हुआ और किस आधार पर, इसका आधार कहाँ से मिल गया और कहाँ से 'इमोशनल' हुए, कहाँ से निराकुलता गई"।

प्रश्नकर्ता : यह व्यवहार जो होता है, उसमें तो कोई धारणा ही नहीं होती कि ऐसे जाना है या ऐसे जाना है। जो भी व्यवहार होता है,

उसमें किसी भी प्रकार की पकड़ नहीं होती कि ऐसे जा रहे हैं या ऐसे जा रहे हैं। बाकी, जो निश्चय है, वह विचलित नहीं होता।

दादाश्री : जब व्यवहार बदलता जाए तो निश्चय से डिग जाता है। यह तो आपको लगता है ऐसा सब। बाकी, यदि व्यवहार बदला कि निश्चय से भी डिग जाता है। मन में ऐसा भासित होता है कि, 'नहीं, निश्चय में कुछ भी बदलाव नहीं हुआ है।' लेकिन व्यवहार डिगा तभी से समझ लो कि निश्चय डिग ही गया है। यहाँ सावधान रहने जैसा है!

बाकी, पटरी नहीं बदले, तो सही है। कोई नहीं बदल सकता, आपका कान कच्चा नहीं पड़े, तब सही है। यह तो सुना कि बदल जाता है। बहुत सारे लोग हमें कहते हैं लेकिन हम किसी का मानते नहीं।

प्रश्नकर्ता : आप मुख्य रूप से किस बारे में मानने की बात कह रहे हैं?

दादाश्री : सम्यक्। हम पता लगाते हैं कि इसमें सम्यक् क्या है और फिर तय करते हैं। फिर कोई हमारे कान भरे तब भी कुछ नहीं होता। कई लोग कहते हैं, 'दादा भोले हैं।' लेकिन वह नापकर तो देखना। 'दादा' तो दरअसल स्वरूप हैं। भोले-वोले नहीं हैं वे। कहीं भोले होते होंगे? 'ज्ञानीपुरुष' भोले होंगे, तो फिर मूर्ख और उनमें फर्क क्या?!

बात को परखने की शक्ति है? 'यह बात क्यों कर रहे हो,' वह परखना आता है?

प्रश्नकर्ता : बहुत परिचय के बाद पता चलता है।

दादाश्री : कहने वाले में भी प्रपंच नहीं होता। कहनेवाला भी मूर्खता से कह रहा होता है। हमें ऐसा होने लगे तब तो फिर इस सत्संग में झंझट ही हो जाएगा न! आपने कहा, 'ऐसा हो गया, दादा' और दादा ने मान लिया। इस बात में क्या दम है?

प्रश्नकर्ता : ऐसे कौन से 'एडजस्टमेन्ट' से आप उस चीज़ को स्वीकार नहीं करते?

दादाश्री : मैं तुरंत ही समझ जाता हूँ। उसका तौल वगैरह सब मुझे पता चल जाता है। उनके कहते ही समझ जाता हूँ कि ये उस ओर झुके हुए हैं और फिर मुझे कहाँ उस तरफ झुका रहे हैं?! 'ज्ञानीपुरुष' में भोलापन आ जाए तो फिर रहा ही क्या? भोले जैसे दिखते ज़रूर हैं। जिनमें कपट नहीं है, वह भोलापन कैसा? जहाँ भोलापन है वहाँ कपट रहता ही है। हमेशा भोलापन आया तो दूसरी तरफ कपट रहता ही है। जहाँ कपट नहीं है वहाँ 'सेन्ट परसेन्ट' उसमें भोलापन नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् भोलापन कपट के आधार पर रहा है?

दादाश्री : 'फूलिशनेस' रहती है, कपट के आधार पर! कपट चला जाए तो 'फूलिशनेस' नहीं रहेगी।

प्रश्नकर्ता : वह कपट कैसा? वह किस प्रकार का कपट?

दादाश्री : सभी प्रकार के! कपट अर्थात् खुद अपने आपसे सभी कुछ गुप्त रखना, हर एक चीज़ गुप्त रखनी। सभी प्रकार के कपट! किसी का लाभ उठाने का कपट, किसी को खुद से गुप्त रखना, वह भी कपट है!

प्रश्नकर्ता : अर्थात् किससे गुप्त रखने की बात है?

दादाश्री : खुद की बात जान न जाए, उसके लिए। खुद अकेले में बात कर रहा हो किसी से तब दूसरा कोई आए तो बंद कर देता है या नहीं कर देता?

प्रश्नकर्ता : ऐसा होता है।

दादाश्री : उसका क्या कारण है?

प्रश्नकर्ता : वह कपट कहलाता है?

दादाश्री : नहीं तो और क्या कहलाता है वह?

प्रश्नकर्ता : तो भोलापन कहाँ आया उसमें?

दादाश्री : कपट है तो उसके सामने भोलापन होता ही है। इतनी 'फूलिशनेस' नहीं हो तो कपट होगा ही नहीं। कपट तो 'फूलिशनेस' की निशानी है। जहाँ कपट है वहाँ पर भोलापन होता ही है और जहाँ भोलापन है वहाँ पर कपट है ऐसा मान लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : जिस पटरी के बारे में कहा आपने, वह पटरी बदल नहीं जानी चाहिए तो अब अगर पटरी नहीं बदली है, तो उस पटरी का ध्येय क्या मानना चाहिए?

दादाश्री : मोक्ष का ही ध्येय! और कौन सा ध्येय?! वही 'मेन लाइन'!

प्रश्नकर्ता : और ध्येय बदल जाए तो ध्येय किस तरफ का होता है?

दादाश्री : मोक्ष से विरूद्ध चला जाता है तेज़ी से, देर ही नहीं लगती लेकिन उसे खुद को तो ऐसा ही लगता है कि मैं मोक्ष के मार्ग पर हूँ।

प्रश्नकर्ता : तो वहाँ कौन सी भूल रह जाती है?

दादाश्री : वही सब, कपट और यह सारी 'फूलिशनेस'। लोगों का सुनकर फिर भेद नहीं कर सकता कि यह सही या गलत? 'व्हॉट इज़ करेक्ट ऐन्ड व्हॉट इज़ रोंग?'

प्रश्नकर्ता : 'करेक्ट' और 'रोंग' की वह समझ कैसे उत्पन्न होती है?

दादाश्री : जब तक कपट नहीं चला जाए, तब तक समझ में नहीं आएगा। हम जितना कहते हैं उतना 'फिट' कर ले तो रास्ते पर आ जाएगा। रास्ते पर आ गया तो हम समझ जाएँगे कि पहुँचेगा अब।

प्रश्नकर्ता : वह रास्ते पर आ जाए, तो उसके लक्षण कैसे होते हैं?

दादाश्री : कपट चला जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उस कपट के बारे में ज़रा स्पष्ट रूप से समझाइए न!

दादाश्री : हर एक को खुद को पता रहता है कि यहाँ पर कपट है। दूसरा, जब तक यहाँ पर कपट है तब तक भोलापन रहता है। और जहाँ भोलापन हो वहाँ किसी ने कान में कुछ कहा कि तुरंत सच मानकर चल पड़ते हैं। 'फलाँ भाई मर गए' सुना तो रोने लगते हैं! लेकिन ऐसा नहीं पूछते कि, 'अरे, कौन से भाई मर गए और कौन से नहीं?!' 'फलाँ भाई मर गए' कहते ही सच मान लेते हैं। सगे बाप का भी सच नहीं मानना चाहिए क्योंकि वे खुद की समझ से कहते हैं। कपट नहीं है उसके पीछे लेकिन नासमझी से कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' के अलावा पूरे जगत् के लोगों की बात खुद के 'व्यू पोइन्ट' की ही होती है न?

दादाश्री : खुद के 'व्यू पोइन्ट' की ही होती है। और वह 'व्यू पोइन्ट' भी अगर सही हो तो ठीक है। वह भी फिर उसकी समझ से सही होता है। अब वहाँ सिर्फ दिन गुज़ारना! सुनना, हाँ में हाँ मिलाना और फिर दिन गुज़ारना। फिर भी उससे कुछ हासिल नहीं होगा। जितना सही होगा उतना ही हासिल होगा।

प्रश्नकर्ता : यह समझ में नहीं आया कि वे जो कहें वह सुनना पड़ेगा। हाँ में हाँ मिलानी पड़ेगी और दिन गुज़ारने पड़ेंगे?

दादाश्री : वह कहे न, तो 'ऑब्स्ट्रक्ट' (रुकावट डालनी) नहीं करना चाहिए हमें। हमें इस तरह से सुनना पड़ेगा जैसे सही मानकर बैठे हों लेकिन बाकी का तो अपने हाथ में ही है न? हमें तो सम्यक् का आधार रखना है। सम्यक् का कांटा किस तरफ जा रहा है! 'सिन्सियर' तो, उनका सुन लें बस उतने तक ही 'सिन्सियर'। उनकी सुन लेनी है, 'ऑब्स्ट्रक्ट' नहीं करना है।

हर कोई अपनी-अपनी भाषा में बात करता है न! और मैं भी

ऐसा कहता हूँ कि वह जो कह रहा है उसकी भाषा में 'वही करेक्ट है' लेकिन मेरी भाषा से मेल ही नहीं खाएगा न!

प्रश्नकर्ता : आपकी भाषा का कैसा होता है? वह निरंतर शुद्ध उपयोग कैसा होता है?

दादाश्री : वह तो आपने देखा ही नहीं है। सुना ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : वह ज़रा बताइए न!

दादाश्री : नहीं, वह मुँह से नहीं कहा जा सकता। वह तो अनुभव की चीज़ है। वह तो अपने आप आकर खड़ा रहेगा। अभी तो यह स्थूल सूझ उत्पन्न होती है, स्थूल! वह सूक्ष्मतम होता है! अब हर कोई अपनी-अपनी भाषा में ही बात करेगा न? आप सूक्ष्मतम को समझते हो, और वह स्थूल कह रहा होता है। अब वह थोड़े ही सूक्ष्मतम समझनेवाला था? वह तो स्थूल ही कहेगा न!

हमसे यह जो ज्ञान सुना है न, तो यह ज्ञान ही काम करता रहता है। हम जिस रास्ते पर चले हैं, उस रास्ते का ज्ञान आप सुन रहे हो, वह रास्ता ही आपका काम निकाल देगा। आपको तो कहना है, 'दादा, आपके पीछे-पीछे आना है,' तब फिर हम आपको हमारा रास्ता दिखा देंगे।

'मेन लाइन' पर आ गए, तब फिर परेशानी नहीं न! गाड़ी दूसरी पटरी पर आ गई है, ऐसा जान ले न, तब भी हल निकल आएगा। जाने बगैर पड़ा रहे तो मुश्किल है। वह तो ऐसा ही समझता है कि 'अपनी भूल नहीं है।'

प्रश्नकर्ता : फिर ऐसा मानता है?!

दादाश्री : हाँ, और फिर ऊपर से रक्षण करता है। अगर किसी की भी भूल दिखे तो वही अपनी भूल है। उसकी भूल उसे देखनी है। दूसरों को उसकी भूल देखने का क्या अधिकार है? यह तो बिना बात के न्यायाधीश बन जाते हैं? कुछ भूल है या नहीं, ऐसा पक्का नहीं है तो फिर क्यों कहते हो? यह तो खुद के स्वार्थ से कहते हैं। सामने वाले की भूल है या नहीं, उसका क्या प्रमाण है?

अत: यह विज्ञान ही सारे दोष निकाल देगा वर्ना अन्य कोई विज्ञान दोष नहीं निकाल सकता। फिर से कहीं ऐसा ताल नहीं मिलेगा इसलिए सावधान होकर काम करना अच्छा।

मन में खुद अपने आप 'लेवल' नहीं निकालना है। नहीं तो इंसान अटक जाएगा। खुद अपने आप ही 'लेवल' मत निकालना। दूसरे निकालें, तभी काम का।

प्रश्नकर्ता : मन में वह 'लेवल' किस बारे में?

दादाश्री : इसी में। इस मोक्षमार्ग में हर कोई खुद का 'लेवल' निकालकर बैठा है लेकिन वह बिल्कुल गलत होता है, उसमें एक अक्षर भी सही नहीं होता। अगर 'लेवल' मानकर बैठ जाए तो वहीं पर ठहर जाएगा व्यक्ति। अभी तो, गाड़ी को पटरी पर से उतरने में देर ही नहीं लगेगी। इतनी कमज़ोरियों में इसे पूर्णता पर लाना है तो सब समझना पड़ेगा। सब से पहले तो कपट ही चला जाना चाहिए।

यह तो जो अपना नहीं है, वहीं पर सारी शक्ति खर्च हो जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : और फिर कपट से उसी को वापस ढँकना!

दादाश्री : हाँ, उसी को ढँकना। कुछ भी अपना नहीं है फिर भी उसका पक्ष लेता है। 'अरे, तय किया है कि अपना कुछ नहीं है, फिर भी उसका पक्ष ले रहा है?' तब वह कहता है, 'भूल गया।'

प्रश्नकर्ता : वह भूल जाता है या फिर अभी तक पक्ष नहीं छूटा?

दादाश्री : पक्ष नहीं छूटा है। भूल गया तो वह यों ही कहता है, उतने समय के लिए लेकिन पक्ष नहीं छूटता न!

इसलिए सावधान हो जाओ, हर तरह से सावधान हो जाओ, बहुत सावधान रहना है।

प्रश्नकर्ता : वह सही है। आज मोक्षमार्ग का ध्येय तय हुआ है,

लेकिन जब तक उसके बाधक अथवा अनुमोदक कारणों का यदि स्पष्ट विभाजन नहीं हो जाता तब तक 'इस' पटरी पर गाड़ी स्थिर रहने में और पूर्णाहुति होने में बहुत-बहुत मुश्किल नज़र आती है!

दादाश्री : अगर कहेंगे कि मुश्किल है तो फिर काम होगा ही नहीं इसलिए ऐसा कहना कि आपने यह विज्ञान ऐसा दिया है कि 'कोई मुश्किल है ही नहीं!'

'मुझे क्या?'

क्या मेरे 'ज्ञान' देने के बाद आपका आत्मा चला गया? कभी भी चला नहीं जाता न? कैसा है वह आत्मा?! बाकी, संसार में आत्मा नहीं है क्योंकि आत्मा को चोट नहीं लगती। जबकि लोगों को तो चोट लगती हैं, इसलिए वह आत्मा नहीं है। आत्मा को अपमान महसूस नहीं होता। अगर अपमान महसूस होता है तो वह आत्मा नहीं है। 'फाइल' के हिसाब चुकाने तो पड़ेंगे न? 'मुझे क्या?' करके आ जाओगे तो, उससे क्या छूट जाएँगे? फिर वे लोग मन में गाँठ रखेंगे। 'जाने दो न, है ही ऐसा।' 'मुझे क्या?' कहने से क्या लोग छोड़ देंगे? इसलिए मिलनसार बनो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, इस ज़माने में सब ऐसा ही समझते हैं कि 'मुझे क्या?'

दादाश्री : 'मुझे क्या?' ऐसा यदि कोई कहे न, तो बहुत जोखिम है। 'मुझे क्या?' ऐसा कह ही कैसे सकते हैं? यह तो हाथ झाड़ने जैसा शब्द कहलाता है। 'मुझे क्या?' कहता है तो फिर कैसा है तू?! 'मुझे क्या?' वह शब्द होना ही नहीं चाहिए।

ऐसा तो हमने भी कभी नहीं कहा कि 'मुझे क्या?' क्योंकि हम 'ज्ञानीपुरुष' हैं फिर भी 'मुझे क्या?' नहीं कहना है। अभी कोई चाहे कैसी भी परिस्थिति में आया हो तब भी 'मुझे क्या?' नहीं कहना है। हमारे कुटुंब में एक स्त्री की मृत्यु हो गई, तो उसका बेटा बताने आया। मुझे कहता है, 'दादाजी, आपको बताने के लिए ही आया हूँ।' और मैंने कहा, 'भाई, अभी बता रहा है, लेकिन देर हो गई है न!' तब उसने

कहा, 'नहीं, आपको आने की ज़रूरत नहीं है।' फिर भी मैं वहाँ पाँच मिनट के लिए जाकर आया, और आकर फिर नहाया भी। अतः व्यवहार में 'मुझे क्या?' ऐसा नहीं चलता। व्यवहार, व्यवहार की तरह होना चाहिए न! कहीं आत्मा तो नहीं चला जाता न!

'मुझे क्या?' कहना वह तो बहुत बड़ा गुनाह कहलाता है। 'मुझे क्या!' वह शब्द है ही नहीं हमारी डिक्शनरी में। 'मुझे क्या?' वह शब्द तो घर पर भी नहीं कहना चाहिए, बाहर भी नहीं कहना चाहिए, यहाँ सत्संग में भी नहीं कहना चाहिए। 'मुझे क्या?' तो कहा जाता होगा? फिर तो अहंकार जाएगा ही नहीं। वह अहंकार तो मज़बूत हो जाता है। फिर वह जाता नहीं है, टूटता ही नहीं है कभी भी।

बहन हो या भाई हो या माँ हो, लेकिन यह तो कहेगा, 'मुझे क्या?'

प्रश्नकर्ता : किसी भी व्यक्ति के प्रति यह 'मुझे क्या?' ऐसा जो भाव है, वह क्या सूचित करता है?

दादाश्री : नालायकी! 'मुझे क्या?' ऐसा कह ही कैसे सकते हैं? हमने उनके यहाँ जन्म लिया तो 'मुझे क्या?' ऐसा कहीं कहा जाता होगा?! वह तो गुनाह है। 'मुझे क्या?' ऐसा कहना ही नहीं चाहिए। घर में तो रखना ही नहीं चाहिए ऐसा, लेकिन बाहर भी नहीं रखना चाहिए। वह सब तो गुनाह है।

प्रश्नकर्ता : वह किस प्रकार का गुनाह कहलाता है?

दादाश्री : पेपर ही सही नहीं है, तो फिर भूल ढूँढने को रहा ही कहाँ?! भूल तो, अगर पेपर सही हो तब भूल मानी जाती है। 'मुझे क्या?' बोलता है वहाँ पर पेपर ही सही नहीं है, पेपर ही 'रोंग' है। हंड्रेड परसेन्ट रोंग!

प्रश्नकर्ता : आपका वाक्य है कि ''जो ऐसा कहता है कि 'मुझे क्या?' तो वह भगवान का भी गुनहगार है और कुदरत का भी गुनहगार है।''

दादाश्री : पूरा ही गुनहगार है। उसे तो फिर कुछ बाकी ही नहीं रहा न, गुनाह में तो। पेपर ही पढ़ने जैसा नहीं रहा। फिर भूल ही कहाँ रही? भूल कब देखनी होती है? पेपर पढ़ने जैसा हो तब लेकिन यह पेपर तो पढ़ने जैसा है ही नहीं, फिर भूल ही कहाँ रही? 'मुझे क्या?', कहा मतलब सब से बड़ा जोखिम मोल लिया।

प्रश्नकर्ता : 'मुझे क्या?' ऐसा जो अंदर बंध गया है, उसमें से वापस लौटना हो तो किस तरह से लौट सकते हैं?

दादाश्री : 'मुझे क्या?' वह तो अंतिम डिग्री कहलाती है। उसमें से वापस लौटने का रास्ता, वह तो जिस रास्ते से उल्टे आए थे उसी रास्ते से वापस बाहर निकलना है।

प्रश्नकर्ता : तो वापस लौटने के रास्ते में क्या करने को कहा है आपने?

दादाश्री : जिस रास्ते से आप आए थे, उसी रास्ते से निकलना है। मुझे कैसे पता चलेगा कि आप किस रास्ते से गए थे? आपको पता है कि किस रास्ते से आप अंदर गए थे। आप जिस रास्ते से अंदर गए थे, उसी रास्ते से वापस निकलोगे तो वह निकल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो इसमें किस तरह से करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण कर-करके!

प्रश्नकर्ता : 'मुझे क्या?' कहने से आसक्ति भाव कम नहीं हो जाएगा? जो अतिरिक्त आसक्ति होती है, वह कम नहीं हो जाएगी उससे?

दादाश्री : अरे, आसक्ति कम होने की बात ही कहाँ गई, बल्कि आसक्ति को पूरा पार करके खत्म हो जाता है इंसान। ऐसे तो बहुत साधु हो चुके हैं कि 'हमको क्या? हमको क्या? हमको क्या?' सब साधु खत्म हो गए। कभी भी ऐसा नहीं कहना चाहिए कि 'मुझे क्या?'

'मुझे क्या?' अर्थात् निस्पृह! या तो स्पृही बन या तो फिर

'ज्ञानीपुरुष' की तरह देह के लिए निस्पृही और आत्मा के लिए स्पृही, अर्थात् सस्पृही-निस्पृही बन। इन दोनों में से एक में रहना। बाकी, निस्पृही बिल्कुल मत बन जाना। वर्ना पत्थर ही बन जाएगा। 'मुझे क्या?' नहीं कहना चाहिए।

'मुझे क्या?' कहना वह सारी बुद्धि का फँसाव है। बुद्धि क्या नहीं फँसाती? और वह ऐसा जो कहता है न, वह उसे बुद्धि ही फँसाती है। फिर भी किसी में यह साहजिक हो चुका होता है, इसलिए बुद्धि का उपयोग नहीं करना पड़ता, यों ही अबुद्धिपूर्वक कहता है। बुद्धिपूर्वक कहे तब तो ऐसा साहजिक नहीं कहेगा। अबुद्धिपूर्वक अर्थात् यों ही सहज यों ही मुँह से निकल जाता है। कहेगा 'मुझे क्या?'

किसी के लिए अगर यह सहज हो गया है तो वह क्या करे अब? फिर भी सुधारना है अब। इसीलिए तो हम 'मेन लाइन' बदल लेते हैं, कौन सी 'लाइन' पर रहना है वह 'लाइन' बना देते हैं। 'मुझे क्या?' वाली 'लाइन' तो 'यूज़लेस लाइन' है। वह 'लाइन' बिल्कुल गलत थी, खत्म कर दो। दूसरी 'रेल्वे लाइन' डाल देते हैं, तो उस पर यह गाड़ी चलाना।

प्रश्नकर्ता : अंदर से अपना पक्का रखना है, खुद का मार्ग नहीं चूकना है।

दादाश्री : मार्ग नहीं चूकना है। और जान-बूझकर चूक जाए, ऐसा होगा भी नहीं। वह तो अनजाने में ही चूक जाता है। मोक्ष का मार्ग कोई जान-बूझकर नहीं चूकता।

कान देकर सुनना...

किसी से कोई झंझट हो जाए तब, वहाँ कोई बैठा हो, और फिर वह मिल जाए तो उसे पूछेगा न कि मेरे जाने के बाद वह क्या कह रहा था? ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा होता है। वह क्या कहलाता है?

दादाश्री : वह चीज़ पूरा मोक्षमार्ग ही खत्म कर देती है। 'मेरे

बारे में क्या कह रहे थे?' ऐसा यदि रहे तो पूरा मोक्षमार्ग ही खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा किसलिए?

दादाश्री : भयंकर उल्टा मार्ग कहलाता है वह।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसमें कौन सा तत्व, क्या काम कर रहा है?

दादाश्री : ऐसा क्यों पूछना पड़ रहा है? खुद क्या कोई चोर है कि पूछना पड़ रहा है कि मेरे लिए क्या कह रहे थे वे? खुद अपने आप पर विश्वास नहीं है, इसीलिए सामने वाले से पूछना पड़ता है कि 'मेरे पीठ पीछे क्या कह रहे थे वे?'

मैं क्या कभी अपने बारे में खबर रखता हूँ कि 'मेरे पीछे क्या कह रहे हैं?' वह चाहे जो भी कह रहा हो, मेरे मुँह पर कहे तब भी मुझे परेशानी नहीं है न! जबकि यह तो, इसलिए पूछता है कि खुद में कपट है।

प्रश्नकर्ता : वह भी कपट कहलाता है?

दादाश्री : हाँ। इसीलिए तो वापस उस व्यक्ति से ऐसा पूछता है कि 'वे क्या कह रहे थे?'

प्रश्नकर्ता : क्या वह अहंकार कहलाता है?

दादाश्री : अहंकार कैसा भला? वह सारा खुद का छुपाने के लिए है। जिसे खुद का छुपाना नहीं है, उसे भले ही कहती रहे दुनिया! वह भला ऐसा पता लगाने जाता होगा कि 'मेरे पीछे क्या कह रहे थे?' जो भी कहना हो वैसा कह न, तू अपने आप। अरे, मेरे रूबरू बोल। होगा तब मुझे परेशानी है न? यदि मैं शराब पीऊँ तो परेशानी होगी न?

मेरे रूबरू बोल न! इसलिए मैं कोई पता लगाने नहीं जाता कि 'मेरे पीछे से क्या बोलेंगे, क्या कह रहे थे?' जिसे जो स्पंदन डालने हों, वे डालें। अपनी समझ के अनुसार करते हैं बेचारे। उन्हें क्या यह समझ

है सारी? यह तो, भोजन करना आता है, उतनी ही समझ है। उसमें भी झूठन गिराते हैं!

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप जब इस तरह से समझाते हैं कि यह बाधक चीज़ है, तब समझ में आ जाता है।

दादाश्री : पीछे से चाहे जो भी बोले फिर भी अंदर कुछ नहीं हो, खुद को ऐसा बना देना चाहिए।

अरे, कभी तो कान लगाकर सुनते हैं! अरेरे, कान लगाकर सुनते हैं! कैसे नालायक इंसान? अगर अपने लिए कह रहे हैं, तो अपना कोई गुनाह होगा न? वर्ना तो कौन नाम देगा? कान लगाकर सुनना कितनी बड़ी नालायकी है! देखने वाले को कितना बुरा लगेगा? वह भयंकर गुनाह है।

भले ही पूरी दुनिया कहे। कितने ही लोग कहते हैं, 'दादा, आपके लिए ऐसा कह रहे हैं!' मैंने कहा, 'हाँ, ठीक है। अच्छा कह रहे हैं।' फिर कहेंगे, 'पेपर में भी छपवा रहे हैं।' 'पेपर में छपवाएँ तो अच्छा है, बल्कि इन दादा को पहचानने लगेंगे न!' मुझे घबराहट कब होगी कि अगर मुझमें दोष होगा तो! वर्ना तो भले ही पूरी दुनिया भौंकती रहे, लेकिन जो 'स्ट्रोंग' है, उसे क्या?!

प्रश्नकर्ता : जिसे यही निश्चय हो कि यह दिशा नहीं चूकनी है, तो?

दादाश्री : ऐसा निश्चय तो रहता ही है लेकिन साथ में वापस ऐसा भी निश्चित रखता है न कि उसकी भी आराधना करना है? यह तो एक दोष हुआ, अभी तो ऐसे कितने ही दोष हैं। वे सारे निकालने पड़ेंगे न!

इसलिए पीछे से चाहे कुछ भी कहें, उसकी हमें परवाह नहीं करनी चाहिए। वर्ना, ऐसा पक्का हो गया कि हम गलत ही हैं। और नहीं तो क्या, सुनने की नालायकी क्यों की? गुनहगार है तभी न? समझना तो पड़ेगा न? ऐसा कहीं चलेगा? बात कैसी लग रही है? यह तो जैसा

संसार में था, वही का वही स्वभाव रहा और मोक्ष में जाना है! दोनों साथ में नहीं हो सकता न!

यानी यह भी समझने जैसा 'पोइन्ट' है न?! कब क्या आकर खड़ा रहे, वह क्या कहा जा सकता है? कमज़ोरी सभी तरह से टूट जानी चाहिए न?

जहाँ ऐसा सब हो कि ध्येय खत्म कर दे, तो वहाँ क्या होता है? इतनी छोटी सी भूल दिखाई नहीं देती, तो वह क्या काम करती है वह जानते हो? भ्रमित कर देती है इंसान को! भ्रमित हो जाने के बाद फिर कितनी बड़ी भूल करेगा? बिफर जाएगा फिर अहंकार!

इसलिए 'प्राइवसी' सुनने का प्रयत्न मत करना कि, 'हमारे लिए क्या कह रहे हैं।' और इसमें 'इन्टरेस्ट' क्यों आता है? खुद का कपट है इसलिए। कपट बिल्कुल भी काम नहीं आएगा! अगर कोई व्यक्ति हमारी बात सुनकर आए न, तो फिर वह व्यक्ति हमें मीठा लगता है।

प्रश्नकर्ता : वह बात लानेवाला व्यक्ति क्या कहलाता है?

दादाश्री : बात लाने वाले इंसान को पास ही मत आने देना।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं, बात लाने वाले व्यक्ति की स्थिति क्या कहलाती है, जैसे सुनने वाले का कपट कहलाता है, वैसे?

दादाश्री : लाने वाले को तो बीच में ऐसा 'इन्टरेस्ट' आता है। 'इन दोनों के बीच में झंझट खड़ी हो,' उसे इसमें रुचि होती है। उसी में डूबा रहता है।

प्रश्नकर्ता : उसका भी यह कपट ही कहलाएगा न?

दादाश्री : हाँ, वह सब कपट ही है न! एक प्रकार का स्वाद ढूँढता है, 'इन्टरेस्ट' है।

प्रश्नकर्ता : जहाँ एक प्रकार का स्वाद ढूँढता है वहाँ सारा कपट ही है?

दादाश्री : तब और क्या होता है? सुगंध आनी चाहिए, सुगंध! 'कहना पड़ेगा! फलाँ भाई की बात कहनी पड़ेगी!' कहेगा। ऐसी सुगंध आती है।

प्रश्नकर्ता : मोक्षमार्ग पर चलने वाले की वह दृष्टि कैसी होती है? निरंतर उसकी समझ कैसी रहती है?

दादाश्री : ऐसा सब कहने से कुछ नहीं होगा। कपट भाव वगैरह छूट जाए तो, खुद में जो कपट है वह छूट जाए तो, जितना पता होगा उतना निकल जाएगा। बाकी, ऐसा तो दूसरा बहुत पड़ा है जो पता नहीं है। कपट भाव का अर्थ क्या है? खुद मालिक को यदि उसका पता चल जाता तो कब का ही उसे निकाल देता! इसलिए सावधान हो जाओ। बिवेयर, बिवेयर, बिवेयर!

किसी की बात सुनेंगे, तो वह अपना दिमाग़ भी खराब कर देगा। जब हमारी बात दूसरे से सुनकर हमसे कहता है, उस वक्त फिर हमें मीठा लगता है। सभी में होता है यह रोग लेकिन कुछ लोगों को ऐसा जानने की बहुत इच्छा नहीं रहती। कभी किसी दिन कोई आकर कहे न, तो थोड़ा सुनता ज़रूर है, और फिर वह उसे मीठा लगता है। खुद की इच्छा पूरी हुई न! सुनकर आए! अब यह कहनेवाला जो होता है न, उसे पता ही नहीं होता कि मैं यह क्या कर रहा हूँ। वह अपनी मस्ती में ही होता है। बात नहीं समझनी पड़ेगी यह सारी? और बीचवाला व्यक्ति क्या करता है? कई बार बात बिगाड़ देता है, उस घड़ी आपका मन कैसा हो जाता है? मन बिगड़ जाता है, तकरार हो जाती है और आपको भी निरंतर नुकसान पहुँचाता है। इसके बजाय तो ऐसा 'सिस्टम' ही नहीं रखा जाए तो? जड़ से उखाड़ दिया जाए तो? 'बिज़नेस' ही नहीं, ऐसा 'आइटम' हो ही नहीं तो क्या बुरा है?

पति पूछताछ करे कि 'पत्नी क्या कह रही थी?' और पत्नी पूछताछ करे कि 'पति क्या कह रहे थे?' क्यों है यह सब जानने की इच्छाएँ? खुद उल्टा है, इसीलिए न! अगर खुद का सीधा हो तो जानने की इच्छा होगी क्या?

उसकी स्पृहा क्या? दुनिया की तो यह खुराक है, सब से बड़ी! यह तो 'हॉलिडे' कहलाती है! वह आदत यहाँ पर नहीं रहनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, किसी के डर से उसे कपट करना पड़े, तो वहाँ क्या करना चाहिए?

दादाश्री : डर से कपट करना ही नहीं होता लेकिन हमें डर ही किसका? चोर हों, तो उसे डर होता है लेकिन हमें भला डर क्यों? गुनहगार को डर होता है या बेगुनाह को? खुद गुनहगार है इसलिए डर लगता है लेकिन गुनाह करना बंद कर दो न।

प्रश्नकर्ता : एक ध्येय पकड़ में आए कि मोक्ष में जाना है और उसके अलावा कुछ भी नहीं चाहिए और मोक्षमार्ग के बाधक कारण कौन से हैं? इतना ही यदि स्पष्ट हो जाए तो सभी झंझट खत्म हो जाएँगी और सबकुछ आसान हो जाएगा।

दादाश्री : अरे, ऐसा ही निश्चित हो जाए कि 'मोक्ष के लिए ही चाहिए, और कुछ नहीं चाहिए।' तो बहुत हो गया। ऐसा हो जाए तो काम ही निकल जाएगा न! अभी तो खुद के मन में ऐसा भी हो जाता है कि 'फलाँ भाई मेरे लिए अच्छा बोलें तो ठीक है।' जबकि मोक्षमार्गी तो सच्चा जानने के कामी होते हैं, मोक्ष के कामी होते हैं, दूसरी कोई दखल ही नहीं।

'मैं जानता हूँ' – आपघाती कारण

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा कहा जा सकता है कि इस मोक्षमार्ग में सब से बड़ा बाधक कारण है, 'मैं जानता हूँ, मैं समझता हूँ'?

दादाश्री : हाँ, यह आत्मघाती कारण है।

प्रश्नकर्ता : उसे ज़रा अधिक स्पष्ट कीजिए न। वह छूट जाए तो कैसे लक्षण होते हैं? वह दोष बरतता हो तब कैसे लक्षण होते हैं? और उसके सामने किस तरह से जागृति रह सकती है?

दादाश्री : ये छोटे बच्चे बड़ों से घबराते हैं क्योंकि उनकी अक्ल

का ताप उस बच्चे पर पड़ता है, उससे फिर बच्चा घबराता है। तो क्या करना पड़ेगा? बालक जैसा बन जाना पड़ेगा। उनके जैसे ही नासमझ बालक! 'डीलिंग' ही बालक जैसा करना पड़ेगा, तब वे बच्चे खेलेंगे आपके साथ। मेरे साथ सभी, इतना सा डेढ़ साल का बच्चा भी खेलता है। ऐसे खेलते हैं जैसे एक ही उम्र के हों। ऐसा कोई परिणाम तो आना चाहिए न? इस पर सोचना न, तो एक दिन समझ में आ जाएगा। जान लिया तो पता चल जाएगा लेकिन निष्पक्षपाती भाव होना चाहिए। फिर भी भीतर की अजागृति की वजह से पता न भी चले, तो फिर बाद में कभी पता चलेगा।

सभी उल्टे व्यवहार 'इस' दोष से ही होते हैं। जिन्हें उल्टा कहा जाता है, वे सभी 'इस' दोष की वजह से ही होते हैं। मुख्य रूप से यह दोष कि 'मैं जानता हूँ!' बाकी सभी दोष उसके बाद में। इस दोष में से सब उगा है। *खेंच* (अपनी बात को सही मानकर पकड़े रखना) रहती है, तो वह इस दोष से ही, वर्ना तो सरलता होती है। जितना हमारे साथ ताल-मेल बैठता है, वैसा ही लोगों से ताल-मेल बैठना चाहिए। मेरे साथ क्यों ताल-मेल बैठ जाता है? जहाँ कुदरती रूप से ताल-मेल बैठ जाए, वह तो सहज चीज़ है। वहाँ आपका क्या पुरुषार्थ है? जहाँ ताल-मेल नहीं खाता, वहाँ ताल-मेल बैठाना, वही पुरुषार्थ है।

ऐसा रोग सभी में रहता है। 'मैं कुछ जानता हूँ,' ज्ञान ऐसे कैफ सहित बढ़ता जाता है। इस कैफ का अंतराय नहीं होगा तब तो 'ज्ञान' बहुत अच्छी तरह से बढ़ जाएगा, 'फिट' हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कैफ नहीं लाना हो तो भी कई बार आ जाता है।

दादाश्री : हाँ, वह तो हो जाता है, स्वाभाविक रूप से।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कैफ खत्म किस तरह से होता है?

दादाश्री : वह उत्पन्न ही नहीं होने देना चाहिए। वर्ना उत्पन्न होने

के बाद कैफ बंद नहीं होगा, फिर वह खत्म नहीं होगा इसलिए उसे उत्पन्न ही नहीं होने देना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादाजी, यह तो सूक्ष्म कैफ की बात है। यों तो कैफ दिखाई नहीं देता।

दादाश्री : वह सारा सूक्ष्म ही होता है, मालिक को भी उसका पता नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : उसे उत्पन्न नहीं होने देना, वह किस तरह से हो सकता है?

दादाश्री : ये कषाय उत्पन्न नहीं होने देने के लिए क्या-क्या करते हैं! उसी तरह, यह उत्पन्न ही नहीं हो ऐसी जागृति रखनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह कैफ उत्पन्न नहीं हुआ, उसका पता चलता है खुद को?

दादाश्री : चेहरा सुंदर दिखाई देता है। बहुत सुंदर दिखाई देता है, काला हो फिर भी बहुत सुंदर दिखाई देता है। ये तो सभी बदसूरत दिखाई देते हैं! पता नहीं चले ऐसा होता होगा भला?! यह सब्ज़ी ताज़ी है या दो दिन पुरानी है, उसका पता नहीं चलता? उसके जैसी है यह बात। क्या यह कोई सूक्ष्म बात है? यह तो ऊपर से ही पता चल जाता है। सभी में कम या ज़्यादा कैफ होता है। कुछ ही लोग उससे निवृत्त हो जाते हैं, जो समझ चुके हैं वे। जहाँ कैफ होता है वहाँ लावण्य नहीं दिखाई देता। अजागृति से यह सब होता है। जागृति हो तो कुछ भी नहीं होता। अजागृति से ऐसी गलत चीज़ का उत्पादन हो जाता है, जागृति से नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा दोष उत्पन्न होने लगे, तब कैसी जागृति रखनी चाहिए?

दादाश्री : वह तो, अगर ज़बरदस्त जागृति होगी तो उत्पन्न नहीं होगा। इसे तो जागृति ही नहीं कहेंगे न! जागृति रहेगी तो ऐसा पौधा पैदा

ही नहीं होगा न! यह कैफ का पौधा तो 'ज्ञान' होने के बाद उगा है, यह पौधा बाद में ही उगा है। 'ज्ञान' दिया, उस घड़ी वे सभी पुराने पौधे तो खत्म हो गए और बाद में फिर यह नया पौधा पैदा हुआ। अगर जागृति रहे तो वह नहीं उगेगा। यह जो कुछ भी है, वह सारा अजागृति से ही हैं। ढेर सारी अजागृति होती हैं। एकाध-दो गुणों जितनी अजागृति नहीं। कितनी सारी स्थूल अजागृति हो तब जाकर यह उत्पन्न होता है। वर्ना पैदा ही नहीं होगा न!

प्रश्नकर्ता : इसमें किस बारे में जागृति रहनी चाहिए?

दादाश्री : सभी बारे में। उगे नहीं ऐसा चाहिए।

प्रश्नकर्ता : क्या-क्या होता है उसमें?

दादाश्री : यह पैदा क्यों हुआ? पैदा होता है वही अजागृति है। जागृति उतनी कम कहलाती है। पैदा ही क्यों होगा? कषाय होते हैं उस समय क्यों जागृति आ जाती है?! सामनेवाला व्यक्ति कषाय कर रहा हो, तब भी जागृति आ जाती है। खुद को कषाय होता है तब भी जागृत! यह तो कषाय से भी अधिक खराब, आत्मघाती तत्व है यह! अपना घात करता है। कहेगा, 'जानते हैं लेकिन कुछ हो नहीं पाता,' जानने का फिर कैफ! लेकिन वहाँ पर उसे तो अज्ञानता से हमेशा कैफ ही रहता है लेकिन यहाँ अगर इस 'ज्ञान' के बाद कैफ चढ़ जाए तो कितनी उल्टी समझ कहलाएगी? ज्ञान जानने का कैफ? अज्ञानता का कैफ तो रहता है!

प्रश्नकर्ता : कषाय तो दादाजी, संयोग से खड़ा होता है। संयोग आए तब जागृति रह सकती है, वह निरंतर रहे, ऐसी चीज़ नहीं है। जबकि यह जो कैफ है, वह निरंतर अंदर पड़ा रहता है?

दादाश्री : यह तो उगता ही रहता है, पानी भी छिड़कते हैं। पानी भी छिड़कते रहते हैं। रात-दिन की अजागृति। उसी को आपघाती कहता हूँ न! 'जान लिया' तो उसे कहते हैं कि सभी प्रकार के कैफ उतर जाएँ।

प्रश्नकर्ता : अभी किसी से दादाजी के 'ज्ञान' के बारे में बात करते हैं, तो पहले मन में ऐसा रहता है कि 'मैं जानता हूँ।'

दादाश्री : हाँ, बस वही यह रोग है न!

प्रश्नकर्ता : तो बात किस तरह करें, दादाजी?

दादाश्री : लेकिन वह बात तो, उसमें बरकत ही नहीं आती, कुछ मेल ही नहीं खाता न! सामने वाले को 'फिट' ही कैसे होगा? 'मैं जानता हूँ' वह बहुत बड़ा रोग है!

इसलिए हम कहते हैं न, सामने वाले के साथ हम पहले 'यह' सेटिंग करते हैं। हममें ऐसा रोग नहीं है, इसलिए सेटिंग हो जाती है। हममें यह रोग बिल्कुल भी नहीं है। ऐसे कोई रोग हमें नहीं हैं। हमारे साथ बैठने से सभी रोग चले जाते हैं। पूछ-पूछकर कर लेना। यों ही बैठे रहोगे, तो वह भी काम का नहीं है। वर्ना यों ही तो 'ट्यूब लाइट' भी बैठी रहती है न मेरे साथ! नहीं बैठी रहती?

किसी के साथ झंझट हो जाए तो 'मैं जानता हूँ' वह उसके मन में, लक्ष में होता है और बातचीत करने जाता है, तो केस पूरा बिगड़ जाता है। 'लेवल' नहीं मिल पाता न! 'लेवल' आएगा ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : दादाजी, जागृति ऐसी रहनी चाहिए न कि ज़रा सा भी गलत विचार आए कि तुरंत, उसी सेकन्ड पकड़ में आ जाए।

दादाश्री : हाँ, वह पकड़ में आ जाए तो बहुत हो गया। उगते ही पकड़ में आना चाहिए इसलिए हम कहते हैं कि, निराई कर देना, उगते ही। दूसरा भाग दिखे कि निराई कर देना लेकिन जागृति के बिना ऐसा कैसे हो सकता है? और बहुत बड़ी जागृति की ज़रूरत है। हम ऐसी आशा भी कैसे रख सकते हैं? इसलिए बहुत आशा नहीं रख सकते न!

इसलिए उपाय करना चाहिए। कोई आकर कहे, 'आपका ज्ञान बहुत ऊँचा है।' उस घड़ी समझ जाना कि यहाँ रोग हो जाएगा अभी। रोग होने का प्रत्यक्ष कारण! हमें वहाँ सावधान हो जाना चाहिए।

पहले कभी इसमें मिठास बरती थी? जिस दिन मिठास बरते, उस दिन वह उगता है और फिर से मिठास बरते तो इतनी बड़ी कोंपलें फूटेंगी। जैसे आम की कोंपल निकलती है न! दो पत्तियों से इतनी बड़ी, दूसरी दो पत्तियाँ उगें तो इतना बड़ा हो जाता है, इस तरह बढ़ता जाता है। हम मिठास का पानी पी गए कि बढ़ गया। 'क्या चंदूभाई, आप तो ओहोहो, ज्ञानी ही हो गए।' तो यह सुनकर अगर मिठास आई की उगा अंदर!

अब अगर ऐसा हो जाए न, तो वहाँ पर दूसरा उपाय करना, तुरंत मिटा देना चाहिए। अपने यहाँ उपाय है। रोग तो स्वाभाविक तौर पर उत्पन्न हो जाता है। जो बीज पड़ा है, उसका रोग तो उत्पन्न हो जाता है लेकिन उपाय है अपने यहाँ। अपने यहाँ यह 'विज्ञान' उपाय रहित नहीं है न?!

प्रश्नकर्ता : नहीं! यहाँ के एक-एक वाक्य ऐसे हैं कि सभी रोगों को खत्म कर दें।

दादाश्री : हाँ, उपाय है अपने यहाँ, इसका मूल इसमें से उगता है कि 'बहुत अच्छा हो गया है' उसकी मिठास बरती कि फूटा! और यह चीज़ मीठी है न? मोक्ष की तरफ का भुला दे, ऐसी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह जोखिम है, ज़बरदस्त जोखिम है, मोक्षमार्ग के लिए।

दादाश्री : जोखिम, आत्मघाती! कोई ऐसा कहे तब कहना, 'भाई, मेरी बात तो मैं ही जानता हूँ, आपको क्या पता चलेगा?' तब फिर वह ठंडा हो जाएगा। हमें क्या गुरु बन बैठना है?

प्रश्नकर्ता : दादा, छूटने जैसा है इसमें से।

दादाश्री : बहुत बड़ा फँसाव! और फिर भी वैसा उदय आए तो लोगों की 'हेल्प' करनी चाहिए, वह तो अपना काम है लेकिन उदय में आया हुआ होना चाहिए। गुरु बन बैठने में फायदा नहीं है, उदय में

आया हुआ होना चाहिए। उदय अपने आप ही आता है। जो 'सीट' चाहिए ही नहीं, उस 'सीट' पर ही बैठना पड़े, तो बात अलग है यानी उसके लिए आकांक्षा नहीं रखनी है!

खुद के पेपर में खुद ही मार्क्स दे, तो कोई फेल होगा?

प्रश्नकर्ता : कोई नहीं होगा।

दादाश्री : खुद पेपर की जाँच करे, खुद ही मार्क्स दे और खुद ही फेल हो जाए, तब मैं जानूँगा कि 'जजमेन्ट' है लेकिन ऐसा होता नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : यह तो वापस खुद बाहर नम्र दिखने की भी मेहनत करता है।

दादाश्री : इसलिए आत्मघात कहता हूँ न! वह आत्मघात लाता है। हमें तो इतना देखना है कि लोगों को आकर्षण होता है? नहीं! यदि आकर्षित नहीं होते तो बहुत रोग है अभी तक। आकर्षण यानी शुद्ध ही! शुद्ध होने लगे तो आकर्षित होने लगते हैं।

प्रश्नकर्ता : नहीं दादाजी, लोग तो आकर्षित होते हैं। कुछ समय के लिए तो आकर्षित होते हैं न?

दादाश्री : नहीं। बिल्कुल भी नहीं न! खड़ा ही नहीं रहता न कोई! पहले ही दिन उड़ जाता है बल्ब! एक-दो दिन के लिए निभा लेते हैं लोग, फिर नहीं निभाते। यह तो, 'ज्ञानीपुरुष' हैं, तो हमें दोष का पता चलता है। वर्ना तो उसे खुद को कैसे पता चलेगा? चला स्टीमर कोचीन की तरफ! कुतुबनुमा बिगड़ गया है, इसलिए कोचीन चला! वह कुतुबनुमा दक्षिण को ही उत्तर दिखाता है! वर्ना कुतुबनुमा हमेशा उत्तर में ही ले जाता है, वह उसका स्वभाव है! कुतुबनुमा बिगड़ जाए फिर क्या करें? और खुद को ध्रुव के तारे देखने आते नहीं है!

ये सभी भय सिग्नल जानने ही पड़ेंगे न? यों ऐसे ही कुछ चलता होगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं, सब से बड़ा जोखिम है यह तो।

दादाश्री : आत्मघाती तत्व है।

प्रश्नकर्ता : और फिर वह आगे बढ़ने ही नहीं देता, दूसरा नया ज्ञान उत्पन्न होने भी नहीं देता।

दादाश्री : होने ही नहीं देगा न! पूरा आत्मघात कर देता है न! जो है न, उसी को वापस गिराता रहता है।

प्रश्नकर्ता : खूबी यह है कि आपके जो शब्द निकलते हैं, वह 'एक्ज़ेक्ट' 'उसे' अंदर स्पर्श करते हैं, वह रोग उखड़ जाता है। दृष्टि बदल देते हैं, और अंदर 'एक्ज़ेक्ट' क्रियाकारी होता हुआ दिखाई देता है, बहुत वैज्ञानिक लगता है यह सब!

दादाश्री : बात पूर्ण वैज्ञानिक होगी, तभी लोगों का निबेड़ा आएगा न, नहीं तो निबेड़ा ही नहीं आएगा न!

''मारग साचा मिल गया, छूट गया संदेह।''

संदेह छूट गया, सही मार्ग तो मिल गया। रास्ता भूल गए होंगे तो वापस एक मील चलना पड़ेगा और क्या करना पड़ेगा? लेकिन जिसे जाना है उसे मिल आएगा। 'दादा' से पूछना कि 'हम भटक गए हैं या सही रास्ते पर हैं?' इतना पूछना। 'मेरा ज्ञान कैसा है?' ऐसा नहीं पूछना। 'भटक गया हूँ या सही रास्ते पर हूँ?' इतना ही पूछना है। दादा कहें, 'ठीक है रास्ता' तो फिर चलते जाना।

[८]

जागृति : पूजे जाने की कामना

'ज्ञानी' के नज़रिये से समझ

'ज्ञानीपुरुष' की समझ से समझ मिलानी है, 'पैरेलल टु पैरेलल।' वर्ना 'रेल्वे लाइन' उड़ जाएगी। 'खुद की' समझ तो डालनी ही नहीं है। अंदर समझ है ही नहीं न! रत्तीभर भी समझ नहीं है। खुद की समझ तो इसमें चलानी ही नहीं है। खुद में समझ है ही नहीं न! कुछ भी समझ नहीं है। यदि समझ होती न, तो भगवान बन जाता!

प्रश्नकर्ता : लोग प्रश्न पूछें और उनका खुलासा दें तो उसमें हर्ज क्या है?

दादाश्री : प्रश्नों के खुलासे अलग चीज़ है। अभी तो जागृति आनी चाहिए, अभी जागृति परिणामित होनी चाहिए। परिणामित होने के बाद, बहुत समय बाद में फिर दिए गए खुलासे काम के हैं। नहीं तो खुलासे तो, दो-खुलासे दिए और अपना ज्ञान 'डाउन' हो जाएगा, बुद्धिगम्य हो जाएगा।

प्रश्नों के जवाब देने से पहले तो पूरा 'इगोइज़म' उतर जाना चाहिए। पूरा यानी नाटकीय 'इगोइज़म' भी उतर जाना चाहिए। अभी तो ये सारे 'फंक्शन' कच्चे हैं। इन 'फंक्शन' पूरे हुए बिना स्याद्वाद वाणी नहीं निकल सकती। इसके बजाय तो बोलना ही नहीं चाहिए क्योंकि दोष लगता है। वह तो, जैसे-जैसे ये सारे पासे दबते जाएँगे, बुद्धि दबती जाएगी, 'इगोइज़म' खत्म होता जाएगा, वैसे-वैसे स्याद्वाद वाणी निकलेगी। अभी प्रश्नों में नहीं पड़ना है नहीं तो कच्चा कट जाएगा। फिर

वापस पक्का करना होगा तो नहीं हो पाएगा। इसलिए क्योंकि एक बार केस उलझ गया!

यानी अंदर 'इगोइज़म' का रस नहीं पड़ना चाहिए, बुद्धि का रस नहीं पड़ना चाहिए। उसमें फिर बुद्धि का अभाव हो जाना चाहिए, 'इगोइज़म' का अभाव हो जाना चाहिए और उसका भी अभ्यास होना चाहिए तब काम का! तब तक धीरज रखना अच्छा!

पूर्णाहुति करनी हो, तो...

किसी जगह पर कोई बात करते हो? बातचीत में कहीं भी पड़ना ही मत, क्योंकि लोग तो सुनेंगे, लेकिन खुद की क्या दशा होगी? लोगों को तो कान से सुनकर निकाल देना है लेकिन खुद को भी 'इन्टरेस्ट' आता है इसमें क्योंकि अभी 'इगोइज़म' है न, वे सभी अंदर ताक लगाकर बैठे ही रहते हैं। तो धीरे-धीरे उन्हें खुराक मिल जाती है।

अभी अंदर यह अहंकार वगैरह सब कम हुए बिना क्यों गाते रहते हो? किसी को चार आने का भी फायदा नहीं होगा और बेकार ही गाते रहने का अर्थ ही नहीं है न! उस घड़ी वे शब्द तो सभी को अच्छे लगते हैं। लोग कहेंगे भी कि, 'बहुत अच्छी बात है, बहुत अच्छी बात है।' लेकिन उससे तो खुद का 'इगोइज़म' बढ़ जाता है और लोगों को कुछ भी काम नहीं आता। सिर्फ इतना ही है कि ऊपर सुगंधी आती है! मुँह में जलेबी गई भी नहीं, बस सुगंधी आई उतना ही!

कच्चा रखना हो तो वह रास्ता सरल है, मिठास भी अच्छी रहेगी लेकिन खुद यदि ज़रा सा भी कच्चा पड़ेगा न, तो अहंकार वगैरह सब अंदर बैठे हुए हैं ही ताक लगाकर कि कब खुराक मिल जाए। भीतर अहंकार खुराक ढूँढ ही रहा है। हर एक में अंदर अहंकार तो बैठा हुआ है ही। अहंकार चढ़ बैठे न, तो वह फिर सिर्फ दलाली ही नहीं ढूँढता। अभी तो दलाली ढूँढता है, लेकिन बाद में तो फिर मूल रकम को और आपको खुद को भी खा जाएगा! वह तो अंदर है ही। इसलिए जानते रहना है कि जब तक इस अहंकार की हाज़िरी है तब तक और किसी

चीज़ में नहीं पड़ना है। जिससे अहंकार को 'स्कोप' मिले, वैसा रास्ता मत देना।

अपने ज्ञान का एक बाल जितना भी कहने जाएगा तो लोग टूट पड़ेंगे। लोगों ने ऐसी शांति देखी नहीं है, ऐसा सुना नहीं है, इसलिए टूट पड़ेंगे न! और वह अहंकार अंदर बैठा-बैठा हँसता रहेगा, 'हाँ, चलो, अपनी खुराक मिली!' अनादि से ढूँढ ही रहा है! पूर्णाहुति करनी है या अधूरा रखना है? कच्चा रखना है? पूर्ण करना हो तो किसी भी जगह पर कच्चे मत पड़ना। कोई पूछे न, तब भी कच्चे मत पड़ना।

उपशम, वह है दबा हुआ अंगारा ही

पहले बुद्धिगम्य आएगा और वह भी 'ज्ञानीपुरुष' से बहुत समय तक सुनते रहें तब आता है। वह भी, धीरे-धीरे 'स्टडी' करते जाने से आए, तो काम का है।

जिसकी जागृति बढ़ जाए, उसे हमें बहुत सावधान करना पड़ता है। लेकिन अब यदि वह आज्ञा में रहे न, तो उसकी 'सेफसाइड' हो जाएगी, पर 'सेफसाइड' में आना बहुत मुश्किल चीज़ है।

अब खुद का अहंकार दिखाई दे, वही इतनी अच्छी जागृति है। वर्ना तो सिर्फ अहंकार ही नहीं दिखाई देता, बाकी सभी कुछ दिखाई देता है। जो चढ़ बैठनेवाला है, सिर्फ वही नहीं दिखाई देता।

बुद्धि क्षय हो जानी चाहिए। उसके बाद अहंकार क्षय होना चाहिए। उसके बाद फिर बाकी सभी पौद्गलिक इच्छाएँ क्षय हो जानी चाहिए। अभी तो अंदर वे इच्छाएँ दिखाई नहीं देतीं लेकिन अंदर उपशम पड़ी रहती हैं। जो भीतर अंदर ही अंदर दबी हुई हैं, वे सभी क्षय होनी चाहिए। अभी तो इन सभी इच्छाओं का खुद को पता नहीं चलता। लेकिन जब तक विषय का विचार आता है तब तक पौद्गलिक इच्छाएँ हैं, ऐसा निश्चित हो गया। जब तक अंदर विषय का विचार तक भी आता है, तब तक पौद्गलिक इच्छाएँ हैं और तब तक सारा दबे हुए अंगारों जैसा है।

इसलिए सावधान रहना। यह तो बहुत दुष्कर है, गाड़ी उलट देगा, और कहीं का कहीं चला जाएगा। जागृति तो चली जाएगी लेकिन यह समकित भी चला जाएगा। यह अहंकार फिर चढ़ बैठेगा, और बाकी सब भी चढ़ बैठेंगे। इसलिए भगवान ने कहा है कि उपशम हो चुके गुण हैं, इसलिए अवश्य गिरेगा ही।

प्रश्नकर्ता : आपने बारहवें गुणस्थानक में बिठा दिया है तो फिर गिरेंगे नहीं न?

दादाश्री : नहीं! नहीं गिरेंगे। यानी गिरने का मतलब क्या है? व्यवहार में गिरना होता है न! बारहवाँ तो निश्चय से है और व्यवहार में तो अभी भी ग्यारहवें गुणस्थानक में आते ही गिर जाता है वापस। व्यवहार एकदम ग्यारहवें में आता है, और फिर से गिर जाता है। इसलिए ग्यारहवाँ गुणस्थानक व्यवहार का है, उपशम!

अत: जब तक क्षय नहीं हुआ है, तब तक यह नहीं चलेगा। पूरा व्यवहार क्षय हुए बिना कुछ भी नहीं चलेगा। अरे, नौवाँ *गुंठाणा* ही पार नहीं कर सकेगा न! जब तक विषय का विचार आता है न, तब तक नौवाँ *गुंठाणा* पार नहीं होता। अत: यदि कभी बोलने जाएगा तो दशा बिगड़ जाएगी। जोखिमदारी है! अत्यंत जोखिमदारी! क्योंकि सभी रोग हैं ही, अभी वे उपशम हुए हैं, क्षय नहीं हुए हैं। उन्हें क्षय होना पड़ेगा। उपशम हुए हैं, इसलिए दबा हुआ अंगारा कहलाएगा। कब भड़क उठेगा, वह कहा नहीं जा सकता।

'खुद' के प्रति पक्षपात, स्वसत्ता पर आवरण

अभी तो खुद को अपने आप के प्रति पक्षपात है, पूरा ही पक्षपात है। खुद के प्रति पक्षपात नहीं रहे तो खुद की भूल पता चलेगी! पक्षपात समझ में आया? अब 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा भान तो नहीं रहता है, लेकिन जब कर्म के उदय आते हैं तब 'खुद' उदय स्वरूप हो जाता है! और उदय स्वरूप हुआ कि जागृति पर आवरण आ जाता है और खुद की भूल दिखाई नहीं देती। लेकिन सत्संग में आते रहने से वह भूमिका

कमज़ोर होती जाती है और उपयोग रहने लगता है। सत्संग कम होगा तो उपयोग आवरित होता रहेगा।

घर में अगर चोर घुस जाए न, तो भीतर आत्मा है तो तुरंत ही समझ में आ सकता है ऐसा है। लेकिन समझ में क्यों नहीं आता? 'अपने यहाँ तो ऐसा कुछ नहीं है' ऐसा पक्षपात है, इसलिए उस तरफ का आवरण है और इसीलिए यह सब जानने नहीं देता। वर्ना तुरंत समझ में आ जाए।

'किसकी अँगूठी अच्छी है?' पूछेंगे तो तुरंत उँगली ऊँची करेगा। क्योंकि ऐसा पक्षपात है कि 'खुद की अँगूठी अच्छी है!'

इस तरह से खुद के प्रति खुद को पक्षपात है, इसलिए मूर्च्छित किए बिना नहीं रहता। उसका खुद को पता ही नहीं चलने देता न! 'मैं चंदूभाई हूँ' उसका भान तो हमने तोड़ दिया है, और दिया हुआ आत्मा भी खुद के पास रहता है लेकिन जब उदय के चक्कर घेर लेते हैं तब पता नहीं चलता कि 'मेरी क्या भूल हो रही है? कहाँ भूल हो रही है?!'

निरा पूरा भूल का ही तंत्र है न! उसी वजह से तो खुद की सत्ता आवृत पड़ी हुई है। आत्मा तो दिया है लेकिन सत्ता पूरी ही आवृत होकर पड़ी हुई है! और उस वजह से वचनबल व मनोबल भी नहीं खिल पाता। वर्ना वचनबल तो कैसा खिल जाए! अभी तो विषय पर पक्षपात है, कपट पर पक्षपात है, अंहकार पर पक्षपात है। इसलिए उपयोग जागृति रखो, सत्संग का ज़ोर रखो, तो ये सभी व्यवहार की भूलें दिखाई देंगी और हर तरफ उपयोग रहेगा। सत्संग में नहीं आएँगे तो क्या होगा? उपयोग रुक जाएगा। उसका क्या कारण है? पक्षपात! और वह खुद को भी पता नहीं चल पाता।

जागृति, वह 'ज्ञान' नहीं है। जागृति तो, जागृति है। 'ज्ञान' अलग चीज़ है। जागृति तो, नींद से जगना, वह जागृति है। ऐसा कहा जा सकता है कि अब नींद नहीं रही! 'ज्ञान' तो बहुत बड़ी चीज़ है। सभी ओर का जो उपशम हुआ पड़ा है न, वह क्षय हो जाए उसके बाद फिर 'ज्ञान'

उत्पन्न होता है। क्षयोपशम हुआ है इसका मतलब अहंकार है तो सही, लेकिन अभी दिखाई नहीं देता। अग्नि है लेकिन ऊपर राख है इसलिए हमें ऊपर से दिखाई नहीं देता। हम ऐसा जानते हैं कि राख है लेकिन ज़रा सी भी हवा आएगी तो पता चल जाएगा, भभक उठेगा।

तब 'जागृति' परिणामित होती है 'ज्ञान' में

जागृति बढ़ाते रहना, तो लाभदायक होगा। जागृति बढ़ी हुई हो न, तो और कर्म बंधन नहीं होगा। जागृति से कर्म बंधन नहीं होता, अतः अंदर बिल्कुल शुद्ध हो जाता है। तब तक 'इगोइज़म' विलय होता रहता है।

मान में कपट नहीं है। मान में कपट होता तो जागृति ही उत्पन्न नहीं होती। कपट यानी पर्दा! जिस पर पर्दा है, वह दिखाई नहीं देता, वहाँ वह अंध रहता है।

प्रश्नकर्ता : कपट क्या है?

दादाश्री : चीज़ को ढंकने की कोशिश करता है। यह सब कपट ही कहलाएगा न! अंदर सारा कपट ने ही उल्टा करवाया है न। अहंकार और कपट दोनों एक हो जाएँ, तब होता है न ऐसा! उल्टे रास्ते कौन ले जाता है? क्रोध-मान-माया-लोभ। वे चारों ही जब इकट्ठे हो जाते हैं तो उल्टे रास्ते पर ले जाते हैं। मूलतः यह सारा अहंकार का है और अंदर लोभ किस चीज़ का है? अंदर उसे स्वाद आता है।

जागृति ज्ञान में परिणामित हो, उससे पहले तो कपट का एक अंश तक नहीं रहना चाहिए। किसी भी प्रकार के कपट का अंश नहीं रहना चाहिए, विषय का अंश नहीं रहना चाहिए। यानी विषय का विचार तक नहीं आना चाहिए।

क्या-क्या जाना चाहिए? अहंकार क्षय हो जाना चाहिए। बुद्धि क्षय हो जानी चाहिए। उपशम हुई बुद्धि नहीं चलेगी। सभी कर्म क्षय हो जाने के बाद क्रोध-मान-माया-लोभ क्षय होते हैं। सभी गुण क्षायक हो

जाएँगे, तब स्याद्वाद वाणी निकलेगी। तब तक तो जोखिमदारी है। बहुत ही जोखिमदारी, अत्यंत जोखिमदारी!

जहाँ 'जागृति' है, वहाँ कषाय को 'पोषण' नहीं

क्रोध-मान-माया-लोभ की शक्तियाँ अंदर बैठी हुई रहती हैं। वे कहती हैं, 'कब दादा को छोड़े और इसे पकड़ लूँ'। वे किसी भी रास्ते से आड़ा-टेढ़ा दिखाकर भी इसे छुड़वाने को तैयार रहते हैं क्योंकि जब तक ये खड़े हैं, जब तक साबुत हैं, तब तक निर्वंश नहीं होंगे। तब तक बोलने जैसा नहीं है। वह वाणी तो हवा-पानी हो जाएगी (भाप बनकर उड़ जाएगी)। इसलिए बोलना नहीं है।

जिन दोषों के उदय में आने से उनमें मिठास लगे, तो ऐसा कहा जाएगा कि उसे खुराक मिल गई। क्रोध-मान-माया-लोभ को खुराक मिल जाए। फिर तो वे उस तरफ ज़ोरदार शक्ति का उपयोग करते हैं! यह तो, खुराक नहीं दी थी, इसलिए वे कुछ दिन भूखे रहे थे न, इसलिए निर्बल हो गए थे। तीन साल तक खुराक नहीं दी जाए और वे भूखे रहें तो तीन साल के बाद चले जाएँगे लेकिन लोग अंदर थोड़ा-थोड़ा देते हैं। बहुत दयालु हैं न, बहुत *लागणी* वाले हैं न! कहेंगे, 'लो! दाल-चावल और यह थोड़ा लो। अरे, दादा का प्रसाद तो लो।' यानी थोड़ी-थोड़ी खुराक देते हैं। यदि बिल्कुल भूखा रखा जाए तो तीन साल से ज़्यादा नहीं टिक सकेंगे। वे चले गए तो सर्वस्व, पूरा साम्राज्य अपने हाथ में आ जाएगा।

क्या ऐसा पता चलता है कि वे कषाय खा जाते हैं? पता चलता है कि यह कौन खा गया? कषाय ऐसे खा जाते हैं। अगर महीने में दो बार ही खाना मिले, तो वापस जैसे थे वैसे के वैसे मज़बूत हो जाते हैं।

हमारे पास से तो कभी भी खाकर नहीं गए। उसके बाद ही तो चले गए न! फिर से हमने तय किया हो कि 'इन्हें नहीं खिलाना है' तो नहीं खाते। जागृति रहनी चाहिए।

अभी तक वे सारे कषाय बैठे हुए हैं, चले नहीं गए। मैंने उन्हें मारा भी नहीं है। मैं कोई हिंसक नहीं हूँ। यानी कि वे चले नहीं गए हैं।

उसी प्रकार, ऐसा भी नहीं है कि हमें उन्हें भूखा मारना है। वे 'ज्ञानीपुरुष' के ताप से दूर चले जाते हैं, उसमें हम क्या करें? उसके बाद हमें जान-बूझकर नहीं बुलाना है। आपके पास कभी खाने के लिए आते हैं?

प्रश्नकर्ता : आते हैं दादा।

दादाश्री : आज कच्चा खिलाओगे तो कल पक्का खाकर जाएँगे इसलिए उनके साथ खाने-खिलाने का व्यवहार ही नहीं रखना है। भोजन करवाने का व्यवहार ही नहीं। बाकी तो सभी लोग खिलाते हैं, क्रोध को भोजन करवाते हैं, मान को भोजन करवाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ये सारी खुराक कषाय ही खा जाते हैं, तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वे तो खा जाएँगे। फिर भी 'दादाजी' की छत्रछाया है, कृपा से सब साफ (क्लियर) हो जाएगा, ऐसा है। खुद ही अगर इस सत्संग में से इधर-उधर हो गए तो तुरंत ही चिपट जाएगा सब। आपको तो 'दादाजी' का आसरा नहीं छोड़ना है। चरण नहीं छोड़ने हैं!

ये क्रोध-मान-माया-लोभ वगैरह तो सब दबे हुए हैं। अभी अगर ज़रा दबाव आए न तो वे भभक उठेंगे। इसलिए अगर पूर्ण करना हो तो यह रास्ता है कि सभी क्षय हो जाने चाहिए। उपशम और क्षायक, इन दो शब्दों को समझ लेना।

ये सारी वंशावली कम हो जाएगी तब काम होगा। इस वंशावली को कम करना एक विकट काम है। अनंत जन्मों का माल है सारा! ये सभी गुण उपशम हो चुके हैं। अब इनमें से कुछ फूट निकलते हैं और कुछ अगले जन्म में फूटेंगे, उसमें हर्ज नहीं है। अगला जन्म तो समझो कि पद्धतिपूर्वक का जन्म है, लेकिन यहाँ फूट निकलेगा तो परेशानी हो जाएगी। यहाँ पर तो फिर, यहाँ से हिलने ही नहीं देंगे!

'क्षायक,' के बाद सेफसाइड

पूर्णाहुति के बगैर यह बात हाथ में मत लेना क्योंकि अंदर सभी

दोष उपशम होकर बैठे हुए हैं। और कुछ कह कैसे सकते हो? अभी 'सर्टिफाइड' नहीं हुए हो आप। यह तो अभी, सिर्फ इतना है कि आपको चिंता नहीं होती और धीरे-धीरे आपका मोक्षमार्ग कट रहा है। कहने के लिए तो... जब 'ज्ञानीपुरुष' कह दें कि 'सर्टिफाइड' है, तभी बोलना।

अंदर सभी दोष तैयार ही हैं, वर्ना तो हम ही नहीं कह देते, पहले दिन ही कि 'अब आप बात करो, सत्संग करो, हम चैन से बैठे रहेंगे।' हम तो ऐसा ढूँढ ही रहे हैं। बाकी, जब सभी गुण क्षायक हो जाएँगे, तब अपने आप सबकुछ उत्पन्न होगा। तब तक आपको कोई जल्दबाज़ी नहीं करनी है।

मीठा लगे, वहाँ पड़े मार

जागृति किसे कहते हैं कि सोए नहीं। उसे जागृति कहते हैं। जागृति हो तो चोर नहीं घुस जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : तो खुद के ये सारे दोष भी दिखाई देने चाहिए न?

दादाश्री : दिखाई देते हैं न!

प्रश्नकर्ता : अहंकार भी दिखाई देना चाहिए न?

दादाश्री : वह भी दिखाई देता है न!

प्रश्नकर्ता : तो फिर उसके गिर जाने का कारण क्या होता है?

दादाश्री : वह अहंकार ही खुराक ले जाता है यह सारी। यह जो गर्व रस करवाता है न, वह अहंकार ही यह सब करवाता है हमसे कि 'यह तो बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, लोगों को अच्छा लगा।'

प्रश्नकर्ता : अहंकार का यह जो रस अधिक चख लेता है उसके कारण वापस ऐसे गिरना पड़ता है न?

दादाश्री : हाँ और क्या! इसमें तो बहुत मिठास आती है। जैसे कि लोग कहते हैं न, 'यह मैंने किया,' तब करने का गर्व उत्पन्न होता है। कमाई करता है तब तक गर्व रस उत्पन्न होता है और नुकसान होता

है तब क्या कहता है? 'भगवान ने किया।' अरे पगले, कमाया तब 'मैंने किया' कह रहा था। जब गर्व रस उत्पन्न होता है, उस घड़ी मिठास आती है। जब मीठा लगे न, तब जान लेना कि मार पड़ने वाली है।

नमकीन व मीठे का भेद नहीं रहे, तब जानना कि ज्ञान है। जिसके लिए नमकीन व मीठे में भेद नहीं रहे, तब जानना कि ज्ञान है!

जहाँ 'विशेषता,' वहाँ विष

प्रश्नों का खुलासा नहीं दे सकते। एक अक्षर भी नहीं बोल सकते। सिर्फ सहज रूप से बातचीत कर सकते हैं वर्ना दूसरों में और अपने में फर्क मत मानना। यह तो विशेषता दिखाने के लिए बोलते हैं और वही सारे कषाय करवाते हैं न! हमारा एक भी वाक्य विशेषभाव वाला नहीं होता। कुदरती रूप से ही निकलता रहता है क्योंकि हमारी 'रिकॉर्ड' है न! आपकी वाणी 'रिकॉर्ड' बन जाए तो फिर परेशानी नहीं है। 'रिकॉर्ड' बन जाए, उसके बाद हो चुका। अभी 'रिकॉर्ड' नहीं बनी है। नहीं?!

कोई दो लोग बात कर रहे हों न, तो अक्लमंदी दिखाने का मन होता है लेकिन उसे 'ज्ञान' नहीं कहते। यह स्पर्धा और विवाद करने जैसी चीज़ नहीं है। स्पर्धा नहीं होनी चाहिए। स्पर्धा वाली सारी चीज़ें सांसारिक हैं!

समकित द्वारा क्षायक की ओर

जैसे-जैसे जागृति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उपशम हो चुके गुण क्षय होते जाते हैं। इस जागृति का फायदा उठाना है। बाहर के जो कर्म उपशम हो गए हों, वे सामायिक करने से क्षय हो जाते हैं लेकिन फिर भी जब तक 'टेस्टेड' नहीं हो जाए, तब तक कुछ नहीं होगा। जीवन में 'टेस्टिंग इग्ज़ामिनेशन' आना चाहिए।

बाकी, जागृति तो वह है कि यह दिखे, वह दिखे, सबकुछ दिखे। पूरे दिन ये 'दादा' ही याद रहा करें। 'मैं शुद्धात्मा हूँ'-यह सब 'दादा'

के कारण ही है। यह कृपा का फल कहलाता है। जबकि यह जागृति अलग चीज़ है।

बाकी, इसमें जल्दबाज़ी करने जैसा नहीं है। जो ज्ञान आपने पाया है न, वह लाख जन्मों में भी किसी को प्राप्त नहीं हो सकता। यह तो जल्दी से मिल गया है इसलिए उतावला हो जाता है। यह 'लाइन' उतावला होने की है ही नहीं। यह तो स्थिरता की 'लाइन' है!

'मैं शुद्धात्मा हूँ' का लक्ष्य बैठना, उसे भगवान ने सब से बड़ी चीज़ कही है। वहाँ क्रमिक मार्ग में तो शब्द से प्रतीति होती है, उसकी भी बहुत कीमत है। शुद्धात्मा के जो गुण हैं, उन गुणों पर प्रतीति बैठ जाए कि 'यह मैं हूँ,' तो उसकी बहुत बड़ी कीमत मानी है, उसे समकित कहा है। वह प्रतीति भी सिर्फ शब्द से और आपको तो 'वस्तु' की प्रतीति हुई है, वह स्वाभाविक प्रतीति है यानी क्षायक प्रतीति कहलाती है! यह ज्ञान बहुत काम करे, ऐसा है।

बहुत ही सावधानी से चलना चाहिए

अत: यदि काम पूर्ण कर लेना हो तो सावधान रहना। हो सके तब तक किसी जगह पर बातचीत नहीं करनी है। लोगों को यह ज्ञान समझाने मत जाना नहीं तो क्या से क्या हो जाएगा! वीतराग की वाणी का एक शब्द भी बोलना, वह तो सब से बड़ी मुश्किल है!

लोग तो चिपट पड़ेंगे, लोगों का क्या? लोग तो समझेंगे कि हमें कुछ मिलेगा। कुछ प्राप्त हो जाए, उसके लिए लोग चिपट पड़ेंगे या नहीं? लेकिन लोगों से कह देना कि, 'इसमें मेरा काम नहीं है।' एक अक्षर भी नहीं बोलना चाहिए। वर्ना उसमें खुद का क्या से क्या हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : लेकिन जो अनुभव हुए हों, वे कह सकते हैं न?

दादाश्री : अनुभव तो है ही नहीं। जो सारी बातें निकलती हैं, वे हमारे कहे हुए शब्द ही निकलते हैं। वे शब्द उग निकलते हैं सारे। बाकी, अनुभव तो धीरे-धीरे होता है।

पूरा वीतराग विज्ञान हाज़िर हो जाना चाहिए। विज्ञान का अंश तो किसी को पता है ही नहीं। यह तो हमारी जो वाणी अंदर उतर गई है, वह निकलती है। और अगर कोई बड़ा तीसमारखाँ आ जाए न, तो तोड़ ही देगा, तीन ही शब्दों में तोड़ देगा। बुद्धिगम्य चलेगा ही नहीं न! बुद्धिगम्य क्या जगत् के पास नहीं है? अरे, बड़े-बड़े शास्त्र के शास्त्र कंठस्थ करने वाले लोग हैं। वे एक भी शब्द बोलेंगे तो उलझ जाओगे।

यह तो हमारा दिया हुआ 'ज्ञान' परिणामित हुआ, तो परिणामित होकर फिर उसमें उगता है वापस। हमारा दिया हुआ जो बीज के रूप में पड़ा रहता है, वह उगता है। तब 'दादाजी ऐसा कह रहे थे' ऐसे करके बात करो लेकिन यदि ऐसे वाणी निकलेगी, तो कुछ दिन तो ऐसा लगेगा कि ये 'दादाजी' जैसा ही कह रहे हैं। बाद में न जाने कहाँ ले जाएगा! कुछ दिन बाद गिरा देगा, वह तो छोड़ेगा नहीं न!

बालक बनना, 'ज्ञानी' के

दूसरे लोग कुछ ऐसा अच्छा कहें न, कि 'आप बहुत अच्छा बोले, आप तो बहुत अच्छा बोले।' तब कहना कि, 'मैं तो बालक हूँ दादा का।' इतनी ही सावधानी रखनी है। दूसरे झंझट में नहीं पड़ना है।

हमारा शब्द पचकर उगेंगे तब वाणी निकलेगी। वह बात अलग है लेकिन वह शब्दशः होना चाहिए। कपोल कल्पित नहीं बोल सकते। अभी हमें जल्दी क्या है। 'दादा' के बालक रहना है या बड़े बनना है?

प्रश्नकर्ता : दादा के बालक रहना है।

दादाश्री : बस। बालक रहने में मज़ा है। 'सेफसाइड' है और जोखिमदारी नहीं है। 'दादा' को उठाना पड़ेगा। अगर वह कहेगा, 'मैं बड़ा हो गया।' तब कहेंगे, 'हाँ, तो घूमने जा बाहर।' हम कहते हैं कि 'बड़ा मत बनना।' पहले ऐसा समझाते हैं। फिर भी अगर वह कहे कि, 'नहीं, मुझे बड़ा बनना है।' तो होने देते हैं। 'बन तो फिर। मार पड़ेगी तब वापस आएगा।' अपना ज्ञान ऐसा है कि मार पड़े बगैर रहेगी नहीं। 'आपको' तो ऐसा कहना कि 'हे चंदूभाई, हम आपको जानते हैं कि

आप कैसे हो इसलिए हमें फँसाना मत।' 'आप' इस तरह से बातचीत करना। 'आपको इतना करना आया तो हम आपके साथ है, लेकिन हमें फँसाया तो आ बनेगी समझो,' कहना।

ऐसे करते-करते ही बड़े हुए हैं न! बच्चा चढ़ता है, गिरता है, खड़ा होता है, ऐसे करते-करते वह बाबा गाड़ी धकेलता है, ऐसे करते-करते चलना सीख जाता है न! उसी तरह चलना सीखता है न! यही रास्ता है न!

इसलिए यदि काम पूर्ण करना हो न, तो एक ही बात याद रखना कि कोई पूछे तो कहना, 'मुझे कुछ पता नहीं है, दादाजी के पास जाओ।'

पूर्णता के बगैर गिरा देता है 'उपदेश'

जब तक पूर्णाहुति नहीं हो जाए तब तक बोलने की बात में पड़ना ही मत। यह पड़ने जैसी चीज़ नहीं है। हाँ, हम किसी को इतना कह सकते हैं कि, 'वहाँ पर सत्संग अच्छा है। ऐसा सब है, वहाँ पर जाओ।' इतनी बातचीत कर सकते हैं। उपदेश नहीं दे सकते। यह उपदेश देने जैसी चीज़ नहीं है। यह 'अक्रम विज्ञान' है।

'दादा' का ज्ञान जिसने प्राप्त किया है, उस ज्ञान में से जो माल निकलता है न, उसे सुनकर तो पूरी दुनिया सबकुछ धर देगी। और धर देने पर तो क्या होता है? फँसता है फिर! सभी कषाय जो उपशम हो चुके थे न, वे फटाफट जागृत हो उठेंगे। आकर्षण वाली वाणी है यह। यह ज्ञान आकर्षक है इसलिए मौन रहना। यदि पूरा हित चाहते हो तो मौन रहना। अगर दुकान जमानी हो तो बोलने की छूट है और दुकान चलेगी भी नहीं। दुकान खोलोगे तो भी नहीं चलेगी, खत्म हो जाएगी क्योंकि 'दिया हुआ ज्ञान' है न, तो उसे खत्म होने में देर नहीं लगेगी। दुकान तो क्रमिक मार्ग में चलती है। दो जन्म, पाँच जन्म या दस जन्म तक चलती है और फिर वह भी खत्म हो जाती है। दुकान खोलना यानी सिद्धि बेच देना। आई हुई सिद्धि को बेचने लगे, दुरुपयोग किया!

गोशाला जो था न, वह पहले तो महावीर भगवान का शिष्य था,

खास, 'स्पेशल' शिष्य लेकिन अंत में वह विरोधी बनकर खड़ा रहा। गोशाला महावीर भगवान के पास बहुत समय तक रहा। फिर उसे ऐसा लगा कि मुझे यह सारा ज्ञान समझ में आ गया, इसलिए भगवान से अलग होकर कहने लगा कि 'मैं तीर्थंकर हूँ, वे तीर्थंकर नहीं हैं।' और कितनी बार तो ऐसा भी कहता था कि, 'वे भी तीर्थंकर हैं और मैं भी तीर्थंकर हूँ।' अब ऐसा रोग घुस गया, तो फिर क्या दशा होगी उसकी?!

अब, जब महावीर भगवान के पास था तब भी वहाँ पर सीधा नहीं रहा तो हमारे पास बैठा हुआ कैसे सीधा रहेगा? यदि कुछ गड़बड़ हो जाए तो क्या दशा होगी? और वह तो चौथे *आरे* की बात थी। यह तो पाँचवाँ *आरा* (कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा) है, अनंत जन्म खराब कर देगा।

अनादि से यों ही मार खाई है न, लोगों की! यही की यही मार खाता रहा है। ज़रा सा भी स्वाद मिल जाए कि चढ़ ही जाता है ऊपर!

अपूज्य को पूजने से पतन

क्या पूजे जाने की (कोई मेरी पूजा करे, ऐसी) कामना होती है? बता देना, मैं उसे दबा दूँगा। हाँ, यह जड़ काट देंगे तो फिर बंद हो जाएगा। यह कामना बहुत खतरनाक है। कामना नहीं होती है न? कभी होने लगेगी। क्या! अत: ऐसा मानकर चलना कि जोखिम है। क्योंकि लोग 'जय-जयकार' करते हैं न, तब चाय की लत की तरह लत लग जाती है। फिर जब नहीं मिलता है न, तब परेशान हो जाता है। उसके बाद कुछ नाटक करके 'जय-जयकार' करवाता है। अत: जोखिम है, सावधान रहना।

किस चीज़ की भीख है। पूजे जाने की भीख है। जब यों 'जय-जयकार' करते हैं तो खुश। अरे! यह तो नर्क में जाने की निशानियाँ हैं! यह तो बहुत ही जोखिमदारी है। ऐसी आदत पड़ जाए तो वह जाती नहीं है।

प्रश्नकर्ता : खुद को पूजे जाने की कामना है या नहीं उसका उसे खुद को कैसे पता चलता है?

दादाश्री : सबकुछ पता चलता है खुद को। उसे क्या अच्छा लगता है वह पता चलता है। क्या यह पता नहीं चलता कि आइस्क्रीम भाती है? अंदर थर्मामीटर है आत्मा! सब पता चलता है।

आज के जीव लालची बहुत हैं। वह खुद का ही शुरू करते हैं जगह-जगह पर, पूजे जाने के लिए सबकुछ करते हैं। और पूजे जाने की कामना रखनेवाले फिर कभी नया धारण नहीं कर सकते, सच्ची बात। हर कहीं पर लोग दुकान लगाकर बैठ गए हैं और पूजे जाने की कामना अंदर भरी रहती है कि ''किस तरह मुझे 'जय-जय' करे।'' तो उसे अंदर मन में मीठा लगता है। कोई 'जय-जय' करे तो मीठा लगता है। इतना मज़ा आता है वास्तव में!

उल्टा रास्ता है यह सारा! पूजे जाने की कामना जैसा भयंकर कोई रोग नहीं है। सब से बड़ा रोग हो तो पूजे जाने की कामना! किसे पूजना है? आत्मा तो पूज्य ही है। देह को पूजना रहा ही कहाँ फिर?! लेकिन पूजे जाने की इच्छाएँ-लालच है सारा। देह को पुजवाकर क्या हासिल करना है? जिस देह को जला देना है, उसे पुजवाकर क्या हासिल करना है? लेकिन यह लालच ऐसा है कि 'मेरी पूजा करे' इसलिए ये पूजे जाने की लालसाएँ हैं। नहीं तो मोक्ष कोई मुश्किल नहीं है। ऐसी जो नीयत होती है न, उससे मुश्किल है।

ऐसी इच्छा होना भी भयंकर गुनाह है। ऐसी इच्छा कभी हुई थी? अंदर थोड़ी कुलबुलाहट होती है? यह तो हम सावधान कर रहे हैं। सावधान नहीं करेंगे तो फिर गिर जाएगा न! अच्छी जगह पर आने के बाद गिर जाए तो फिर बेकार हो जाएगा, 'यूज़लेस' हो जाएगा और चोट भी बहुत लगेगी। नीचे हो और गिर जाए तो बहुत चोट नहीं लगती। बहुत ऊपर तक दौड़कर गिर जाए तो बहुत चोट लगती है। इसलिए जहाँ हो वहीं पर रहना, नीचे मत उतर जाना वापस।

कोई भी स्वतंत्र शब्द मत लाना। यहाँ से ले जाकर उसी शब्द का उपयोग करना, स्वतंत्र नया मत रखना। नया स्टेशन भी मत बनाना या फिर बनाया है ? नींव नहीं डाली ? नहीं बनाया ? चेतावनी तो होनी चाहिए न! वर्ना तो न जाने कहाँ जाकर खड़े रहोगे! अभी तो मार्ग बहुत अलग तरह का है यह। कितनी सारी ऐसी लुभावनी जगहें आती हैं! कभी भी देखी नहीं हो ऐसी लुभावनी जगहें आती हैं! जहाँ बड़े-बड़ों ने धोखा खाया है वहाँ आपकी क्या बिसात ? इसलिए 'दादा भगवान' के इस मार्ग पर चलो अच्छी तरह। हे! 'क्लिअर रोड फर्स्ट क्लास'! जोखिम नहीं, कुछ नहीं!

मोक्षमार्ग के भय स्थान

अतः जो कुछ मोक्षमार्ग में बाधक हो उसे छोड़ देना और आगे बढ़ो फिर से। वह ध्येय से पर कहलाता है न! खुद का ध्येय चूक नहीं जाए, कैसे भी कठिन परिस्थिति में भी खुद का ध्येय नहीं चूके ऐसा होना चाहिए।

आपका ध्येय अनुसार चलता है क्या कभी ? उल्टा नहीं कुछ भी ? यह तो सहज हो गया है, नहीं ?

प्रश्नकर्ता : अंदर 'हैन्डल' मारते रहना पड़ता है।

दादाश्री : चलाते रहना पड़ता है ? लेकिन क्या वे अंदर वाले मान जाते हैं ? तुरंत ही ?

प्रश्नकर्ता : तुरंत ही।

दादाश्री : तुरंत ? देर ही नहीं ? यह अच्छा है। जितना वे मान जाएँगे, उतना ही वह मुक्त होने की निशानी है। उतने ही हम उससे अलग हैं, वह निशानी है उसकी क्योंकि खुद कोई रिश्वत नहीं लेता। रिश्वत लेगा तो वे बात नहीं मानेंगे। 'खुद' उनसे रिश्वत खाता है तो वे आपकी बात नहीं मानेंगे फिर। 'खुद' स्वाद ले आता है, फिर 'अंदर वाले' नहीं मानते।

यह व्यवहार तो दूसरी ओर ही ले जाता है न! अनादि से जिसकी आराधना की है, वह यही एक मार्ग है न! व्यवहार तो हमेशा ही उस तरफ की आदतवाला होता है न! अतः अगर उस तरफ जाए तो भी हमें अपने ध्येय के अनुसार चलाना है। अगर पुराना रास्ता देखे तब बैल तो उसी रास्ते पर चलता जाता है। हमें अब अपने रास्ते पर ध्येय के अनुसार चलना है। इस रास्ते से नहीं, दूसरे रास्ते से जाना है। 'ऐसे चल' कहना।

अतः अगर खुद रिश्वत नहीं लेता है तो अंदर वाले तुरंत ही कहे अनुसार मुड़ जाते हैं लेकिन अगर रिश्वत लेता है तो फिर मार खिलाते हैं, हर बात में मार खिलाते हैं। इसलिए ध्येय से पीछे नहीं हटना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यह रिश्वत कैसी होती है?

दादाश्री : चख आता है और चखते समय फिर जब मीठा लगता है न, तो फिर वहाँ पर बैठ जाता है। 'टेस्ट' कर आया इसलिए वापस फिर थोड़ा एकाध-दो बोतल पी आता है।

यह सब चोर दानत कहलाती है। ध्येय पर जाना है, वह और चोर दानत, ये दोनों साथ में कैसे रह सकते हैं? दानत पक्की रखनी चाहिए, कोई भी रिश्वत लिए बगैर। यह तो वह मस्ती चखने की आदत होती है, इसलिए ऐसे वहाँ बैठकर ज़रा वह मस्ती के आनंद में रहता है।

प्रश्नकर्ता : यानी प्रकृति की मस्ती?

दादाश्री : तो फिर और क्या? उसे उसी की आदत पड़ गई है न! इसलिए अगर 'आप' कहो कि, 'नहीं, हमें तो अब ऐसे जाना है। मुझे मस्ती नहीं चाहिए। हमारे ध्येय के अनुसार चलना है।' ये प्रकृति की मस्तियाँ तो भूल-भूलैया में ले जाती हैं।

जो ध्येय तुड़वा दें, वे अपने दुश्मन हैं। अपने ध्येय का नुकसान करवाए तो वह कैसे पुसाएगा?! वर्ना यह तो उसके जैसा है कि ब्रह्मचर्य पालन करना है और अब्रह्मचर्य के विचार करने हैं। विचार में मिठास तो आती है, लेकिन क्या हो सकता है? यह भयंकर गुनाह है न! फिर

उसके खुद के ध्येय में 'टी.बी' ही हो जाएगी न! सड़न ही घुसने लगेगी न!

यहाँ तो खुद का मन इतना मज़बूत कर लेना है न, कि ''इस जन्म में जो हो, भले ही देह जाए, लेकिन इस जन्म में कुछ 'काम' कर लूँ'' ऐसा तय करके रखना चाहिए तब फिर अपने आप काम होगा ही। आपको अपना तय करके रखना चाहिए। आपकी तरफ से ढील नहीं रखनी है। जहाँ ऐसा प्राप्त हुआ है वहाँ ढील नहीं रखनी है। फिर जो हो वह ठीक। उसके लिए बहुत परेशान नहीं होना है और जो नहीं हुआ है उसके लिए भी बहुत परेशान नहीं होना है। यह सब तो मिल जाएगा।

खुद के पास अधिकार किसका है? भाव! कि इतना मुझे कर लेना है। निश्चय अर्थात् खुद के अधिकार का उपयोग करना। और बाकी बाहर का रोग नहीं घुस जाना चाहिए कि 'चलो, मैं पाँच लोगों को सत्संग सुनाऊँ या ऐसा कुछ,' इसका ध्यान रखना है। नहीं तो फिर दूसरे नई तरह के रोग घुस जाएँगे और गलत रास्ते पर चला जाएगा। तब फिर क्या होगा? कोई बचानेवाला नहीं मिलेगा। अतः अगर मोक्ष में जाना हो तो 'बात करने' में मत पड़ना। कुछ पूछे तो कहना कि 'मैं नहीं जानता।'

ये तो हम सारे भयस्थान दिखा रहे हैं। भयस्थान नहीं दिखाएँगे न, तो सब उल्टा हो जाएगा। ये सभी पुण्यशाली हैं न, बात भी प्रकट हुई है न! नहीं तो बात कैसे पता चलेगी? और मैं इसमें कहाँ गहरा उतरने जाऊँ?! यह तो बात निकली तो निकली, नहीं तो कौन जानता था कि ऐसा सब चल रहा होगा!

गुप्त वेश में निकल जाओ

जैसा हो गया है वैसा मुझे कह दे, उसी को आलोचना कहते हैं। जो हो गया, उसमें हर्ज नहीं है। उस सब के लिए तो क्षमा ही है लेकिन जैसा हुआ वैसा कह दे, तब से वह आलोचना कहलाती है तो उस रास्ते से वापस लौट गया। फिर हम संभाल लेंगे। यह तो जोखिमदारीवाला रास्ता है, इसलिए सावधान रहना। बहुत जोखिम है। एक अक्षर भी मत

बोलना और बोलना हो तब भी मुझे बताना, मैं कहूँगा कि 'बोलो अब आप।' बाकी बहुत जोखिम है, एक अक्षर भी बोलना हो तो भी बहुत जोखिम है।

जगत् का कल्याण होना होगा तब होगा, आपको अपने आप ही जब कुदरत निमित्त बनाए, उसके बाद करना न! आप तैयार होने मत जाना। तैयार होने जैसी चीज़ नहीं है यह! आपकी सिद्धियाँ बेचने जाओगे, तो जगत् क्या नहीं देगा? लेकिन आपकी मनुष्यरूपी पूँजी खत्म! अरे, खत्म ही नहीं, बल्कि मनुष्यरूपी पूँजी चली जाएगी और नर्क के अधिकारी बन जाओगे।

अपना तो मोक्षमार्ग है, इसमें तो गुप्त वेश में निकल जाना है।

'ज्ञानी' के साथ सीधी तरह से चलेंगे

अपना यह सत्संग मत छोड़ना। लोग ऐसा सिखाएँ, वैसा सिखाएँ, तब भी यह सत्संग मत छोड़ना। यहाँ आए यानी भगवान की कृपा उतर गई फिर सबकुछ ठीक हो जाएगा। उसमें कोई देर नहीं लगेगी। अत: ऐसी सब मुश्किलें तो आएँगी। इसीलिए तो हम कहते हैं न, 'मोक्ष में जाते हुए विघ्न अनेक प्रकार के होने से उनके सामने मैं अनंत शक्तिवाला हूँ।' लेकिन सामनेवाला भी (चंदूभाई) अनंत शक्तिवाला है न कि मोक्ष में जाने ही नहीं देगा!

इसलिए भगवान ने कहा है, कि ''ज्ञानीपुरुष' के अधीन रहकर चलना, उनके कहे अनुसार चलना। वे कुछ भी कहें, फिर भी चलते जाना क्योंकि वीतरागता है। खुद की बुद्धि से समझ में नहीं आए तो तय करना कि उनके नौ 'इक्वेशन' (समीकरण) समझ में आए हैं और एक समझ में नहीं आया तो उनकी भूल मत निकालना और 'मेरी भूल की वजह से समझ में नहीं आया' ऐसा समझना। क्योंकि अगर नौ समझ में आ गए, तो दसवाँ समझ में क्यों नहीं आ रहा? इसलिए उनकी भूल मत निकालना। वे भूल को खत्म करके बैठे हैं।' बुद्धि तो भूल दिखलाएगी, 'ज्ञानीपुरुष' की भी भूल ढूँढ निकालेगी।

एक जन्म का मरण हो तो चला सकते हैं, लेकिन 'ज्ञानीपुरुष' की विराधना करने से तो लाखों जन्मों का मरण होता है। किसकी विराधना की, वीतराग की? ये 'अंबालाल मूलजी भाई' को गालियाँ देनी हो तो, सौ गालियाँ देना। आपको ठीक नहीं लगता है तो गाली दो न! लेकिन, समझे बगैर ही लोग गुनाह कर बैठते हैं इसीलिए तो हमें गुप्त रखना पड़ा। गुप्त ही रखा है!

मैंने कहा है कि यह बहुत ऊँची जगह पर आपको ले जा रहा हूँ। वहाँ से गिरे तो हड्डी का टुकड़ा भी नहीं मिलेगा, इसलिए या तो मेरे साथ ऊपर आना ही मत और आना हो तो सावधानी से चलना। मोक्ष सरल है, एक ही अवतारी विज्ञान है यह। लेकिन यदि उल्टा-सीधा करना हो तो ऊपर चढ़ना ही मत, हमारे साथ आना ही मत। ऐसा सभी से कहा हुआ ही है। बहुत ऊँचा रास्ता है ऊपर से गिरने पर फिर हड्डी भी नहीं मिलेगी। फिर भी ऊपर आए हुए लोग वापस मुझसे कहते हैं कि 'यह अभी परेशान करेगा, ऐसा करेगा।' लेकिन हमने उसे इस प्रकार से बंधन में रखा है ताकि वह गिरे नहीं। जैसे सरकार रेलिंग बनाती है न, उसी तरह हम भी साधन रखते हैं। अभी तक किसी को गिरने नहीं दिया है।

अहो! कारुण्यता 'ज्ञानी' की

जो रोग होता है, वह 'ज्ञानीपुरुष' बताते हैं क्योंकि उन्हें सामने वाले का रोग मिटाना है, अन्य कोई भी दोष नहीं बताता। डॉक्टर मरीज़ का रोग बढ़ाता है या मिटाता है? और हम कहाँ यह हमारे लिए कह रहे हैं? यह तो आपके लिए 'स्पेशली' और वह भी वीतरागता से कह रहे हैं। शब्द कठोर नहीं होंगे तो रोग नहीं निकलेगा। कठोर शब्द के बिना रोग नहीं निकलता। रोग किससे निकलता है? कठोर शब्द और वीतरागता! कैसे शब्द कठोर, जोड़ों को तोड़ दें ऐसे कठिन और इसके बावजूद भी संपूर्ण वीतरागता!

ये 'दादा' बैठे-बैठे आराम से लोगों को सीधा करते हैं, धोते रहते हैं लेकिन फिर भी सभी को कहाँ धोने जाऊँ? मेरा दिमाग़ ही काम नहीं

करेगा फिर। सुबह से शाम तक क्या कम काम है? कितनी 'फाइलें' आती होंगी? कुछ लोग कहते हैं, 'मेरे पति ने मुझे ऐसा किया!' अब यह पाठ भी हमें सिखाना है?

प्रश्नकर्ता : इस दुनिया में कोई ऐसा केस नहीं होगा कि जो आपके पास नहीं आया हो, सभी प्रकार के केस आए हैं।

दादाश्री : क्या करें फिर? एक-दो लोगों को 'मैंने' मना किया तब 'अंदर' से बोले, 'फिर कौन से अस्पताल में जाएगा यह बेचारा? यहीं से आप निकाल दोगे तो वह कौन से अस्पताल में दाखिल होगा। बाहर किसी अस्पताल में फिट है ही नहीं।' इसलिए फिर मैंने शुरू किया वापस! लेकिन मन में तो ऐसा होता है कि यह क्या झंझट? इसलिए इन्हें धकेल देने का मन होता है लेकिन वापस अंदर से आता है कि 'लेकिन वह जाएगा कहाँ बेचारा? और कौन से अस्पताल में जाएगा? भले ही पागल जैसा है, बोलना भी नहीं आता, विवेक भी नहीं है, कुछ भी नहीं है, भले ही ऐसा है फिर भी चलने दो!'

प्रश्नकर्ता : यह जो कहते हैं न कि 'चले जाएँ तो अच्छा है' वह कौन सा भाग बोलता है? और वह कहते हैं कि 'यह बेचारा कहाँ जाएगा?' वह कौन सा भाग बोलता है?

दादाश्री : वह भाग परमात्म भाग है! 'कहाँ जाएगा वह?' परमात्म भाग बोलता है! 'भले ही पागल जैसा है, अपने साथ अविनय से बोल रहा है, लेकिन वह अब कहाँ जाएगा?!' परमात्म भाग ऐसा बोलता है! और कोई अस्पताल नहीं है कि ऐसे माल को रखेगा। अच्छे को भी नहीं रखते हैं, तो फिर! और रखकर भी उनके पास दवाइयाँ नहीं हैं। उनके पास कूटे हुए चूर्ण हैं और यहाँ पर कूटे हुए चूर्ण नहीं चलते। यहाँ तो लेई चाहिए, जो चुपड़ते ही ऐसे चिपक जाए!

बाकी इस कीचड़ में, और फिर बदबूदार कीचड़ में कौन हाथ डाले? लेकिन वह एक जीव तर जाए न, तो और कितने ही जीवों का जीवन रास्ते पर आ जाएगा, बेचारे! और उसका कल्याण हो ऐसा भाव

रहता है, उसका कल्याण करने के लिए ही हम डाँटते हैं। नहीं तो कौन ऐसा डाँटेगा? दिमाग़ कौन खराब करेगा! यह तो सामने वाले के कल्याण के लिए डाँटना पड़ता है। वर्ना तो बाप तो बाप बनने के लिए डाँटता है। सामने वाले के हित से भी ज़्यादा बाप होने की बहुत भीख होती है। पत्नी को पति झिड़कता है तो वह पति बनने के लिए ऐसा करता है! और 'ज्ञानीपुरुष' सामने वाले के कल्याण के लिए डाँटते हैं।

क्योंकि पूरी दुनिया ऐसे भुन रही है जैसे शक्करकंद को भट्ठी में भूनते हैं। फॉरेन वाले भी भुन रहे हैं और यहाँ वाले भी भुन रहे हैं। 'शक्करकंद भुन रहे हैं' ऐसा किसी से कहा तब वह कहने लगा, 'दादा, कहते हैं शक्करकंद सिक रहे हैं, लेकिन अब तो जलने भी लगे हैं। जो पानी था वह खत्म हो गया और अब शक्करकंद जलने लगे हैं।' यानी ऐसी दशा है! अपने सत्संग का हेतु क्या है? जगत् कल्याण करने का हेतु है। यह भावना कोई बेकार नहीं जाती।

हम क्या कहते हैं कि सर्व दु:खों का क्षय करो। ये दु:ख हमसे देखे नहीं जाते। फिर भी हममें 'इमोशनल'पन नहीं होता है। साथ ही उतने ही वीतराग भी हैं। इसके बावजूद सामने वाले के दु:ख हमसे सहन नहीं हो पाते क्योंकि हम हमारी सहनशक्ति जानते हैं। हमसे कैसा दु:ख सहन हो पाता था वह जानते हैं न, तो लोग ऐसा कैसे सहन कर पाते होंगे, उसका हमें पता है और वही कारुण्यता है हमारी!

[९]

पोतापणुं : परमात्मा

अभेदता, पूरे विश्व के साथ

यहाँ तो अभेदभाव है। आप और मैं, हम सब एक ही हैं। मुझे आपमें से किसी से कोई भेद है ही नहीं और ये इतने पचास हज़ार लोग हैं इसके बावजूद उनसे भी मुझे भेद नहीं है और इस दुनिया से भी मुझे भेद महसूस नहीं होता। यह तो, आपको भेद महसूस होता है।

यानी एक तो, मैं इन पचास हज़ार लोगों के साथ अभेद रहता हूँ और 'सेकन्डरी,' पूरी दुनिया के साथ अभेद रहता हूँ। मुझे किसी भी जगह पर भेद नहीं है, किसी के भी साथ। यानी दुनिया के साथ 'सेकन्डरी' अभेद हूँ और यहाँ 'फर्स्ट' अभेद हूँ। मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए। मुझमें बुद्धि ही नहीं है इसलिए मुझे अभेद लगता है, सबकुछ खुद का ही लगता है। जब तक बुद्धि हो तभी तक भेद रहता है। बाकी जहाँ बुद्धि नहीं है, वहाँ भेद कैसा? बुद्धि तो भेद डालती है, जुदाई दिखलाती है कि 'यह मेरा और यह तेरा।' जहाँ पर बुद्धि है ही नहीं, वहाँ 'मेरा-तेरा' रहा ही कहाँ? यह तो भेदबुद्धि उत्पन्न हुई है - 'मैं अलग और यह अलग।'

प्रश्नकर्ता : बस अलग होने की देर है। तभी भेद महसूस होता है न!

दादाश्री : और अलग हुआ मतलब उल्टा हुआ। हमें आपके प्रति भेद नहीं है, लेकिन आपको मेरे प्रति भेद है।

प्रश्नकर्ता : 'हम सब एक ही हैं,' ऐसा कई लोग कहते हैं न!

दादाश्री : वह तो ऐसा लगता है, लेकिन यों जुदाई रहती है। जब तक वह समझ में फिट नहीं हो जाता तब तक ऐसा ही लगेगा कि 'अलग हैं।' मुँह से कहते ज़रूर हैं कि हम सब एक हैं लेकिन जब तक समझ में फिट नहीं हो जाए तब तक अलग ही लगता रहता है। वह समझ में फिट हो जाना चाहिए। अर्थात् मुझे पूरे जगत् में कोई अलग लगता ही नहीं। ऐसा नहीं है कि जितने यहाँ पर आए हैं उतने ही मेरे हैं। ये सभी मेरे हैं और मैं सभी का हूँ!

जितनी अभेदता रहती है, उतनी ही खुद के आत्मा की पुष्टि होती है। हाँ, सब से भेद है, ऐसा मानते हैं इसीलिए तो खुद के आत्मा की सारी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई है न! भेद है, ऐसा मानने से ही यह झंझट हुई है न! आपको अब भेद रहता है किसी से?

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे सारे भेद खत्म करना हैं।

दादाश्री : क्या बात कर रहे हो? भेद खत्म किए बगैर तो चारा ही नहीं है न! अभेद होना पड़ेगा न?! *पोतापणुं* गया, इसका मतलब ही यह है कि भेद खत्म हो गए। अब, जब तक बुद्धि रहती है तब तक *पोतापणुं* नहीं छोड़ता न! और जब तक बुद्धि है तब तक बुद्धि भेद डालती है न! यह *पोतापणुं* चला जाएगा तो अभेद हो सकेंगे।

'आपापणुं' सौंप दिया

देखो, मैं आपको बता देता हूँ, ऐसे करते-करते हमारा बहुत समय बीत गया इसलिए आपको तो मैं सीधा रास्ता बता रहा हूँ। मुझे तो रास्ते ढूँढने पड़े थे। आपको तो, मैं जिस रास्ते गया था, वह रास्ता दिखा देता हूँ, ताला खोलने की चाबी दे देता हूँ।

ये 'अंबालाल मूलजी भाई पटेल' हैं न, उन्होंने खुद का *आपापणुं (पोतापणुं)* छोड़कर भगवान को ही सौंप दिया है तो भगवान उनका सभी संभाल लेते हैं और ऐसा संभालते हैं न, सही में! लेकिन खुद का *आपापणुं* छूट गया, अहंकार चला गया उसके बाद। वर्ना, अहंकार ऐसा नहीं है कि चला जाए।

जब तक वह *पोतापणुं* है तभी तक भेद है और तभी तक भगवान दूर हैं। *पोतापणुं* छोड़ दिया तो भगवान आपके पास ही हैं। छोड़ दो न, बिल्कुल आसान है! *पोतापणुं* छोड़ दिया तो आपका सब भगवान ही चला लेंगे। आपको कुछ नहीं करना होगा, यदि आप *पोतापणुं* छोड़ दोगे तो।

'दादा भगवान' किसे समझते हो आप इसमें? ये जो दिखाई देते हैं न, यह तो 'पब्लिक ट्रस्ट' है, 'ए.एम.पटेल' नामक और इन्हें जिनके वहाँ सत्संग के लिए ले जाना हो, वहाँ ले जाते हैं। जैसे संयोग हों वैसे ले जाते हैं क्योंकि इसमें 'हमारा' *पोतापणुं* नहीं है।

श्रीमद् राजचंद्र ने क्या कहा है? 'ज्ञानीपुरुष' कौन? वे जिन्हें किंचित्‌मात्र किसी भी प्रकार की स्पृहा नहीं है, जिन्हें दुनिया में किसी प्रकार की भीख नहीं है, जिन्हें उपदेश देने की भी भीख नहीं है या शिष्यों की भी भीख नहीं है, किसी को सुधारने की भी भीख नहीं है, किसी भी प्रकार का गर्व नहीं है, *गारवता* नहीं है, *पोतापणुं* नहीं है। इस *पोतापणुं* में सबकुछ आ जाता है।

इस 'वर्ल्ड' में कोई ऐसा इंसान नहीं है कि जिसे *पोतापणुं* नहीं हो, अपनी इस दुनिया में। ब्रह्मांड की बात अलग है। वहाँ तो कई तीर्थंकर हैं, सबकुछ है। जबकि अपनी दुनिया में, कोई ऐसा इंसान नहीं होगा जिसमें *पोतापणुं* नहीं हो। जिनमें *पोतापणुं* नहीं है, ऐसे तो सिर्फ वे ही होते हैं जो तीर्थंकर गोत्र में नापास हुए हैं।

'ज्ञानी' में पोतापणुं नहीं होता

पोतापणुं रहित के क्या लक्षण होते हैं? *पोतापणुं* नहीं होता, यानी क्या है कि सत् पुरुष से ऐसा कहो कि 'आज मुंबई चलिए।' तब वे ऐसा नहीं कहते कि 'नहीं'। लोग उन्हें मुंबई ले जाएँ तो वे पोटली की तरह चले जाते हैं, और पोटली की तरह अहमदाबाद आ जाते हैं। यानी कि *पोतापणुं* नहीं है। हमसे कोई पूछे कि, 'दादाजी, हम कब जाएँगे?' तब हम कहते हैं, 'आपको ठीक लगे, वैसा।' हम और कुछ नहीं कहते।

इसलिए वे लोग पोटली को ले जाते हैं। वह गुनाह नहीं है। हम ही ऐसा कहते हैं कि, 'भाई, आपको ठीक लगे तब ले जाना।' क्योंकि *पोतापणुं* नहीं है लेकिन जिनमें *पोतापणुं* है, वे पोटली की तरह जाएँगे क्या? वह तो कहेंगे, 'आज नहीं आना है।' जबकि मेरा तो *पोतापणुं* है ही नहीं! कोई पोटली बनने को तैयार होगा? अब क्या एक भी इंसान ऐसा कहेगा?!

अत: हमें तो मुबंई या बड़ौदा कुछ लोग पूछते हैं कि, 'दादा आप जल्दी आए होते तो अच्छा था।' ऐसा सब कहते हैं। तब मैंने कहा, 'पोटली की तरह मुझे ले आते हैं तब यहाँ आता हूँ और पोटली की तरह ले जाते हैं तब जाता हूँ।' तब फिर वे समझ जाते हैं। फिर कहते हैं कि, 'इसे पोटली की तरह कहते हैं?' अरे, यह पोटली ही है न, नहीं तो और क्या है यह? अंदर भगवान हैं संपूर्ण! लेकिन बाहर तो पोटली ही है न! इसलिए *पोतापणुं* रहा ही नहीं न!

मुझे जहाँ उठाकर ले जाएँ वहाँ जाते हैं हम। कई चीज़ें हमें नहीं खानी हो तो भी खाते हैं, नहीं पीनी हो फिर भी पीते हैं, न चाहते हुए भी सब करते हैं हम। और इसमें किसी का चल भी नहीं सकता। अनिवार्य है न! आपके 'एन्करिज़मेन्ट' के लिए हम आपकी चाय पीते हैं। अगर वह चाय बहुत कड़क हो, प्रकृति को माफिक नहीं आए ऐसी हो, फिर भी आपको आनंद होता है न, कि 'दादा' ने मेरी चाय पी, तो इसलिए हम वह चाय पी लेते हैं।

यह इतने दिनों की यात्रा की है, इसमें भी सभी के कहे अनुसार ही रहे। वे कहें कि 'यहाँ रहना है।' तब मैं कहता हूँ कि, 'हाँ, रहना है।' वे कहें कि 'यहाँ से उठिए अब' तो वैसा। हममें 'हमारापन' नहीं होता, 'हमारापन' का उन्मूलन हो गया है। बहुत दिनों तक 'हमारापन' किया है। हममें तो पहले से ही ममता बहुत कम थी, इसलिए झंझट ही नहीं थी कोई।

ऐसा है न, मैं तो सभी के अधीन रहता हूँ, इसका क्या कारण है? मुझमें *पोतापणुं* नहीं है इसलिए मैं तो बिल्कुल संयोगों के अधीन रहता

हूँ। मैं तो आपके भी अधीन रहता हूँ, तो भला संयोगों के अधीन तो रहूँगा ही न! अधीनता अर्थात् संपूर्णतः निर्‌अहंकारिता! अधीनता तो बहुत अच्छी चीज़ है। जो हमारे साथ हैं, वे जैसा कहें हमें वैसा करना है। हमारा कोई अभिप्राय नहीं होता। हमें ऐसा लगे कि अभी उनकी बात में कमी है तब हम उनसे कहते हैं कि, 'भाई, ऐसा करो।' उसके बाद हम अधीन ही रहते हैं निरंतर।

'ज्ञानी' असहज नहीं होते

हमारी यह साहजिकता कहलाती है। साहजिकता में कोई परेशानी नहीं होती। दखल ही नहीं रहती न, किसी तरह की। आप ऐसा कहो तो ऐसा और वैसा कहो तो वैसा। *पोतापणुं* नहीं है न! और आप क्या ऐसे हो कि *पोतापणुं* छोड़ दो?! हमें तो अगर कहें कि 'गाड़ी में जाना है' तो वैसा। वे वापस कल कहेंगे कि, 'ऐसे जाना है' तो वैसे। ऐसा नहीं है कि 'नहीं'। हमें कोई परेशानी ही नहीं है। हमारा खुद का मत नहीं रहता। वह है साहजिकपन। औरों के मत से चलना, वह है साहजिकपन।

हममें साहजिकता ही होती हैं। निरंतर साहजिकता ही रहती है। क्षणभर भी साहजिकता से बाहर नहीं जाते। वहाँ हमारा *पोतापणुं* होता ही नहीं, इसलिए कुदरत जैसा रखती है वैसे रहते हैं। *पोतापणुं* नहीं छूट जाए, तब तक कहाँ से सहज हुआ जा सकेगा? *पोतापणुं* हो तब तक सहज कैसे हो सकेंगे लेकिन? *पोतापणुं* छोड़ दे तभी सहज होंगे। सहज होंगे तो उपयोग में रहा जा सकेगा।

उसके बाद ही ड्रामेटिक रहा जा सकेगा

'पोतापणुं' तो बहुत बड़ा शब्द है। ज़रा सा भी *पोतापणुं,* किसी भी प्रकार का *पोतापणुं* हममें नहीं है। और फिर भी हीरा बा को साथ में बिठाते हैं। लोग पूछें, 'ये कौन है?' तब हम कहते हैं, 'हमारी पत्नी हैं।' सबकुछ कहते हैं हम और ऐसा भी कहते हैं कि, 'आपके बगैर मुझे अच्छा नहीं लगता।' ऐसा कहता हूँ तो उन्हें कितना आनंद होता है!

लेकिन हमारा यह सब 'ड्रामेटिक' होता है। एक भाई मुझसे कहने लगें, 'मेरी ज़मीन पर आप पधारेंगे?' मैंने कहा, 'मुझे क्या हर्ज है!' और हम तो सबकुछ पूछते हैं, कि 'ज़मीन का सौदा कब किया, क्या भाव से ली? क्या देना है।' और तब कोई तो ऐसा समझेगा कि ये दादा तो ज़मीन के दलाल बन गए!

और किसी को शरीर पर ज़रा सा सफेद दाग़ हो जाए यों ही, कुछ भी होने वाला न हो, फिर भी वह मुझे दिखाता रहता है तब मैं यों ही हाथ फेर देता हूँ ऐसे, उसके मन के समाधान के लिए।

प्रश्नकर्ता : यह भी नाटक ही है न?

दादाश्री : नाटक ही! इसके अलावा भी पूरे दिन हमारा नाटक ही चलता है। पूरा दिन नाटक ही करता हूँ! आपके वहाँ दर्शन करने ले गए थे और वहाँ पर दर्शन दिए, वह भी नाटक और अगर नाटक नहीं होता तब तो उसमें मेरा *पोतापणुं* होता। *पोतापणुं* नहीं है इसलिए नाटक हो पाता है। वर्ना ऐसा होता रहता कि 'मुझे दर्शन देने जाना पड़ेगा। मुझे दर्शन देने जाना है' लेकिन ऐसा कुछ नहीं।

यानी यह 'ड्रामा' ही है। पूरे दिन मैं 'ड्रामा' ही करता हूँ। वहाँ सत्संग में बैठता हूँ, ये जवाब दे रहा हूँ, वह भी 'ड्रामा' ही है। पूरे दिन 'ड्रामा' ही है लेकिन *पोतापणुं* कम हो जाने के बाद ही यह ड्रामा शुरू हो पाता है। यों ही नहीं हो पाता।

फिर भी रहा पोतापणुं

कुछ लोग तो ऐसा ही समझते हैं कि 'मुझमें *पोतापणुं* है ही नहीं न, मुझमें मेरापन है ही नहीं न, अब।' जबकि यों तो कषाय में बरतता है। लो! बरतता है कषाय में और कहता है 'मुझमें *पोतापणुं* रहा नहीं अब।' *पोतापणुं* पर तो जी रहा है वह। वह *पोतापणुं* पर ही जी रहा है। वह *पोतापणुं* तो जाता ही नहीं। *पोतापणुं* जाना तो अति-अति मुश्किल है।

पोतापणुं जाने का मतलब क्या है? हमारी आवाज़ नहीं रहती

उसमें। जबकि आप, सभी कहते हैं वैसा ही करते हो या अंदर आपकी आवाज़ अलग रखते हो?

प्रश्नकर्ता : अलग रहती है।

दादाश्री : वही *पोतापणुं* है जबकि हमारी तो आवाज़ ही नहीं रहती किसी भी प्रकार की। अगर हमें कहें 'दादा, उधर बैठिए।' तो हम वहाँ बैठ जाते हैं। हमें अच्छा नहीं लगे तो भी बैठ जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि के साथ भी *पोतापणुं* का संबंध है न?

दादाश्री : बुद्धि ही *पोतापणुं* सूचित करती है। जैसे-जैसे *पोतापणुं* जाता है, वैसे-वैसे बुद्धि कम होती जाती है।

प्रश्नकर्ता : मेरापन और *पोतापणुं* इन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : मेरापन ममत्व सूचित करता है जबकि *पोतापणुं* जो है न, वह उच्च प्रकार का अहंकार है, बड़ा अहंकार है। वह कोई नोमिनल अहंकार नहीं है।

यह 'ज्ञान' लेने के बाद 'मैं' और 'ममता' 'आपने' छोड़ दिए हैं लेकिन *पोतापणुं* नहीं छोड़ा है। आपके 'मैं' और 'ममता' छूट गए हैं उसमें दो मत नहीं है क्योंकि चीज़ खो जाने के बाद चिंता नहीं करता। ममता किसे कहते हैं? खो जाने के बाद चिंता करे, वह ममता है। अतः आपका 'मैं' और 'मेरा' चला गया है, फिर भी *पोतापणुं* रहा है।

प्रश्नकर्ता : *पोतापणुं* अर्थात् इन्डिविजुऐलिटी (विशेषता)? मैं औरों से कुछ अलग हूँ, ऐसा?

दादाश्री : 'इन्डिविजुऐलिटी' तो निकल गई। 'मैं' और 'मेरा' दोनों चले गए, लेकिन अभी *पोतापणुं* है क्योंकि कोई चाहे कितना भी क्रोध करे, कितना भी अपमान करे, फिर भी आमने-सामने लड़-झगड़कर अंत में वह रात को उसका *निकाल* लाकर सो जाता है। आखिर में तो उसका *निकाल* ले आता है। अतः अहंकार चला गया है, ऐसा निश्चित हो गया। वर्ना अहंकार तो पूरी रात चलाता रहता है। जबकि यह तो

शायद ज़रा लड़-झगड़ लेता है लेकिन *निकाल* ले आता है न? अहंकारवाला *निकाल* नहीं लाता वह आगे बैर बढ़ाता ही जाता है। ममतावाला तो जेब कटने के तीन दिनों बाद भी शोर मचाता रहता है। कोई याद करवाए न, तो तुरंत ही 'अरे! अरे! क्या करूँ?' ऐसा करता है। जबकि आपको तो 'यह गया सो गया।' यानी अहंकार और ममता, दोनों चले गए हैं, *पोतापणुं* रहा है। उसे देखो न!

इसलिए कृपालुदेव ने कहा है न, कि 'ज्ञानीपुरुष' में *पोतापणुं* नहीं होता। कृपालुदेव ने '*पोतापणुं*' शब्द लिखा है, कुछ भारी लिखा है! आपको कैसा लगता है? कृपालुदेव ने यह शब्द अच्छा लिखा है न? अब यह कौन समझाए? जिस भाषा में कहना चाहते हैं ऐसी भाषा कौन समझा सकता है यहाँ पर?

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानीपुरुष' समझा सकते हैं न!

दादाश्री : हाँ। क्योंकि और किसी का काम ही नहीं है न!

सत्ता गई, पोतापणुं रह गया

प्रश्नकर्ता : आप्तसूत्र में वाक्य है।

''ज्ञानी नुं अंत:करण केवी रीते काम करतुं हशे?! 'पोते' खसी जाय तो अंत:करणथी आत्मा जुदो ज छे।'' यह समझाइए।

दादाश्री : एक ओर अंत:करण सांसारिक कार्य करता है और दूसरी ओर आत्मा, आत्मा का कार्य करता है। 'ज्ञानी' दखलंदाज़ी नहीं करते।

अंत:करण किसे कहते हैं? जिसमें से कर्ता भाव उत्पन्न होता है, 'मैं कुछ कर रहा हूँ,' ऐसा भाव उत्पन्न होता है। 'ज्ञानी' उस अंत:करण से जुदा होते हैं। यह 'ज्ञान' देने के बाद आपमें 'रियली' कर्ता भाव नहीं रहा लेकिन 'रिलेटिवली' कर्ता भाव है यानी कि 'डिस्चार्ज' कर्ता भाव रहा है लेकिन आपको अभी अंदर थोड़ी दखल रहती है जबकि 'ज्ञानीपुरुष' में ऐसी दखल नहीं रहती। 'खुद' खिसक जाए तो 'अंत:करण'

से 'आत्मा' जुदा ही है। इस 'अंतःकरण' में जो, 'खुद' है, वह 'खुद' खिसक जाता है।

प्रश्नकर्ता : 'खुद' कौन है? उस 'खुद' की 'डेफिनेशन' दीजिए न!

दादाश्री : वही *पोतापणुं* है। हम कहें 'चलो बगीचे में।' तो आप मना कर देते हो कि 'नहीं। मुझे अच्छा नहीं लगेगा वहाँ पर, मैं नहीं आऊँगा।' वही *पोतापणुं* है जबकि 'ज्ञानीपुरुष' में *पोतापणुं* नहीं होता। जैसे ही आप कहो, वैसे ही वे वहाँ पर आ जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यह *पोतापणुं* कौन करता है?

दादाश्री : वही। वही, मूल था वही का वही। अभी तक भी उस 'सीट' को नहीं छोड़ता है। सत्ता खत्म हो गई, लेकिन 'वह' 'सीट' नहीं छोड़ता। तो धीरे-धीरे 'हमें' वह छुड़वा देनी है। 'उसकी' सत्ता खत्म हो गई है, इसलिए परेशानी नहीं है लेकिन इस 'सीट' को छोड़ना आसान नहीं है। *पोतापणुं* छूटना आसान नहीं है। *पोतापणुं* आपकी समझ में आया या नहीं आया? जो 'डिस्चार्ज' हो चुका है लेकिन भीतर वहाँ *पोतापणुं* के भाव बरतते रहते हैं। निरा 'इफेक्ट' ही है। सत्ता खत्म हो गई है, सत्ता तो पूरी खत्म हो चुकी है लेकिन उसका मूल स्वरूप जाता नहीं है। धीरे-धीरे वह जड़ से निकल जाएगा, एकदम से नहीं चला जाएगा न!

हममें *पोतापणुं* नहीं है। अतः वैसा ही बन जाना है। आपमें भी, इस 'ज्ञान' के बाद में 'उसकी' सत्ता चली गई है, अतः कभी न कभी ऐसा हो ही जाएगा लेकिन ये क्या बने हैं, वह जानना चाहिए। 'मैं'पन चला गया है, सत्ता चली गई है। सत्ता गई तो समझो खत्म हो गया लेकिन वह 'खुद' बचा है।

मैं, वकील, मंगलदास

'खुद' का मतलब आपको समझाता हूँ। एक वकील आए थे। मैंने कहा, 'क्या नाम है?' तब उन्होंने कहा, 'मंगलदास।' 'क्या काम करते

हो?' तब उन्होंने कहा, 'वकील का।' 'तो मैं वकील हूँ ऐसा कहते हो न!' तब उन्होंने कहा कि, 'वह तो, मैं ही वकील हूँ न।' 'और मंगलदास कौन है?' तब उन्होंने कहा, 'मैं।' 'और वकील कौन?' तब उन्होंने कहा, 'मैं।' तब मैंने कहा, 'मैं वकील मंगलदास, ऐसा कहना चाहिए न, आपको?'

एक व्यक्ति ऐसा कह रहा था। रात को घर के सभी लोग सो गए थे न, तो बाहर किसी ने कुंडी खटखटाई। 'अरे, अभी रात को दो बजे कौन खटखटा रहा है?' तब वह कहने लगा कि, 'मैं।' 'अरे, लेकिन मैं कौन? परिचय दो, तभी दरवाज़ा खोलूँगा, नहीं तो दरवाज़ा नहीं खोलूँगा।' तब उसने कहा, 'मैं बावा।' 'अरे, लेकिन कौन सा बावा? बता न।' तब उसने कहा 'मैं बावा मंगलदास।' तब उसने दरवाज़ा खोला।

उसी तरह 'मैं वकील मंगलदास' है। आपने यह 'ज्ञान' लिया तो वे 'वकील' और 'मंगलदास' चले गए, लेकिन 'खुद' रहा है। तो अभी तक आपमें *पोतापणुं* है। कोर्ट में कोई वकील उल्टा बोले न, उस घड़ी *पोतापणुं* आ जाता है।

अभी मेरे साथ अपने सत्संग से संबंधित या अन्य किसी चीज़ से संबंधित अंदर बड़ी, लंबी बात लेकर आए तो भले ही डेढ़ घंटे तक चले लेकिन हमें उसमें कोई दखलंदाज़ी नहीं रहती न! जबकि दूसरी जगहों पर ऐसा हो जाता है तब मतभेद भी हो जाते हैं। हमारी दखलंदाज़ी नहीं होती। सौ घंटों का काम एक घंटे में कर देते हैं, हंड्रेड अवर्स का काम। लेकिन दखलंदाज़ी नहीं होती न! क्योंकि हममें *पोतापणुं* है ही नहीं न!

रक्षण, वह है लक्षण पोतापणुं का

पोतापणुं है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी हो जाता है।

दादाश्री : नहीं तो क्या रहता है? आत्मा की तरह रहता है?! जिसमें *पोतापणुं* नहीं रहता वह निरंतर जागृत रहता है। जितनी जागृति

नहीं है, उतना सारा *पोतापणुं* ही है। कोई आपसे कहे कि 'आप खराब हो।' तो तुरंत *पोतापणुं* हो जाता है न?

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी हो जाता है।

दादाश्री : कभी-कभी हो जाता है या हर रोज़ होता है? कब नहीं हुआ, वह बताओ न! यह तो सारा *पोतापणुं* ही है न! खुद जो रक्षण करता है, तभी से *पोतापणुं* है। खुद का रक्षण करे तभी से *पोतापणुं*। इस प्रकृति का जो रक्षण करता है, वह सारा *पोतापणुं* है। प्रकृति का मालिकीपन ऐसे श्रद्धा से टूटा है, लेकिन अभी तक वह *पोतापणुं* जाता नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : 'मेरा सही है' जब तक ऐसा है, तब तक *पोतापणुं* ही रहेगा न?

दादाश्री : सही-गलत होता ही नहीं। *पोतापणुं* में हर्ज नहीं है। दूसरे बहुत सारे *पोतापणुं* होते हैं न! कुछ कहने से पहले तो फट जाता है। प्रकृति का रक्षण करता है, रक्षण तो करता है लेकिन कपट करके उसे उलट भी देता है। वहाँ पर *पोतापणुं* डबल हो गया। पूरा ज़ोर लगाकर खुद की रक्षा करना, वह कहलाता है *पोतापणुं*। अभी तो *पोतापणुं* को संभालता है, लेकिन वापस कला करके खिसक भी जाना चाहता है, ऐसा भी करता है। यानी ऊपर से कला भी करता है। कला मतलब कपट।

पोतापणुं का अर्थ समझ गए न? अभी भी खुद की रक्षा करता है और वह भी कपट करके, कला करके रक्षा करता है।

प्रश्नकर्ता : खुद की प्रकृति का रक्षण करना, उसे *पोतापणुं* कहा है, तो फिर वह भाग कपट में कब जाता है?

दादाश्री : पूरा *पोतापणुं* प्रकृति के रक्षण में ही जाता है लेकिन कुछ जो कपटवाला नहीं हो, वह *पोतापणुं* अच्छा कहलाता है, नरम कहलाता है जबकि वह कपटवाला खराब कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि प्रकृति का रक्षण करना, वह *पोतापणुं*

है। कला करके रक्षण करता है, कपट करके रक्षण करता है, वह डबल *पोतापणुं* है।

दादाश्री : हाँ, वह डबल *पोतापणुं*। बच्चे भी रक्षण करते हैं लेकिन कला करके नहीं करते।

प्रश्नकर्ता : खुद को पता चलता है कि यह कपट किया, कला करके खुद की प्रकृति का रक्षण किया। तो वह क्या कहलाएगा?

दादाश्री : इतना पतला कपट हो तो उसका पता चलता है। कपटी को भी पता चलता है, मोटा कपट हो तो पता भी नहीं चलता।

वहाँ है गाढ़ पोतापणुं

पोतापणुं छोड़ने की इच्छा है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : लेकिन पहले तो हमसे किसी को दु:ख होना बंद हो जाएगा, उसके बाद फिर वे परतें जाएँगी।

प्रश्नकर्ता : कौन सी परतें?

दादाश्री : *पोतापणुं* की और बाकी की सब परतें। यह तो *पोतापणुं* करता ज़रूर है, और वापस 'अटैक'वाला *पोतापणुं*। रक्षणवाला *पोतापणुं* अलग और 'अटेक'वाला *पोतापणुं* अलग।

प्रश्नकर्ता : यह तो बहुत बड़ी बात निकली! एक रक्षणवाला और दूसरा 'अटेक'वाला।

दादाश्री : हाँ, जब 'अटेक' वाला चला जाता है तब फिर रक्षण वाला आता है। तब वास्तव में वह *पोतापणुं* कहलाता है। वर्ना तब तक तो उसे हिंसक भाव ही कहते हैं। 'अटेक' वाला *पोतापणुं* छूट जाने के बाद ही रक्षण वाला *पोतापणुं* छूटने की शुरुआत होती है।

प्रश्नकर्ता : 'अटेक' वाले *पोतापणुं* के बारे में ज़रा ज़्यादा समझाइए न!

दादाश्री : किसी को दुःख हो, ऐसा *पोतापणुं* किस काम का? *पोतापणुं* खुद की प्रकृति के रक्षण करने तक ही होता तो बात अलग थी। उसे *पोतापणुं* कहते हैं। वर्ना उसे तो *पोतापणुं* भी नहीं कहेंगे।

अभी तक तो लोगों का *पोतापणुं* कैसा है? प्रकृति का रक्षण करने की बात तो है ही, लेकिन 'अटेक' भी कर देते हैं। सामने वाले पर प्रहार भी कर देते हैं। तो इस बड़े *पोतापणुं* को निकालना है न! प्रकृति का रक्षण करना वह *पोतापणुं*, ऐसा *पोतापणुं* करते हैं क्या अपने महात्मा? इसीलिए सहज नहीं हो पाता है। यह तो ज़रा सा भी अपमान करे तो उससे पहले रक्षण करते हैं, ज़रा कुछ और करे, वहाँ रक्षण करते हैं। ये सारा सहजपन आने ही नहीं देता न!

कुछ प्रकार से प्रकृति का रक्षण रहता है, लेकिन बाकी सारा *पोतापणुं* चला जाना चाहिए। 'आप बेअक्ल हो' ऐसा कह दे तो वहाँ पर रक्षण नहीं करना है। इसका स्वामी कौन है? अहंकार। जो प्रतिकार करता है वह अहंकार है। इसका प्रतिकार कौन करता है? अहंकार! लेकिन अहंकार तो चला गया है, और बेकार ही रक्षण कर रहा है न!

वह तो जितना हो पाए उतना सही है, लेकिन ऐसी बातें शास्त्रों में नहीं होतीं, प्रकृति का रक्षण करने की बातें नहीं होतीं। क्योंकि कौन है जो प्रकृति का रक्षण नहीं करता? भगवान के अलावा बाकी सभी प्रकृति का रक्षण करते हैं और प्रकृति पराई है फिर भी आप रक्षण करते हो। पराई है ऐसा जानते हो, फिर भी जो पराई है उससे शादी की तैयारी करते हो। वह भी आश्चर्य है न! अहंकार और ममता चले गए हैं लेकिन *पोतापणुं* बचा है। देखो न, यह आश्चर्य ही है न!

'देखने वाले' में नहीं है पोतापणुं

पोतापणां को हमने क्या कहा है?

प्रश्नकर्ता : प्रकृति का रक्षण करना, वही *पोतापणुं* है।

दादाश्री : तो प्रकृति का रक्षण करना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : हम तो देखने वाले हैं। करना क्या और नहीं करना क्या?

दादाश्री : हाँ, 'देखने वाले' में तो *पोतापणुं* होता ही नहीं है न! 'देखने वाले' में *पोतापणुं* होता ही नहीं है न! लेकिन यह बात तो उसके लिए है जहाँ अभी तक भी वह प्रकृति का रक्षण करता है।

आप यहाँ से जा रहे हो और वहाँ तक जाने के बाद कोई कहे, 'नहीं, उस तरफ से होकर जाना है।' तो उस घड़ी अंदर ज़रा झटका लगता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वही है प्रकृति का रक्षण! वर्ना तो उतनी ही 'स्पीड' से वापस इस तरफ मुड़ जाए। उतनी 'स्पीड' से, उसी 'टोन' से, और उसी 'मूड' से। जिस 'मूड' में था न, वही का वही 'मूड।' यह तो अंतिम दशा की बात की है!

'टेस्ट,' पोतापणुं का

मान लो अभी कहीं गाड़ी में जाना हो और आपसे कहा 'आ जाओ।' और बिठाने के बाद और किसी ने कहा कि, 'उतर जाओ यहाँ से। अभी एक व्यक्ति और आने वाले हैं।' उस समय क्या करते हो? बैठे रहते हो न? 'नहीं उतरूँगा' ऐसा कहते हो न?

प्रश्नकर्ता : खुद उतर जाएगा।

दादाश्री : तुरंत?

प्रश्नकर्ता : तुरंत ही। उतर ही जाएगा न!

दादाश्री : 'नहीं उतरूँगा' ऐसा नहीं कहोगे? लेकिन फिर आगे थोड़ी दूर जाए और वापस बुलाए 'आ जाओ।' तो आ जाते हो न? चेहरे पर कोई बदलाव तो नहीं हो जाता न?

मैं क्या कह रहा हूँ? ऐसा नौ बार रह पाए तो मैं कहूँगा कि तू

'दादा' बन गया है, जा! ऐसा नौ बार करे और नौ बार उतर जाए और नौ बार में से उतारनेवाले को तू कर्ता नहीं माने, बुलाने वाले को भी कर्ता नहीं माने, 'व्यवस्थित' को ही कर्ता माने और वापस बुलाए तब भी मन में कुछ भी नहीं हो और हँसते-हँसते वापस आ जाए और हँसते-हँसते उतर जाए, तो इतना मज़ा आएगा, इतना मज़ा आएगा! तब वह क्या कहलाएगा? कि यह भाई प्रकृति का रक्षण नहीं कर रहा है और इसलिए उसका *पोतापणुं* चला गया।

खुद प्रकृति का रक्षण करना, वही *पोतापणुं* है। यह तो, जिस प्रकृति से छूटना है उसी का रक्षण करता है।

तब जाएगा पोतापणुं

अब मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ कि आपको अपनी प्रकृति का रक्षण नहीं करना चाहिए लेकिन आपके मन में यों ऐसा होना चाहिए कि आपमें यह ज्ञान इस तरह से रहना चाहिए। मैं वर्तन नहीं चाहता। वर्तन में तो कब आएगा? ऐसी श्रद्धा, प्रतीति फिट हो जाएगी, उसके बाद यह ज्ञान परिणामित होगा। दिनोंदिन जब ज्ञान उसे अनुभव में आता जाएगा, तब वर्तन में आएगा।

एक बार उतार दिया जाए तो असर हो जाता है, और बाद में वापस जब अंदर ज़रा ठंडा पड़ता है, तब ज्ञान याद आता है। ऐसे करते-करते फिट हो जाता है। पहले प्रतीति में आता है, फिर अनुभव होते-होते पहले कुछ समय तक ज्ञान में रहने के मिथ्या प्रयत्न करता है और फिर वर्तन में आता है लेकिन थोड़ा बहुत अनुभव में आ जाए, तब भी बहुत हो गया न?!

एकाध-दो बार भी यदि गाड़ी से उतरकर मुँह बिगाड़े बिना वापस बैठने आए, तब भी बहुत अच्छा कहा जाएगा। हाँ, वर्ना तो चेहरा बिगड़ी हुई कढ़ी जैसा हो जाता है न?! मुझे ऐसा लगता है आपको ऐसा नहीं होता होगा। नहीं? एक बार उतरकर देखना। ऐसा समय आए तो उतरकर देखना और फिर मुँह बिगाड़े बगैर बैठ जाना।

प्रश्नकर्ता : जितना आप कह रहे हैं, उतना आसान नहीं है।

दादाश्री : आसान नहीं है लेकिन यह क्या है? यह बात किसलिए कर रहे हैं? कि यह बात उसकी श्रद्धा में बैठ जाए न, तो धीरे-धीरे अनुभव होते जाएँगे।

हम ऐसा करने को नहीं कहते। यह जानकर रखना है कि इस तरह हमें प्रकृति का रक्षण करना बंद करना पड़ेगा। जितना प्रकृति का रक्षण करते हैं, उतना ही गलत है न! पड़ोसी की तरह उसके लिए फर्ज़ निभाना है लेकिन क्या ऐसे रक्षण करना चाहिए? कोई उतार दे तो उतर जाने को कहना चाहिए और फिर बुलाए तो बैठ जाने को कहना।

प्रश्नकर्ता : कई बार हर मौके पर ऐसा ध्यान नहीं रहता कि यह प्रकृति है।

दादाश्री : इतनी अधिक जागृति रहती नहीं है न! इसीलिए तो हम ऐसे हिलाते रहते हैं कि जिससे जागते रहें लेकिन ये तो हम उठाएँ तब भी 'हाँ उठ रहा हूँ, हाँ उठ रहा हूँ' कहकर वापस करवट लेकर सो जाता है।

हमारे पास 'व्यवस्थित' का इतना अच्छा ज्ञान है न! साधन नहीं है क्या 'व्यवस्थित' का?

प्रश्नकर्ता : साधन है। बहुत अच्छा है।

दादाश्री : निबेड़ा आ जाएगा न? निबेड़ा आ जाएगा, ऐसा पक्का हो गया है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन अपने ज्ञान में अगर 'व्यवस्थित' ठीक तरह से समझ में आ जाए तो *पोतापणुं* छूट जाएगा?

दादाश्री : छूट जाएगा न! *पोतापणुं* छोड़ने के लिए ही मैंने 'व्यवस्थित,' दिया है, और 'एक्ज़ेक्ट' है यह। 'व्यवस्थित' यानी 'साइन्टिफिक' चीज़ है। वह कहीं आपको यों ही दी हुई चीज़ नहीं है। अवलंबन गलत नहीं दिया है, 'एक्ज़ेक्ट' है।

प्रश्नकर्ता : यह तो, *पोतापणुं* छोड़ना नहीं है और *पोतापणुं* छोड़े बगैर वस्तु को प्राप्त करने की जो बात करता है, वह कैसा है?

दादाश्री : हाँ, यानी हम क्या कहते हैं कि *पोतापणुं* छूट जाए तो ऐसा है कि अपने आप ही चलता रहेगा। बिना बात के क्यों पकड़कर रखता है! छोड़ दे न, अभी से लेकिन वह छोड़ता नहीं है न! कहेगा, 'ऐसा हो जाएगा और वैसा हो जाएगा।'

यह 'ज्ञान' लिया है इसलिए 'खुद' आत्मा बन गया। 'प्रकृति मेरी नहीं है' ऐसा कहता है, लेकिन फिर वापस करता क्या है? प्रकृति का रक्षण करता है। प्रकृति का रक्षण करने में शूरवीर। करता है न? कौन नहीं करता? कोई रक्षण करते होंगे क्या?

प्रश्नकर्ता : वही करते हैं न!

दादाश्री : क्या बात कर रहे हो?! रक्षण करता है! यह जो रक्षण हो जाता है, उसी को जानना है। ऐसा जान ले तो अपने आप धीरे-धीरे सबकुछ छूटता जाएगा। ऐसा करने की ज़रूरत नहीं है कि तुरंत छूट जाए। तुरंत कुछ भी नहीं हो सकता। वर्ना बुखार चढ़ जाएगा। वह तो ऐसा जानते रहने से धीरे-धीरे छूटता जाएगा।

छोड़ना है शौक़ पोतापणुं का ही

प्रश्नकर्ता : *पोतापणुं* सामान्य रूप से और कौन सी बातों में रहता है, वह उदाहरण देकर समझाइए न!

दादाश्री : आपको आइस्क्रीम खानी हो और आइस्क्रीम देने के बाद वापस ले ले तो आपका *पोतापणुं* दिखाई देगा आपको। आपकी घड़ी उतरवा ले न, तो उस समय आपका *पोतापणुं* दिखेगा। इस तरह हर एक चीज़ में आपको आपका *पोतापणुं* स्पष्ट दिखेगा।

जब इस *पोतापणुं* का शौक़ छूट जाएगा, तब *पोतापणुं* छूट जाएगा। जब तक शौक़ है, तब तक छूट पाएगा क्या?

प्रश्नकर्ता : यह समझ में नहीं आया। सभी शौक़ छूट जाएँगे तब या फिर *पोतापणुं* का शौक़ छूट जाएगा तब?

दादाश्री : सिर्फ *पोतापणुं* का शौक़ छूट जाएगा, तब। बाकी के सभी शौक़ नहीं छूटेंगे तो हर्ज नहीं है। *पोतापणुं* का शौक़ बहुत भारी होता है। 'मेरा कहा हुआ ही करना पड़ेगा' कहेगा। अतः अगर बाकी सब शौक़ नहीं छूटेंगे तो कोई हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : *पोतापणुं* का शौक़ अर्थात् ऐसा है कि उसमें खुद का मनचाहा करवाना?

दादाश्री : ऐसा नहीं है। यह ऐसा नहीं है कि *धार्युं* करवाने का शौक़ है।

प्रश्नकर्ता : तो?

दादाश्री : *पोतापणुं!* पूरे जगत् में सभी को है। वह *पोतापणुं* चला जाए तो भगवान हो गया, ऐसा कहा जाएगा। जिसमें *पोतापणुं* नहीं है, वह भगवान! आप सब को यह 'ज्ञान' दिया है, लेकिन आप सभी के पास *पोतापणुं* है ही। जब आपका *पोतापणुं* नहीं रहेगा, उस दिन आप भगवान ही बन जाओगे। अभी भी भगवान ही हो लेकिन बन नहीं गए हो क्योंकि आपमें *पोतापणुं* है। लेकिन जब *पोतापणुं* नहीं रहेगा तब आप भगवान बन चुके होंगे।

'भाव' से करना पुरुषार्थ

'ज्ञान' हो तो *पोतापणुं* जाता है, नहीं तो *पोतापणुं* नहीं जा सकता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम सभी ने ज्ञान प्राप्त किया तो फिर ज्ञान से वह *आपोपुं (पोतापणुं)* बढ़ता जाता है। क्योंकि फिर हमें भान आता कि यह *आपोपुं* तो घटने के वजाय बढ़ने लगा है।

दादाश्री : वह *आपोपुं* नहीं है। *आपोपुं* तो, जब जानेवाला होता है न, तब वह *आपोपुं* माना जाता है। जब 'प्योर' हो जाता है तब *आपोपुं* माना जाता है, *पोतापणुं* माना जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह *पोतापणुं* जा चुका है लेकिन फिर भी कई बार वापस दखल हो जाती है।

दादाश्री : लेकिन गया ही कहाँ है? आप ऐसा कहते हो न कि दखल हो जाती है?! किसी का भी चला गया है, ऐसा दिखाई नहीं देता। उसके जाने के बाद फिर से दखल नहीं करता। एक बार *पोतापणुं* चले जाने के बाद वे यों दखल नहीं करेंगे। वह चढ़ने-उतरने वाली चीज़ नहीं है। वह तो यथार्थ चीज़ है। वह गया यानी गया, फिर से वापस दिखाई नहीं देता। आपको यह आधा हो गया है और आधा नहीं हुआ, आपको ऐसा लगा? नहीं। ऐसा नहीं है। यह *पोतापणुं* ऐसी चीज़ नहीं है कि एक बार जाने के बाद फिर से आ जाए। पहले तो, *पोतापणुं* जाए ऐसा है ही नहीं न! इस '*पोतापणुं* का जाना' वह बात पहली बार ही हो रही है। हममें *पोतापणुं* नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आपको *पोतापणुं* लाना हो तो क्या होगा?

दादाश्री : आएगा ही नहीं न! एक बार चले जाने के बाद कैसे आएगा?!

प्रश्नकर्ता : आपके 'ज्ञान' से यह *पोतापणुं* जाएगा तो अवश्य ही। यह निश्चित बात है लेकिन वह तेज़ी से कैसे निकल सकता है?

दादाश्री : तेज़ी तो, इस ट्रेन की 'स्पीड' बढ़ाए, वह तो उसके साधन मँगवाए जाएँ, तब होता है। लेकिन इसमें न तो ढील ढूँढनी है, न ही जल्दबाज़ी ढूँढनी है क्योंकि वह सब विकल्प है। हाँ, हमें बस भाव करना है कि *पोतापणुं* निकालना है। वह भाव इतना अधिक काम करता है कि *पोतापणुं* निकलता ही रहता है निरंतर। पर अगर आप भाव करो कि 'नहीं, अभी तक तो यह संसार है तब तक *पोतापणुं* निकालने की ज़रूरत नहीं है।' तब वैसा होगा। यह 'ज्ञान' देने के बाद 'आपका' *चलण* (वर्चस्व, सत्ता, खुद के अनुसार सब को चलाना) है इन सभी भावों पर जबकि इन 'निकाली बातों' में 'आपका' *चलण* नहीं है। वहाँ तो आपको *निकाल* कर देना है।

आपका *चलण* कहाँ-कहाँ पर है वह समझ में आया? भाव पर आपका *चलण* है, कि 'अब *पोतापणुं* निकालना है, *पोतापणुं* नहीं चाहिए अब' तो, वैसा! क्योंकि जो खुद का नहीं है उसका *पोतापणुं* करते हैं, कब तक ऐसे रहेंगे?! हमें 'ज्ञान' से समझ में आ गया है कि यह खुद का नहीं है। अब वहाँ पर *पोतापणुं* करें, तो वह भूल ही है न! हममें ऐसा *पोतापणुं* है ही नहीं।

'उदय' में बरतता हुआ पोतापणुं

'ज्ञानीपुरुष' खुद के उदय अधीन ही बरतते हैं। उसमें *पोतापणुं* नहीं रखते। आसपास के सभी संयोग क्या काम कर रहे हैं, उस उदय के अधीन सब संयोग मिलते हैं, 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' मिलते हैं, और उस आधार पर विचरते हैं।

प्रश्नकर्ता : अगर ज्ञानी ही उदयाधीन बरतते हैं, तो बाकी सब का कैसा रहता है?

दादाश्री : बाकी सब का भी उदयाधीन होता है, लेकिन अंदर उन्हें *पोतापणुं* रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप कहते हैं कि हर एक व्यक्ति उदयाधीन बरतता है, तो अगर उसमें उसे *पोतापणुं* रखना हो तो रख सकता है?

दादाश्री : *पोतापणुं* ही रखता है।

प्रश्नकर्ता : इन 'ज्ञान' लिए हुए महात्माओं के लिए?

दादाश्री : महात्मा भी *पोतापणुं* रखते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर हम *पोतापणुं* कैसे रख पाते हैं?

दादाश्री : रहता ही है! रखते नहीं, रहता ही है! लेकिन अब धीरे-धीरे विलय होता जाएगा। जितने अपने हिसाब चुकते जाएँगे न, *पोतापणुं* उतना ही विलय होता जाएगा। वह जितना विलय होगा, उतना ही फिर *पोतापणुं* नहीं रहेगा। यानी इन सब में *पोतापणुं* ही है न! *पोतापणुं*

रहता ही है। लेकिन यह 'ज्ञान' लिया है इसलिए उनका *पोतापणुं* अभी विलय हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : *पोतापणुं* रहे तो फिर 'चार्ज' होगा न! ऐसा हुआ न?

दादाश्री : नहीं। 'चार्ज' नहीं होता। यह *पोतापणुं* ऐसा नहीं है कि 'चार्ज' हो सके। यह *पोतापणुं* 'डिस्चार्ज' है, विलय हो जाए ऐसा है।

'डिस्चार्ज' अहंकार, वह पोतापणुं

अहंकार तो चला गया है आपका। हम जब 'ज्ञान' देते हैं तब अहंकार और ममता सब चले जाते हैं, लेकिन अभी तक *पोतापणुं* बचा है, अर्थात् क्या? जो अहंकार जीवित नहीं है, वह। ऐसा है, वही की वही चीज़ उसका लड्डू बनाओ तो लड्डू कहलाता है और जमाकर टुकड़े करें तो बरफी कहलाता है, और टुकड़े भी नहीं किए और लड्डू भी नहीं बनाए और ऐसे ही चूर दिया तो चूरमा कहलाता है। वही की वही चीज़। वही की वही चीज़ है यह। अहंकार और ममता चले गए, उस भाग को हम अभी *पोतापणुं* कहते हैं। अहंकार जैसा दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर अहंकार और *पोतापणुं* में क्या फर्क है?

दादाश्री : अहंकार तो खिसकता ही नहीं है, कम नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : और यह *पोतापणुं* हट जाता है?

दादाश्री : *पोतापणुं* तो कम ही होता जाता है। *पोतापणुं* अर्थात् भरा हुआ माल! भरा हुआ अहंकार! वह निकलता रहता है और (अज्ञानीओं का) वह अहंकार तो कैसा है? भरा हुआ है और नया भरता भी जाता है, दोनों साथ में है। वह भरनेवाला अहंकार 'अपने' में से निकल गया है और भरा हुआ बचा है। भरा हुआ अहंकार तो उन लोगों का भी (जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया) खाली होता है, लेकिन साथ में नया भरता भी जाता है। जबकि अपने यहाँ पर भी खाली हो जाता है, लेकिन

यहाँ अब भरता नहीं हैं। अर्थात् 'चार्ज' अहंकार तो जा चुका है लेकिन जो 'डिस्चार्ज' अहंकार है, वह *पोतापणुं* कहलाता है।

'डिस्चार्ज' पोतापणुं है प्रमाण 'जागृति' का

प्रश्नकर्ता : यानी इस 'ज्ञान' के बाद *पोतापणुं* 'डिस्चार्ज' भाव कहलाता है!

दादाश्री : वह 'डिस्चार्ज' भाव है, भरा हुआ माल है। जैसे-जैसे वह माल निकलता जाएगा, वैसे-वैसे *पोतापणुं* खत्म होता जाएगा, *पोतापणुं* निकल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् *पोतापणुं* इस माल के आधार पर टिका हुआ है?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : और जैसे-जैसे माल खाली होगा, वैसे-वैसे *पोतापणुं* खत्म होता जाएगा?

दादाश्री : हाँ, जैसे-जैसे माल खाली होगा वैसे-वैसे *पोतापणुं* कम होता जाएगा। *पोतापणुं* यों ऐसे ही कम नहीं होगा। टंकी में से माल खाली हो गया तो *पोतापणुं* खत्म हो जाएगा।

जितना *पोतापणुं* निकल जाए उतना चला ही जाता है लेकिन अगर कम निकला हो तो उतना अधिक बचेगा और अधिक निकल जाए तो उतना कम हो जाएगा। वहाँ पर जितनी जागृति हो उस अनुसार *पोतापणुं* निकल जाता है। जितनी जागृति की मात्रा होती है, उस अनुपात में *पोतापणुं* निकल जाता है। जागृति अधिक हो तो अधिक *पोतापणुं* निकल जाता है और जल्दी निकल जाता है। जागृति कम हो तो *पोतापणुं* धीरे-धीरे निकलता है।

लेकिन अभी इस 'ज्ञान' के बाद आपमें पूरा सौ प्रतिशत *पोतापणुं* है। अगर जागृति अधिक हो तो तुरंत दस प्रतिशत *पोतापणुं* निकल जाता है, और जागृति कम हो तो दो प्रतिशत ही निकलता है।

प्रश्नकर्ता : फिर बाकी के नब्बे प्रतिशत *पोतापणुं* तो रहेगा ही न?

दादाश्री : हाँ। अधिक जागृति वाले का नब्बे प्रतिशत रहता है और कम जागृति वाले का अठ्ठानवे प्रतिशत रहता है।

प्रश्नकर्ता : अब जो बाकी बचा है, वह कैसे खाली होगा?

दादाश्री : बाद में, अगली बार निकलेगा वह तो।

प्रश्नकर्ता : यानी जैसे-जैसे उदय आता है वैसे-वैसे *पोतापणुं* निकल जाता है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन उसमें जितनी अधिक जागृति रहती है, *पोतापणुं* उतना ही 'स्पीडी' निकल जाता है और जितने प्रतिशत *पोतापणुं* खत्म होता है, उसी अनुपात में जागृति बढ़ती जाती है।

यथार्थ जागृति, जुदापन की

प्रश्नकर्ता : उदय आने पर, उसमें जो जागृति बरतती है और दस प्रतिशत या फिर दो प्रतिशत *पोतापणुं* खत्म होता है तो वह जागृति कैसी होती है? वह जागृति किस तरह बरतती है कि *पोतापणुं* खत्म हो जाता है?

दादाश्री : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह और फिर इन आज्ञाओं की वह सारी जागृति रहती है। 'यह कौन, मैं कौन' ऐसी सारी जागृति रहती है। मारनेवाला, वह मारनेवाला नहीं है, वह शुद्धात्मा है ऐसी सारी जागृति रहती है।

जो यह जानता है कि 'यह मैं नहीं, यह मैं हूँ,' वह आत्मा है! 'यह मैं और यह नहीं हूँ' ऐसी सारी जागृति रहनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : वह खुद क्या नहीं है और खुद क्या है? उसमें क्या-क्या देखता है?

दादाश्री : हर एक बात में। वह तो जब हम 'ज्ञान' देते हैं न! 'ज्ञान' देते समय हम देते हैं न कि 'यह तू नहीं है।'

प्रश्नकर्ता : यों जुदा रखते रहे, उसी को आत्मा कहा है!

दादाश्री : बस, वही आत्मा!

प्रश्नकर्ता : अब ऐसा निरंतर रहना चाहिए न!

दादाश्री : लक्ष (जागृति, ध्यान) में भूले ही नहीं उसे जुदा रखना। फिर जब हो तब जुदा करते रहना, वही का वही। फिर वह आत्मा ही हो गया। कमीज़ के बटन बंद करते हैं इसलिए कमीज़ उतारी जा सकती है, ऐसा जानता है न, कि 'यह भाग कमीज़ है और यह मैं', या नहीं जानता? या फिर वहाँ दोनों को एक जैसा ही जानता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, उसे अच्छी तरह से जानता है कि अलग ही हैं। लेकिन अब ये मन-वचन-काया की अवस्थाएँ निरंतर उत्पन्न होती ही रहेंगी न? तो वहीं पर अविरत रूप से जागृति की ज़रूरत है न कि यह मैं नहीं हूँ और यह मैं हूँ?

दादाश्री : यह सारा इतना होता ही नहीं है लेकिन इसमें कहीं पर रह जाए या आप अंदर 'इन्टरेस्ट' ले लो, तब हमें कहना चाहिए, 'भाई, अपना नहीं है यह।' बाकी, 'ज्ञान' देने के बाद अलग ही रहता है, लेकिन फिर अंदर मिश्रण हो जाता है थोड़ा बहुत।

प्रश्नकर्ता : यानी कैसे भी परिणाम आएँ, वे अपने नहीं है, ऐसा अंदर जागृति में रखना है।

दादाश्री : हाँ, कि यह मैं हूँ और यह मैं नहीं हूँ!

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसमें यह कमीज़ अलग है और मैं अलग हूँ, उसी प्रकार इसमें उसे क्या दिखाई देता है?

दादाश्री : ऐसा है, यह अंदर भी उसी तरह से अलग दिखाई देता है न!

प्रश्नकर्ता : यों दर्शन में क्या आता है उसे? एक उदाहरण बताइए न कोई।

दादाश्री : यह पत्थर अलग और मेरा हाथ अलग, ऐसा पता नहीं चलता अपने को? फिर, ये पत्थर के गुण हैं और ये मेरे गुण हैं, ऐसा?

प्रश्नकर्ता : हाँ। पत्थर के गुणों को हर प्रकार से जानता है कि यह वज़नवाला है, ठंडा है, चौकोर है....

दादाश्री : चिकना है।

प्रश्नकर्ता : तो, ये गुणधर्म मेरे नहीं हैं और ये गुणधर्म मेरे हैं, उसमें उसे किस तरह से रहना चाहिए?

दादाश्री : कि यह ठंडा मेरा नहीं है, यह चिकना मेरा नहीं है, यह गुस्सा हुआ वह मेरा नहीं है, कपट किया वह मेरा नहीं है, दया की वह मेरा नहीं है!

हम बिस्तर में सो जाएँ, तो क्या ऐसा पता नहीं चलता कि 'मैं अलग हूँ'? पता चलता है?

प्रश्नकर्ता : वहाँ तो समझ में आता है कि बिस्तर और सोनेवाला वास्तव में अलग ही हैं लेकिन इसे यह आत्मा और यह पौद्गलिक अवस्था, ऐसे दोनों अलग हैं, वह जो जागृति में रहना चाहिए अथवा जो उपयोग जागृति रहनी चाहिए, वहाँ पर परेशानी है न?

दादाश्री : बिस्तर के बारे में कुछ जागृति है लेकिन आत्मा के बारे में तो जागृति खत्म ही हो चुकी है न! बिस्तर की बात उसे पता चलती है।

प्रश्नकर्ता : वह भी जब उसे याद दिलाएँ तब कहेगा, 'हाँ, दोनों अलग है।'

दादाश्री : उसे तो जब प्रमाण सहित दूँ, तब वह मानेगा।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसा अंदर की चीजों में सभी 'फेज़िज़' में 'नहीं

है मेरा और मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा समझने के लिए अथवा तो ऐसी यथार्थ जागृति में रहने के लिए इन सब प्रमाणों की ज़रूरत पड़ेगी न?

दादाश्री : प्रमाण तो मुख्य चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : वे प्रमाण कौन-कौन से हैं, अंदर का समझने के लिए?

दादाश्री : जिसमें अनेक चीज़ें इकट्ठी होकर कार्य हो वह सारा ही अपना नहीं है। तीन ही चीज़ें मिली और कार्य हुआ तब भी अपना नहीं है। दो चीज़ें इकट्ठी होकर कार्य हुआ तो भी अपना नहीं है। आम को छुरी से नहीं काटा और दाँत से काटा। हाँ, वह इन सब के मिलने पर हुआ इसलिए वह अपना नहीं है! बारीकी से समझना पड़ेगा न? ऐसे स्थूल रूप से समझने से चलेगा क्या?

प्रश्नकर्ता : मूल वस्तु तो सूक्ष्मतम है।

दादाश्री : हाँ, मूल वस्तु सूक्ष्मतम है और बात स्थूल करेंगे तो क्या होगा?!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह नई ही बात बताई।

दादाश्री : नई नहीं है, है ही पहले से यह! यह तो तीर्थंकरों के पास था, पहले से ही था और आज भी है। आप अपने आपसे अपनी लॉ बुक से 'नया' कहो, तो उसका मैं क्या करूँ?!

जितना अनुभव, उतना ही पोतापणुं का विलय

किसी ने खुद की लॉ बुक से माना कि 'हम तो पूर्ण हो गए।' तब मैंने उनसे कहा, 'बिल्कुल भी पूर्ण नहीं हुए हो, बेकार कोशिश मत करना। अभी तो बहुत कुछ होना बाकी है। संपूर्ण होना क्या कोई लड्डू खाने का खेल है?' फिर मुझसे कहते हैं, 'लेकिन अहंकार तो चला ही गया है।' मैंने कहा, 'नहीं गया है। पूरा-पूरा है ही। अभी तक जाँच नहीं की।'

लेकिन धीरे-धीरे जाएगा वह तो। जैसे-जैसे अनुभव की मार खाएँगे, जितना अनुभव बढ़ेगा उतना *पोतापणुं* टूटा। अहंकार जाने का मतलब तो यह कि *पोतापणुं* खत्म हो गया न! अभी तक तो कितने सारे अनुभव होंगे तब *पोतापणुं* छूटने का अंश आएगा।

मूल अहंकार चला गया, 'चार्ज' अहंकार चला गया। उसी को अहंकार कहा जाता है लेकिन उस 'डिस्चार्ज' अहंकार का जाना कोई लड्डू खाने का खेल नहीं है। अहंकार चला गया तो, उसे क्या कहते हैं? गर्व नहीं, *गारवता* नहीं, *पोतापणुं* नहीं। क्या वह सब नहीं जाना चाहिए? इस 'ज्ञान' के बाद अहंकार तो चला ही गया है, वह 'चार्ज' अहंकार तो चला गया है। फिर बचा कौन सा अहंकार? 'डिस्चार्ज।' जितना अनुभव होता जाएगा, उतना 'डिस्चार्ज' अहंकार कम होता जाएगा और उसके बाद *पोतापणुं* धीरे-धीरे घटेगा। ऐसे ही नहीं घट जाता। यह लड्डू खाने के खेल नहीं हैं। तभी वह कहता है, 'पूरी ज़िंदगी में ऐसा नहीं हो सकता?' मैंने कहा, 'एक-दो जन्मों में मोक्ष में जा सकेंगे' दूसरी गलत आशाएँ रखने का क्या मतलब है? गलत आशाएँ रखने से फायदा होता है क्या?

यह सारा ही पोतापणुं

पोतापणुं खत्म होने के बाद *गारवता*-गर्व कुछ भी रहता नहीं है न! यह तो, गर्व-*गारवता* सभी कुछ रहता है। *पोतापणुं* रहित के लक्षण क्या होते हैं? कोई गालियाँ दे तो भी स्वीकार कर ले, कोई मारे तो भी स्वीकार कर ले। अहंकार के पक्ष में बैठना, उसे *पोतापणुं* कहते हैं। अज्ञानता के पक्ष में बैठना, वह *पोतापणुं* कहलाता है। उपयोग चूके, वह *पोतापणुं* कहलाता है।

आप भी थोड़ी देर के लिए उपयोग चूक जाते हो, वह *पोतापणुं* कहलाता है। आप कहते हो कि 'अंदर जो कुछ आता है उसमें एकाकार हो जाते हैं, तन्मयाकार हो जाते हैं, और बाद में पता चलता है,' वह *पोतापणुं* के कारण एकाकार हो जाते हैं।

बचा यही पुरुषार्थ

प्रश्नकर्ता : उदय में तन्मयाकार रहे, ऐसा 'व्यवस्थित' गढ़ा हुआ होता है?

दादाश्री : ऐसा 'व्यवस्थित' होता ही है, इसी को उदय कहते हैं! उदय में तन्मयाकार रहे, ऐसा 'व्यवस्थित' होता ही है और उसमें से पुरुषार्थ करना है। उस घड़ी तप हुए बगैर नहीं रहता।

यह सब गहन बातें वह कब समझेगा?! वह तो जैसे-जैसे समझेगा तब पता चलेगा।

प्रश्नकर्ता : अब अज्ञानता थी तब खुद प्रकृति में तन्मयाकार हो जाता था।

दादाश्री : हो ही जाता था नियम से और राज़ी-खुशी हो जाता था। उसे अच्छा लगता है फिर। दारू पीने का विचार आया कि तुरंत तन्मयाकार हो जाता था। वह अच्छा लगता था उसे और अब 'ज्ञान' के बाद क्या होता है? अंदर खुद अलग रहता है इसलिए अच्छा नहीं लगता। यह अच्छा नहीं लगता उसीके कारण यह तप खड़ा होता है।

प्रश्नकर्ता : यानी पहले जो पसंद था, वही अब नापसंद हो गया।

दादाश्री : हाँ। पसंदीदा चीज़ें प्रकृति को बाँधती है और नापसंद चीज़ें प्रकृति को छोड़ती है।

'व्यवस्थित' के अनुसार उदयकर्म करने पड़ते हैं, वर्ना वे बहुत नुकसानदायक हैं। यों तो सारा ही है निकाली, लेकिन 'मूल ज्ञान' को प्रकट करने में बहुत नुकसान करता है।

प्रश्नकर्ता : वह ठीक से समझ में नहीं आया।

दादाश्री : 'व्यवस्थित' ऐसा होना चाहिए कि पुरुषार्थ के अनुकूल हो, ऐसा। जो पुरुषार्थ से उल्टा हो, वह सारा 'व्यवस्थित' उल्टा

कहलाता है। भले नापसंद है। नापसंद है इसलिए वह आत्मा है, यह बात निश्चित हो गई। जहाँ 'नापसंद' है, वहाँ पर तो वह आत्मा के तौर पर ही है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'व्यवस्थित' तो जो आ गया वह आ गया लेकिन अब वहाँ पर क्या करना चाहिए?

दादाश्री : जो है उसमें पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

वहाँ पर बल प्रज्ञा का

प्रश्नकर्ता : यानी जब 'व्यवस्थित' के अधीन तन्मयाकार होता है तब उसे तन्मयाकार नहीं होने देना चाहिए। अब यह जुदा रखना.....

दादाश्री : वह जो प्रक्रिया है वही पुरुषार्थ है।

प्रश्नकर्ता : वह जुदा रखना, वह कौन रखता है?

दादाश्री : वह अपने को रखना है। किसे रखना है यानी?! जो रख रहा होगा, वह रखेगा लेकिन हमें निश्चित करना है कि हमें रखना है। उससे, आप यदि प्रज्ञा होंगे तो इस तरफ का करेंगे और अज्ञा होंगे तो उस तरफ का करेंगे, लेकिन वह आपको निश्चित करना है। इस तरफ हुआ तो जानना कि प्रज्ञा ने किया और उस तरफ का हुआ तो अज्ञा ने किया। आपको तो निश्चित ही करना है कि 'मुझे पुरुषार्थ ही करना है। मैं पुरुष (आत्मा) बना। दादा ने मुझे पुरुष (आत्मा) बनाया है। पुरुष (आत्मा) और प्रकृति दोनों जुदा कर दिए हैं। मैं पुरुष (आत्मा) बना हूँ। इसलिए पुरुषार्थ करना है।' ऐसा निश्चित करना।

यह तो पूरे दिन प्रकृति में चला जाता है काफी कुछ तो, ऐसे के ऐसे ही बह जाता है पानी!

यों अनुभव बढ़ता जाता है

प्रश्नकर्ता : जब तक उदय आता है उतने समय तक तो यह *पोतापणुं* टिकनेवाला ही है न, उसके साथ?

दादाश्री : *पोतापणुं* खत्म होने के बाद भी उदय तो आता ही है न! लेकिन उस उदय में *पोतापणुं* नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन यह तो *पोतापणुं* खत्म हो तब न?

दादाश्री : उसके बाद भी उदय तो आता ही रहेगा न! लेकिन इसमें *पोतापणुं* नहीं होगा। उदय तो मेरे भी हैं न! लेकिन उदय में हमारा *पोतापणुं* नहीं होता। उदय में *पोतापणुं* सभी को बरतता ही है लेकिन 'ज्ञान' के बाद वह *पोतापणुं* कम होता जाता है, बढ़ता नहीं। कम होते-होते खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : और वह *पोतापणुं* तो जब उदय आएगा तब दिखाई देगा?

दादाश्री : हाँ। इसलिए कहा है न, जैसे-जैसे उदय आते जाएँगे, वैसे-वैसे आत्मा का अनुभव आता जाएगा, वैसे-वैसे अहंकार कम होता जाएगा। इस तरह यह सब 'रेग्युलर' होता जाएगा। फिर उसे अनुभव बढ़ता जाएगा।

समझना ज्ञान भाषा की गहन बातें

प्रश्नकर्ता : तो फिर अहंकार खत्म करने की माथापच्ची करने की ज़रूरत नहीं है। अपने आप ही क्रम से उदय में आएगा और उसे हमें देखते रहना है।

दादाश्री : नहीं। आपको पुरुषार्थ करना बाकी रहा। 'कुछ करने जैसा नहीं है' ऐसा नहीं है। वास्तविक पुरुषार्थ ही अब करना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इसे 'देखते' रहने के अलावा दूसरा क्या पुरुषार्थ है?

दादाश्री : उसे देखते रहना है, लेकिन उसे उस तरह से देख नहीं पाते हैं। देखना भी इतना आसान नहीं है। पुरुषार्थ करना पड़ेगा आपको। पुरुषार्थ करोगे तो देख पाओगे।

प्रश्नकर्ता : कैसा पुरुषार्थ करना होता है?

दादाश्री : वही पुरुषार्थ करना है कि अंदर यह क्या जल रहा है और किस तरह हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : वह 'देखना' कहा जाएगा न?

दादाश्री : लेकिन देखना आसान नहीं है। देखा नहीं जा सकता मनुष्य से। मनुष्य देख ही नहीं सकता। पुरुषार्थ करे तो देख पाएगा। पुरुष होकर पुरुषार्थ करेगा तभी देख पाएगा। तन्मयाकार नहीं होने दे। यह तो तन्मयाकार होकर उसे देखता है, उसका अर्थ ही नहीं न! 'मीनिंगलेस' बात है न!

प्रश्नकर्ता : ओहो, तन्मयाकार होकर ही देखने का प्रयत्न करता है न!

दादाश्री : हाँ, इसलिए 'मीनिंगलेस' बात है न!

प्रश्नकर्ता : तो किस तरह जुदा रहकर देखना है?

दादाश्री : पुरुषार्थ करके! उसमें यदि 'व्यवस्थित' के आधार पर तन्मयाकार हो जाए, तो तन्मयाकार नहीं होने देना और खुद, अपने आपमें ही रहना, उसे अलग रखना और उसे अलग देखना, वही पुरुषार्थ है! अब ऐसा जानना-देखना तो रह नहीं पाता है न।

बस 'महात्मा' तो सिर्फ कहते हैं कि 'हम देखते और जानते हैं।' अपने सभी 'महात्मा' कहते हैं कि 'हमें तो सब देखना और जानना है।' मैंने कहा, 'बहुत अच्छा।' लेकिन किस तरह से देखना-जानना है?! यह तो सभी कहते हैं तो भी मैं 'लेट गो' कर देता हूँ। मैं जानता हूँ कि 'फर्स्ट स्टेन्डर्ड' ऐसा ही होता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उदय तो, चौबीसों घंटे उदय तो रहेंगे ही न!

दादाश्री : वह उदय ही है, दिन भर ही। हाँ, फिर उसके साथ ही साथ उदय में तन्मयाकारपन भी है और तन्मयाकार नहीं होने देना,

वह पुरुषार्थ है। वह पुरुषार्थ ही काम करता है लेकिन कई जगहों पर पुरुषार्थ कम होता है। अधिकतर तो यों ही तन्मयाकार रहा करता है। पता चले बिना ऐसे ही बीत जाता है पूरा दिन ही! और फिर कहेगा 'मैंने देखा-जाना!' अरे, क्या देखा-जाना? ऐसा किसके लिए कह रहा है? भूत देखे क्या तूने?

देखना तो क्या है? कि 'व्यवस्थित' तन्मयाकार होने दे रहा हो, उसे जानना कि 'व्यवस्थित' इस तरफ ले जा रहा है, उसे खींचकर हमें इस तरफ लाना है और खुद को 'उसमें' रखकर और वहाँ से वापस देखना है और क्या जलन होने लगी, उसे देखना है। पुरुषार्थ ऐसा कुछ होता है, पुरुषार्थ अर्थात् पुरुष के आधार पर होता है।

क्या ऐसा आसान है 'देखना-जानना'? लेकिन सभी 'महात्मा' ऐसा कहते हैं 'हम तो दादा, देखते हैं और जानते हैं, पूरे दिन वही।' मैंने कहा, 'बहुत अच्छा।' क्योंकि गहन बात का उन्हें पता नहीं चलता और मुझे सिरदर्दी हो जाती है। यह तो आपके कारण ऐसी गहन बात कर रहा हूँ। नहीं तो गहन बातें की ही नहीं जा सकती।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, इसकी ज़रूरत है।

दादाश्री : लेकिन किससे करूँ? वह तो, कुछ ही लोग होते हैं, जिनसे की जा सकती है यह बात।

'अक्रम विज्ञान' की लब्धि

यह 'ज्ञान' लिया इसलिए खुद आत्मा है लेकिन वह सर्वस्व आत्मा नहीं है। वह प्रतीति आत्मा है। तब प्रकृति उपशम होती है, तब भी वह प्रतीति आत्मा है। अपने सभी 'महात्माओं' में प्रतीति आत्मा हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी इस 'ज्ञान' के बाद संपूर्ण प्रकृति अभी तक उपशम भाव को प्राप्त है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन उपशम भाव को प्राप्त, अर्थात् बहुत हो गया। इतना आया न, उपशम भाव को प्राप्त किया, वही सब से बड़ा

पुरुषार्थ। वही बड़ी लब्धि कहलाती है इसकी! बाकी, दूसरी सारी चीज़ें लब्धियाँ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति उपशम है, उसमें क्या पुरुषार्थ?

दादाश्री : उसे पुरुषार्थ कहते हैं न! प्रकृति उपशम हुई अर्थात् प्रकृति आपको 'हेल्पफुल' हुई। अतः जब पुरुषार्थ करोगे तो आपको फलेगा। जब तक प्रकृति उपशम नहीं होगी तब तक पुरुषार्थ फलेगा ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह प्रकृति वापस उफनेगी तो सही न?

दादाश्री : उफनेगी। फिर भी कभी न कभी उसका पुरुषार्थ फलीभूत होगा। जल्दी या देर से, लेकिन पुरुषार्थ फलीभूत होगा लेकिन तभी जब प्रकृति उपशम हो जाएगी। और एक बार उपशम हो जाने के बाद फिर वापस नहीं उफनेगी, उपशम हो जाने के बाद फिर वह (स्थिति) जाएगी नहीं।

अधीनता के बिना मोक्षमार्ग नहीं है

प्रश्नकर्ता : उपशम अर्थात् क्या होता है उसमें?

दादाश्री : उपशम अर्थात् चाहे उस पर कितना भी उल्टा ज़ोर लगाओ तो भी जाता ही नहीं। कुछ देर के लिए टेढ़ा होकर वापस लौट आता है। यहाँ से अलग नहीं हो जाता। दूसरे सभी अलग हो जाते हैं। बहुत हंगामा करो तो भाग जाते हैं और उपशमवाला तो मर जाए फिर भी नहीं छोड़ता।

प्रश्नकर्ता : कहाँ भाग जाते हैं?

दादाश्री : कहीं भी, जहाँ उसकी 'सेफसाइड' हो वहाँ पर।

प्रश्नकर्ता : यानी अपने पास से भाग जाते हैं, ऐसा?

दादाश्री : हाँ। और मैं नहीं होऊँ और किसी के पास बैठा होऊँ तो वह वहाँ से भी भाग जाएगा। उपशम होगा तो नहीं भागेगा, मार डाले तब भी नहीं भागेगा।

जबकि दूसरे सब तो अलग लेकर बैठ जाएँगे। यह रखो आपका ज्ञान और यह हमारा अलग। अलग गच्छ लेकर बैठ जाता है। तीन लोग इकट्ठे होते हैं, उसे गच्छ कहते हैं। तीन साधु या तीन लोग इकट्ठे होकर आराधना करने बैठे, उसे गच्छ कहते हैं। भगवान ने उसे गच्छ नाम दिया। गच्छ बनाए तो क्या बुरा है? तीन लोग तो मिल जाएँगे!

प्रश्नकर्ता : लेकिन गच्छ हो वहाँ पर मोक्षमार्ग नहीं रहा न, फिर?

दादाश्री : हाँ, और गच्छ है तो सब खत्म लेकिन ऐसा गच्छ बनाते हैं न! यह मेरा अलग और यह इनका अलग।

प्रश्नकर्ता : उसमें तो फिर गिर पड़ते हैं।

दादाश्री : गिरे हुए ही है न! अलग हो जाए तभी से गिर जाता है।

ज्ञानी दशा का प्रमाण

ऐसा है, यह 'ज्ञान' लिया इसलिए पूरा ही जो *पोतापणुं* था, वह धीरे-धीरे कम होते-होते फिर धीरे-धीरे ज़ीरो हो जाता है। 'ज़ीरो' हो जाए तो फिर वह 'ज्ञानी' कहलाता है। फिर उसकी वाणी में बिल्कुल परिवर्तन आ जाता है। *पोतापणुं* जाने के बाद वाणी निकलती है। जितना *पोतापणुं* कम हो, उतनी वाणी उत्पन्न होती है और वह वाणी सच्ची होती है! बाकी, तब तक सारी ही वाणी गलत। बाहर तो, अपने 'ज्ञान' लिए हुए 'महात्माओं' के अलावा दूसरी सभी जगह पर *पोतापणुं* है, और वाणी बोलते हैं लेकिन वह वाणी तो हवा-पानी जैसी है, वाणी है ही नहीं। वह सब लौकिक कहलाता है और अपने 'ज्ञान' लिए हुए महात्मा हों तो उनका *पोतापणुं* निकल जाए, उसके बाद ही बोलना चाहिए, वर्ना नहीं बोलना चाहिए।

अपने 'ज्ञान' लिए हुए महात्मओं में से कोई एक भी व्यक्ति खुद का एक भी स्वतंत्र वाक्य बोल सकता है? नहीं। जब तक किसी ने 'मूल वस्तु' को प्राप्त नहीं किया है तब तक एक वाक्य भी नहीं बोल सकते

और यदि एक वाक्य बोले तो मैं स्तब्ध हो जाऊँ। 'बस, हो गया!' तब मैं कहूँगा कि 'बस, हो गया!' एक ही वाक्य मुझे सुनाई दे न, तो मैं समझ जाऊँगा कि 'कहना पड़ेगा यह तो!' लेकिन ऐसा होता नहीं है न! वाक्य किस तरह से निकलेगा? उसकी वाणी निकलेगी किस तरह से?

प्रश्नकर्ता : आपका कहा हुआ भी यदि ठीक प्रकार से कह दें तो बहुत हो गया।

दादाश्री : यहाँ पर ठीक तरह से कह दें तब तो सोना (स्वर्ण) कहलाएगा।

'विज्ञान' में सिर्फ बात को समझना ही है

प्रश्नकर्ता : यह पुरुषार्थ की बात बहुत बड़ी चीज़ है। 'ज्ञान' के बाद बस यही करना बाकी रहा है!

दादाश्री : यह गहन बात सभी ने नहीं समझी है न! यह तो सब अंधाधुंध चलता रहता है। बात कितनी गहन होती है, लेकिन उतना जाना ही नहीं होता न! सुना ही नहीं होता न!

प्रश्नकर्ता : अभी तो, 'मूल आत्मा' आकाश जैसा सूक्ष्म है, वहाँ तक, उतनी सूक्ष्म बात को पकड़ना है न?

दादाश्री : हाँ, ऐसी चीज़ को पकड़ना है लेकिन बहुत दौड़ने की ज़रूरत नहीं है। पेट में दुःखने लगे, उस तरह से नहीं दौड़ना है। बात को समझना ही है। 'ईज़िली' सहज प्रकार से करना है। बात को समझना ही है, करना कुछ नहीं है।

ऐसी सूक्ष्मता से कातने की हर एक की इच्छा होती ही है न! धनवान होने की किसे इच्छा नहीं होती? ये लोग इतने साल बाज़ार में किसलिए भागदौड़ करते हैं? लक्ष्मी के लिए ही यह भागदौड़ है न, दुनिया की?!

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपके पास शब्दावलंबन से फिर प्रगति में

आगे बढ़ते हैं न? इन शब्दों को पकड़-पकड़कर धीरे-धीरे 'मूल वस्तु' तक पहुँच पाएगा न?

दादाश्री : हाँ। पहले इसमें से निकलता है धीरे-धीरे! इस दरवाज़े में घुसने के बाद, फिर दूसरे दरवाज़े तक जा सकेंगे। लेकिन अगर कोई पहले दरवाज़े में भी नहीं घुसा है तो उसका क्या होगा?

पहचानने वाला ही प्राप्ति करेगा

प्रश्नकर्ता : ऐसी गहन बात निकले न, तब आपकी बहुत उच्च प्रकार की पहचान होती है उस समय। आपकी दशा की बहुत अद्‌भुतता लगती है, 'अक्रम विज्ञान' की अद्‌भूतता महसूस होती है।

दादाश्री : सभी को यह पहचान समझ में नहीं आती है न। क्या पहचान को समझना आसान बात है? पहचान समझ में आ जाए न, तो वह उसी रूप हो जाएगा। पहचानना आसान बात नहीं है न! हाँ, जिसे ऐसा दिखता है कि हमारा '*आपोपा*'! जा चुका है, उसे बहुत बड़ी बात समझ में आ गई। वह '*आपोपुं*' को समझ गया।

आपोपुं गया, हो गया परमात्मा

अब यह *आपोपुं* जाए किस तरह? कि जिनका *आपोपुं* चला गया है उनके दर्शन करवा दें न तो वही उसकी 'फिटनेस' है, बाकी कुछ नहीं।

प्रश्नकर्ता : दर्शन करने से ही हो जाता है?

दादाश्री : दर्शन करने से सबकुछ होता है। आज ही यह बात निकली है। *आपोपुं* शब्द निकला है क्या? यह तो जब कोई प्रकरण खुले तब 'ओपन' होता है।

जिसका यह *आपोपुं* चला जाए, भगवत् उसका चला लेते हैं। *पोतापणुं* चला जाए तो भगवत् चला लेते हैं। फिर क्या परेशानी है, बोलो। हमारा *आपोपुं* चला गया है, फिर बाकी का सब भगवत् चला लेते हैं।

मुझे कहाँ यह सब परेशानी है? अरे! कृष्ण भगवान घोड़े चलाते रहते हैं। हमें तो अंदर बैठे-बैठे देखते रहना है। भगवान कब संभालेंगे? वह तो जब *आपोपुं* छोड़ देगा तब इसलिए कृपालुदेव ने कहा है न, कि 'भगवत्, भगवत् का संभाल लेंगे लेकिन यदि *आपोपुं* छोड़ेंगे तो?'

जब तक *आपोपुं* है तब तक भगवान की ज़िम्मेदारी नहीं है। *पोतापणुं* नहीं रहेगा तब भगवान की ज़िम्मेदारी है। हाँ, 'फुल' ज़िम्मेदारी उनकी!

आपोपुं जाने में तो बहुत टाइम लगेगा। यह तो दूसरे सभी बाहर के पड़ोसियों के साथ अभी *निकाल* तो करो। बाकी, *आपोपुं* जाने और भगवान होने में फर्क नहीं है। अंत में 'हमारा' *आपोपुं* गया इसलिए भगवान ने यह भार उठाया। अब हमें भार नहीं है। जब से हमारा *आपोपुं* गया तभी से उन्होंने अपने सिर पर भार ले लिया। तभी तो हम यह आनंद करते हैं न! और यह तो ऐसा है न, मैंने तो बहुत समय बाद किया और आपको तो आसानी से हो जाता है, इसलिए लाभ उठा लेना है। आखिर में तो *आपोपुं* जाएगा, तभी काम होगा।

'परमात्मा' होना और '*आपोपुं* जाना,' उन दोनों में फर्क नहीं है। यदि *आपोपुं* गया, तो वहाँ पर परमात्मा के अलावा और कुछ है ही नहीं।

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

अटकण : जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे
शाता : सुख-परिणाम
अशाता : दुःख-परिणाम
आरा : कालचक्र का बारहवाँ हिस्सा
आड़ाई : अहंकार का टेढ़ापन
ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक
कढ़ापा : कुढ़न, क्लेश
अजंपा : अशांति
खेंच : आग्रह
पूरण-गलन : चार्ज होना, भरना-डिस्चार्ज होना, खाली होना
गारवता : संसारी सुख की ठंडक में पड़े रहना
घेमराजी : खुद के सामने दूसरों को तुच्छ समझना
चलण : वर्चस्व, सत्ता, खुद के अनुसार सब को चलाना
तायफा : फज़ीता, जान-बूझकर किसी को परेशान करने के लिए किया गया नाटक
तरछोड़ : तिरस्कार सहित दुतकारना
त्रागा : अपनी मनमानी करने या बात मनवाने के लिए किए जाने वाला नाटक
धार्यु : मनमानी
निर्जरा : आत्म प्रदेश में से कर्मों का अलग होना
नोंध : अत्यंग राग अथवा द्वेष सहित लंबे समय तक याद रखना
नियाणां : अपना सारा पुण्य लगाकर किसी एक चीज़ की कामना करना
पुद्गल : जो पूरण और गलन होता है
पोतापणां : मैं हूँ और मेरा है ऐसा आरोपण, मेरापन, खुदपना
भोगवटा : सुख या दुःख का असर, भुगतना
राजीपा : गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता
रिसाल : जिसे दूसरों का रूठना दिखाई देता है
लागणी : लगाव, भावुकतावाला प्रेम
पोल : गड़बड़
निकाल : निपटारा
उपाधि : बाहर से आने वाला दुःख और परेशानी

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

१. ज्ञानी पुरुष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का सिद्धांत
४. आत्मबोध
५. मैं कौन हूँ ?
६. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
७. भुगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. प्रतिक्रमण
१४. दादा भगवान कौन ?
१५. पैसों का व्यवहार
१६. अंत:करण का स्वरूप
१७. जगत कर्ता कौन ?
१८. त्रिमंत्र
१९. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
२०. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
२१. प्रेम
२२. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं.)
२३. दान
२४. मानव धर्म
२५. सेवा-परोपकार
२६. मृत्यु समय, पहले और पश्चात
२७. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
२८. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
२९. क्लेश रहित जीवन
३०. गुरु-शिष्य
३१. अहिंसा
३२. सत्य-असत्य के रहस्य
३३. चमत्कार
३४. पाप-पुण्य
३५. वाणी, व्यवहार में...
३६. कर्म का विज्ञान
३७. आप्तवाणी - १
३८. आप्तवाणी - २
३९. आप्तवाणी - ३
४०. आप्तवाणी - ४
४१. आप्तवाणी - ५
४२. आप्तवाणी - ६
४३. आप्तवाणी - ७
४४. आप्तवाणी - ८
४५. आप्तवाणी - ९
४६. आप्तवाणी - १३ (पूर्वार्ध)
४७. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (पूर्वार्ध)
४८. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (उत्तरार्ध)

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी ५५ पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421.
फोन : (079) 39830100, E-mail : info@dadabhagwan.org

राजकोट : **त्रिमंदिर,** अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी (सर्कल),
पोस्ट : मालियासण, जि.-राजकोट. फोन : 9924343478

भुज : **त्रिमंदिर,** हिल गार्डन के पीछे, एयरपोर्ट रोड. फोन : (02832) 290123

अंजार : **त्रिमंदिर,** अंजार-मुन्द्र रोड, सीनोग्रा पाटीया के पास, सीनोग्रा गाँव,
ता.-अंजार, फोन : 9924346622

मोरबी : **त्रिमंदिर,** मोरबी-नवलखी हाईवे, पो-जेपुर, ता.-मोरबी,
जि.-राजकोट. फोन : (02822) 297097

सुरेन्द्रनगर : **त्रिमंदिर**, सुरेन्द्रनगर-राजकोट हाईवे, लोकविद्यालय के पास, मुळी रोड.
फोन : 9737048322

अमरेली : **त्रिमंदिर**, लीलीया बायपास चोकडी, खारावाडी, फोन : 9924344460

गोधरा : **त्रिमंदिर,** भामैया गाँव, एफसीआई गोडाउन के सामने, गोधरा.
(जि.-पंचमहाल). फोन : (02672) 262300

अहमदाबाद : **दादा दर्शन,** ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380014. फोन : (079) 27540408

वडोदरा : दादा मंदिर, १७, मामा की पोल-मुहल्ला, रावपुरा पुलिस स्टेशन के
सामने, सलाटवाड़ा, वडोदरा. फोन : 9924343335

मुंबई	: 9323528901	**दिल्ली**	: 9810098564
कोलकता	: 9830093230	**चेन्नई**	: 9380159957
जयपुर	: 9351408285	**भोपाल**	: 9425024405
इन्दौर	: 9039936173	**जबलपुर**	: 9425160428
रायपुर	: 9329644433	**भिलाई**	: 9827481336
पटना	: 7352723132	**अमरावती**	: 9422915064
बेंगलूर	: 9590979099	**हैदराबाद**	: 9989877786
पूणे	: 9422660497	**जलंधर**	: 9814063043

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K.	: +44 330-111-DADA (3232)	**Australia**	: +61 421127947
Kenya	: +254 722 722 063	**New Zealand**	: +64 21 0376434
UAE	: +971 557316937	**Singapore**	: +65 81129229

www.dadabhagwan.org

सभी शास्त्र समाए चौदह आप्तवाणियों में!

प्रश्नकर्ता : आप जो 356 डिग्री पर बैठे हैं, तो हर एक डिग्री का जो ज्ञान है, वह आपको आप्तवाणी में देना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, ये चौदह आप्तवाणियाँ प्रकाशित होंगी और सब पूर्ण होंगी। जब इन सब में इकट्ठा होगा, तब उसमें सारा ज्ञान आ जाएगा। अर्थात् मोती पूरे होने चाहिए न? अभी तो सिर्फ नौवाँ भाग प्रकाशित हुआ है। अभी तो पाँच बाकी हैं।

प्रश्नकर्ता : नौवीं आप्तवाणी इतनी अच्छी है तो चौदहवीं आप्तवाणी कैसी होगी?

दादाश्री : सभी शास्त्रों में, जो ज्ञान प्रकट हुआ हैं न, वे सब इन चौदह आप्तवाणियों में आ जाएगा। तब फिर लोगों को बाहर के अन्य शास्त्रों की हेल्प लेने की ज़रूरत नहीं रहेगी। ये नए शास्त्र, यह नई बात, यह सब नया ही रखा जाएगा। यह सरल भाषा है इसलिए लोगों के लिए अनुकूल है और इसमें पूरा ही मोक्षमार्ग बता दिया है, कुछ बाकी नहीं रखा है।

\- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना
असीम जय जयकार हो

dadabhagwan.org